॥ श्री गरीबाचार्य्यो विजयतेतराम् ॥

सतगुरु दाता हैं कलिमांहिं, प्रानि उधारण उतरे सांई।

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय अनन्त श्री विभूषित १००८ श्रीजगद्‌गुरु श्री गरीबाचार्य्य जी महाराज का संशोधित संक्षिप्त जीवन-चरित्र

जिसको

परमपूज्य श्री १०८ स्वामी भूरीवाले ब्रह्मसागर जी महाराज के चरणानुरागी परम शिष्य श्री अवधूत स्वामी भक्तराम जी ने संग्रह करके छपवाया

श्रीमती सुन्हेरी देवी धर्मपत्नी लाला मुरारी लाल गुप्ता (छारा, हरियाणा)
सुपुत्र स्वर्गीय लाला शम्भुदयाल, स्वर्गीय श्रीमति अनारो देवी
एवं
विनोद गुप्ता, नरेश गुप्ता, वीरेन्द्र गुप्ता,
अनिल गुप्ता, सुनील गुप्ता
सुपुत्र लाला मुरारी लाल गुप्ता
निवासी 40/5, 40/12, और 40/13, शक्ति नगर, दिल्ली-110007 ने छपवाया।

यह सद्‌गुरु जी का जीवन चरित्र जो सन् 1962 में प्रकाशित हुआ था उस समय, समय के अभाव के कारण कुछ खास-खास कमियां रह गई थीं।

बहुत से गरीब दासी महानुभावों ने सुझाव दिया कि सद्‌गुरु गरीब दास जी महाराज को जो लोग गृहस्थ भोगी मानते है या कहते है। यह गल्त है इसके विषय में प्रमाण सहित जीवन चरित्र में स्पष्ट करना चाहिए। क्योंकि वह परम संत थे। उन्होंने कबीर साहब की तरह स्त्री सम्भोग का पूरजोर शब्दों में खण्डन किया है। इसलिए प्रमाण सहित इसका निषेध करना चाहिए। क्योंकि आचार्य श्री ने अपनी वाणी में अनेक स्थलों पर यह सिद्ध किया है कि वीर्य संरक्षण करना परम आवश्यक है। सृष्टि की रचना अनेक प्रकार से मानी गई है जैसे ब्रह्मा जी ने मानसिक संतान पैदा की सनक सनदन आदि और मनु सतरुपा को उत्पन्न किया मन से अर्थात् बहुत प्रकार के सृष्टि की रचना के विषय में प्रमाण मिलते हैं और औषधि से दृष्टि से मन्त्र से भी सृष्टि की रचना होती आई है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सद्‌गुरु जी महाराज के विषय में जो लोग यह कहते हैं कि उनके बच्चे हुए वह बच्चे भी आम संसारी लोगों की तरह मैथुन से नहीं केवल दृष्टि मात्र से उनकी संतती हुई है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में रु. 21,000/- का सहयोग श्री बलवीर सिंह S.D.O. पंचायत विभाग ने अपने स्वर्गीय सुपुत्र जोध सिंह की स्मृति में दिए है।

अवधूत स्वामी भक्तराम

ओ ३ म्

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'

महामण्डलेश्वर डॉ० स्वामी श्यामसुन्दरदास शास्त्री

एम०ए० सांख्ययोगवेदान्ताचार्य, साहित्यायुर्वेदाचार्य, बी.आई.एम.एस.

श्री साधु गरीबदासीय सेवाश्रम ट्रस्ट, मायापुर, हरिद्वार-२४९४०१

आचार्य श्री गरीबदास जी की परम्परा एवं सिद्धान्त

(१) पुण्ये पवित्रे हरियाणदेशे, श्रीमत्कबीरस्य रूपेऽवतीर्णाः।

जगद्गुरु धर्मविदोजयन्ति, आचार्यवर्य्याः श्री गरीबदासाः॥

भावार्थः भारत वर्ष के प्रसिद्ध पवित्र पुण्यमय प्रान्त हरियाणा में श्री मद् भगवान् कबीर के रूप में धर्मज्ञ धर्माचार्य जगद्गुरु श्री गरीबदास जी महाराज का अवतार वैशाख शुक्ला पूर्णिमा सम्बत् १७७४ को हुआ था।

(२) आचार्य चरणाः श्री गरीबदासाः तीर्थी कुर्वन्ति श्रीछूडांणीधामकम्।

कलौ युगे मानव मुक्तिदातृकाः, श्री भगवद्रूपा स्त्रिताप हारिणः॥

भावार्थ : आचार्य प्रवर श्री गरीबदास जी जिस धरांधाम पर प्रकट हुए उसका अन्वर्थ नाम भवबन्धन से छुटकारा देने वाला छुडाणी धाम है। जो मोह ममता को भी छुडाणे वाला परम पवित्र तीर्थ स्थान है। आचार्य श्री ने कलियुग में श्री कृष्णावतार के रूप में अपने आध्यात्मिक ब्रह्मज्ञान से मानव जाति के लिए मोक्ष मुक्ति का मार्गप्रशस्त किया और कहा नर देही नारायण ये ही। साथ ही त्रिविध दुःख- आध्यात्मिक आधि दैविक आधि भौतिक का भी हरण किया।

(३) अमृतमयीवाणी समुपदिंष्टा, अष्टादशा सहस्रमयी सुगीता।

वेदत्रयीज्ञान प्रदीपिका शुभा, श्री कृष्णभगवद्भावानुसारिणी॥

भावार्थः जिस प्रकार श्री कृष्ण भगवान् के मुखार बिन्द से उच्चारित अट्ठारह अध्याय वाली गीता में कर्म भक्तिज्ञान त्रिकाण्ड का उपदेश मानव जाति को दिया गया है। उसी प्रकार उस गीता एवं वेदों (ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद) के आध्यात्मिक ज्ञान के दीपक को प्रकाशित करने वाली अपनी अमृतमयी वाणी ग्रन्थ साहब का उपदेश आचार्य श्री ने

जिज्ञासु भक्तों को प्रदान किया।

(४) तेषां सुशिष्याः गुरुदेवनिष्ठाः, सन्तोषदासाः नादानुसारिणः।

श्री जैतरामाः ह्यपि विन्दु शिष्याः, श्रीज्ञान सिंधुरूपा जयन्ति ते॥

भावार्थः आचार्य श्री ने अपने अध्यात्म ज्ञान की दीप ज्योति को प्रज्वलित रखने के लिए नाद परम्परा (विरक्त साधु मण्डली एवं विन्दुपरम्परा, श्रद्धालु सद्गृहस्थ मंडली) का प्रवर्तन किया।

तद्नुसार नाद परम्परा में श्री सन्तोषदास जी एवं विन्दु परम्परा में श्री जैत राम जी को शिष्य रूप में चयन किया। दोनों ही शिष्य बड़े ही सफल गुरुतीर्थ निष्ठ ज्ञानी गुरु के रूप में प्रसिद्ध हुए।

(५) श्री प्रेमदासा गुरुभातृदेवाः, शताधिकाः शिष्यगणाः जयन्ति।

धर्म प्रचारे ह्याचार्यचरणें, समर्पिताः भारतज्ञानदीपाः॥

भावार्थ : आचार्य श्री के श्री चरणों में पूर्ण समर्पित सैकड़ों शिष्य थे जो भारत भूमि में धर्म का प्रचार करते हुए अध्यात्म ज्ञान की प्रदीप्त ज्योति का प्रकाश करते थे। जिनमें प्रेम व प्यार की प्रतिमूर्ति श्री प्रेमदास जी का नाम प्रसिद्ध है।

(६) तेषां स्वरूपे गोविन्दस्वामिनः, श्री रत्नदासा अध्यात्मज्ञानदाः।

तेषामपि शिष्य परम्परायां श्री ठाकुरदासा देवाः जयन्तु॥

भावार्थ : उन श्रद्धेय स्वामी प्रेमदास जी के स्वरूप में विराजमान श्री गोविंद दास जी महाराज बड़े संयमी साधु महापुरुष थे। जो साक्षात् गोविंद गोपाल भगवान् के रूप थे। उनकी उज्जवल परम्परा में अमूल्य ज्ञान रत्न निधि श्री रत्नदास जी महाराज प्रकट हुए थे। श्री रत्नदास जी की शिष्य परम्परा में परमश्रद्धेय साक्षात् ठाकुर स्वरूप श्री ठाकुरदास जी का अवतार हुआ।

(७) तेषां प्रसादात् श्री दयालुइसाः युगावताराः महामण्डलीशाः।

आचार्य निष्ठा स्तद्वाणी पण्डिताः जयन्ति षडदर्शन साधुसंघे॥

भावार्थः भवगत् स्वरूप श्री ठाकुरदास जी महाराज के कृपा प्रसाद से उनके सुयोग्य शिष्य दयावतार युगवतार महामण्डलेश्वर स्वामी दयालुदास

जी महाराज साधु समाज को प्राप्त हुए। जो आचार्य श्री के प्रति अनन्य निष्ठावान् थे। उनकी अमृतमयी वाणी के मर्मज्ञ विद्वान थे। जिन्होंने षड्दर्शन भारत साधु समाज में श्री गरीबदासी सम्प्रदाय को विशेष प्रतिष्ठित किया।

(८) गोगंगा गायत्री गीता गुरुषु समर्पिता ये हि वकारपंचे।
सहस्रशः शिष्यगणैः समृद्धाः, जयन्तु ते स्वामि दयालुदेवाः॥

भावार्थ : श्री महामण्डलेश्वर स्वामी दयालुदास जी महाराज अपनी हजारों त्यागी तपस्वी शिष्यों की मण्डली के सहित अध्यात्मविद्या एवं सदाचार के प्रचार के लिए भारत भ्रमण करते थे, जो गो गंगा गायत्री गीता गुरु परम्परा इस पंचगकार निष्ठा एवं सुविधा सुवपु (देह) सुवाणी सुवस्त्र विनय इस पंचवकार निष्ठा में समर्पित थे।

(९) सनातने वेदपथे प्रतिष्ठिताः सत्यस्य न्यायस्य च मार्गदर्शकाः।
अशक्त रोगिजन दीन देवाः, जयन्तु ते स्वामि दयालुदासाः॥

भावार्थः श्री स्वामी दयालुदास जी महाराज सनातन वैदिक मार्गमें प्रतिष्ठित थे। सत्य के मार्ग एवं न्याय के मार्ग परचलने की प्रेरणा देने वाले थे। जो अशक्त रोगी दीन जनवत्सल यथार्थ में दयालु दास जी महाराज यथानाम तथा गुण सूक्ति को चरितार्थ करते हैं। ऐसे स्वामी जी महाराज की सदा जय जय-कार समाज में होती रहेगी।

(१०) चिकित्सा ये मनसोगदानां, कामादि षड्शत्रु भयंकराणांम्।
देहात्मबुद्धि परिब्राजका ये, जयन्तु ते स्वामिदयालुदेवाः॥

भावार्थः श्री दयालुदास स्वामी जी महाराज अपने भक्तों को काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान सत्सर ईर्ष्या द्वैष आदि मानस रोगों की चिकित्सा अपने अध्यात्मज्ञान से करते थे शारीरिक रोगों की चिकित्सा, देहाध्यास गेहाध्यास से मुक्ति दिलाकर माता-पिता गुरुजनसेवा के संस्कार से देते रहे। ऐसे अकारण दयालु देव की सदा जय जयकार समाज में होती रहे।

(११) ध्यानादि योगेन मनसो विशुद्धि जपादियोगेन वचसः प्रशुद्धिम्।
निष्काम योगेन शरीर शुद्धिं सदा दिशन्ति श्री दयालु स्वामिनः॥

भावार्थः श्री दयालु दास जी महाराज ने मन की विशेष शुद्धि

ध्यानादियोग चित्तवृत्ति निरोध से। वाणी की विशेष शुद्धि भगवान् के पवित्र नामों के जाप संकीर्तन से, शरीर की विशेष शुद्धि निष्काम भाव से माता पिता गुरुदेव एवं अशक्त बालक-वृद्ध रोगी महिला जन की सेवा करने से उपदिष्ट की है। ऐसे दयालु स्वामी जी की समाज में सदा जयजयकार होती रहे।

(१२) यत्रापि कुत्रापि श्री दयालु देवैः, ज्ञानप्रचाराय केन्द्रं हिस्थापितम्।
विशेषतो यैश्च हरियाणं देशे, शुभ गंगाद्वारे ह्युत्तर प्रदेशे॥

भावार्थ : श्री दयालुदास जी महाराज जी का जिस किसी भी स्थान में शुभागमनपदार्पण होता था वे वहाँ अध्यात्म ज्ञान का केन्द्र मानसरोवर स्थापित कर देते थे। उन्होंने विशेषकर हरियाणा प्रान्त में उत्तर प्रदेश में हरिद्वार गंगाद्वार आदि में अनेक मठ आश्रमों सेवाकेन्द्रों की स्थापना की थी।

(१३) श्री राजस्थाने पांचालप्रदेशे अंगेहि बंगे मध्ये चेन्द्र प्रस्थे।
ग्रामम् अटन्तो महामण्डलीशाः सततं दिशन्ति धर्मस्य दीक्षाम्॥

भावार्थ : श्री दयालुदास जी महाराज ने पांचाल पंचनद पंजाब प्रान्त में बिहार बंगाल उत्कल मध्य प्रदेश एवं दिल्ली प्रान्त में नगर-नगर गांव-गांव में जाकर अध्यात्म विद्या केन्द्रों की स्थापना की जिससे अनेक संस्कारी भक्तजनों को लाभ हुआ। ऐसे दयालुदास स्वामी जी की सदा जयजयकार होती रहे।

(१४) अशीति रष्टोत्तर खिष्ट वत्सरे, सुकोटिकम् कोठी शताब्दि पर्वकम्।
श्री भक्तरामैरवधूत स्वामिभिः छूडाणी धाम्नि संयोजितं शुभम्॥

भावार्थ : इसवीय सन् १९८८ में कोठी श्री दयालुदास जी का सुन्दर शताब्दि पर्व बड़ी धूमधाम एवं विधि विधान से छुडानी धाम में अवधूत शिरोमणि श्री स्वामी भक्तराम जी महाराज के संयोजकत्व में सम्पन्न हो रहा है जिसमें आचार्य श्री की अमृतमयी वाणी ग्रन्थ साहब के १०८ अखण्ड पाठ पारायण, सद्गुरु सन्त मंदिर आचार्य पीठ में सम्पन्न हो रहे हैं।

(१५) सम्मेलनं मानवधर्मसंगतं, गुरू जनानां शिक्षण प्रचारकम्।
पंचेन्द्रियसंयम यज्ञात्मकं हि, श्री भक्तरामैः परमं हि योजितम्॥

भावार्थ : साथ ही मानव धर्म, सन्त सम्मेलन, गुरूजनस्मृति सम्मेलन, पंचेन्द्रिय संयम सम्मेलन, गोरक्षा सम्मेलन अनेक धार्मिक सामाजिक आयोजन अवधूत जी महाराज कर रहें हैं। जिसमें षडदर्शन साधु समाज के अखाड़ों आश्रमों के सन्त महन्त मण्डलेश्वर धर्म प्रचारकों के शुभ दर्शन भी हो रहें हैं।

(१६) अवधूत भक्त रामस्य गुरवः, ब्रह्मस्वरूपाः हि ब्रह्मतागरा ये।

सुभूरिकाः भूरिवाले हि ख्यातकाः, जयन्ति तेऽखण्ड पाठ प्रवर्त्तकाः॥

भावार्थ : अवधूत भक्तराम जी महाराज के गुरूदेव स्वनामधन्य श्री ब्रह्मसागर जी महाराज भूरिवाले बड़े प्रसिद्ध योगिराज महापुरुष परं ब्रह्म स्वरूप थे जिन्होंने आचार्य श्री गरीबदास जी की १८ हजार वाणी (अमृतमयी वाणी) ग्रन्थ के अखण्ड पाठ की परम्परा का श्री गणेश साधु समाज में किया। वे भूरि-भूरि प्रशंसा के महापात्र हैं।

(१७) आहार व्यवहार विचार शुद्धिं अत्र दिशन्ति महामण्डलीशाः।

सन्तो महान्तो ज्ञानि तपस्विनः सदाचार योगा हिंसाव्रता ये॥

भावार्थ : इस सन्त सम्मेलन में बड़े-बड़े सन्त महन्त महामण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर ज्ञानी ध्यानी तपस्वी योगिराज सत्य अहिंसा के प्रचारक महापुरूषों का दर्शन एवं उनके वचनामृत पान करने का शुभ अवसर अवधूत जी महाराज करा रहें हैं। वे सदा धन्यवाद के पात्र हैं। वे स्वस्थ दीर्घायु रहें।

(१८) सततं लसन्तु शुभकामभावाः श्री भक्तराम गुरूतीर्थ काय।

सद्भ्यो महद्भ्यो गुरूसाधु योगिभ्यः श्री श्यामसुन्दरदासस्य शास्त्रिणः॥

भावार्थ : मैं स्वामी श्यामसुन्दर दास शास्त्री लेखक के रूप में ऐसे गुरूतीर्थ निष्ठा वाले अवधूत भक्तराम जी महाराज के लिए आचार्य श्री से प्रार्थना करते हुए मंगलकामना करता हूँ वे साधु समाज का गौरवमय कीर्तिमान स्थापित करें एवं स्वस्थ तथा दीघार्यु हों। साथ ही मैं उपस्थित सन्त महन्त गुरू जन योगिराज महापुरुषों को सादर नमस्कार प्रणाम ऊँ नमः सत्पुरुषाय सत् साहेब कहता हुआ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

विषय-सूची

ॐ

शुभ सम्मतियाँ

श्री सद्गुरुगरीबदासो विजयतेतराम्

श्री भक्तिमान सज्जनवृन्द, आज हम सभी लोग प्रसन्नता के गीत गायें। हमी हीं केवल नहीं, श्री सद्गुरु गरीबदास जी जो हम लोगों के महान् उद्धारक हैं वे भी गीत गायन कर रहे हैं। क्या गाते हैं सुनो आन्तरिक श्रोत्र खोलकर—

गरीब सन्तों सेती दोस्तीसाहिब सेती प्यार,
तिनको शंका है नहीं धर्मराय दरबार।

जम से बचने के लिये केवल दो चीज हैं (१) महात्माजनों का साथ, (२) इष्टदेव प्रमात्मा से प्रेम।

गरीब सन्तों सेती ओलने संसारी से नेह।
सो दरगाह में मारिये, सिर में देकर खेह॥

नरक के लिये भी दो चीजें ही पर्याप्त हैं। (१) सत्संग व सन्तों से छुपाब, (२) संसारियों से प्रेम। आप लोगों को यह कहने की तो जरूरत नहीं है कि कौन प्राप्त करने योग्य है या कौन छोड़ने योग है। इस विषय को सज्जन-गण ही जान सकते हैं कि महापुरुषता क्या होती है। स्व-कल्याण करना तो पुरुषता ही है अपने सहित दूसरों का जो भला करना है यही महापुरुषता है। यह वार्ता प्रहलाद के शब्दों से सूचित होती है—

प्रायेणदेव मुनयःस्वविमुक्तिकामा मौनं चरति विजते न परार्थनिष्ठाः, नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोनुपश्ये, भाग ७.९.४४.

अर्थ— हे देव विशेष करके विचारशील अपनी मुक्ति की इच्छा से एकान्त में विचरते हैं। दूसरों के हित का कोई भी विचार नहीं करते हैं। परन्तु मैं तो इन अति विषयी-पुरुषों को छोड़कर एकला ही छूटने की इच्छा नहीं करता हूँ क्योंकि आपसे भिन्न कोई भी चक्कर लगाने वाले का आश्रय नहीं है। इस प्रहलाद के कथन में दूसरों को भी जो संसार से छुड़ाना है यह एक विशेष महानता है। आप ही सोचो कि जो लोग

दिन-रात घर के ही कार्यों में लगे हैं वे कैसे प्रभु को भज सकते हैं। मेरे विचारों से तो उनके लिये एकमात्र सन्तों की कृपा ही आश्रय है। प्रत्यक्ष में देखो तो स्वामी भक्तराम अवधूत जी हैं। इनकी हम लोगों पर कितनी कृपा है जो सद्गुरुओं की बाणी प्रायः प्राप्त नहीं हो रही थी उस वाणी को कभी रत्न सागर के रूप में कई बार नित्य-नियम गुटका रूप में छपवाया है इतना ही नहीं किन्तु जो प्रयत्न हमारे श्री गरीबदासीय संप्रादय में आज तक किसी महापुरुष ने नहीं किया उस प्रयत्न को ये महापुरुष कर रहे हैं। ऊँचे गद्दी पर बैठनादि कार्य तो मैं भी कर सकता हूँ परन्तु ये महापुरुष मानव धन व गद्दी आदि के उपेक्षा करके केवल हम लोगों के कल्याण के लिये तत्पर हैं। देखो तुलसीदासादि के समकालीन विद्वान् तुलसीदासादि से भले ही द्वेष करते थे परन्तु तुलसीदासादि का प्रयत्न द्वेष योग्य नहीं था इसी तरह स्वामी भक्तराम अवधूत जी का यह प्रयत्न प्रभु-प्रेमियों के लिये तो ग्रहण करने योग्य है, स्तुत्य है नीचगण भले ही द्वेष करते रहें। मेरे प्यारे भक्तो जो श्री सद्गुरु जी का अज्ञान-विनाशक चरित्र हमारे नेत्रों से अगोचर था उसी संजीवनी चरित्र-बूटी को इन महापुरुष (भक्तराम जी) ने प्रगट किया है, इनकी मैं प्रशंसा नहीं करता हूँ केवल वास्तविकता बताता हूँ, बिना किसी के गुण को जाने उसके वचनों में विश्वास नहीं होता बिना वचन ग्रहण नहीं किये जा सकते वचन ग्रहण बिना विश्वास कल्याण नहीं होता। श्री सद्गुरु देव के चरित्र से अनभिज्ञ लोग श्री गुरुदेव के वचनों को क्या मानेंगे श्री ग्रन्थ-साहिब के अप्रचार में यही कारण है कि श्री गुरुदेव के महत्वता के ज्ञान से लोग शून्य हैं। श्री सद्गुरु के चित्र और पुस्तकें व महात्मा अधिक हो जाएँ तो देखो बाणी का कितना प्रचार होता है। यदि ये चीजें हम लोग अधिक मात्रा में करे तो बाणी के प्रचार से हमारा भी कल्याण और दूसरों का भी। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि- 'आप जपे औरां नाम जपावे' इस प्रमाण से अवधूत जी का यह प्रयत्न महान है कि इन्होंने अप्राप्त श्री गुरुदेव जी के चरित्र को प्रगट किया है। मुझे १४ वर्ष अनुमानतः हो गये हैं सन्यास लिये तभी से मैं देख रहा हूँ कि अवधूत जी कितने तत्परता से लगे हुये हैं हम लोगों के कल्याण के लिये।

"साधु चरित शुभ चरित कपासू, निरस विसद गुनमय फल जासू। जो सहि दुख परछिद्र दुरावा, वन्दनीय सोजग जसपावा।"

संग से गुण दोषों का ज्ञान होता है अवधूत जी के साथ मैं रहा हूं परोपकार में जैसे शास्त्र वचन उपलब्ध हैं वे ही वचन अक्षरशः सर्व अवधूत जी में घटते हैं आप विचार करो प्रत्यक्ष देखो कि श्री सद्गुरुओं के शान्तिदायी चरित्रों के लिये कितना परिश्रम किया होगा इन्होंने। जो जीवन-चरित्र आज तक न था उसे आज हमारे सन्मुख कर रहे हैं ऐसे महापुरुषों को कोटि-कोटि प्रणाम हो।

सभी सन्त व भक्तों का प्रेमी
स्वामी ओ३म्प्रकाश भिक्षु

आज के बुद्धि-जीवी संसार में सभी प्राणी स्वसम्बन्धित सभी विषयों का ज्ञान रखना चाहते हैं। पूर्व-कालीन लोगों की तरह उन्हें अन्धविश्वास में तृप्ति नहीं होती। जैसे श्री सद्गुरु जी के भक्त-जन अपना इष्टदेव मानकर श्री सद्गुरु जी की पूजा करते हैं। जब-जब किसी सन्त महात्मा के मुख से सद्गुरु जी के विषय में कुछ सुनते हैं तो उसी समय अन्यकार्य को छोड़कर श्रवण में दत्तचित्त हो जाते हैं। तथापि वे सम्पूर्ण परिचय प्राप्त नहीं कर पाते। उनके दिलों में आकांक्षा बनी ही रहती है। सम्पूर्ण परिचय प्राप्ति का अभाव उन सब को बहुत खटकता रहता था। इस प्रकार की सब भक्तजनों की धारना देखकर श्री अवधूत जी स्वामी भक्तराम जी ने उन सब भक्तों की आकांक्षा को पूरा करने के लिये बहुत अधिक परिश्रम, सारे देश में घूमकर, तथा जिस किसी भी प्रकार श्री १००८ श्री सद्गुरु जी के ये परिचय एकत्रित किये तथा फिर शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करने का यह महान प्रयत्न भी स्वयं ही किया। उनके परिश्रम के फलस्वरूप यह ग्रन्थ सभी भक्तों के दिलों में श्री सद्गुरु जी के परिचय प्राप्ति के अभावरूपी तिमिर के लिये सूर्यरूप होगा।

लेखक-आचार्य अवधूत स्वामी
जगदीशमुनी शास्त्री
सन्त मण्डलाश्रम पंजाब सिंध
क्षेत्र भीम गोड़ा (हरिद्वार)

आचार्य देव श्री गरीब दास जी महाराज का जीवन-चरित्र जिसे श्री स्वामी अवधूत भक्त राम जी ने अपनी पूर्ण-शक्ति से निर्माण कर तैयार किया है। इसका सम्पूर्ण श्रेय आंप ही को है। जिसके विषय में लगभग २५० वर्षों से निर्माण की चर्चा चल रही थी उसे आपने एकमात्र अपने अटूट एवं पूर्ण प्रयास से तथा अन्य महात्माओं एवं भक्तों की प्रेरणा से प्रेरित होकर इस कार्य को सुचारु रूप से पूर्ण किया। पाठक लोगों से नम्र-निवेदन है कि इससे पूर्ण लाभ उठावें। स्वामी जी का यह प्रयत्न प्रशंसनीय है।

ज्वालाप्रसाद गौड़ न्यायाचार्य

पोष्टाचार्य, वाराणसी।

ॐ

॥ श्री गरीबदासाचार्यो विजयतेतराम् ॥

"ज्ञान यज्ञ"

अनन्त श्री विभूषत जगद्गुरु गरीबदासाचार्य जी ने सबसे अधिक ज्ञान यज्ञ को ही महत्व दिया है और उसी का नाम आपने पाँचवी यज्ञ रक्खा है। वह पाँचवीं यज्ञ क्या है? वह है ज्ञान उस ज्ञान की प्राप्ती कहां से होती है महापुरुषों तथा सिद्ध योगियों एवं सत्शास्त्रों तथा महात्माओं के सदुपदेशों से या उनके जीवन चरित्रों के पढ़ने एवं सुनने से ये सब साधन ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं। हनारे आचार्य ने अपनी अमृतमयी वाणी में अनेक प्रकार से प्राचीन महात्माओं, भक्तों, योगियों के नाम व जीवन का कथन किया है अन्य भी सभी महात्मा एवं सत्शास्त्र ऋषी मुनी सब इसी ज्ञान को कथन करते आये हैं और श्री सद्गुरु देव जी ने तो उपदेश को ही मुख्य माना है। वे कहते हैं कि बिना उपदेश के तो यह जीव पशु के तुल्य ही है क्योंकि उपदेश के बिना किसी भी जीव को कल्याण एवं सुख की प्राप्ती नहीं हो सकती जैसे की महाराज जी इन साखियों द्वारा इस कथन की परिपुष्टी करते हैं।

सत् गुरु पूर्ण ब्रह्म हैं, सत् गुरु आप अलेख।
सत् गुरु रमता राम हैं, या में मीन न मेख।।

श्री १००८ जगद्गुरु आचार्य श्री गरीबदास जी महाराज

"गरीब" मूल[१] कला[२] उपदेश है, जे कोई समझै जीव।
बिन उपदेश न पाइये अवगति सांई पीव॥१॥
"गरीब" नारद के उपदेश तैं गौरज लागी ढिग[३]।
जो क़रि है सो पाई है, क्या हंसा क्या बग[४] ॥२॥
"गरीब" बिन उपदेश अचंभ[५] है, क्यों जीवत हैं प्राण[६]।
भक्ति बिना कहां ठौर है, नर नाहीं पाषाण[७]॥३॥
"गरीब" बिन उपदेश अधम[८] गति कहां रावण की ठौर।
मूल[९] मंदोदरी मिल रही, उर में अजपा सौर[१०]॥४॥

---

१. जड़, आश्रय, आधार।
२. शक्ति तथा सम्पूर्ण धर्मों व कर्मों की जड़ उपदेश ही है यदि कोई जीव इस वार्ता का विचार करे।
३. समीप चरणों में।
४. बगुला पक्षी है जो मेंढक मच्छियों को खाता है, तथा बिना उपदेश के चाहे कोई उत्तम या नीच व्यक्ति हो वह दोनों एक जैसे ही हैं॥ चाहे कोई बड़ा हो या छोटा किसी का भी बिना ज्ञान उपदेश के कल्याण नहीं हो सकता हंस और बगुले के दृष्टान्त को महाराज जी ने इसलिये दिया है। जैसे कि श्री पार्वती जगदम्बा को भी जन्मते मरते ही रहना पड़ा था जब तक कि श्री नारद जी ने नहीं बताया जब नारद जी ने उनसे इस प्रकार कहा कि तुम कल्याण स्वरूप भगवान् शंकर की पत्नी होते हुये भी जन्मती मरती हो देखो तुम्हारे १०८ जन्म हो चुके हैं जब तुम शरीर का परित्याग करती हो तब उसका सिर काट कर शंकर जी अपनी माला में डाल लेते हैं। वही १०८ रुण्डों की माला शंकर जी अपने गले में डाले हुये है। इस नारद जी के उपदेश से पार्वती जी को जन्म-मरण से छूटने की जिज्ञासा हुई और शंकर जी से अमर कथा सुनकर जन्म मरण से रहित हुई। यह कथा महाराज जी के गन्थ साहब में आदि पुराण के अन्दर विस्तारपूर्वक वर्णन की गई है।
५. आश्चर्य। अचम्भा
६. प्राणीजीव।
७. पत्थर।
८. नीच, तुच्छ, पामर।
९. सबका आश्रय, जड़, परमात्मा।
१०. अच्छी प्रकार तथा हृदय में हर समय ओ३म सोहं का श्वासी द्वारा होने वाला जाप।

"गरीब" उपदेशी[११] अनुरागिया[१२], जाके चरण जुहार[१३]।
नाम रते निर्गुण कला, जाके किसा[१४] लगार[१५]॥५॥
"गरीब" सर्बस मूलं संग है सरबस मूलं न्यार।
उपदेश कला तें पाइये समरथ सिरजन[१६] हार॥६॥

इस प्रकार से जैसे कि ऊंपर महाराज जी ने वर्णन किया है कि उपदेश के बिना जो जीव जीते हैं वह नीच ही समझे जाते हैं। इसलिये उपदेश मनुष्य मात्र के लिये अति आवश्यक है। उस उपदेश का सम्पादन (प्राप्ती) तभी हो सकती है जबकि हम जगद्‌गुरु तथा महापुरुषों की वाणियों एवं सत्शास्त्रों को पढ़ेगें। वह महापुरुषों की वाणी एवं उनका जीवन चरित्र (जिससे कि हम अपने जीवन को भी वैसा ही बना सकें) आदि पुस्तकें तभी प्राप्त होंगी जबकि हम सब मिलकर सहयोग देगें वह सहयोग तन मन धन से दिया जा सकता है। इसलिये हम सब को इस ज्ञान यज्ञ में भाग लेते हुये अपने को पुण्य के भागी बनाना चाहिए तभी हम जगद्‌गुरु जी की वाणी एव जीवन-चरित्र का प्रचार प्रसार कर सकेंगे इसलिये सद्‌गुरु जी के अनुयायी महापुरुषों एवं सेवकों से निवेदन है कि आप सब इस शुभ कार्य में भाग लेते हुये मेरे उत्साह को बढ़ाते हुये सहायता करते रहें जिससे मैं आप सब लोगों की बाणी के माध्यम से सेवा कर सकूं। एक संस्था बनी हुई है। यह संस्था सदा ही आपको सद्‌गुरु जी के जीवन के विषय में एवं बाणी के टीका-टिप्पणी आदि करने का प्रयत्न कर सकेगी।

जिन महात्माओं ने इस जीवन चरित्र के छपवाने के लिये आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुये मुझे इस कार्य के लिये प्रेरित एवं उत्साहित

---

११. जिस व्यक्ति ने गुरु उपदेश लिया हो।
१२. प्रेमी, प्रेम करने वाला।
१३. पूजाकर, नमस्कार।
१४. कैसा, किस प्रकार का।
१५. लगावट एवं पापादि दोष।
१६. उत्पन्न करने वाला।

किया है उन का मैं आजीवन आभारी रहूँगा। और प्रेमी भक्तों को श्री सद्‌गुरु बन्दी छोड़ महाराज की ओर से मैं शुभाशिर्वाद प्रदान करता हूँ।

प्रकाशन के निमित्त दान करने वाले सज्जन का नाम

श्री बलबीर सिंह भूतपूर्व एस.डी.ओ. पंचायत विभाग रोहतक निवासी ने अपने सुपुत्र स्वर्गीय श्री युद्ध बीर सिंह की स्मृति में दिये। 21011/-

आवश्यक वार्ता

बहुत वर्ष पूर्व से ही यह बात मेरे मन में खटकती थी कि हमारे परमपूज्य श्री मज्जगद्गुरु गरीबाचार्य जी का जीवन चरित्र दृष्टिगोचर नहीं है। इस अभाव को पूर्ण करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु कुछ सफलता न प्राप्त हो सकी, जहाँ भी मैं जाता वहीं पर प्रेमी भक्त वृन्द कहा करते थे कि हमें महाराज गरीबदास जी के सम्बन्ध में कुछ बताएं जिससे हम उनके जीवन-चरित्र एवं उनके उपदेशों तथा उनकी चमत्कारमयी शक्तियों को जान सकें। परन्तु मैं इस विषय में अनभिज्ञ सा ही था क्योंकि मेरे पास कोई जगद्गुरु जी के परिचय के विषय में कोई प्रमाण नहीं था इसलिये मैं पूर्णरूप से किसी को भी कुछ नहीं बता सकता था यत् किंचित ज्ञान तो परम्परा से जो सुन रहा था वह था ही किन्तु विशेष नहीं। स्वामी चेतनदास जी ने महाराज के विषय में बहुत कुछ एकत्रित किया है यह सुनकर मैंने इनसे बहुत समय तक प्रार्थना की परन्तु कुछ ऐसी ही परिस्थितयाँ थीं जिसके कारण वे भी सफलता न प्राप्त कर सके। क्योंकि उनको अधिक कार्य वशात समयाभाव रहता था। वैसे तो इन्होंने बहुत कुछ संग्रह किया है। तथा महाराज जी के और सम्प्रदाय के सम्बन्ध में भी वे विशेष ज्ञान प्राप्त कर चुके थे उनसे मुझे ग्रन्थ साहब के विषय में बहुत कुछ बातें प्राप्त भी हुईं थीं। अतः जीवन चरित्र को न प्रकाशित होता देखकर मैं भी हतोत्साह सा होकर रह गया मन में विचार किया कि इस कार्य को श्री आचार्यदेव जी स्वयं ही जिससे और जब करवायेंगे तभी सफल होगा। बस इन्हीं पर छोड़ दिया गया, "न तुझ से कुछ होत है - सत्गुरु ही कुं लाज" जब तक मनुष्य अपना बल रखता है तब तक भगवान भी उसकी सहायता नहीं करते जिस समय मैंने यह कार्य सद्गुरु जी पर छोड़ दिया, बस उसी समय महाराज जी ने भी कृपा कर दी कि स्वामी साहबदास जी ने मुझे कहा कि मेरे पास श्री महामण्डलेश्वर स्वामी ब्रह्मानन्द जी रचित एक सद्गुरु के जीवन-चरित्र की छोटी सी हस्तलिखित पुस्तक है।

मैं कभी वह आपको दूंगा यह सुनते ही मेरा मनरूपी कमल जो मुरझाया हुआ था वह खिल गया। और सद्गुरु जी की कृपा का स्मरण

कर रोमांच हो आये। अतः मैं उन स्वामी जी के पीछे पड़ा कि, आप मुझे वह पुस्तक कब देंगे परन्तु उन्होंने स्पष्ट नहीं बताया, कहने लगे कि जब आप हरिद्वार के कुम्भ से लौटेंगे तब बात करेंगे। तब मैंने उनसे बहुत अनुनय विनय की। उन्होंने कहा कि मैं वह पुस्तक जलूर में पहुँचा दूँगा आप वहां से ले लेवें। मैं कुम्भ का स्नान करके एकदम सीधा जलूर में श्री गुरुदेव महाराज भूरीवालों के स्थान पर पहुँचा और भी दो तीन महात्मा मेरे साथ में थे। वहाँ पहुंचने पर वहीं स्वामी साहब दास जी भी मिल गये तो मैंने उनसे प्रार्थना की कि, आप वह पुस्तक दीजिये उन्होंने उत्तर दिया कि अभी तो मैं लाया नहीं और भसौड़ ग्राम (जो धूरी के समीप है) में जाऊँगा तो वहां देखूंगा मिल गई तो मैं आपको जब कभी मिलूंगा तो दे दूंगा। मैनेंउनसे कहा कि आप अभी चलिये मैं भी आपके साथ चलता हूँ। (क्योंकि मुझे भी होशयारपुर की ओर जाना था, वहां जाकर श्री जगद्गुरु गरीबाचार्य जी की जयन्ती मनाने का कार्यक्रम आरम्भ करना था) परन्तु इन्होंने कहा कि इतनी जल्दी वह पुस्तक नहीं मिल सकती।

इस प्रकार से उनसे पुस्तक प्राप्त होने में कुछ संशय सा ही प्रतीत हुआ। अन्त में बहुत प्रार्थना करके उनको एक साधू साथ देकर भेजा। वे जाते समय विश्वास दे गये कि मुझे निश्चित पता है कि पुस्तक मैंने भसौड़ में ही रखी है मैं अवश्य ही दे दूँगा। उनके चले जाने के पश्चात् मैं अपने गुरुदेव भूरीवालों की समाधी के आगे खड़ा होकर प्रार्थना करी कि आप मुझे वह पुस्तक प्राप्त करवा दें तो बड़ी कृपा होगी। और मैं अपने मन में संकल्प किया कि यदि वह पुस्तक मिल जाय तो मैं आपकी अखण्ड ज्योति (जो बारह मास जलती है) में सवा रुपये का घी किसी भक्त से डलवा दूँगा, ऐसा करने के पश्चात् मैं कुछ कल्याण के मासिक पत्र पढ़ने लगा।

वहां एक अल्मारी में बहुत से पत्र पड़े थे कुछ और भी पुस्तकें थीं जिनको की मैं कई बार देख चुका था उनको पढ़ते-पढ़ते एक फटी-सी जिल्द की हस्त-लिखित छोटी सी पुस्तक मेरे सामने दिखाई दी। मैं उसका शीर्षक (हेंडिग) देखने लगा परन्तु उसमें शीर्षक था ही नहीं कुछ गीता के संस्कृत श्लोक तथा कुछ वैराग्य शतक के श्लोक थे मैंने समझा

कि यह तो कोई और ही पुस्तक है एक तरफ रख दिया दूसरी पुस्तकों को देखने लगा देखते-देखते वही पुस्तक दुबारा फिर सामने आई तो मैं उसके पांच-सात पन्ने एक-एक करके उलटाये कि देखूं इसमें क्या विषय है।

उसमें देखा कि सद्गुरु जी की बाणी का रागधुनि लिखा हुआ है इससे अनुमान लगाया कि इसमें महाराज जी की वाणी ही लिखी हुई होगी यह विचार कर के जब रागधुनि को पढ़ कर आगे देखा तो उसके ऊपर यह लिखा हुआ था। "सद्गुरु अवतार लीला ब्रह्मानन्द कृत" यह मैंने पहले भी सुन रक्खा था कि स्वामी ब्रह्मानन्दी जी ने सत्गुरुजी के विषय में कोई पुस्तक बनाई है। यह आश्चर्य रूप गुरुदेव की शक्ती देखकर मैं दंग रह गया, कि वह पुस्तक यहां कैसे आई क्योंकि इन पुस्तकों को मैं कई बार इधर-उधर उलट-पलट कर देख चुका हूं इसमें कोई हस्तलिखित पुस्तक नहीं थी वह पुस्तक यहां कैसे आ गई? यह तो केवल गुरुदेव की शक्ति थी भसौड़ से जलूर में आ गई इतने में दूसरे दिन वे साधू भी आ गया जिसको हमने साहब दासजी के साथ भेजा था उसने आकर कहा कि पुस्तक तो नहीं मिली उन्होंने कहा है कि मैंने तो यहीं रक्खी हुई थी पेटी में से कहां और कैसे चली गई रामनगर में भी खोजूंगा यदि होगी तो दे दूंगा परन्तु मैंने रक्खी यहीं थी तब हमने कहा कि पुस्तक हमारे पास आ गई है वह कैसे आई? वह तो गुरुदेव जी ही जानते हैं मुझे पता नहीं।

तत्पश्चात् हमने उसको एक बार बड़ी कठिनता से पढ़ा क्यों कि उसकी लिखाई कुछ ऐसी ही थी (तथा पांडू लिपी में लिखी थी)।

यह पुस्तक छन्दों में है। इसको दोबारा सुन्दर ढंग से कापी पर लिखवाया, तत्पश्चात् और भी महाराज जी के कुछ परिचय एकत्रित किये गये। उनको एकत्रित करके इस पुस्तक में से भी प्रमाण देकर अर्थात् उसके आधार पर संग्रहीत यह सद्गुरु जी का जीवन चरित लिखा गया। जहाँ तक हो सका इसकी हिन्दी सरल रखने का ही यत्न किया गया है। क्योंकि देहाती लोग हिन्दी के गूढ़ार्थ (पदो के अर्थ) नहीं जान सकते। महात्मा जन तो सब कुछ जान ही सकते हैं। केवल कमशिक्षित

लोगों की दृष्टि से सरलता रखी गई है। इस पुस्तक को सुन्दर बनाने में मैंने यथा शक्ति प्रयत्न किया है। तथापि समय के अभाव के कारण पूर्णरूप से जिन बातों की आवश्यकता थी नहीं दे सका। अगले प्रकाशन में शुद्धि का पूरा प्रयत्न किया जायेगा। यह पुस्तक तो केवल सद्गुरु जी के सम्पूर्ण परिचय प्राप्त के अभाव को दूर करने की दृष्टि से ही शीघ्रता से प्रकाशित की गई है। क्योंकि सभी भक्त समाज एवं महापुरुष इस बात के बहुत इच्छुक थे उनकी प्रेरणा से ही मैंने इस कार्य को किया है। जितना भी मेरे से हो सका उतना दिन-रात लगाकर यह यत्न किया है। ११ मास मेरे को इसी कार्य में लगे। सद्गुरु जी की अपार कृपा दृष्टि से ही यह कार्य पूर्ण हुआ है। नहीं तो मेरे में इतना बुद्धिबल कहाँ था। मैं तो स्वयं इस बात का आश्चर्य करता हूँ कि इतना बड़ा यह कार्य हो कैसे गया, परन्तु जिस पर सद्गुरु जी की कृपा हो वह निर्बल भी सब कुछ कर सकता है। यथा-

"मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लंघयते गिरिम्।
यत् कृपातमहं वन्दे, परमानन्द माधवम्॥

जिस पर महापुरुषों एवं परमानन्द सद्गुरु परमात्मा की कृपा हो जाय तो वह मूक से वाचाल हो जाय तथा पङ्गुं (पैरहीन) हो तो पर्वत लाँघने की शक्ति हो जाय, जिसकी कृपा से ये उपरोक्त बातें घटित होती हैं उन आचार्यदेव को मैं नमस्कार करता हूं।

इसी के अनुसार यह सब कुछ हुआ है। अब आप सब महापुरुष एवं सद्गुरु जी के प्रेमीजन इस ग्रन्थ से अधिक से अधिक लाभ उठाकर मेरे इस लघु प्रयत्न को सफल बनावें। जो कुछ त्रुटियाँ प्रेस की व संशोधन करते समय दृष्टि दोष के कारण रहीं हों उन्हें स्वयं सुधार कर पढ़ने की कृपा करें क्योंकि यह तो स्वभावसिद्ध है कि मनुष्य से त्रुटियां होती ही रहती है, यदि मनुष्य में त्रुटियाँ न हों तो वह मनुष्य नहीं कहा जा सकता वह तो ईश्वर ही कहा जाएगा क्योंकि दोष रहित तो ईश्वर ही है त्रुटियों के कारण ही तो मनुष्य एवं जीव कहा जाता है इसलिए आप दोष का परित्याग करते हुये केवल गुण को ग्रहण करें कि यह पुस्तक हमें बड़े

भाग्यों से प्राप्त हुई है। जो कुछ त्रुटियां आप लोगों को प्रतीत हों तो उन त्रुटियों को लिखकर मेरे पास भेंजें जिससे कि मैं इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में संशोधन कर सकूं सज्जन पुरुष तो हंस की तरह गुण को ही ग्रहण करते हैं जैसे हंस पक्षी दूध में अपनी चोंच डालकर जल को अलग कर दूध को ग्रहण कर लेता है इसी प्रकार सज्जन पुरुष गुणग्राही होते हैं जैसे कि आचार्यदेव ने भी अपनी अमृतमयी वाणी में इस विषय में इस प्रकार कहा है। यथा-

गरीब सार गराही सो लखो, जो चिन्हेगा सार।

झूठ झटक सी चौंपटे, रहे निरन्तर धार॥

इत्यादिक सैकड़ों ही साखियां श्री आचार्य ने सारग्राही के अङ्ग में दी हैं। सज्जनों का तो स्वभाव ही है कि वह अवगुण को भी गुण बनाने की चेष्टा करते हैं और धूर्त व्यक्ति जिनका कि हमेशा ही गुणों में दोष निकालने का स्वभाव है वह अपने स्वभाव के अनुसार दोष ही निकालेंगे हमारे तो वे भी सज्जन हैं सद्‌गुरु जी स्वयं कहते हैं यथा "औगुण माहिं गुण कर देवैं सन्तरे, भला करत होय बुरा सो दूतर दैन्त रे।" जो सज्जन त्रुटियाँ निकाल कर मुझे बतलाने की कृपा करेंगे मैं उनका आभारी रहूंगा।

और मैं भी आचार्य देव जी की बाणी के कठिन शब्दों का एक शब्द-कोष भी लिखने का प्रयास भी कर रहा हूं जिससे की बाणी पढ़ने वाले प्रेमियों को उसके द्वारा वाणी के अर्थ विचारने में विशेष सुविधा हो जायेगी। इस पुस्तक का मूल्य भी इसीलिये रखा गया है कि इसी पैसे द्वारा बारम्बार महाराज जी का प्रचार होता रहे। तथा अनाधिकारी के हाथ यह पुस्तक न आये।

अनाधिकारी पुरुषों के हाथ में ऐसी अमूल्य चीज जाने से तिरस्कार ही होता है। इसलिये सभी महापुरुषों से नम्र-निवेदन है कि अधिक से अधिक संख्या में आप लोग इसमें सहयोग दें और इस पुस्तक द्वारा महाराज जी के पर्चों से जानकारी प्राप्त हो।

श्री १०८ स्वामी नारायण दास जी जो कि जौणमाणा (ग्राम) में रहते थे। उन्होंने भी सद्‌गुरूजी के अवतार के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी

थी। वह मुझे प्राप्त नहीं हुई, उसका कुछ अंश सवैये दोहे आदि जो इस ग्रन्थ के आरम्भ में दिये गये हैं वह श्री स्वामी चेतन दास जी से प्राप्त हुये थे। श्री स्वामी नारायण दास जी ने श्री आचार्य देव जी की बाणी के फारसी आदि कठिन शब्दों का कोष भी बनाया था। जो मुझे उपलब्ध नहीं हो सका।

आपका

- अवधूत स्वामी भक्तराम

॥श्री सद्‌गुरु गरीबदासो विजयतेतराम्॥

श्री सद्‌गुरु जी का अवतार

श्री सद्‌गुरु के प्रेमी गणों-वसिष्ठ भगवान् ने कहा है कि—

यावन्ननुग्रहः कश्चिज्जायते परमेश्वरात्। तावन्न सद्‌गुरुः कश्चित्सच्छास्त्रं चोपलभ्यते। वशिष्ठयोग

जब तक परमेश्वर की कृपा नहीं होती तब तक सत् शास्त्र व सत्‌गुरु नहीं मिला करते हैं। इस वचन से ज्ञात हुआ ईश्वर कृपा से शास्त्र व सद्‌गुरु मिलते हैं। परन्तु हम लोगों को तो साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर ही सद्‌गुरु रूप धारण कर प्राप्त हुए हैं। एक ही परमेश्वर कभी दुष्टों के संहार द्वारा भक्तों को सुखी करता है तो कभी ज्ञान उपदेश द्वारा कभी भक्ति कभी कर्मादि उपदेश द्वारा भक्तों को सुखी करता है। प्रभु के किसी रूप में ज्ञान की प्रधानता किसी रूप में भक्ति किसी में योग किसी में बल की प्रधानता होती है जैसे तुलसीदास जी कहते हैं कि-

जब-जब होई धर्म की हानी।

बाढ़ई असुर अधम अभिमानी॥

तब-तब धरि हरि विविध शरीरा।

हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

यह वार्ता तो आप सभी जानते ही हैं कि ईश्वर ही जगत् को उत्पन्न करता है तो आप ही बताओ कि जगत् में जो दोष होगा उसे निवृत्त नहीं

करेगा? और अच्छी वस्तु को कुवस्तु से क्या नहीं दूर करेगा? पालक भी तो वही है न। जगत् उसके लीला का स्थान है नाना रूपों के धारण में वह संकोच व शर्म नहीं करता है। यह वार्त्ता- गी. ४-८.

परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दृष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।

भक्तों की रक्षा के लिये दुष्टों के नाश के लिये धर्म पालन के लिये समयानुसार अवश्य प्रगट होता हूँ। यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ४ में बताया है–

एष ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः सउगर्भे अन्तः। स एव जातः सजनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनाः तिष्ठति सर्वतोमुखः।

यह प्रभु ही सर्व दिशाओं में व्याप्त है प्रथम काल में पैदा हुआ था। गर्भ के बीच में भी स्थित है। अब पैदा भी है आगे भी पैदा होगा वह सबके आगे स्थित है उपनिषदों के विचार से व सद्गुरुदेव जी की वाणी विचार से यह सिद्ध होता है कि सृष्टि से पूर्व आकार हीन केवल चेतन ही था। 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः स्वमहिम्नि' छान्दोग्य 'पांच तत्त्व गुन नाहीः' परम हंस कथा में वही आकार हीन स्वाश्रित माया शक्ति से पाल्य रूप व पालक रूप धारण करता है। माया के मलिन सत्त्वगुण से पाल्य जीव रूप धरता है और शुद्ध सत्त्व से पालक विष्णु शिव राम श्री कबीर नानक श्री सद्गुरु गरीबदास आदि रूपों को धारण करता है पूर्व सर्व जगत् ही आकारहीन था पश्चात् साकार हुआ तो जगत कर्त्ता आकारहीन होने पर साकार हो जाय तो क्या हानि है 'जगद् हिताय सोऽप्यत्र देही वा भाति मायया' भागवत स्क. १० वही आकारहीन प्रभु विश्व के हित के लिये शरीर धारी जीव-सा प्रतीत होता है। श्री सद्गुरु जी भी कहते हैं कि–

अमर करूँ सत लोक पठाऊँ ताते बन्दी छोड़ कहाऊँ

हमहीं सतपुरुष दरवानी, मेटूं उत्पत्ति आवाजानी,

जो कोई कहा हमारा माने, सार शब्द कुँ निश्चय आने

हमही शब्द-शब्द की खानी, हम अवगति अदली प्रवानी,

यह सब खेल हमारे किये,

हमसे मिले सो निश्चे जीये।

इन स्पष्ट शब्दों से श्री सद्गुरुदेव अपने को जीवों का उद्धारक साक्षात् ईश्वर ही कह रहे हैं। जैसे श्रीकृष्ण जी गीता ११-८ में 'दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्यमे योगमैश्वरम्'' मैं तुझे अलौकिक नेत्र देता हूँ मेरे ईश्वर संबंधी रूप को देख। सज्जनो, विचार की जरूरत है। कितने वर्षों तक जप, तप, वेदान्त विचार भक्ति आदि करते हैं तब जाकर ईश्वर दिखता है यही कारण है की प्रभु जब तपादि से प्रसन्न होते हैं तब नेत्र देते हैं फिर दर्शन होता है रावणादि को नेत्र नहीं दिये इसी कारण से सामने प्रभु के होने पर भी नहीं जान सके। देखो-देखो प्रभु हमारे हृदय में हैं अरे-अरे सर्वत्र है, क्यों नहीं देखते हो। हाँ नहीं देखते, नेत्र नहीं हैं लाचार हैं, इसी प्रकार श्री सद्गुरु जी हर समय हमारे पास हैं परन्तु दिव्य नेत्र नहीं जिससे उन्हें हम लोग देखते। अरे प्रयत्न करो। न हार मानो, देखो वो दीखते हैं। निराकार होने पर भी दिव्य नेत्रवालों के लिये साकार हैं। मेरे प्यारे भक्तों देखो किसी कवि ने कहा है–

जीवो निराकारः शरीरधारी धनज्जयों देहधरस्तथैव। सर्वस्वरूपस्य कथं न विष्णोर्देहो हिभूयाच्छु तिभिः प्रदिष्टः।

जीव का क्या आकार है बताओ अग्नि का आकार बताओ कोई आकार नहीं परन्तु स्पष्ट देखो शरीर धारण दोनों करते हैं या नहीं। इसी तरह सर्व स्वरूप परमात्मा का भी आकार न होने पर भी शरीर माया शक्ति से होता है। जीव कर्मानुसार शरीर धारते हैं परन्तु ईश्वर स्वमाया से ही शरीर धारता है–

कारागृहे गच्छति भूमिपालो हेतुर्दया तब न कर्म बन्धः।

एवं च सर्वेश्वर देव देवो दयावतारो न च कर्मतन्त्रः।

जेल में राजा जाता है तो कोई अपराध करके नहीं जाता किन्तु दया करके जाता है किसी कैदी को छोड़ देता है किसी कैदी की सजा कम कर देता है। इसी तरह ईश्वर देव पूज्य है दया से ही अवतार धारता है कोई कर्माधीन नहीं आता आकर अर्थात् प्रगट होकर किसी को मुक्ति

किसी को स्वर्गादि प्रदान करता है। यह वार्त्ता पुराण इतिहासादि में प्रसिद्ध है मैंने पूर्व उदाहरण दे दिये हैं। जिस समय सद्गुरु जी सर्वलोक प्रसिद्ध श्री छुड़ानी धाम में विराजमान थे उन्हीं दिनों श्री छुड़ानी से २५ कोस की दूरी पर सरकथल नामक ग्राम में एक चमार जाती भक्त श्री सद्गुरु जी का था जूति गांठते समय वह दौड़ा ठहरो-ठहरो कहता हुवा स्वस्थान पर आ जाने पर लोगों ने पूछा क्या पागलों के समान तू वहां भागा गया उसने कहा कि मेरे सद्गुरु का अंगरखा कील में फंस गया उसे छुड़ाने गया था, तेरे सद्गुरु कहां थे, छुड़ानी उसकी वार्त्ता की परीक्षार्थ लोग छुड़ानी में गये, सद्गुरों ने दूर से ही उनकों कहा देखो भाइयो मेरा अंगरखा फटा हुआ है वह मेरा भक्त है उसने झूठ कुछ नहीं कहा। तभी से उस ग्राम के लोग भक्त हो गये उस चमार की सेवा करने लगे। आज भी उस चमार भक्त की छतरी बनाकर लोग पूजा करते हैं इसीलिये श्री सद्गुरु कबीर जी ने भी कहा है—

"कबीर साकट ब्राह्मण मत मिलो, वैष्णव मिलो चंडाल, अंकमाल दे भेंटिये, मानो मिले गोपाल।" पदम् पुराण में भी लिखा है। हरेर्भक्तो विप्रोपि विज्ञेयः श्वपचाधिकः। हरेर्भक्तः श्वपाकोऽपिविज्ञेयो ब्रह्मरगाधिकः

भगवान का अभक्त ब्राह्मण चाण्डाल है और भगवान भक्त चण्डाल भी विप्र है ऐसा पद्मपुराण में कहा है। कहने का तात्पर्य है कि प्रभु के चिन्तन के लिये शरीर है यदि चिन्तन न किया तो इस शरीर को कुछ भी कहा जा सकता है। इस प्रकार परमात्मा के रूप उन्हीं की कृपा से जाने जाते हैं। अब हम श्री सद्गुरुदेव जी का चिन्तन नित्य निरन्तर श्रद्धापूर्वक करें तो भी उनका दर्शन कर सकते हैं जैसे जल में अग्नि का अंश सम्बन्धित होकर चावलादि का पाक करता है इसी तरह कहीं पर सद्गुरु किसी शरीर से सम्बन्धित होकर भक्तों का काम करते हैं जैसे इन्द्र के शरीर से सम्बन्धित होकर वृत्रासुर को मारा था ऐसा अवतार आवेश अवतार कहलाता है और जैसे अग्नि लोहे में प्रवेश करके कुछ दाह प्रकाश दोनों करता है तैसे परशुरामादि शरीर में प्रवेश करके कार्य करते हैं और पूज्य होते हैं यह प्रवेश नामक अवतार होता है, काम किया फिर अंश निकाल लिया। और जैसे अग्निरूप बिजली सहसा प्रगट होती है

तैसे जो अवतार सहसा प्रगट हो काम करे शीघ्र ही लुप्त हो जाय जैसे नृसिंह आदि इसे स्फूर्ति नामक अवतार कहते हैं और जैसे काष्ठ में अग्नि प्रगट होकर स्थाई टिका रहे उसे आविर्भाव अवतार कहते हैं जैसे राम कृष्ण नानक दादू श्री सद्गुरु जी ये सर्व आविर्भाव अवतार हैं इस समय हम लोग स्फूर्ति नामक अवतार के दर्शन कर सकते हैं जैसे धन्ना को, नामदेव को, ध्रुव को, प्रभु के दर्शन हुवे तैसे हम भी दर्शन कर सकते हैं श्री सद्गुरु जी के बिना प्रयत्न संसार की चीजें नहीं मिल सकती। यारो-विचारो तो सही, अरे संसार के लिये जितना प्रयत्न हम लोग करते हैं उससे चौथाई भी प्रयत्न करें प्रभु के लिये, तो श्री सद्गुरु जी क्यों नहीं प्रगट होगें, जरूर-जरूर प्रगट होना पड़ेगा। इसीलिये तो शास्त्र व सन्त पुकार रहे हैं। श्री गुरुनानक देव व श्री पूज्य दादू जी के विषय में श्री सद्गुरुदेव जी कहते हैं कि—

नानक दादू अगम अगाधू। तिरी जहाज खेवट सही,
सुख सागर के हंस आये भक्ति हिरम्बर उर धरी।

एक सुखसागर है, एक दुःखसागर है संसार दुःखसागर है परमात्मा सुखसागर है। श्री नानकादि सुखसागर के हंस हैं अर्थात् परमेश्वर ही इन रूपों को जीवों के उद्धार निमित्त धारण किया करता है। स्वरूप के विषय में भी महाराज हमें ज्ञान दे रहे हैं—

कबीर पानी से पैदा नहीं, स्वासा नहीं शरीर।
पांच तत्व जाकै नहीं, ताका नाम कबीर॥

ये तो कबीर के विषय में है, कबीर कौन थे, सुनो-हमही अवगति हमैं कबीरा। यह सब खेल हमारे किये। हमसे मिले सो निश्चय जिये। पृ. ४०३ राग गौड़ी ग्रन्थ साहिब। इन वचनों से सद्गुरु जी का पूर्णनिश्चय होता है कि श्री सद्गुरु जी आविर्भाव नामक अवतार हैं। या तो श्री सद्गुरु जी के वचन मानों या करके देख लो। श्री सद्गुरु जी ने कबीर नानक, राम, कृष्ण, रहीम, विष्णु आदि जो भी नाम कहे हैं अपने ही कहे हैं किसी और के नहीं, श्री ग्रन्थ साहिब विचारने से यह वार्त्ता ज्ञात होती है। कदाचित् पूज्य-पूजक भाव का जो वर्णन है सो अज्ञानियों को येन केन प्रकारेण

अपने में लगाने के लिये है यदि ऐसा न माने तो विज्ञजन, विचार करो। श्री गीता में कृष्ण कहते हैं कि "तमेव शरणंगच्छ सर्वभावेन भारत" अ. १८ श्लों. ६२ "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' १८.६१ इन वचनों से ऐसा ज्ञात होता कि मानो कृष्ण अपने से भिन्न किसी को ईश्वर कह रहे है और जरा बताओ तो सही वेदों को ईश्वर ने ही तो स्वश्वास से प्रगट किया है। अपने से भिन्न देवों की पूजा क्यों प्रतिपादित की। तात्पर्य कि येन केन प्रकारेण जीवों का उद्धार हो। श्री सद्गुरु जी ने अपने वाच्य अर्थ व लक्ष्य अर्थ दोनों का कथन किया है। सोहम् मन्त्र व उसका अर्थ विस्तार से बताया है। योग वैराग्य भक्ति आदि सर्व ही साधन सविस्तार उदाहरणादि पूर्वक कथन किये हैं। जो भी चाहे श्री सद्गुरु जी सगुन रूप चाहे निरगुन रूप को श्री गुरु गरीब दास जी के बताये हुये साधनों से देख सकता है मुफ्त का ही लड्डू खाना चाहे तो कहाँ से पा सकता है। प्रगट होने का ही नाम अवतार है जब चाहे तभी प्रभु गरीब को प्रगट कर लो। इसीलिये तो गरीब हैं नहीं तो अकड़ नाम क्यों नहीं धराया।

श्री सद्गुरु जी का इस प्रकार स्वरूप मुझे निश्चित है ऐसा ही मैंने आप सज्जनों के आगे प्रगट किया है। कोई अनुचित हो तो क्षमा करना। उचित हो तो ग्रहण करना। मेरे विचारों से तो श्री सद्गुरु जी साक्षात् परमात्मा ही हैं। किसी उल्लू को न जंचे तो वह अपने बुद्धिरूपी नेत्रों की चिकित्सा (इलाज) करावें। मुझ (भिक्षु) आकाश में श्री गुरु-ज्ञान सूर्य को दूषित न करें। मैं श्री सद्गुरु गरीब दास जी को व उनके अतीत अनागत वर्तमान सभी भक्तों को सर्वतः प्रणाम करता हूं। और श्री स्वामी भक्तराम अवधूत जी को भी सत्य-साहिब करता हूं। जिनकी कृपा से पूज्य श्री सद्गुरु जी का चिन्तन आज मुझे प्राप्त हुआ है।

प्रभु सेवक

ओ३म् प्रकाश भिक्षु

॥ स्तौत्राष्टक प्रकरण॥

अजं ज्ञानरूपं हि नित्यात्मकं वै, वरं शुद्धरूपं च नारायणं वै।
च लोकेशरूपं शिवं ब्रह्मरूपं गुरुं मुक्तिदं श्रीगरीबंहि बन्दे॥१॥

अजन्मा ज्ञान स्वरूप, नित्य आत्मा वाले एवं शुद्ध रूप वाले नारायण स्वरूप लोकों के स्वामी और जो कि शिव स्वरूप हैं और मुक्ति को देने वाले भी हैं ऐसे गुरु गरीबदास जी को प्रणाम करता हूँ।

सुलोकैकनाथञ्चवेदान्तगम्यं हि, सर्वत्र प्रसिद्धञ्च सर्वोत्तमं वै।
कृपासागरं व्यापकं मुक्तरूपं गुरुं, मुक्तिदं श्रीगरीबंहि वंदे॥२॥

देवलोक के स्वामी वेदान्त शास्त्रों के द्वारा ज्ञेय सारे संसार में प्रसिद्ध सबसे श्रेष्ठ और दया के सागर सर्वत्र व्यापक एवं जो मुक्त स्वरूप हैं और साथ ही मुक्ति को देने वाले भी हैं ऐसे गुरु गरीबदास जी को प्रणाम करता हूँ।

चिदानन्दरूपं हि वै सर्वरूपं, पवित्रं हि कामप्रदं प्राणादं वै।
सुरेशञ्चसिद्धञ्चरागेण शून्यं, गुरुं मुक्तिदं श्रीगरीबंहि बन्दे॥३॥

चिदानन्द स्वरूप सभी रूपों को धारण करने वाले पवित्र एवं इच्छानुसार देने वाले प्राणियों की भी, देवताओं के स्वामी सिद्धस्वरूप और रागद्वेषादियों से रहित मुक्ति को देने वाले जो गुरु गरीबदास जी हैं उनकों मैं प्रणाम करता हूँ।

सजात्यादि भेदेन शून्यं च शान्तं कृपालुञ्च सत्यञ्च वै लोकनाथम्।
अनन्तं च वै व्यक्तरूपं विरामं गुरुंमुक्तिदं श्रीगरीबं हि वन्दे॥४॥

साजात्यादि भेदों से रहित शान्त, दयावान, सत्य स्वरूप, लोकों के स्वामी अनन्त (जिसका अन्त नहीं है) व्यक्त स्वरूप और विश्रान्ति से युक्त एवं मुक्ति को देने वाले जो गरीबदास जी हैं उनकों मैं प्रणाम करता हूँ।

अनादिञ्च दोषेण वै वर्जितं वै विकारेण शून्यं मनोवागतीतम्।
गणेशञ्चविष्णुञ्च विश्वेश्वरं वै गुरुं मुक्तिदं श्रीगरीबं हि वन्दे॥५॥

जो कि अनादी हैं और दोषों से शून्य हैं एवं जो विकार से शून्य, मन और वचन से भी दूर रहने वाले हैं, जो गणेश स्वरूप, विष्णु स्वरूप एवं ब्रह्म स्वरूप हैं एवं मुक्तिदाता भी हैं ऐसे गरीबदास गुरु जी को प्रणाम करता हूँ।

अशोकं च वै देवदेवं निरीहं हि साक्षीस्वरूपं च वै सिद्धिदं वै।
अमृत्युञ्च विज्ञानरूपं महेज्यं गुरुमुक्तिदं श्री गरीबंहि वन्दे॥६॥

शोक से रहित देवों के देव चेष्टाओं से रहित साक्षीस्वरूप एवं सिद्धि को देने वाले मृत्युविहीन विज्ञान स्वरूप हवन करने के योग्य और मुक्ति को देने वाले गुरु गरीबदास जी को प्रणाम करता हूँ।

महर्षिञ्च देवेश्वरं वै क्षितीशंच वै निश्चलं मोक्षदं शर्मदंवै।
निराकाररूपंच निर्लेपरूपं गुरुं मुक्तिदं श्री गरीबंहि वन्दे॥७॥

महर्षि स्वरूप, देवताओं के स्वामी और पृथ्वी के स्वामी अचल और मोक्ष और कल्याण देने वाले आकार शून्य एवं निर्लेप स्वरूप जो मुक्ति के भी देने वाले गुरु गरीबदास जी है उनको प्रणाम करता हूँ।

अखण्डञ्च सर्वज्ञरूपं विरक्तं हि सर्वात्मकं त्यागिनं ज्ञान गम्यम्।
यतीन्द्रश्च जन्मादि शून्यं विमुक्तं गुरुं मुक्तिदं श्रीगरीबंहि वन्दे॥८॥

अखण्ड रूप, सर्वज्ञ स्वरूप, विरक्त (मोहादि बन्धनों से रहित) सबके आत्मा में रहने वाले, त्यागी और वेदान्त ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य एवं यतियों में श्रेष्ठ जन्म मरणादि से रहित विमुक्त और स्वयं मुक्ति को देने वाले जो गरीबदास जी हैं उनकी वन्दना करता हूँ।

(इति गरीवाष्टकं समाप्तम्।)

॥अथ दुतीय-अष्टकस्तोत्र॥

सुखदं हि चिदानंद परमं मोक्षदायकम्।
परमानन्द रूपंञ्च श्री गरीबं नमाम्यहम्॥१॥

सुख को देने वाले, चित आनन्द स्वरूप, एवं परम मोक्ष को देने वाले और परमानन्द स्वरूप जो गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

ईश्वरं देवदेवञ्च विभुन्नित्यात्मकं हि च।
शिवं प्रकाशरूपं च श्री गरीबं नमाम्यहम्॥२॥

ईश्वररूप देवताओं के भी देवता, व्यापक एवं नित्य आत्मावाले, शिव स्वरूप और प्रकाशरूप जो गरीबदास जी हैं उनकों मैं नमस्कार करता हूं।

अखण्डं जगदाधारं विष्णुं शुद्धञ्च व्यापकम्।
परमाद्वैतरूपंच श्री गरीबं नमाम्यहम्॥३॥

अखण्ड स्वरूप जगत के आधारभूत एवं विष्णु स्वरूप शुद्ध और सर्वत्र व्यापक एवं जो परम अद्वैत रूप हैं ऐसे पूजनीय गरीबदास जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

निर्विकारं त्रिकालेषु जगतः खलतारकम्।
एकरसं वरं चापि श्री गरीबं नमाम्यहम्॥४॥

भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में अविकृत एवं सुख दुखादि से रहित जगत से पार कर देने वाले, और एक रस वाले श्रेष्ठ जो गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

चन्द्रवत्पालकञ्चापि सेव्यं संत्तापहारकम्।
दिगादिभेदशून्यंच श्रीगरीबं नमाम्यहम्॥५॥

चन्द्र के समान शीतल करने वाले सेव्य और सारे संताप को नास करने वाले एवं दिशा आदि भेदों से शून्य जो गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

तपोनिधिं विधातारं रागद्वेषादिवर्जितम्।
वै सर्वलोकनाथं च श्रीगरीबं नमाम्यहम्॥६॥

तपस्या के खान और ब्रह्मरूप एवं रागद्वेषादियों से रहित और संपूर्णलोकों के स्वामी जो गरीबदास जी हैं उनको मैं नगस्कार करता हूँ।

विमुक्तं पुण्डीकाक्षं जन्मादिरहितं खलु।
निरीहञ्चापि निर्दोषं श्रीगरीबं नमाम्यहम्॥७॥

विमुक्त, जन्ममरणादि से शून्य, चेष्टादियों से रहित एवं दोष रहित और जो पुण्डरीकाक्षरूप गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

सर्वज्ञं तत्वरूपंच वै निर्लेपं हि निश्चलम्।

सद्रूपं चात्मरूपंच श्रीगरीबं नमाम्यहम्॥८॥

सबको जानने वाले तत्वरूप तथा चेष्टादि रहित एवं निर्लेप, सद्रूप और आत्मस्वरूप जो गरीबदास जी हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

अथ चतुर्थाष्टक प्रारंभः (भुजङ्ग प्रयात छन्द)

प्रशान्तं दयालुञ्च साक्षीस्वरूपं मनोवागतीतम् स्वरूपानवद्यम्।

वरं ज्ञानरूपं प्रसिद्धं च लोके ह्यहं श्री गरीबं गुरुँ ते नमामि॥१॥

शान्त, दयालु, साक्षीरूप, मन और वचन के द्वारा अज्ञेय, अनिन्दित स्वरूपवाले श्रेष्ठ और ज्ञानस्वरूप एवं संसार में प्रसिद्ध जो गुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

शिवं युक्तिरूपं कृपासागरं वै वरिष्ठं शरण्यं सुवेदान्तगम्यम्।

सजात्यादिभेदेन शून्यं गवेच्छं अहं श्री गरीबं गुरुं ते नमामि॥२॥

शिवस्वरूप, एवं मुक्तिरूप और कृपा करने वाले एवं सबमें श्रेष्ठ, शरण लेने वाले वेदान्त शास्त्रों के द्वारा ज्ञेय और सजातपादि भेदों से शून्य तथा इच्छा विहीन जो गुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

जगन्नाथ मत्स्यादिरूपंञ्च शुद्धं भवाब्धौ निमग्नस्य चोद्धारकस्य।

निराकाररूपं विभुञ्च स्वतन्त्र महं श्री गरीबं गुरुं ते नमामि॥३॥

जो कि जगत् के स्वामी और मत्स्यादि अवतार को धारण करने वाले हैं और संसार में फँसे हुये मनुष्यों का उद्धार करते हैं, जिनका आकार ही नहीं है फिर भी सर्वत्र व्यापक हैं ऐसे जो स्वतन्त्र रहने वाले गुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

कबीरादिरूपेण धृत्वावतारं जनानान्तमो येन सर्वं निरस्तम्।

अखन्डं चिदानन्दरूपं हि रम्यमहं श्री गरीबं गुरुं ते नमामि॥४॥

कबीरादि रूप में अवतार को धारणकर जिन्होंने सारी जनता के

अन्धकार को दूर कर दिया है ऐसे अखण्ड चित् आनन्द स्वरूप और रमणीय जो गुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

गुरुर्ब्रह्ममूर्त्तिञ्च भक्त्येकलभ्यं अचित्यस्वरूपं हि वैराग्यकेतुम्।

मुमुक्षूपदेष्टा च यः शोकहर्ता ह्यहं श्री गरीबं गुरुं ते नमामि॥५॥

जो कि गुरु और ब्रह्मस्वरूप हैं, केवल भक्ति के द्वारा प्राप्त हैं, जिनका स्वरूप अचिन्तनीय है। अर्थात् जिस ब्रह्म के स्वरूप का हम प्रत्यक्ष ही नहीं कर पाते हैं। और वैराग्य के केतु हैं इसी प्रकार जो मुक्ति की कामना करने वाले को उपदेश देते हैं जो कि शोकों के अपहारक हैं, ऐसे जो गुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

पवित्रं च नारायणं ज्ञानगम्य महं ब्रह्मरूपं मनोज्ञञ्च सिद्धम्।

यतीन्द्रं जगत्कारणं मुक्तिदं वा ह्यह श्री गरीबं गुरुं ते नमामि॥६॥

जो पवित्र है नारायण स्वरूप है और ज्ञान के द्वारा ज्ञेय हैं जो कि पारब्रह्म स्वरूप हैं और सुन्दर हैं सिद्ध भी हैं एवं जो यतियों के स्वामी और जगत के कारण हैं इसी प्रकार मुक्ति भी देने वाले हैं ऐसे जो गुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

अविद्याद्यपेतं शुभाङ्गभिवंद्यं अजं शर्मदं निष्क्रियञ्चानघञ्च।

निरीहञ्च चिन्मात्रमूर्तिञ्च देवमहं श्री गरीबं गुरुं ते नमामि॥७॥

जो कि अविद्या से दूर रहते हैं और शुभअङ्गों के द्वारा अभिनन्द्य हैं जो जन्म से रहित हैं और कल्याण को देने वाले हैं एवं निष्क्रिय हैं और अनघ हैं (पाप से रहित हैं) जो निरीह हैं और चैतन्य स्वरूप हैं तथा देव स्वरूप भी हैं ऐसे गुरु गरीबदास जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

अनादिं हरिं दीनबन्धु च कान्तं अकामं कृतज्ञं विशोकञ्च श्रीदम्।

महर्षिञ्च श्रीश प्रभु सुप्रसादमह श्रीगरीबं गुरुं ते नमामि॥८॥

जो अनादि हरिस्वरूप और दुखियों के बन्धु हैं जो कि बहुत सुन्दर हैं कृतज्ञ हैं और शोक से विहीन हैं एवं जो संपत्ति देने वाले हैं महर्षि स्वरूप हैं। प्रभु हैं और प्रसन्न रहने वाले हैं ऐसे जो गुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

॥श्री गरीबाचार्यस्तम्भ॥

॥ म.म. श्री १०८ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी कृत॥

श्रीमद्वैराग्यवाणीगुणगणगरिमोन्मेषितोद्दामशान्ताः, श्रद्धाविश्वास-भक्तिप्रवचनपटुतातपर्पिताशेषलोकाः। ज्ञानध्यानाऽविराम-व्यसनिसुरसनापूतपुण्योपदेशाः। आचार्याः श्रीगरीबाः पटुतरधिषणाः पान्तु नः पातकेभ्यः॥१॥ यस्यानुर्शासनमहर्दिवमाश्रयन्तः, सन्तः सदात्मनि निराकुलमारमन्ते। दिव्याकृतेः सुकृतिनोऽस्य चरित्रमीङ्यम्, शक्नोतिकोऽविकल मल्पमतिः प्रगातुम्॥२॥ पुण्यात्मनां चरित मल्पमपि प्रगीतं, पापंधुनोति हृदयं विरजीकरोति। भक्ति प्रयच्छति परेश्वर वन्दनादौ, बन्धाद्विमोचयति दुःखविपाकमूलात्॥३॥ पूर्ण विमथ्य सुधिया श्रुतिसागरान्तः, पीयूषमीप्तिसतमशेषजनायदित्सन्। प्रीत्योद्धृतं सुरपतेरपि प्रार्थनीयं, स्तुत्योनकस्य ावने यतिरीदृशः स्यात्॥४॥ दुर्जेयमिन्द्रियगणम्परितो विजित्य, सञ्चित्यशास्त्रनिचयादवधेय तत्त्वम्। सूश्रू षुमागतजनं सदयं विमुक्तयै, यो बोधि शान्तमनसा स कथं नवन्द्यः॥५॥ मायामयं जगदिदं दुरितानुवन्धि, क्लेशादिमूलमिति वाक् सुलभा सभेषाम्। अस्या रहस्यमधिगत्य परीत्य सत्यं, सत्यापयत्यपिचयः सचरेण लभ्यः॥६॥ प्राप्येप्सितानि विभवैरभिमन्यमानः, प्रायोजनो भवति सर्गनिसर्ग ईदृशः। क्लिष्ट्वापि यो वितरति श्रियमाश्रवेभ्यः, सेव्यः स कस्य विरलो न भवेद्भवेऽस्मिन्॥७॥ दृष्टि र्दुनोति दुरितं हृदयं पुनीते, वाणी विवेकमतिमातनुते सुसङ्गः। सेवामृतं नयति यस्य पवित्रकीर्तेः, तं कस्स्मरेन्न सततं स्वविभूतिभूत्य॥८॥ विवेक विद्या विनया वदातं विकश्वरानश्वरगीत कीर्तेः गरीबदासस्य गुरोरुद्रग्रगुणागिरालि शरणं सदास्तु॥९॥ यज्ञोनदानं न तपो न धर्मो विद्याऽनवद्या न च देवसेवा। अकिञ्चनोऽहं पतितो भवाब्धौ वाणी तवालम्ब्य निराकुलोऽस्मि॥१०॥ त्वत्पादपद्मं स्मरतो ब्रह्मानन्दाय मेमनः प्रार्थना सञ्चिदानन्दे परस्मिन् रमतामिति॥११॥

भूमिका

॥ अवतार की आवश्यकता-सृष्टिनिरूपण तथा मुक्तिवाद॥

सब के पूर्व में एकमात्र निराकार ब्रह्म था, इसी को श्रुति भी बतलाती है कि "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" इत्यादि। उसी में माया का समुद्रेक होने पर अहंकार की उत्पत्ति हुई, और फिर अहंकार से इन पांच महा भूतों की उत्पत्ति हुई। इन भूतों में पृथ्वी का विस्तार उणंचास करोड़ योजन बतलाया गया है। इसे चारों तरफ से खारी-समुद्र, दधि-समुद्र-मधु-समुद्र क्षीर-समुद्र आदि सात समुद्र घेरे हुये हैं। और इस पृथ्वी के ठीक मध्य में सुमेरु पर्वत है और इसी के उत्तर कोण में लोकालोक नाम का पर्वत है। जिसके इधर तो प्रकाश है और दूसरी तरफ अन्धकार है। सब पर्वतों तथा समुद्रों के सहित इस पृथ्वी को शेषनाग धारण किये हुए हैं। आठ दिग्पाल इसके परिवार रूप में हैं। सुमेरु पर्वत का विस्तार एवं ऊँचाई चौरासी हजार योजन है और वह पृथ्वी के अन्दर भी सोलह हजार योजन तक धंसा हुआ है फिर उसकी सीमा के विषय में क्या पूछना है। इसके बाद हिमालय है। यह हिमालय बर्फमय पर्वत है, इसी में जाकर पाण्डव लोक गल गये थे। एकमात्र धर्मराज युधिष्ठिर ही वहां गलने से बच पाये थे। वहां का मार्ग भी अत्यन्त कठिन है, चारों तरफ बड़े-बड़े विशाल अजगर सर्प पड़े हुये हैं जो कि स्वयं भी देखने में पर्वताकार ही प्रतीत होते हैं। वे वहाँ पड़े हुये मन्द-सुगन्ध-शीतल वायु का आनन्द ले रहे हैं। इसके पश्चात् बद्रिकाश्रम और बद्रीनारायण हैं, यहीं पर बड़े-बड़े तपस्वी लोगों ने घोर तपस्याओं का संपादन किया है। वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो यह एक बहुत ही बड़ी तपोभूमि है। यहीं पर बड़े-बड़े तपस्वियों ने अपने शरीरों का परित्याग करके मोक्षपद प्राप्त किया है। जिससे उनका सांसारिक आवागमनरूपी बन्धन सर्वदा के लिये टूट गया। उन्हीं के आगे केदारनाथ, इनके दर्शन प्रायः उतने दुर्लभ नहीं हैं। परन्तु सुमेरु पर्वत का निरूपण तथा वर्णन एवं उसके दर्शन अत्यन्त ही कठिन हैं। इस सुमेरु पर्वत के तीन श्रिङ्ग हैं जिनके ऊपर ब्रह्मा-विष्णु-महेश अपने-अपने परिवार के सहित विराजमान रहते हैं। सुमेरु के जिस श्रिङ्ग पर ब्रह्मा निवास करते हैं

वह सुवर्ण का है और विष्णु जिस पर रहते हैं वह मरकतमणी का है। और भगवान् शंकर जिस श्रिङ्ग के ऊपर विराजमान हैं वह श्रिङ्ग स्फटिक का है। इसी का नाम कैलाश है। विष्णु के श्रिङ्ग का नाम वैकुण्ठ है और ब्रह्मा के श्रिङ्ग का नाम ब्रह्मलोक है। इसी के बाद इन्द्र की पुरी अमरावती है। इस अमरावती में ही तैंतीस करोड़ देवता लोग निवास करते हैं। इस प्रकार ये चौदहों लोक उस सुवर्ण श्रिङ्गमय सुमेरु पर्वत को घेरे हुये हैं। इसी सुमेरु पर्वत की नित्य प्रति भगवान् सूर्य प्रदक्षिणा करते हैं जिससे रात और दिन की व्यवस्था बनती है। स्वर्ग में ही सूर्य की प्रदक्षिणा के आधार पर रात-दिन की व्यवस्था संपन्न होती है। और वहां स्वर्ग में अनेक कामधेनुओं के समुदाय हैं। तथा अनेक ही वहां कल्पतरुओं के अपार वन हैं, और अमृत के तालाब भी अनेक हैं, जगह-जगह वे ही भरे पड़े हैं। वहीं पर हीरे-जवाहरात वैदूर्यमणि आदि की बहुत बड़ी-बड़ी खानें हैं। रत्नों और नवरत्नों की तो वहां बड़ी-बड़ी तथा ऊँची-ऊँची शिलाएँ तथा शिलाखण्ड हैं। वहाँ हमेशा ही आनंद मांनद छाया रहता है, अप्सराओं का गन्धर्वों का गण-नायक आदि का हमेशा ही तो गायन-वादन-नर्त्तन (नाच) आदि होते रहते हैं। इसीलिये उसे भोग-भूमि माना गया है। वहां पर किसी भी प्रकार का दुःख उन जीवात्माओं को नहीं होने पाता है जो-जो जीवात्माएं वहां पहुंच जाती हैं। और न उन्हें किसी प्रकार वृद्धत्व अथवा रोग क्लेश आदि व्याप्त हो पाते हैं।

इसी स्वर्ग लोक को महेन्द्र लोक भी कहा जाता है। यहां पर संकल्प सिद्ध आत्माएं ही निवास करती हैं। संकल्पसिद्ध का मतलब यह है कि वे आत्माएं अथवा वे लोग जो भी संकल्प करते हैं संकल्प मात्र से वही वस्तु उन्हें प्राप्त हो जाती है उसकी प्राप्ति के लिये उन्हें प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। आठ प्रकार की सिद्धियां- १. अणिमा, २. महीमा, ३. गरीमा, ४. लघुमा, ५. प्राप्ति, ६. पराकाम्य, ७. इषित्व, ८. वषित्व। अष्टविध ऐश्वर्य (आठ प्रकार सिद्धियां) से सम्पन्न आत्माएं भी यहीं निवास करती हैं। इन जीवात्माओं में इतनी विशेषता है कि ये अपनी इच्छा से चाहे जिस प्रकार के शरीर को धारण कर सकती हैं। और इनकी आयु भी एक कल्प की होती है।

और इसके ऊपर जन लोक है। इस जन लोक में भूतेन्द्रियवशी जो ब्रह्मपुरोहित ब्रह्मकायिक-ब्रह्म महाकापिक देवता लोग ही निवास करते हैं।

और इसके ऊपर तपलोक है वहां पर अहंकार के वशीभूत हुयी आत्माएं जो कि देवताओं के शरीर को ही धारण किये हुये है वे निवास करती हैं। उनमें प्रधानरूप से अभास्वर-महाभास्वर-सत्य महाभास्वर ये तीन प्रकार के देवता लोग ही निवास करते हैं।

इन सब लोकों के ऊपर सत्यलोक है। इस लोक में रहने वाली आत्माएं ज्ञानी-परमहंस ॐ सोहँ की उपासक आत्माएं रहती हैं और उन आत्माओं को वहां गृहनिर्माण की अथवा स्वयं विनिर्मित गृह की कोई भी आवश्यकता नहीं होती है। तथा जब तक सृष्टि है और होती रहेगी बराबर वे लोग वहीं पर आराम-विराम करते रहेंगे। अभिप्राय यह है कि सृष्टि को स्वयं अनादि माना गया है। जैसा कि कहा भी है–

"प्रवाहो नादिमानेप न विजात्येकशक्तिमान्"

अर्थात् सृष्टि रूप प्रवाह अथवा सृष्टि के प्रवाह का कोई भी आदि नहीं है अतः यह अनादि है। अनादि होने मात्र से इसे नित्य भी नहीं समझ लेना चाहिये कि यह सृष्टि प्रवाह इसी प्रकार चलता रहता है तो नित्य ही है अर्थात् इसका कभी विनाश नहीं होता है ऐसी शंका या निश्चय कभी भी नहीं करना चाहिये क्योंकि हमारे सत् शास्त्रों ने अथवा हमारे आचार्य सद्गुरुदेव श्री गरीबदास जी महाराज ने अनित्यत्व की परिभाषा इस प्रकार की है–

गरीब दृष्टि पड़े सो फना है, धर अम्बर कैलाश।
किरतम बाजी झूठ है, सुरति समोवो स्वास॥

श्री आचार्य देव कहते हैं कि जितने भी पदार्थ दृष्टि-गोचार होने वाले हैं। पृथ्वी, आकाश, बैकुण्ठ तक सब नाशवान हैं क्योंकि जो भी पदार्थ बनाया जाता है उसे ही कृतम कहा जाता है। इसलिये इन सब को मिथ्या एवं नाशवान समझ कर अपनी सुरति को श्वासाभ्यास में लीन करके अपनी आत्मा को सत्त एवं नाश रहित समझो। अन्य शास्त्र भी इस प्रकार कहते हैं।

इस प्रकार की किंवदन्ती है कि राम-रावण के युद्ध के पश्चात् भगवान् रामचन्द्र ने अपनी सहायता करने वाले इन सब लोगों से पूछा कि तुम लोगों ने हमारी सहायता की है अतः जो तुम्हारी इच्छा हो वह मांगो। तब किसी ने तो युद्ध की ही मांग की है कि महाराज! मेरी अभी युद्ध से तबियत नहीं भरी है, मेरी अभी और युद्ध करने की इच्छा है, और किसी ने यही मांग भगवान् से की कि जैसे आपने मेरे पिता का वध किया उसी प्रकार मैं भी आपका वध करूं। परन्तु श्री हनुमान् जी महाराज ने भगवान् के चरणारविन्दों की भक्ति रूप सायुज्य मुक्ति की ही मांग की थी। पांचवी कैवल्य मुक्ति केवल आत्मज्ञान से होती है उसमें किसी विशेष लोक में जाने की आवश्यकता नहीं होती तथा यह कैवल्य मुक्ति भी सायुज्य मुक्ति के ही अन्तर्गत है।

॥ अवतरण प्रयोजन ॥

वह अनन्त शक्तिशाली व्यापकी भूत परमात्मा अपने कुछ अंश के आधार पर अथवा सम्पूर्ण अंश के आधार पर अर्थात् कुछ कलाओं के आधार पर कभी सम्पूर्ण कलाओं के आधार पर जब-जब भी अवतरित होते हैं तब-तब वे अपने भक्तों की पुकार को सुनकर उनकी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए ही अवतरित होते हैं। कारण कि वे भक्त काम कल्पद्रुम (वृक्ष) है। उन्हें हमेशा ध्यान रहता है कि हमारे भक्त को कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार का संताप न दे। असुरों के संताप से संतापित हुए भक्त जिस समय जहां भी उनसे पुकार करते हैं वे उसी क्षण वहीं मौजूद पाते हैं। पुकार करने में भले ही विलम्ब हो जाये परन्तु उनके उपस्थित होने में विलम्ब नहीं होता है। द्रौपदी ने पुकारा, गजेन्द्र ने पुकारा, भक्त प्रह्लाद ने पुकारा, पुकारते ही ये महाराज वहीं उपस्थित पाये गये। इतना ही नहीं इनके भक्त लोग जिस प्रकार की प्रतिज्ञा कर बैठते हैं उसको उसी रूप से निभाते भी हैं। जैसे भक्त प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु के यह पूछने पर कि- "त्वदीयः परमात्मा कुत्र वर्त्तते किं स्वरूपः कदृिशश्च" अर्थात् तुम्हारे परमात्मा का क्या स्वरूप है? कहां रहता है? और वह परमात्मा कैसा है?

भक्त प्रह्लाद ने इसका उसी क्षण उत्तर दिया कि-

"मदीयः परमात्मा सर्वान्तर्यामी-सर्वत्र व्यापकः सर्वस्वरूपश्च"

अर्थात् भक्तकामकल्पद्रुम (वृक्ष) अर्थात् भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने के लिये कल्पवृक्ष के समान वे भक्तवत्सल भगवान् सबके अन्दर विराजमान हैं, इसीलिये वे व्यापक हैं और सर्वस्वरूप हैं। जैसा कि कहा भी है--

स्तम्भाभ्यन्तरगर्भभावनिगदव्याख्याततद्वैभवो-
यः पाञ्चाननपाञ्चजन्यवपुषा व्यादिष्टविश्वात्मतः।
प्रह्लादाभिहितार्थतत्क्षणमिलदृष्टप्रमाणं हरिः-
सोऽव्याद्धः शरदिन्दुसुन्दरतनुः सिंहाद्रिचूड़ामणिः॥

अर्थात् अपने भक्त प्रह्लाद की प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिये तथा अपने विभुत्व का प्रदर्शन करने के लिये भगवान् जिस खंभे से प्रह्लाद को बाँधने के लिये हिरण्यकशिपु ने दैत्यों को आदेश दिया था उसी खम्भे के अन्दर इस प्रकार से विराजमान हो गये जिस प्रकार गर्भ के अन्दर बच्चा हो जाता है। इससे भगवान् ने अपना विभुत्व दिखला दिया और अपनी सर्वस्वरूपता को दिखलाने के लिये भगवान् ने मनुष्य और पशु साधारण विरोधी स्वरूप को धारण किया।

इस प्रकार हमारे भक्तवत्सल सद्गुरु जी समय-समय पर अवतरित होते रहते हैं, और धर्म का, गौवों की, भक्तों का ब्राह्मणों का तथा साधु-महात्माओं का उद्धार एवं उपकार बराबर करते रहते हैं। हमारे श्री जगद्गुरु आचार्य साक्षात् प्रमात्मा के ही अवतार थे यह तो हम ग्रन्थ के अन्दर सिद्ध कर ही चुके हैं। अब भगवान् कृष्ण की तरह आचार्य जी ने अपनी अमृतमय वाणी में अपने शिष्यों के प्रति इनकी शंकाओं को दूर करने के लिये सर्वरूप से अपने आप को ही सिद्ध किया है जैसे कि मांस-मछली खाने वाले, हिंसक जीवों का स्वरूप भी मैं ही मेरा सवजीव है तथा महाकाल रूप भी अपने को ही सिद्ध किया है मांस-मछली का यह तात्पर्य है कि वह भगवान् सभी चराचर जगत् को अपने में ही लीन कर लेता है महाराज जी की कुछ शुक्तियां निम्न प्रकार हैं—

दिल दरियाव की सैल सुभान है,
नीर बिन नाव चलावता हूँ।
उलटि ले चिसम जहाँ सुरति की सैल है,
डोरी विन गुड़ी उड़ावता हूँ।।१।।
अरस में भगल जहाँ कला कर्तार है,
नीम बिन महल चिनावता हूँ।
अरस और कुरस के बीच नूर ही नूर है,
देख बे यार दिखलावता हूँ।।२।।
जहाँ करौं बिन ताल और मुखों बिन ख्याल,
अनहद नाद बजावता हूँ।
गैव के सिंध की कहाँ बानी कहूँ,
अरस की घोर सुनावता हूँ।।३।।
स्याहलोक[1] स्याहनीप[2] स्याह[3] युज स्याह[4] रूप,
चहूँ मुक्ति कूँ चरन लगावता हूँ।
बंदी छोड़ का विरद बैकुण्ठ आशा करे,
सत लोक के धाम पौंहचावता हूँ।।४।।
रुंड और मुण्ड मौले सकल कुँ करै,
नैन के बीच छिपि जावता हूँ।
हम बे चमूनी नमूनी सकल सुंन में,
हेत के भेत से फिरि आवता हूँ।।५।।
मरे हैं सोई जो भक्ति से बेमुखी,

१. सालोक्य
२. सामीप्य
३. सायुज्य
४. सारुप्य
चारों मुक्तियों का उल्लेख पीछे पृष्टों पर विस्तार से आ चुका है। वहां देखें

चार[1] खानि की धार बहावता हूँ।
कंटकी जाति उतपति तिस देत हूँ,
सर्प गीध और सूर बनावता हूँ।।६।।
गधे और काग कर्तार कुँ किये हैं,
पिछले कर्म भुगतावता हूँ।
मनुष्य की जूंनि से चंड करि देत हूँ,
लाख तोबा मैं ही लावता हूँ।।७।।
करें ततबीर और धीर हमहीं धरें,
कंठ पर छूरि चलावता हूँ।
गऊ के सींन सैं सदा साबत हूँ,
मास मछी सकल खावता हूँ।।८।।
इन्द्र वरुण कुबेर जमराय और धर्मराय,
ब्रह्मा विष्णु और ईश को ध्यावता हूँ।
काल का काल महाकाल का काल हौं,
दृष्टि में सृष्टि रचावता हूँ।।९।।
बेदीन बेदीन बेदीन बेदीन हूँ,
पिण्ड ब्रह्मंड कुँ ढावता हूँ।
अकल अचिंत महमंत मौले,
संत कूँ शीश बैठावता हूँ।।१०।।
शेष से संत ररंकार उचार हैं,
दत्त गोरख चिसम चाबता हूँ।
गीध गनिका देखो भीलनी तरि गई,
बालनीक अश्वमेध ठहरावता हूँ।।११।।

टिप्पणी १ अंडज (१) जेरज (२) स्वेदज (३) उद्भिज (४)
(१) जो जीव अंडे से उत्पन्न होते हैं
(२) जो जीव जेर से उत्पन्न होते हैं
(३) जो जीव पसीने से उत्पन्न होते हैं
(४) जो जीव प्रथ्वी में से उत्पन्न होते हैं

द्रौपदी चीर गंभीर बहु बधि गये,
गज और ग्राह कुँ बचावता हूँ।
विष्णु भगवान कुँ तहां करुणाकरी,
भक्ति का विरद बधावता हूँ॥१२॥
दलों के बीच जद टूटि घंटा पड़्या,
छत्रपती योधा सकल गाहावता हूँ।
दई जदि टेर सुमेर ऊँची गई,
पाँच पंड और अंड बचावता हूँ॥१३॥
असर कुँ बाँधि प्रह्लाद आगै किया,
खंभ कुँ आँनि खिलावता हूँ।
नखों सैं उदर बिधंस प्रलों किया,
भक्ति का तिलक तिस दिबावता हूँ॥१४॥
सुरपति फिलादि भगवान आगे करी,
बावन रूप धरि जावता हूँ।
तेहूँ लोक की पैंड तो तीनहीं करि गया,
बलिराय पाताल पैठावता हूँ॥१५॥
कबीर रनधीर रैदास सो पास हैं,
नौलाख बोडी तहां ल्यावता हूँ।
भरे भण्डार मुकतार जौंनार हैं,
केशो नाम तो आंनि धरावता हूँ॥१६॥
दर्द बंद दरवेश कोई नेश निश्चा करे,
मूल मंत्र कुँ आनि गोहरावता हूँ।
दास गरीब यह भगल बारीक है,
स्याह रंग से निकट लखावता हूँ॥१७॥

और भी कहा है—

गोविप्र सुर साधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥

अर्थात् वह परमपिता परमेश्वर गौ-विप्र (गोब्राह्मण)[१] साधु-महात्माओं और वेद तथा धर्म की रक्षा के लिये ही शरीर धारण करते हैं। स्वयं अपनी अमृतमयी वाणी में कहा हैं कि-

जुगन-जुगन हम कहते आये, भवसागर से जीव छुड़ाये।

इसी बात को श्री तुलसीदास जी भी रामायण में कहते हैं कि—

जब-जब होए धर्म की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब-तब धर प्रभु विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

इत्यादि रूप से प्रमात्मा ने इस बात को अच्छी प्रकार से सुस्पष्ट कर दिया कि दुष्टों के जिस समय भी अनुचित व्यवहार सात्विक एवं भगवद्भक्त जनों के लिए होने लगते हैं। उसी समय उनकी पुकार को सुनकर वह पारब्रह्म किसी न किसी रूप में अवश्य ही अवतरित होते हैं। जैसा कि उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हो रहा है। उसके लिए यह भी नियम नहीं कि इसी रूप में वे अवतरित हों, बल्कि सब रूपों में वे अवतरित हो सकते हैं क्योंकि सभी तो उन्हीं के रूप हैं। जैसा कि कहा है—

विभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहः खलानाम्॥

अर्थात् वह अवबोध स्वरूप आत्मा (परमात्मा) इस समस्त चराचर विश्व के कल्याण के लिये नाना प्रकार के रूपों को धारण करते हैं जिससे कि सात्विक प्रकृति वाले गो-विप्र एवं साधु-महात्माओं के प्रति होने वाले खलों के अभद्रात्मक व्यवहार शांत हो जावें। इस प्रकार सगुण ब्रह्म उस परमपिता परमेश्वर का लीला के प्रदर्शन भक्तों की भक्ति का संवर्धन उपासक लोगों की उस भक्तवत्सल भगवान की उपासना में संप्रवर्त्तन करनेवाला तथा स्वकार्य का साधन भी यही है।

कुछ लोगों का कहना है कि भगवान् स्वयं अपने आप रमण की इच्छा से ही जगत् का निर्माण करते हैं। क्योंकि वह निर्गुण-निराकार

---

१. जो ब्रह्म को जानता है वही ब्राह्मण है यथा-"ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पद्याणै सब घट एकै आत्म जाणै।"

निर्विकार ब्रह्म एकाकी होने के नाते रमण नहीं कर पाता है इसलिये वह इस चराचर विश्व का निर्माण कर इसमें रमण करता है। कहा भी है–

"स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीय मैच्छत्"

"एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानो नेमे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि नापो नाग्निर्न सोमो न सूर्यः स एकाकी न रमते।

अर्थात् वह निर्गुण ब्रह्म जिस अपनी वास्तविक अद्वैतावस्था में था उस समय कैसे और किससे रमण करता, कारण कि उस समय वह इकला था। उस समय न आकाश था, न पृथिवी थी, न नक्षत्र और तारागण ही थे, न चन्द्रमा और सूर्य आदि ही थे, न अग्नि और वायु ही थे, एकमात्र वही था अतः वह किससे रमण करता। और भी–

श्री सद्गुरु देव जी स्वयं कहते हैं कि–

जा दिन नाथे पिंड न प्राना, नहीं पानी पवन जिमि असमाना।

न ते भवस्येश? भवस्य कारणम्।
विना विनोदं वत तर्कयामहे॥

तथा और भी–

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं विभर्षि हि।

अर्थात् परमात्मा जितने भी अपने अवतरण के कारणीभूत रूपों को धारण करते हैं वे सब एकमात्र परमात्मा के रमण के ही कारण हैं।

कुछ विद्वानों का ऐसा भी कहना है कि परमात्मा अपनी ज्ञानशक्ति अर्थात् ईक्षणशक्ति के कारण ही अवतार धारण करते हैं। इसलिये परमात्मा के अवतार धारण करने में उनकी अपनी शक्ति ही कारण है। जैसे कि कहा भी है–

"सदैव सौम्येदमग्र आसीत्–एकमेवाद्वितीयम्" "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय इति" "आत्मा वा इदमेकवेवाग्रे आसीन्नान्यत् किञ्चनमिषत्स ऐक्षत लोकान्नु सृजा इति"

अर्थात् उस अद्वैत अवस्था को प्राप्त हुये ब्रह्म ने देखा कि मैं इस समय एकाकी हूँ अतः बहुत हो जाऊँ तो अच्छा है।

- स्वामी भक्तराम अवधूत

॥ ॐ ॥
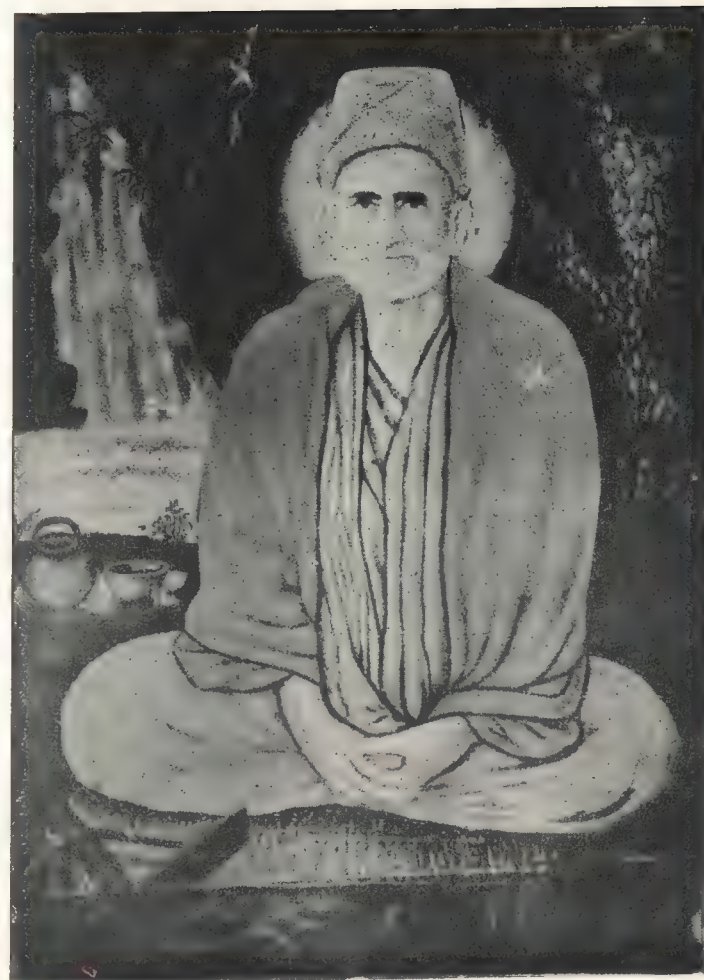
यतिचक्र चूड़ामणि अनन्त श्री विभूषित पूज्यपाद स्वामी भूरी वाले जी महाराज

"अवतारवाद"

मानव जीवन को सुव्यवस्थित रखने के लिये सत्य-सदाचार-अहिंसा-परोपकार आदि गुणों की अतीव आवश्यकता आचार्यों व शास्त्रकारों ने बतलाई है। सत्यान्नास्ति परोधर्मः, आचारः प्रथमोधर्मः, अहिंसा परमोधर्मः, परोपकृतिः साधीयान् धर्म इत्यादि तथा पर-उपकार का साधन करना ही धर्म है। श्रौत सिद्धान्तों के आधार पर ही भारतीय संस्कृति का मूलस्तम्भ सुरक्षित है। धर्म सबको प्रिय एवं मान्य होना चाहिये, क्योंकि यह परमेश्वर जगन्नियन्ता निखिल-ब्रह्माण्ड के प्रवर्तक का एक अन्यतम रूप है, "रामोविग्रहवान् धर्मः, धर्मोहि भगवान् वृषः, धर्मोहि विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा" इत्यादि शास्त्रीय प्रमाण इसी का प्रतिपादन करते हैं। किसी न किसी रूप से धर्म स्वीकार करना सबको ही पड़ता है। जो लोग धर्म का खण्डन करते हैं (नहीं मानते) उनका यह एक हठमात्र है। वास्तव में शब्दान्तर से उन्हें धर्म स्वीकार करना ही पड़ता है। अग्नि में दाहकत्व (दाहपन) उसकी सत्ता तक अनिवार्य है, उसके छूटने से ही वह अग्नि नहीं अपितु राख का ढेर कहा जाता है। साथ ही उसकी कोई भी कीमत नहीं रह जाती—

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।

महाकवि ने उसी समय का चित्रण किया है, जल से शीत स्पर्श निकाल लिया जाय यह उसकी सत्ता तक कठिन है, अनेक कारण सन्निधान से तात्कालिक सर्वविद्य उष्णस्पर्श की प्रतीति मात्र हो सकती है, पर सर्वथा वह शीत स्पर्शहीन नहीं हो सकता। स्पष्ट है कि आग लगी हो उस पर अग्नितप्त (आग पर खौलाया हुआ) भी जल छोड़ा जाय वह दाह को तत्काल शान्त कर ही देगा।

उष्णत्वमग्न्यातपसन्न्यियोगाच्छैत्यंहि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य।

इस प्रकार धर्मापनोदन (धर्म स्वीकृतिः) सत्तापनोदन (सत्ता स्वीकृतिः) के साथ ही सम्भव है अन्यथा नहीं। आज कुछ लोग अविवेकवश धर्म को मानने में हिचकिचाते हैं, परन्तु वे ही विचार-पथ में आने पर धर्मतत्व को स्वीकार करते पाये जाते हैं। विश्वयुद्ध में भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण

स्थान इसकी धार्मिकता एवं सांस्कृतिकता के कारण आज भी बना है। इसी नाते यह देश जगद्गुरु कहा गया है। धर्म भी वेदविहित कर्मानुष्ठान जन्य ही माननीय होता है। निषिद्ध कर्मजन्य अधर्म होता है। अनादि वैदिककाल से लेकर आज तक अविच्छिन्न धारावाही प्रवाहित होने वाली एक परम्परा ही भारतीय संस्कृति है। धर्म तथा अधर्म का युद्ध युगों से चलता आ रहा है, परन्तु "धर्मोजयति नाधर्मः" यही निष्कर्ष सदैव निकला है। धर्म के अनुसार चलने वाले ही प्राणी परलोकवासी आस्तिक कहे जाते हैं। जिन्हें धर्म पर आस्था नहीं, परलोकवाद पर संशय रहता है वे ही नास्तिक कहे जाते हैं। महर्षि पाणिनि ने "अस्ति नास्ति दिष्टंमतिः" इस सूत्र में उपर्युक्त सिद्धान्त को स्थापित किया है।

आस्तिक समाज भी भगवदनुग्रह के लिये विविध विचारों से आक्रान्त है। कुछ लोग निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं तथा कुछ साकार की। इसी बात का वर्णन किसी महाकवि ने किया है—

साकारम् प्रवदन्त्येके निराकारमथापरे।
वयन्तु दीर्घसान्निध्यान्नीराकारमुपास्महे॥

भाव यह कि उपासक अपने विचार श्रद्धा के अनुसार तत्तद्रूप से ब्रह्म की उपासना करता है। कोई सीताराम के रूप में, कोई राधेश्याम के रूप में, कोई गौरीशंकर के रूप में, कोई भगवती दुर्गा के रूप में, कोई हनुमान जी के रूप में, कोई गुरु रूप में अपनी भक्ति से अर्चा (पूजा) करता है। क्योंकि "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्म की व्यापकता सिद्ध ही है। परमाणु-परमाणु में उसकी सत्ता व्याप्त है। अतः शास्त्रों का यही कहना है कि किसी भी रूप में उसकी आराधना एवं उपासना होनी चाहिये। यह सब जो भी है साकार ब्रह्म की उपासना के ही दृष्टिकोण से है। और निराकार की उपासना बड़े ही कष्ट से साध्य होती है, तथा दुर्गम होती है। अतः वह मार्ग एकमात्र योगिजनों तथा तपस्विजनों से भी साध्य नहीं हो सकता है बल्कि वह एकमात्र अपने अनुभव से ही गम्य हो सकता है। हाँ साकारब्रह्म की भक्ति का मार्ग, भक्तों की, तपस्वीजनों की एवं योगिजनों की उपासना से गम्य अवश्य

ही हो सकता है। इसीलिये भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्त की पुकार एवं आर्त्तनाद को सुनकर उनकी रक्षा के लिये अवश्य ही समय-समय पर अवतरित होते हैं। जैसे कि गीता में इस बात को अच्छी प्रकार बतलाया तथा प्रमाणित किया गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत?
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥

अर्थात् धर्मग्लानि और अधर्माभ्युत्थान को समाप्त करने के लिये तथा सज्जनपुरुषों की रक्षा एवं दुर्जन जनों को समाप्त करने के लिये मैं किसी न किसी रूप में अवश्य ही अवतरित होता हूँ। इसी का नाम अवतारवाद है। कंसराज्य में सर्वेश्वर श्रीकृष्ण, रावणराज्य में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी का अवतार ग्रहण करना प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार मत्स्य-कच्छप वराह-नृसिंह प्रभृति (आदि) अवतार भी विशेष घटनाओं के प्रतीक हैं।

इधर यवनराज्य में जिस समय शासकों की ओर से भयानक अत्याचार-दुराचार आदि धर्म की ओट में हो रहे थे, तलवार के बल के आधार पर धर्मपरिवर्त्तन आदि का कुचक्र चल रहा था, भारतीय प्रजा किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रही थी, बड़े-बड़े चतुर प्रतापी योद्धा उनकी दृष्टिगोचर हो रहे थे, ऐसे समय आवश्यकता थी एक ऐसे महानुभाव की जो हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख-ईसाई आदि का किसी प्रकार का भी पक्षपात न कर समस्त भारतीय प्राणिमात्र को अपनी उपदेशामृतमयी अविच्छिन्न-(वाक्य धारा से) वाग्धारा से सन्न्याय-सद्धर्म एवं सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त तथा प्रवाहित करे। जन-जन में सद्भावना की जागृति करे। सद्वासना (शुद्ध वासना) का उद्बोधन कहे। ठीक उसी समय हमारे चरित्र-नायक आचार्य श्री सद्गुरु जी महाराज का अवतार हुआ। अवतरित होने के पश्चात् यवन-शासकों की बारम्बार उपेक्षा ही करते हुये चले गये। यद्यपि शासन की ओर से इन महाप्रभु के लिये कठोर से कठोर दण्ड निर्धारित हुआ,

और उसका इनके लिये आदेश भी हुआ, परन्तु वे सब आदेशों के आक्रमण हमारे महापुरुष आचार्य श्री सद्‌गुरु जी महाराज के ऊपर सर्वथा विफल ही होते गये।

इस विषय में कुछ लोग तो यही तर्क करने लगे कि सिद्धि के चमत्कारवश उनपर तलवार या गोलियों का असर नहीं हो पा रहा है। ऐसी परिस्थिति में यह स्पष्ट कर देना परम आवश्यक है कि सिद्धि के चमत्कार योगी लोग दिखाया करते हैं, वे भी साधना द्वारा ही साध्य होते हैं। परन्तु हमारे चरित्र-नायक को कभी भी साधना करने का अवसर नहीं मिला, बल्कि ये महाराज तो शाश्वत स्वयं सिद्ध महापुरुष एवं युक्तयोगी थे। कारण कि इनके पीछे तो सिद्धियाँ हाथ जोड़कर स्वयं दौड़ती थीं। निधियाँ दण्डवत् प्रणाम करती थीं।

श्रीआचार्य जी इस बात को स्वयं कहते हैं कि—

गरीब आठ सिद्धि[1] स्तुति करैं, नौ निधि[2] पूरैं नाद।

चौबीसौं[3] चंपी[4] करैं, सतगुरु अदली आद॥

ये तो बालरूप में ही भगवान् रूप से प्रगट हुये थे कारण कि उस समय की वह परिस्थिति ही विलक्षण थी कि जिस परिस्थिति को देखते हुये ही उस नित्य-निर्विकल्पक-निराकार-निर्विकार निर्गुण ब्रह्म को अपने वेदादि संप्रदाय की रक्षा करने के लिये इस रूप में अवतरित होना आवश्यक हो गया। अवतरित होने के पश्चात् महाराज ने भी अपनी बहुत सी बाल लीलाओं का प्रदर्शन किया जिनका निरूपण तथा उल्लेख हमने महाराज के जीवन चरित्र में स्पष्टरूप से किया है। यद्यपि वह निरूपण एवं उल्लेख संक्षिप्त रूप से ही हमने किया है तथापि वह निरूपण और उल्लेख सप्रमाण हमारे पास मौजूद है। जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी लोकोत्तर अद्‌भुत एवं विलक्षण लीलाओं का प्रदर्शन

---

१. अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकम्य, इषित्व, वशित्व।
२. १. पद्म, २. महा पद्म, ३. शङ्ख, ४. मकर, ५. कच्छप, ६. मुकुन्द, ७. कुन्द, ८. नील, ९. खर्ब।
३. चौबीसौं = (२४) अवतार
४. चंपी = चरण दबाना।

समस्त दर्शकों के समक्ष किया। संप्रदाय प्रवर्त्तक जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य जी महाराज ने तथा श्री रामानुजाचार्य जी महाराज ने, एवं गुरुनानक जी तथा श्री कबीर जी महाराज आदि अवतारी महापुरुषों ने जो-जो अद्‌भुत-लोकोत्तर-विलक्षण कार्य किये हैं वही समस्त कार्यों का संपादन हमारे महापुरुष १००८ श्री आचार्य जगद्‌गुरु श्री गरीबदास जी महाराज ने भी समय-समय पर किया है। और ये महाराज साक्षात् महाराज श्री सद्‌गुरु कबीर साहिब जी के ही अवतार थे यह बात भी बहुत से प्रमाणों से प्रमाणित हो चुकी है।

और भविष्य पुराण में भी सन्त श्री कबीर साहिब का जो वर्णन जिन पद्यों से आता है उसके आधार पर यह सिद्ध होता है कि उस धारावाही संप्रदाय की रक्षा के लिये किसी महापुरुष का अवतरित होना अत्यन्त ही आवश्यक था। जैसे भविष्य पुराण में भी कहा है—

भारते यवनाक्रान्ते निर्देष्टुं सत्पथं नृणाम्।

हरिः कबीरनाम्ना हि कलाववतरिष्यति॥

इनके अनन्तर कुछ काल के पश्चात् जब फिर वही परिस्थिति (कारणवश) उत्पन्न हो गयी तब फिर प्राणियों के प्रारब्ध कर्मवश अथवा भक्तों की पुकार एवं आर्त्तनादवश होने वाले ज्ञानशक्ति माया के समुद्रेक से उस निराकार निर्विकार-नित्य-निरञ्जन-निर्गुण परब्रह्म परमेश्वर को महाप्रतापशाली-जन जीवनरक्षक-त्याग तपोमूर्त्ति-निखिल कल्याण गुणनिधान एक आदर्श महात्मा के रूप में अथवा हमारे चरित्रनायक के रूप में अवतरित होना ही पड़ा। उस रूप से संपन्न यही आचार्यदेव जगद्‌गुरु श्री गरीबदास जी महाराज ही थे।

इनके विषय में अधिकांश लोगों का यह भी कहना है कि ये महाराज तो साक्षात् कबीरदास के ही अवतार थे अर्थात् सन्त श्री कबीर साहिब ने ही उस समय की फिर से होने वाली यवनाक्रान्त परिस्थिति को जानकर श्री गरीबदास जी महाराज के रूप में अवतार लिया। जैसे आपने कहा भी है कि—

जुगन जुगन हम कहते आये, भवसागर से जीव छुटाये।

अमर करूँ सतलोक पठाऊँ ताँते बंदी छोड़ कहाऊँ।

हमहीं गुप्त गहर गंभीरा, हमहीं अवगत हमें कबीरा॥

इस प्रमाण से अच्छी प्रकार सिद्ध है कि आचार्य श्री सद्गुरुजी महाराज श्री सन्त कबीर साहिब जी के ही अवतार थे।

परन्तु यहाँ पर "हम ही अवगत" ऐसा कहा है। इस कथन से यह भी आ रहा है कि महाराज जी उसी निर्गुण ब्रह्म के आंशिक अवतार थे, कारण कि यहाँ पर जो "अवगत" यह पद है- इसका अर्थ है "ज्ञान" और "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियों ने उस नित्य-निराकार-निर्विकार-निर्गुण ब्रह्म को ही ज्ञानरूपता का प्रतिपादन किया है, इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि ये हमारे आचार्य जी महाराज उसी निर्गुण पारब्रह्म के अवतार थे। परन्तु कुछ भी हो चाहे निर्गुण ब्रह्म के अवतार हों अथवा श्री सन्त कबीर साहिब के अवतार हों ये अवतारी महापुरुष थे यही शास्त्रों का कहना है।

इनके विषय में कुछ लोग यह भी शंका उठाते हैं कि कबीर साहिब के और इनके कार्यकाल में तो बहुत ही अन्तर पड़ रहा है तब फिर इन्हें कबीर साहिब का अवतार किस प्रकार माना जा सकता है? तथा कबीर जी इनके गुरु कैसे हो सकते हैं।

सो यह शंका श्री आचार्य सद्गुरुजी महाराज के श्री सन्त कबीर जी का अवतार होने में बाधक नहीं है। कारण कि अवतारी महापुरुषों का कार्यकाल किसी अवधिविशेष से सीमित नहीं हुआ करता है। कारण जबकि ऋषि-महर्षियों का सीमित नहीं होता है। जैसे कि भागवत के आठवें स्कन्ध के १३ अध्याय श्लोक १५ तथा १६ में लिखा है कि–

गालवो दीप्तिमान् रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा।

ऋष्यशृंगः पिताऽस्माकं भगवान् बादरायणः॥ इत्यादि।

अर्थ- गालव ऋषि-दीप्तिमान्, परशुराम-द्रोणपुत्र अश्वत्थामा कृपाचार्य तथा अङ्गिरस का पुत्र ऋष्यशृङ्ग और मेरे (शुकदेव के) पिता भगवान् वादरायण जी अर्थात् व्यास जी ये सब आठवें मन्वन्तर में सप्त ऋषियों में एक ऋषि होंगे।

लाखों शिष्यों, उपशिष्यों तथा भक्तों ने भारत के अन्दर धर्म की ध्वजा फहराकर आज भी एक मानदण्ड खड़ा कर दिया है। जब हमारे यहाँ परम्परा के अनुसार मत्स्य तथा वराह को भी अवतार माना गया है तो एक मानव शरीरधारी को अवतार मानने में किसी भी प्रकार का विरोधी प्रमाण अथवा तर्क या कोई युक्ति नहीं मिलती है।

दूसरी बात यह भी है कि और अन्यान्य (भिन्न-भिन्न) अवतारों ने जो-जो कार्य सम्पन्न किये वही तो हमारे चरित्र-नायक आचार्य श्री सद्गुरु जी महाराज ने भी तो अवतारित होने के पश्चात् किये हैं, तब फिर ऐसी परिस्थिति हम अपने इस विशेषावतार के विषय में जो कुछ भी कहें वे स्वल्प तथा अपर्याप्त ही होगी। हम तो उनके विषय में केवल निम्नलिखित कुछ पद्यों को ही उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जली समर्पित कर समाज से अनुरोध करते हैं कि ऐसे महापुरुषों के कार्यों के ऊपर सद्बुद्धि-सद्विचार पूर्वक विचार-विमर्श करें।

इन महापुरुषों ने बिना किसी वर्गवाद, जातिवाद, भेदवाद, चातुर्वर्ण्यवाद (चार वर्ण) आदि वादों को दृष्टिकोण में न रखते हुए समस्त प्राणियों का कल्याण हो इस सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ही पूर्वोक्त सिद्धान्तों का प्रचार किया। इस प्रकार के राष्ट्र एवं विश्व के हितैषी देशसमाजोद्धारक महानुभाव का जीवन चरित्र लिखा जाय प्रकाशित किया जाय यह तो प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति का कर्त्तव्य होता है। ऐसे महानुभाव व्यक्ति के लिये श्रद्धा एवं पुष्पाञ्जलि अर्पित करना यह उनके विषय में कृतज्ञताज्ञापन है। यह तो स्पष्ट तथा सर्व सम्मत भी है कि–

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।

साधवो नहि सर्वत्रचन्दनं न वने वने॥

- स्वामी भक्तराम अवधूत

पूज्यपाद् प्रातः स्मरणीय अनन्त श्री बिभूषित १००८ श्री मज्जगद्गुरु श्री गरीबाचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र संशोधित दुतिय संसकर्ण

मंगलाचरणम्

यस्यादि मध्यमन्तर्नहि कर चरणं नाम गोत्रं न सूत्रं
जातिर्वर्णं न पुस्त्वं न भवति युवति र्यो न षण्डो न खण्डम्
आकारो नास्ति यस्य न च परमपैरं नास्ति पुण्यं न पापं
सत्यं चित्तत्वमेकं सहज समरसं सद्गुरुं तं नमामि॥

जिसका न आदि है, न अन्त है, न मध्य ही है। न नाम है न गोत्र है, न सूत्र है न जाति है न वर्ण व्यवस्था ही है। जिसे न पुरुष कह सकते हैं, न स्त्री कह सकते हैं न नपुंसक ही कह सकते हैं। जिनका न खण्ड हो सकता है, और न आकार ही है। क्योंकि वे स्वयं अखण्ड हैं। अद्वैत होने के कारण जिन्हें न व्यापक मान सकते हैं न व्याप्य ही। जिनमें न पुण्य है न पाप है। ऐसे सत् चित् अद्वैत समर्थ वाले सद्गुरु श्री गरीबदास जी को नमस्कार करता हूँ।

भो! सन्तः साधकानां ज्वर हरणं परा इन्दु वेदान्त वाग्भिः
संसार ध्वान्त विध्वंसकरण कुशलाः सन्ति चाण्डांशवो वै
वाग्वज्रै र्ग्रन्थि हाश्च स्वपद गतमतेः स्वानुभूतै हिं तीक्ष्णैः
निर्मोहाः सर्वदापि प्रियकर जननीव प्ररक्षन्तु मां ते॥

हे सन्त लोगो! प्रकाश स्वरूप वेदान्त की वाणियों के द्वारा आप लोग साधु-महात्मा आदि साधक लोगों के आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैक्कि इन तीन प्रकार के तापत्रय रूपी ज्वर को हरण करने वाले हैं और आप सूर्य के समान ज्ञानाग्नि के द्वारा प्रकाशमान होने के नाते संसार रूपी अन्धकार के विध्वंस करने में भी सर्वथा कुशल हैं। तथा अपने तीक्ष्ण एवं स्वयम् अनुभूत वाणी रूपी वज्रों के द्वारा अपने सेवकजनों की

अज्ञान रूपी ग्रन्थि को दूर करने वाले हैं और आप सर्वथा मोह रूपी सांसारिक अन्धकार से सर्वथा अलग हैं। इसलिए मेरी नितान्त निरवच्छिन रूप से रक्षा करते रहें।

दिष्टया पाण्डव भूमि गोऽस्ति हरियानेति प्रदेशोऽमलं
तत्रैषा बलरामसिंहनगरी नाम्नी छुडानीति च।
साक्षाद् ब्रह्म बभूव यत्र सगुणं धर्मात्मनां शान्तये
तच्छ्र्याचार्यगरीबदासचरितं भक्त्या मया स्तूयते॥१॥

बड़े हर्ष की बात है कि पाण्डवों की पवित्र भूमि इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से सम्बन्धित हरियाना प्रान्त के अन्दर छुड़ानी नाम का गाँव है जहाँ श्री बलरामसिंह जी निवास करते थे, यहीं पर धर्मात्मा भक्त जनों को सुख-शान्ति प्रदान करने के लिये साक्षात् पारब्रह्म परमात्मा ही सगुण होकर गरीबाचार्य रूप से अवतरित हुए। इन आचार्य श्री गरीब दास जी महाराज के भक्त भव भंजन के लिये तथा लोगों के मनोरंजन के लिये जीवन-चरित्र की भक्ति पूर्वक मैं स्तुति करता हूँ।

श्री जगद्‌गुरु जी का अवतरण

अनन्त श्री विभूषित प्रातः स्मरणीय श्री गरीबाचार्यजी महाराज का भारतवर्ष के पवित्र प्रदेश हरयाणा प्रान्त के छुड़ानी गांव में परम पुनीत क्षत्रिय वंशावतंसोत्पन्न श्री बलरामसिंह के यहां वि. सं. १७७४ की वैसाख शुक्ला पूर्णमाशी को प्रादुर्भाव हुआ था। आपके पिता जी परम स्वधर्म शील एवं अनन्य भक्त-जन थे। बलरामसिंह जी सदैव साधुसेवा, सत्संग एवं भगवद् भजन में, परोपकार तथा सद्विचार में लगे रहते थे। साधु सन्तों तथा भक्त समाज में आपका अत्यन्त एवं सर्वत्र यश था। वास्तव में श्री बलराम सिंह जी के पिता श्री हरदेवसिंह जी तथा माता श्रीमती दयाली देवी "क्रोंथा" ग्राम के रहने वाले थे (जो कि छुड़ानी से पश्चिम की ओर ५० किलो मीटर के लगभग है।) वि. सं. १७५१ में बलरामसिंह जी के साथ श्री शिवलाल छुड़ानी निवासी की पुत्री रानी का विवाह हुआ। श्री शिवलाल छुड़ानी के बहुत बड़े जागीरदार एवं श्रीसम्पन्न धर्मज्ञ व्यक्ति थे।

पुत्री में अति अनुराग के कारण श्री शिवलाल जी ने वि. सं. १७६० में बलराम सिंह जी को अपने घर पर ही दामाद के रूप में रख लिया था। वि. सं. १७६० से बलराम सिंह जी छुड़ानी में ही रहने लगे। बारह वर्ष तक इनके कोई सन्तान न हुई। दैवयोग से छुड़ानी में एक सिद्ध महात्मा पधारे। उन्होंने गाँव से बाहर तालाब (चन्द्रावती नदी) के किनारे आसन लगाया। जब श्री शिवलाल जी को यह पता चला तो वह दर्शन करने को सपरिवार महात्मा के पास गये दण्डवत् प्रणाम करके बैठ गये कुछ धार्मिक बातों के पश्चात् श्री शिवलाल जी ने महापुरुषों के आगे प्रार्थना की कि महाराज जी यह मेरी बेटी है इसका विवाह हुये बारह वर्ष हो गये परन्तु कोई सन्तान नहीं हुई। कुछ ऐसा उपाय बतायें जिससे कोई सन्तान हो। महात्मा जी कुछ देर तो चुप रहे, कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने कहा "भक्तजी आपकी सुपुत्री तथा आपके दामाद कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं उन्होंने पूर्व जन्म में बहुत बड़ी तपस्या की है और परमात्मा से वरदान प्राप्त किये हुए हैं कि हमारे यहाँ परमात्मा जैसी शक्तिवाला पुत्र उत्पन्न हो। इससे पहले भी एक पुत्र होगा उपर्युक्त वार्ता के अनुसार ही उनके यहाँ सर्वगुण सम्पन्न परमात्मा कबीर जी ही आकर प्रकट होंगे जिनके प्रभाव से आपके कुल में उन्हीं का वंश भी चलेगा।

शिवलाल जी की विशेष प्रार्थना पर महात्मा जी ने कुछ देर सोचकर फिर बतलाया कि देखो तुम्हारे दामाद पूर्व जन्म में बहुत बड़े धर्मात्मा व्यक्ति थे।

पश्चात् कबीरदासस्य वचनामृत सारवित्।
श्री बलरामसिंहोऽपि चकार कठिनं तपः॥४॥

उस समय उनका नाम शिव स्वरूप था। उनकी धर्मपत्नि का नाम रामरति था। श्री कबीर साहिब जी की वाणी के मर्म को जानने वाले श्री शिव स्वरूप जी ने कठिन तप किया॥४॥

ये विशेषरूप से निर्गुण-निराकार के ही उपासक थे। इनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं किसी न किसी रूप में उनके दर्शन अथवा कुछ काल के लिये उनका सहवास प्राप्त करूँ। उनकी यह इच्छा बराबर

उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी और इस इच्छा के फलस्वरूप उन्होंने विचारा कि बिना तपस्या के किसी ने भी सिद्धि आज तक प्राप्त नहीं की है इस लिये विन्ध्याचल पर्वत के अन्दर कालीखो के पश्चिम भाग में वटवृक्ष के नीचे एक बहुत बड़ी चट्टान के ऊपर बैठकर बराबर इन्होंने अनन्य भाव से उस निर्गुण-निराकार-निरञ्जन परब्रह्म परमेश्वर की अटूट उपासना १८ वर्ष तक की थी, उस समय भक्त वत्सल भगवान् वही निर्गुण ब्रह्म कबीर साहिब भक्त की अन्दरूनी पुकार एवं उसकी प्रेरणा से प्रेरित होकर साकार रूप में प्रकट हो दर्शन दिये और उन्होंने इनसे छः प्रश्न भी किये कि—

किंश्रेयः शास्त्रसारः कःस्वावतारप्रयोजनम्।

किं कर्मं केऽवताराश्च धर्मः कं शरणं गतः।

(१) प्रश्न-संसार के अन्दर जीवों का कल्याण किस प्रकार हो सकता है?

(२) प्रश्न-समस्तशास्त्रों का सार क्या है?

(३) प्रश्न-तथा परमात्मा के अवतार ग्रहण का क्या प्रयोजन है?

(४) प्रश्न-एवं प्राणी का कर्त्तव्य कर्म क्या है?

(५) प्रश्न-और भगवान् के कितने अवतार हुए हैं।

(६) प्रश्न-अन्तिम प्रश्न था कि-धर्म किसकी शरण में गया?

उन्होंने इन पूर्वोक्त छहों प्रश्नों का उत्तर वही दिया जो कि सूत जी ने शौनक आदि ऋषियों को दिया था।

उन्होंने तुरन्त अपने इष्टदेव का ध्यान कर और उत्तर देना प्रारम्भ किया।

सद्गुरुभक्तिः[१] परं श्रेयः शास्त्रसारश्च सैव[२] हि।

प्रयोजनं सतो रक्षा[३] कर्म सृष्ट्यादि लक्षणम्[४]॥

अवतारा असंख्येया धर्मो भागवते स्थितः।

चतुर्णामत्र शेषस्य तृतीये तूत्तरं कृतम्॥

अर्थात् इस मायामय (मिट्टी स्वरूप या मिथ्या) संसार के अन्दर प्राणियों का कल्याण मार्ग यदि है तो उस पारब्रह्म परमेश्वर स्वरूप सद्गुरु देव की

ही एकमात्र भक्ति है और वही इस संसार सागर से प्राणिमात्र के उद्धार का प्रधान साधन भी है और वही सम्पूर्ण शास्त्रों का सार अर्थात् तत्त्व भी है। शास्त्रों का अध्ययन करके भी जिन लोगों में भक्ति का भाव न जागा उन लोगों का शास्त्र पढ़ना सर्वथा व्यर्थ है। किसी ने इसी बात को इस प्रकार से बतलाया है कि—

निरर्थकं जन्म गतं मदीयं।

न चिन्तितं त्वच्चरणारविन्दम्॥

अर्थात् उनका जन्म ही बिल्कुल निरर्थक है जिसने अपने जीवन काल में उस परम पिता परमेश्वर के चरणार विन्दों का चिन्तन एवं मनन नहीं किया। जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा के प्रति निश्चल भक्ति नहीं है उसे अपने स्वरूप का ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान नहीं होता एवं संसार तथा संसार के विषयों से वैराग्य नहीं हो पाता है। वह हमेशा के लिये इस असार संसार सागर में ही गोते लगाता रहता है और इसी संसार रूपी जेल में पड़ा रहता है इससे उसका कभी भी छुटकारा नहीं हो पाता है।

भक्त का अर्थ है कि वे तद्रूप हैं अर्थात् निर्गुणरूप ही हैं। कारण कि उस निरति शयावस्था में पहुंचने पर भक्त उसी का रूप बन जाता है। परमात्मा और भक्त में कोई अन्तर नहीं होता है। क्योंकि परमात्मा अपने ही स्वरूप को भजता है और भक्त परमात्मा के रूप को।

यद्यपि अवतार तो परमात्मा के और भी बहुत से हैं जिन्होंने समय-समय पर अवतरित होकर संसार का एवं संसार के प्राणियों का उद्धार किया और वास्तव में यही उनके अवतार धारण करने का प्रधान उद्देश्य भी है।

निर्गुण से सगुण रूप में आने का उनका प्रधान लक्ष्य यही रहता है कि मैं अपने आर्त्त भक्तों की करुणा पूर्ण पुकार सुनूं, एवं जिज्ञासु भक्तों की जिज्ञासा पूरी करूँ, अर्थार्थी भक्तों को अर्थ (धन, सम्पति) प्रदान करूं।

और इन तीन प्रकार के भक्तों के अतिरिक्त अब रहे ज्ञानी भक्त उन्हें तो सर्व प्रथम कामना ही नहीं रहती है और दूसरी बात यह है कि वे मेरे इस

सगुण रूप के भक्त भी नहीं होते हैं वे तो एकमात्र मेरे निर्गुण रूप के ही भक्त होते हैं, क्योंकि वे सिर्फ उसी मेरे निर्गुण स्वरूप को भजते हैं। इसका प्रधान कारण यही है कि साधारण रूप से भक्तों में दो प्रकार के भक्त हैं, (१) कामना वाले, (२) बिना कामना वाले। किसी भी प्रकार की इच्छा रखने वाले भक्तों को तो मैं उनकी इच्छा पूर्ण कर उन्हें सन्तुष्ट कर देता हूँ। और बिना कामना (इच्छा) वाले भक्त तो मेरा ही दूसरा रूप हैं।

ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्

अर्थात् ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है अर्थात् मेरा स्वरूप ही है।

चतुर्बिधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन?!

आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभः''॥

अर्थात् हे अर्जुन! चार प्रकार के लोग मुझे भजते हैं। आर्त्त-जो संसार के प्रपंचों एवं व्यवहारों से अत्यन्त ही दुःखी हो चुके हैं। जिज्ञासु-जो कि मेरे स्वरूप को जानने मात्र की इच्छा रखता है। अर्थार्थी वह है जो धन आदि चाहता है। और चौथा तो बेचारा ज्ञानी है—जो मेरे निर्गुणरूप को ही भजता है। उस बेचारे को कुछ लेने देने की इच्छा नहीं रहती है।

इसलिये आचार्य श्री जी महाराज निर्गुण रूप के भक्त थे,

उन्हें किसी भी प्रकार की कामना अपने शरीर से नहीं थी। यदि उन्हें कामना थी भी तो यही थी कि इन बेचारे गरीबों का उद्धार किस प्रकार से हो। ये बेचारे अज्ञानरूपी अन्धकार में पड़े हुए हैं, इन्हें कुछ भी दीन दुनिया की खबर-सार नहीं है। अपने को एकदम भूले हुए हैं, इसलिये ये बेचारे ईश्वर से बहुत ही दूर हैं, तब ऐसी परिस्थिति में इन का कल्याण होना असंभव है। यही चिन्ता सन्तान रूप सें इनके अवतरण का वास्तविक कारण भी है।

ये जनहित चिन्तक सद्गुरु जी महाराज तो नारद जी की तरह के व्यक्ति थे। जिस प्रकार नारद जी को हमेशा संसार के गरीब एवं दुःखी प्राणियों का ध्यान रहता था।

नारद जी जब भी भगवान् के यहाँ जाते थे तो यही कहते थे कि

महाराज-

''मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः।

नानायोनि समुत्पन्नाः पच्यन्ते पाप कर्म भिः॥

केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम्।

इति संचिन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा॥

अर्थात् महर्षि नारद जिस समय भगवान् विष्णु के यहाँ जाते थे उस समय जाते ही उन्होंने भगवान् विष्णु से प्रश्न किया कि महाराज? इस मृत्युलोक के अन्दर नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न हुए प्रायः सभी प्राणी अपने-अपने पाप-कर्मों के कारण अनेक प्रकार के कष्ट पा रहे हैं, इनके कष्टों का विनाश जिस किसी भी उपाय से हो उस उपाय को आप बतलावें।

इस प्रकार महर्षि नारद दीन-दुःखी एवं गरीब प्राणियों का ध्यान रखते हुए भगवान् के दरबार में जाकर उन बेचारों की तरफ से पुकार किया करते थे और दीनदयालु एवं भक्तवत्सल भगवान् भी किसी न किसी रूप में अवश्य ही अवतरित हुआ करते थे। इसलिये उनके असंख्य अवतार माने गये हैं। जिस अवतार को वे प्राणियों के दुःख नाश का उपयोगी समझते हैं उसी स्वरूप को वे धारण कर लेते हैं।

भगवान् के अवतार का प्रयोजन है साधु महात्मा सज्जन पुरुषों आदि की रक्षा करना।

इस बात को भगवान् ने स्वयं अपने मुख से कहा है—

''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात् साधु-सज्जन-महात्माओं की रक्षा करने के लिये तथा पापीजनों को विनष्ट करने के लिये और धर्म की स्थिति को कायम रखने के लिये मैं प्रत्येक युग में अवतरित होता हूँ।

इसलिये सद्गुरु जी में अपनी भक्ति को स्थिर करके निश्चल मन के द्वारा उन्हीं का श्रवण-मनन-कीर्तन-ध्यान और पूजन आदि करना चाहिये। कहा भी है—

"श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा"।

इस प्रकार मनुष्य सांसारिक समस्त बन्धनो से छूट जाता है। कारण कि भगवान् स्वयं भक्तवत्सल होने से अपने भक्त के हृदय में हमेशा विराजमान रहते हैं। जिससे वे अपने भक्त की सम्पूर्ण सांसारिक वासनाओं को नष्ट कर देते हैं। वासनाओं के समाप्त होते ही काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर शत्रु तो अपने आप ही समाप्त हो जाते हैं। मन के संकल्प-विकल्प- संशय भ्रम प्रमादादि दोष स्वयं शान्त हो जाते हैं। आचार्य श्री स्वयं कहते हैं कि-

काम-क्रोध-लोभ-मोह शत्रु हैं तुम्हारे,
हर्ष शोक राग द्वेष पकर क्यों न मारे।

और ये ही सगुण ब्रह्म होकर परमात्मा अपनी माया शक्ति के द्वारा जगत् की रचना करते हैं, स्थिति काल में प्राणियों का पालन-पोषण करते हैं और आखिर में वे ही रुद्र रूप होकर इस चराचर विश्व का संहार भी करते हैं। यही सृष्टि-स्थिति और विनाश ये तीन प्रकार के ही तो उनके कर्म हैं।

भगवान् ने गीता में स्पष्ट कह दिया है कि–

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"

अर्थात् इस जीवलोक के अन्दर जितने भी जीव हैं वे सब मेरे ही अंश हैं चाहे वे पशु हों अथवा पक्षी एवं कीट-पतंग हों चाहे मनुष्य योनियों में उत्पन्न हों वे सब मेरे ही तो अंश हैं अतः मैं उनमें से किसी भी रूप को धारण कर अवतरित हो सकता हूँ। अब तक मैं जिन-जिन रूपों में अवतरित हुआ हूँ उन्हें सुनें–

(१) सनकादि अवतार, (२) वराहावतार, (३) नरनारायणावतार, (४) कपिलावतार, (५) नारदावतार, (६) यज्ञावतार, (७) दत्तात्रेयावतार, (८) ऋषभावतार, (९) मत्स्यावतार, (१०) कच्छपावतार, (११) पृथुअवतार, (१२) धन्वन्तरी अवतार, (१३) नृसिंहावतार, (१४) वामनावतार, (१५) मोहिनी अवतार, (१६) परशुरामावतार, (१७) रामावतार, (१८) व्यासावतार, (१९) श्रीकृष्णावतार, (२०) बुद्धावतार, (२१) हरि अवतार, (२२) हंसावतार,
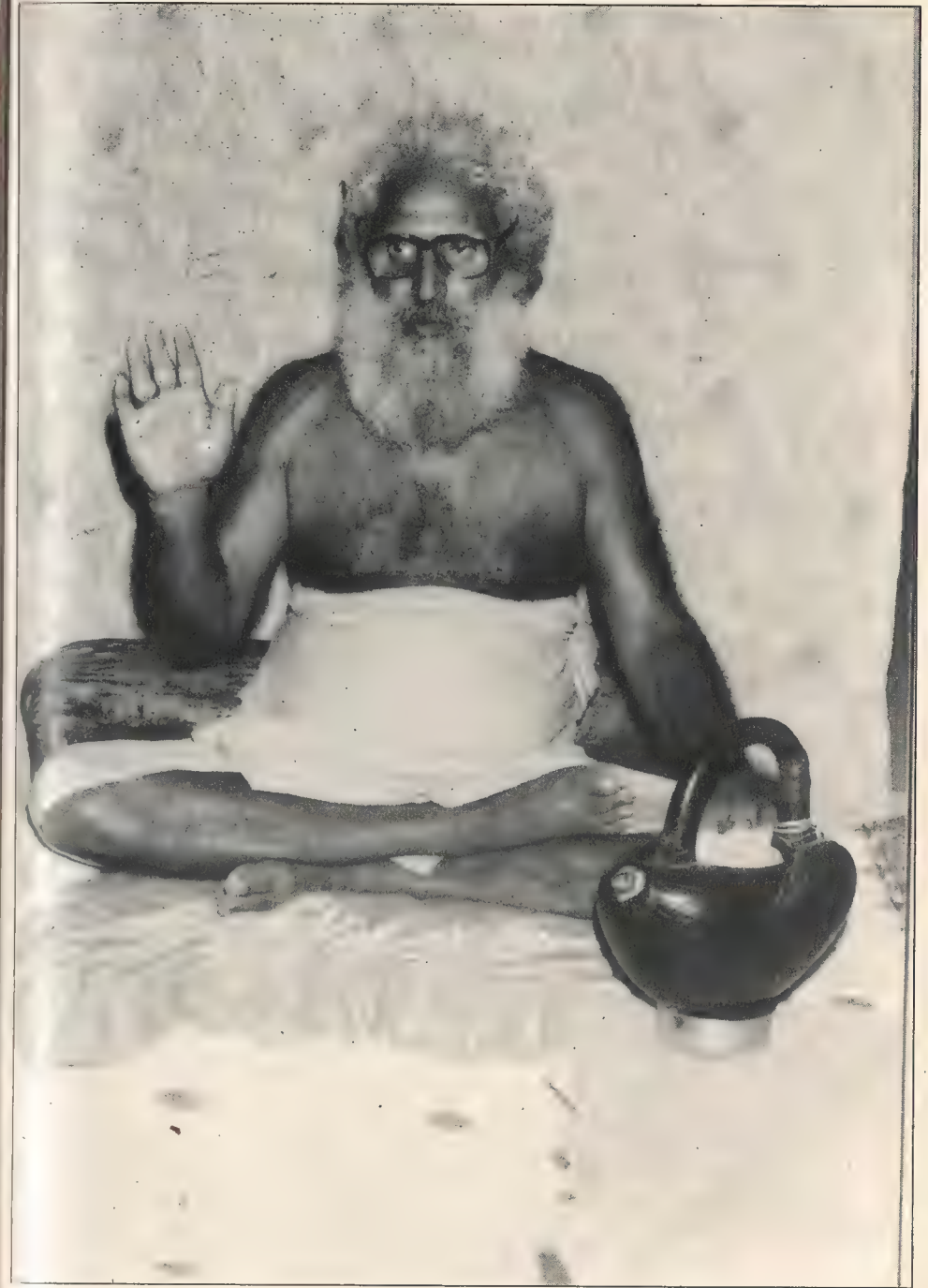
अवधूत महात्मा भक्त राम जी

(२३) कबीरावतार, (२४) गरीबावतार, (२५) गुरु नानकावतार आदि हुए है या निहकलंकी आगे होगें। के विषय में आचार्य श्री गरीबदास जी महाराज़ अपनी वाणी में लिखते हैं कि :

गरीब अनन्त कोटि अवतार हैं, नौ चितवैं बुधि नाश।

खालिक खेलै खलक में, छः ऋतु बारह मास॥

और अब रहा धर्म का प्रश्न कि धर्म किसकी शरण में गया, सो इसका उत्तर एक तो यही है भगवान् के अवतारों की शरण में धर्म चला जाता है। क्योंकि जब-जब भी दुष्टों और दानवों का आक्रमण धर्म के ऊपर हुआ है धर्म तुरन्त भगवान् की शरण चला गया और उसकी रक्षा तथा उसकी फिर स्थिति कायम रखने के लिये पारब्रह्म किसी न किसी रूप में अवतरित हुए और अवतरित होकर धर्म की तथा धर्म के आधारभूत साधु-महात्मा एवं गौ-ब्राह्मणों की रक्षा की।

कबीर रूप में दर्शन देने वाले उस निर्गुण-नित्य निरञ्जन पार ब्रह्म परमेश्वर ने कहा तथास्तु,। अर्थात् कबीर साहब ही तुम्हारे यहाँ प्रकट होंगे इतना कहकर ज्योंहिं वे चलने लगे। त्योंही उनकी धर्म-पत्नी (रामरति) ने जो कि पूर्व जन्म में भी आपके स्वरूप बलरामसिंह की ही धर्मपत्नी के रूप में थीं तथा उस समय इनकी सेवा में संलग्न थीं तुरन्त आकर उनके पैर पकड़ लिये, और उनकी स्तुति करना प्रारंभ कर दिया कि- हे गणनाथ! जगन्नाथ! अनाथों के नाथ! तथा मुझ अनन्यशरणैक नाथ! जगन्नियन्ता परम पिता पार ब्रह्म परमेश्वर मेरा भी कल्याण करो।

भक्तवत्सल भक्तानुकम्पी तथा भक्तों की पुकार के आधार पर उनका उद्धार एवं कल्याण करने वाले पतित पावन उस परम पिता परमेश्वर ने उसकी करुणा पूर्ण वाणी को सुनकर तुरन्त कहा कि तथास्तु, अर्थात् तुम ही इनकी अँग्रिम ज़न्म में धर्मपत्नी के रूप में होवोगी और तुम्हारे ही गर्भ से कबीर साहब गरीबदास के रूप में अवतरित होंगे।

कबीरो बाङ्गरे देशे लोकधर्म हिताय वै।

गरीबाचार्यरूपेणाऽतोऽयमाविर्भविष्यति॥१॥

कबीर जी स्वयं कह रहे हैं- इसके बारे यह कबीर केवल लोक तथा धर्म हित के निमित्त ही बांगर देश में गरीबाचार्य रूप से अवतीर्ण होंगे।

यथाभावं स्वभक्तानां भगवान् भक्तवत्सलः

फलं ददाति किं चित्रं तुष्टेऽनन्तेऽच्युतेगुरौ

श्री सतगुरु देव जी के खुश होने पर यदि भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तों को मनो वांच्छित फल दे देते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है॥५॥

धर्म की रक्षा करने वाले, कबीर साहब स्वयं पारब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप थे, अधर्म का नाश करने वाले दिव्य एवं अलौकिक लीला का प्रदर्शन करने वाले, साधारण पुरुषों की बुद्धि के द्वारा गम्य न होने वाले, भक्तों के संसय विपरीय मिथ्या ज्ञान एवं तर्क कुतर्क आदि का समूल उन्मूलन (नाश) करने वाले, भक्तों की करुणापूर्ण वाणी को सुनकर उनके लिये मनोवांछित फल के देने वाले, कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुम् सर्वथा समर्थ पार ब्रह्म परमेश्वर हैं।

हे अर्जुन! जब-जब भी धर्म की तरफ से ग्लानि और अधर्म की तरफ लोगों की प्रवृत्ति होने लगती है तब-तब मैं धर्म की रक्षा करने के लिये और अधर्म का विनाश करने के लिये प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में स्वयं अवतार लेता हूँ और तब फिर अवतरित होकर साधु महात्मा लोगों की तथा भक्तजनों की गौवों और ब्राह्मणों की रक्षा करता हूँ।

इसके अतिरिक्त जिस-जिस युग में जिस-जिस प्रकार के रूप की आवश्यकता होती है उस-उस युग के अन्दर अपने उसी-उसी रूप में प्रगट होता हूँ। जब नरसिंह रूप की आवश्यकता समझी तब उसी नरसिंह रूप में प्रगट हुआ। और जिस समय वराह और कच्छप रूप की आवश्यकता समझी उस समय वही रूप धारण किया। जिस समय कृष्ण-राम-परशुराम आदि रूपों की आवश्यकता समझी उस समय मैं उन्हीं रूपों में अवतरित हुआ। इसी प्रकार जब 'कबीर' रूप की उपयोगिता देखी तब मैं कबीर स्वामी के रूप में अवतरित हुआ।

इस प्रकार परमेश्वर ने अपने रूपों का वर्णन स्वयं किया कि सभी

रूप मेरे हैं, सद्गुरु जी कहते हैं कि- सभी रूप मेरे मनामनी तयागो घट-घट में बोलता मैं ही हूरे मैं जिन-जिन रूपों की आवश्यकता जिस-जिस समय समझता हूँ उस समय उन्हीं-उन्हीं रूपों में अवतरित होता हूँ।

इसलिये सद्गुरु श्री स्वामी कबीर साहब जी को अवतारी पुरुष मानने में किसी भी प्रकार की आपत्ति अथवा प्रमाण विरोध नहीं है। बल्कि उन्हें अवतारी पुरुष न मानने पर ही प्रमाण विरोध आते हैं। जैसा हम आगे भविष्य पुराण का भी शब्द प्रमाण उनके अवतारी होने में उपस्थित करेंगे।

भगवान् का एक यह नियम होता है कि वह अवतरित होने पर भी अपने स्वरूप को बराबर छिपाये रहते हैं जिससे कि उसे कोई पहिचान न पावे। यही कारण है कि माया हमेशा उनके साथ ही रहती है, माया की दो शक्तियाँ हैं आवरण और विक्षेप। आवरणशक्ति वस्तु के स्वरूप मात्र का आच्छादन करती है (उसे ढकती है) और विक्षेपशक्ति उस आच्छादित हुए स्वरूप के अन्दर किसी दूसरे स्वरूप का प्रकाश कर देती है। जिस प्रकार बहुत बड़ा मेघों का समुदाय अनेक योजन में विस्तृत हुए सूर्य के स्वरूप को ढक लेता है यह आवरण शक्ति का ही कार्य है और विक्षेपशक्ति जैसे रस्सी के ढके स्वरूप के अन्दर सर्प के ज्ञान को उत्पन्न कर देती है जैसे "अयं सर्पः" रस्सी में—यह सर्प है ऐसा ज्ञान होना।

इसी प्रकार यह भगवान् भी त्रिगुणात्मिक माना गया है। भगवान् के भक्तों से अतिरिक्त व्यक्तियों को भगवान् के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। यही कारण है कि तारा ने कितना बाली को समझाया एवं मन्दोदरी ने रावण को समझाया परन्तु फिर भी वे लोग भगवान् रामचन्द्र के स्वरूप को न पहिचान सके।

इसी प्रकार श्री कबीर साहब भी उसी पारब्रह्म परमेश्वर के अवतार थे क्योंकि पहिले कहे हुए समस्त गुण एवं धर्म इनमें थे अतः ये भी पार ब्रह्म परमेश्वर के ही अवतार थे। इनको हर एक व्यक्ति जो अवतारी पुरुष नहीं समझ पाया उसका कारण यही था जो मैं पहिले कह चुका हूँ।

श्री कबीर साहब को योगी कहने का भी साहस किसी को नहीं

रखना चाहिये कारण कि योगी लोगों को जो सिद्धियाँ प्राप्त होतीं हैं वे योग-साधना के आधार पर प्राप्त होतीं हैं अपने आप नहीं किन्तु श्री कबीर साहब के अन्दर जो सिद्धियाँ थी वे उन्हें स्वतः प्राप्त थीं। यही एकमात्र कारण था कि विद्वानों ने साधु-महात्माओं ने उन्हें स्वयंसिद्ध के रूप में माना था। क्योंकि जिस समय श्री कबीर साहब अपनी बाल्य अवस्था में थे उसी समय से उनमें अलौकिक एवं अद्भुत शक्तियाँ तथा सिद्धियाँ देखी गयीं थीं। इसलिए हम यह दावे के साथ कह सकते हैं कि महाराज जी युक्त योगी थे। क्योंकि आपकी वाणियों से मालूम पड़ता है कि इन्हें भूत-भविष्यत्-वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान था। तीनों कालों का ज्ञान युक्तयोगी को ही हो सकता है। अन्य को त्रिकालदर्शी होने का प्रमाण नहीं मिलता है।

"युक्तस्य सर्वदा भानं चिन्ता सहकृतोऽपरः"

भगवान् पतञ्जली ने बताया कि युक्त योगी को इस चराचर समस्त विश्व का सर्वदा भान होता रहता है और दूसरे युञ्जान योगी को योग बल के आधार पर विचार करने से होता है, यही दोनों में अन्तर है।

इतना ही नहीं भविष्य पुराण के अन्दर उल्लेख किये गए शब्द प्रमाण के आधार पर भी यही मालूम होता है कि श्री कबीर साहब अवतारी पुरुष होने के कारण साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर थे। कारण कि "अवतार शब्द का प्रयोग उन्हीं पार ब्रह्म परमेश्वर के लिए ही सर्वत्र देखने में आता है। इसलिए भविष्यपुराण में कहा है कि–

भारते यंवनाक्रान्ते निर्देष्टुं सत्पथं नृणाम्।
हरिः कबीर नाम्ना हि कलाव तरिष्यति॥
बन्धनाज्जाति भेदादेरुन्मोक्तुं नृन् कलौ किल।
वक्तुं तत्त्वं कबीरः सन् पद्मे प्रादुर्भविष्याति॥१॥

अर्थात् कलियुग के अन्दर जिस समय यह भारतवर्ष मुसलमानों से आक्रान्त हो जायेगा उस समय मनुष्यों को सन्मार्ग का निर्देश करने के लिए साक्षात् हरि भगवान् ही कबीर नाम से कमलपत्र के अन्दर अवतरित

होंगे। और तब कबीर साहब के रूप में अवतरित होकर वे जाति-वर्ण आश्रम आदि के भेद को समाप्त करने के लिए उस परम तत्त्व चेतन आत्म तत्त्व का उपदेश करेंगे।

कलौ निर्गुणब्रह्मैव कबीर दासना मतः।
अवतारन्निर्गुणस्य मार्गस्य दर्शकः॥२॥

कलियुग में निर्गुण ब्रह्म ने ही अपने परम धाम का मार्ग दिखाने वाले कबीर नाम से अवतार धारण किया।

गुणातीतं निराकारं निर्विकारं परात्परम्।
रामं भजे कबीरो सौ नो दाशरथ रूपकम्॥३॥

श्री कबीर जी ने गुणातीत निराकार निर्विकार परमपरमेश्वर श्री राम का भजन किया था। किन्तु उन्होंने दशरथ पुत्र राम का भजन कभी नहीं किया।

निर्गुणं ब्रह्मपरमं स्वभक्ताऽभीष्ट सिद्धये।
अवातरति लोकेऽस्मिन् यथा कालं युगे-युगे॥४॥

निर्गुण ब्रह्म ही अपने भक्तों की इष्ट सिद्धि के लिए देश और काल के अनुसार प्रत्येक युग में अवतार धारण करके इस लोक में आते हैं।

जब श्री कबीर साहेब जी को काशी रहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया तथा शिष्य भी बहुत बन चुके थे गोसांईं श्री गरीब दास जी ने तो आपके शिष्यों की संख्या ६४ लाख दी है। अपने शिष्यों की सद्गुरु कबीर जीने परीक्षा लेने का विचार करके सब शिष्यों को एकत्रित किया और कहा कि आज हम काशी पुरी के बाजारों में एक जुलूस के रूप में हाथी पर बैठकर निकलेंगे। आज सब लोग साथ चलें। आपने इस प्रकार एक विचित्र लीला रची जिसका वर्णन श्री गरीबदासाचार्य जी ने किया है तथा स्वामी नारायण दास जी ने भी कुछ दोहे और सवैये कहे हैं।

दोहा- गंगा जल बोतल भरि, लड़की लई मंझार।
हस्ती पर बैठे दोऊ, गावैं मंगल चार॥१॥

(स्वामी नारायण दास)

साखी- गावत बैन बिलास पद, गंगा जल पीवंत।
गरीब दास विह्वल भये, मतवाले घूमंत॥२॥
तारी बाजि पुरि में, भ्रष्ट जुल्हदी नीच।
गरीब दास गणिका सजि, दो सन्तों के बीच॥३॥
— (वाणी)

ऐसा कहकर श्री कबीर जी ने अपने साथ रविदास जी को हाथी पर बैठाया तथा एक रूपवती युवती वेश्या को भी दोनों ने बीच में बिठा लिया और गंगा जल की एक बोतल हाथ में ली। हाथी पर बैठ कर चलते-चलते उसे अपने मुँह में लगाकर जल पीनेलगे। जल रंगीन था इसलिये लोग समझते थे कि कबीर वेश्या के साथ हाथी पर बैठ कर शराब पी रहा है। तथा कबीर जी शराबी की तरह मस्त होकर गाने लगे। ऐसा देखकर सब लोगों ने कबीर जी भ्रष्ट हो गया हैं ऐसा कहते हुए तालियाँ बजाकर उन दोनों सन्तों की हँसी की, एवं उनको नीच तथा यह भ्रष्ट हो गये हैं। ऐसा समझा।

साखी—भड़वा-भड़वा सब कहें, कोई न जाने खोज।
गरीबदास कबीर कर्म, बांटत सिर का बोझ॥१॥
— (वाणी)

वेश्या के संग कबीर को देखकर सब उन्हें भड़वा आदि शब्दों से गालियाँ देने लगे। परन्तु कबीर के वास्तविक मर्म को किसी ने नहीं समझा। गरीबदास जी कहते हैं कि कबीर जी तो अपनी निन्दा करवा कर अपने पापों को बांटते हैं और शिष्यों की परीक्षा करना चाहते थे। तब लोग परस्पर ऐसे कहने लगे—

साखी—देखो गनका संग लई कहते कौम छत्तीस।
गरीबदास इस जुलहदी का दर्शन आन हदीस॥

कबीर अब भ्रष्ट हो गया है। उनका दर्शन करना भी पाप है। क्योंकि साथ में गनिका को लिये घूम रहे हैं इस प्रकार सभी वर्णों के लोग उन से विमुख हो गये।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी कृत

सद्गुरु अवतार लीला पुस्तक से

सवैया— संग लिये रैदास हरिजन हौदे जु बैठे बाजार सिधारे।
बोतल नीर कबीर पिलावत बिहवल रूप भये मतवारे॥
ढोलक ताल मृदंग बजावत काशी के लोग निहारत सारे।
चित्त भंग भयो तिनका क्षण भीतर आपस में यह शब्द उचारे॥१॥

और सबका चित कबीर जी की तरफ से हट गया।

दोहा— घर घर निन्दा होत है, बोले बचन कठोर।
सब उपदेशी फिर गये, मचा शहर में शोर॥१॥
(स्वामी ब्रह्मानन्द)

कबीर जी की उपरोक्त विचित्र लीला देखकर काशी भर के लोग उनकी निन्दा करने लगे। एवं उनके प्रति अपशब्द कहने लगे तथा सभी नाम उपदेशी शिष्य भी कबीर जी का साथ छोड़ गये।

सवैया— मान रहे जिनको सिद्ध साधक मान रहे जिनको मतिधीरा।
भ्रष्ट भये दोऊ देखिये जाकर काम किलोल में लम्पट कीरा॥
मारो ही मार पुकार करें सब देन लगे चहुं ओर सैं पीरा।
जाति कुजाति से भक्ति न होवत डूब गये रैदास कबीरा॥१॥
(स्वामी ब्र. न.)

और सभी लोग कहने लगे कि जिन्हें सभी साधक लोग सिद्ध तथा बड़े ज्ञानी मानते थे। वे ही दोनों पदच्युत (अपने पद से गिर गए हैं) हो गये हैं। अर्थात् पतित होकर काम वासना में फँस गये हैं। इसलिए उन्हें सब लोग बुरा-बुरा कहते हुए मारने तक तैयार हैं। तथा सभी उन्हें कष्ट देने लगे और कहने लगे कि नीच जाति का मनुष्य नीच ही होता है। वह भक्ति आदि उत्तम कर्म नहीं कर सकता।

दोहा— शिष्य समुच्चे फिर गये, दोय रहे रणधीर।
अर्जुन सुर्जना न डिगे, पूरे मति के धीर॥१॥
सद्गुरु शरना छोड़ कर, उलट परे भव माहिं।
डिग मतिया भरमत फिरें तिन्हें ठिकाना नाहिं॥२॥
(स्वामी. ब्र. न.)

सभी शिष्यों के विमुख हो जाने पर भी अर्जुन सुर्जन नाम के दो शिष्य परीक्षा में सफल होकर उनके पास में रह गये।

जो सत्गुरु की शरण छोड़ कर सांसारिक उपभोगों में आसक्त हो जाते हैं। वे सदा ही जन्म मरण के चक्र में भटकते रहते हैं।

इस प्रकार घूमते-घूमते कबीर जी एक चण्डाली के आँगन में जाकर बैठे। जिसे श्री गरीबाचार्य इस प्रकार कहते हैं—

साखी— गरीब चण्डाली के चौंक में, सतगुरु बैठे जाय।
चौसठ लाख गारत गए, दो रहे सत्गुरु पाये॥
गरीब सुर्जन अर्जुन ठाहिरे, सत्गुरु की प्रतीत।
सत्गुरु इहाँ न बैठिये, यह द्वारा है नीच॥२॥

६४ लाख शिष्यों के पतित हो जाने पर केवल दो ही सुर्जन अर्जुन आप के पास में रह गये। क्योंकि उनका आपके चरणों में अत्यन्त विश्वास था। चण्डाली के चौक में बैठने के कारण इतनी ग्लानी उन दोनों के मन में भी आ गई। वे बोले हे सतगुरु जी यह तो नीचों का घर है। आप यहाँ न बैठें। ऐसा सुन कर श्री कबीर साहिब ने उन से कहा कि- तुम्हारे दोनों के मन में ग्लानि पैदा हो गई है। इसलिये अब तुम्हें हमारे दर्शन नहीं प्राप्त होंगे। क्योंकि हम तो आत्मरूप से सर्वत्र व्यापक हैं अथवा—

साखी—गरीब ऊंचनीच में हम रहैं, हाड़ चाम की देह।
सुरजन अर्जुन समझियो, रखियो शब्द स्नेह॥३॥

श्री गरीबदास जी कहते हैं कि कबीर जी ने उनसे कहा कि हम तो आत्मरूप से सर्वव्यापक हैं। आत्मा में तो ऊंच-नीच पना है ही नहीं क्योंकि ऊंच-नीच शरीर के धर्म हैं और शरीर हाड़ चाम आदि का बना है। इसलिये तुम दोनों शब्द स्वरूप पार ब्रह्म परमेश्वर में प्रीति रखो। तथा शुद्ध स्वरूप विज्ञानात्मा निराकार निर्बन्ध ईश्वर में प्रीति रखने से ही प्राणियों का कल्याण हो सकता है। इसलिये तुम भी उसी ईश्वर में प्रीति रखो। श्री सत्गुरु कबीर जी के वचन सुनकर उनसे विमुख हुए शिष्यों के विषय में पूछा—

प्रश्न— दोहा— अर्जुन सुर्जन बूझहिं, चरण नवावैं शीश।
भेष लिये उल्टे फिरे, कब होंगे बकशीश॥४॥
(स्वामी नारायण दास)

चरणों में शीश झुकाकर बोले- कि हे गुरुदेव आप तरन तारण एवं पतितों का उद्धार करने वाले हैं। जो आपके शिष्य आप से विमुख होकर चले गये हैं उनका उद्धार कब होगा॥५॥ क्योंकि

प्रश्न— स.- सद्गुरु नाम की ओट लई, जिन जात गिने सब सद्गुरु अंसा।
उलट परे भव भीतर जो नर, कुतर्क रूप भई जिन मंनसा॥
नाम को अंकुर बीज रह्यो उर, पार कहो कब होवेंगे हंसा।
हे करुणा निधि जगत् उजागर, रूप धरो कहाँ मेटियो संसा॥

उत्तर— जो शरणागत आन भये नर, आये लियो हमरा परवाना।
पार करैं भव सागर से हम, साच कह्यो यह शब्द अमाना॥
हंस उधारण के हित मारत हैं, चित्त ठोक निशाना।
शरण गहे की जो लाज न राखत, लाजत हमरा ही विरद रुवाना॥६॥
(स्वामी नारायण दास)

प्रश्न— सत्गुरु नाम की जिन्होंने ओट ली है। वे तो आपका ही अंश हैं। तो भी उनकी बुद्धि में कुतर्क रूपी दोष आने से तथा आपसे विमुख होकर संसार चक्र में फंस गये तो भी उनके हृदय में आपके दिये हुए नाम

उपदेश रूपी बीज का अंकुर तो रहेगा ही। सो आप कृपा करके बताएं कि उनका उद्धार कब होगा। हे दया के सागर आप का यश संसार में सूर्य की तरह जगमगा रहा है। सो बतायें उनका कल्याण करने के लिये आप कहां अवतार धारण करेंगे। तथा उस समय आप का क्या नाम होगा। यह बताकर हमारे मन का संसय दूर करो। तब कबीर जी बोले–

उत्तर– हे अर्जुन सुर्जन जो जन हमारी शरण में एक बार भी आ गया है। तथा जिसने हमारा नाम उपदेश रूपी परवाना लिया है। हम उसे अवश्य भवपार करेंगे। चाहे वे कितने ही पापी या अपराधी क्यों न हों। यह हमारी सत्य प्रतिज्ञा है। और नाम उपदेशी (जिसे नाम उपदेश दिया गया है) हंसों का कल्याण करने के लिये, तथा हंसों को भव सागर से पार करने के लिये हम उनके हृदयों में उपदेश रूपी बाण का ऐसा निशाना मारते हैं कि वे संसार के बंधनों से छूटकर परम धाम मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं, क्योंकि यदि हम शरण आये की लाज न रखें तो हमारी प्रतिज्ञा झूठी हो जाएगी एवं हमारे भेष को लाज लगेगी। इसलिये हम उन सब प्राणियों का कल्याण अवश्य ही करेंगे।।६।।

दोहा– हंस उधारण कारणे मृत्यु लोक में बास।
हंस हमारे मोद कर बांगर देश निवास।।७।।

(स्वामी नारायण दास)

क्योंकि हम तो जीवों का उद्धार करने के निमित्त ही इस मृत्यु लोक में अवतार धारण करके आते हैं। इसलिये विषय वासनाओं के बस होकर हमारे हंस (जीव) कहीं भी चले जायें। हम वहीं जाकर उनका कल्याण करते हैं। अब हम बांगर देश में जायेंगे। और वहाँ पर गये हुए सभी भक्तों का कल्याण करेंगे।।७।।

साखी–बांगर देश कलेश निरन्तर हंस गये वहाँ निश्चय ही जानी।
दिल्ली को मंडल मंगल दायक रूप धरैं श्री धाम छुड़ानी।।
मुक्ति का द्वार खुलै वहाँ जाकर हंस हमारे जहाँ लाड़ लड़ानी।
दास गरीब तबीब अनुपम भक्ति अरु मुक्ति की देन निसानी।।

दास गरीब को रूप धरैं हम सन्तन काज न लाज करैं हैं।
हंस उधारण कारण के हित देश वलायत आप फिरैं हैं।।८।।

(स्वामी नारायण दास)

देहली के पास हरियाणा प्रान्त है। जहाँ कि हमारे अनेक सेवक जायेंगे। वह देश ऐसा है कि वहाँ अनेक दुःख हैं। हम उस हरियाणा प्रान्त में शरीर धारण करेंगे, जिससे वह देश मङ्गलमय हो जायेगा।

और उस छुड़ानी धाम में मुक्ति का दरवाजा सदा के लिये खोलेंगे जहाँ पर हमारे हंस ज्ञानमयक्रीड़ा करेंगे। स्वा. नारायण दास जी कहते हैं कि महाराज कबीर जी श्री गरीबदास जी का दिव्य रूप धारण करके भक्ति और मुक्ति का मार्ग दिखाने के लिये आये।

इस प्रकार कबीर जी कहते हैं कि हम गरीबदास का रूप धारण करके अपने हंसो (जीवों) का उद्धार करेंगे। इसमें हमें कोई लज्जा नहीं। जिस किसी भी देश में हमारे हंस होते हैं। हम वहीं जाकर उनका उद्धार करते हैं।।८।।

काशी के बिछड़ों की मुक्ति करैं हम, बांगर में चल रूप धरैं हैं।
हो शरणा गति उलट पड़े नर मुक्ति जहाज खुलास भरैं हैं।।१।।

दोहा– काशी के बिछड़े जिते बांगर देश निवास।
मोक्ष पदी उनको मिले, सुनियों, अर्जुनदास।।२।।

(स्वामी नारायण दास)

काशी से बिछुड़कर जो हंस बांगर देश में जायेंगे उनकी मुक्ति करने के लिए हम वहीं रूप धारण करेंगे। जो जीव शरणागत आकर फिर संसार चक्र में पड़ गये हैं। उनको हम निःसन्देह पार करेंगे।

बाबा जैतराम जी (जो कि महाराज जी के बड़े सुपुत्र) उन्होंने भी अपनी वाणी में इस बात की पुष्टि की है।

धन-धन जै जगदीश गुसांई गरीब कबीर औतारा।
हंस उधारण या जग आये ज्ञान खड़ग प्रहारा।।३।।

शील संतोष विवेक डिढायो भक्ति बंदगी दाना।
समता दया क्षमा दिल देवो करहो हंस अमाना॥४॥
नगर अमान तुम्हार है अमर पुरी अस्थान।
दास गरीब कबीर हैं, कबीर गरीबं जान॥५॥
गरीब कबीर भेद नहीं दूजा, जैतराम नितकीजै पूजा॥

ब्रह्मानन्द जी भी इसी प्रकार कथन करते हैं–

कबीर कला सैं उतरे, सो हरितन है जान।
गरीबदास तन धार कर, करत लोक कल्याण॥७॥
कबीर कला सैं ऊतरे, गरीबदास जिंहि नाम।
हंसन तारन कारणे, ता पद मम प्रणाम्॥८॥

इसी प्रकार से श्री कबीर जी ही गरीबदास का रूप धारण कर छुड़ानी में आये। अवतारी पुरुषों का जो शरीर होता है वह अन्य जीवों की भाँति पञ्चभौतिक नहीं होता। शुद्ध माया करके रचित होता है। यदि पञ्चभौतिक हो तो रस्सी आदि के बन्धन में आना चाहिए परन्तु वह आता नहीं जैसे-जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण जी की माता यशोदा उनको बांधने लगी तो भगवान् का शरीर बन्धन में नहीं आया उसी प्रकार श्री गरीबदास जी महाराज का शरीर भी बन्धन में नहीं आया जिसका उल्लेख आगे होगा।

प्रमाण– सो तन कैसा जानिये, भूतन का नहीं काज।
मात पिता नहीं तास के, दीखत का सब साज॥९॥

शंका– जो तन दीखत जगत् में, मात पिता बिन नाहिं।
बीज बिना ज्यों वृक्ष नहीं, दीखै जग के माहिं॥१०॥

उत्तर– वृक्ष होत बिन बीज के कहता हूँ निर्धार।
बाजीगर के आम को देखें लोग हजार॥११॥
बाजीगर के आम ज्यों सद्गुरु धार्‌यो गात।
मात-गर्भ से ना भये, ना पुनिता का पात॥१२॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

शंका वादी शंका करता है कि–

जो भी शरीर देखने में आते हैं वे सब पांच तत्त्व से रचित ही होते हैं और माता-पिता के रज-वीर्य से होते हैं–जैसे बीज के बिना वृक्ष नहीं हो सकता ऐसे ही माता-पिता के बिना भी कोई शरीर नहीं हो सकता। इसके उत्तर में स्वा. ब्रह्मानन्द जी कथन करते हैं कि जैसे बाजीगर लोगों के देखते-देखते बिना बीज के आम आदि अनेक फल-युक्त वृक्ष उत्पन्न कर देता है इसी प्रकार माता-पिता के बिना ही ईश्वर अपनी इच्छा का आश्रय लेकर अनेक शरीर धारण कर लेता है। आचार्यवर अपनी अमृत वाणी में स्वयं कथन करते हैं–

साखी–गरीब न सद्गुरु जननी जन्या, जाके माये न बाप।
पञ्च तत्त से रहित है, न वहाँ तीनों ताप॥१३॥
हँसन तारण कारणे, ईश्वर धरे शरीर।
कहीं राम कहीं कृष्ण हैं, कित पुनि भयो कबीर॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

गरीब ऐसा सत्गुरु हम मिल्या, महिमा कही न जाय।
शब्द स्वरूपी रूप है, घट घट रह्यो समाय॥

(स्वामी जैतराम जी)

वह पारब्रह्म परमेश्वर अपने भक्तों के लिये अनेक रूपों को धारण करते हैं। ईश्वर सत् संकल्प होता है वह अपनी इच्छा से जितने शरीर चाहे धारण कर ले। परमात्मा का जन्म नहीं होता। उनका प्रादुर्भाव (प्रकट) होता है। पांच भूतों तथा माता-पिता के रज-बीर्य से उनका शरीर नहीं होता है। न उनमें तीन गुण (सतोगुण रजोगुण-तमोगुण) और नाहीं तीन ताप (अध्यात्म-अद्धिभूत-अधिदैव) होते हैं।

अध्यात्मताप उसे कहते हैं जो कि शरीर को क्षुधा-पिपासा-सर्दी-गर्मी या बुखार आदि से दुःख दे, आधिदैव–देवताओं द्वारा जो कष्ट हो जैसे वर्षा का अधिक होना या समय पर वर्षा न होना इत्यादि। अधिभूत-चोर-व्याघ्र सर्प आदि करके जो दुःख हो।

पूर्व महापुरुषों के कथनानुसार जब माता रानी को छः मास का गर्भ था उस समय माता 'रानी' जल भरने के लिए कुएँ पर जा रहीं थीं तो मार्ग में दो सन्त जा रहे थे उन्होंने माता जी की ओर देखा और देख कर चरणों में प्रणाम किया और परिक्रमा की। इस बात की पुष्टि स्वा. नारायणदास जी करते हैं–

दोहा– **रानी के पैरों पड़े, स्तुति करी सुनाय।**
परिक्रमा देते दोऊ, हर्ष-हर्ष गुणगाये॥१६॥

तब माता जी आश्चर्य में पड़ गई और घबराई कि यह महात्मा हम गृहस्थियों को ऐसा दोष क्यों चढ़ाते हैं। इस बात की मन में बहुत चिन्ता हुई। फिर धैर्य धारण कर बोलीं–

दोहा– **रानी बोली धीर धर, सुनो सन्त प्रवीन।**
मुझको दोष चढ़ावते परिक्रमा क्यों दीन॥१७॥

इस बात को सुनकर महात्मा हँसने लगे की माता का कितना भोला स्वभाव है। और कहने लगे–

दोहा– **सन्त दयालु बोलते, बेटी दोष न तोहि।**
सद्गुरु तुम्हारी देह में, अधिक उजाला होय॥१८॥

क्योंकि महात्मा जन दिव्य दृष्टि होते हैं। वे अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा आगे पीछे की सब वार्ता को देख लेते हैं–जैसे महाराज जी अपनी वाणी में कहते हैं।

साखी–गरीब दिव्य दृष्टि देवा दयाल, सद्गुरु सन्त सुजान।
त्रिलोकी के जीव कूं, परख लेत परवान॥१९॥

दोहा– **हंस उधार्ण कारणे, आये दास गरीब।**
चोले धरै अनेक विधि, बन्दी छोड़ कबीर॥२०॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

इस प्रकार माता से सन्तों ने कहा कि माता जी हमने तो अपने सद्गुरु जी को ही शीश झुकाया है आप अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता न करें। तत् पश्चात् सन्त सद्गुरु जी की स्तुति करने लगे। जैसे

कहा भी है-

संस्तुता साधुभी राणी ह्यवतारेति बोधिता।
सुषुवे द्वादशे बालं स्तुत्यं साधु प्रसादतः॥२१॥

विवाहानन्तर बारवें वर्ष में किसी सिद्ध महात्मा के आशीर्वाद से ज्ञात नवगर्भा माता राणी को पानी को जाते समय रास्ते में दो साधुओं ने नमस्कार करके परिक्रमा की और स्तुति करने लगे। उनके कारण पूछे जाने पर "मैया आपकी देह में हमारे गुरुदेव जी का तेज प्रत्यक्ष हो रहा है" ऐसा कह कर चल दिए, इधर अवधि पूर्ण होते ही माता राणी जी ने भी सर्वत्तः प्रशंसनीय ऐसे दिव्य बालक को जन्म दिया।

दोऊ कर जोर कर विनय करि शीश धर।
धन-धन लीला थारी, गर्भ में समाधि हो।
धन रानी बलराम सिध भयो सब काम।
पायो निज परम धाम, ब्रह्म ज्ञान वादी हो।
छोटी सी छुड़ानी जानी जाये दूर-दूर तक।
नूर जो जहूर बिच गैंस पीर हादि हो।
ज्ञान के भण्डारी भारी कैसे महमा कहूँ थारी।
कही नहीं जाये सारी-आदि तो अनादि हो॥

(स्वामी नारायण दास)

दोनों हाथ जोड़ करके अनन्य विनय भाव से सन्तों ने श्री गरीबदासाचार्य की स्तुति की और कहने लगे कि हे सद्गुरु देव जी आप की महिमा अपार है–आपकी महिमा का कोई पार नहीं पा सकता क्योंकि आप अनेक रूपों को धारण करके जीवों का उद्धार करते रहते हैं। जहाँ आप का अवतार होता है, वहाँ की भूमि, वहाँ के निवासी धन्यता के योग्य होते हैं। आपके कल्पित जो माता पिता होते हैं वह भी धन्य हैं। आपके यहाँ आने से माता रानी व पिता बलराम के मनोरथ सफल हुये और आपके हंसों के कार्य सिद्ध हुये और जो जीव आपकी शरण में आते हैं। वे सब आपके परमधाम (मोक्ष) को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि आप ब्रह्मज्ञान का

उपदेश देने वाले हैं। यह "छुड़ानी" गाँव अति छोटा सा होते हुये भी आपके अवतार धारण के कारण दूर-दूर तक विख्यात होगा। क्योंकि आप प्रत्यक्ष तेजोमय शरीर को धारण करके (जो कि गुरुओं के भी गुरु हो) ज्ञान का भंडार खोलेंगे। आप अनादि अनन्त पारब्रह्म परमेश्वर हो आपकी महिमा को पूर्णरूप से कोई प्राणी नहीं कह सकता है।

यह महापुरुष कबीर सम्प्रदाय के अवलम्बी थे। इसलिये इन्होंने कबीर साहब का ही यहाँ आना देखकर उनकी स्तुति की और माता से इस प्रकार बोले।

दोहा— बेटी मत संकोच कर, तुझे दोष नहिं काहि।
सद्गुरु के हम दास हैं, करे बंड़ाई ताहि॥२१॥

सवैया— सद्गुरु हेत प्रणाम करि हम शीष धर्‌यो तिनके पग मांहि।
प्रगट रूप अनूप मनोहर केलि करे तुम्हरे गृह माहिं॥
देश हरियानें के भाग खुले अब मण्डल तारन आये गुसांईं।
धन धन मात पिता उनके हम बारं बारं नमों तुम तांहीं॥

इस प्रकार सन्तों ने सद्गुरु की स्तुति की कि वह देश आदि सभी धन्यता के योग्य हैं जहाँ कि महापुरुषों का अवतार होता है। इसी बात को महाराज जी स्वयं अपनी वाणी में कथन करते हैं—

साखी—गरीब धन जननी धन भूमि धन धन नगरी धन देश।
धन करनी धन कुल धन जहाँ साधु प्रवेश॥२२॥

इसी बात को धर्मशास्त्र भी सिद्ध करता है।

श्लोक—कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन
अपार सम्वित् सुख सागरे यस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणियस्य चेताः।

इस प्रकार माता से कहते हुये बोले कि आप किसी प्रकार से संकोच मत करें हम तो उन महापुरुषों को ही प्रणाम करते हैं।

सन्तों के वचन को सुनकर माता जी संकोच को प्राप्त हुई

दोहा— सहम गई शर्माय के मुख नहीं आवत बात।
हाथ जोड़ सिर टेकती रुंम रुंम हर्षात्॥२३॥

सवैया— चितवत है मुखबात सुनि जब रानी को आनंद होता घनेरा।
गद्-गद् कण्ठ से बोल उचारत आज कियो मम भाग बडेरा।
बोल फुरो तुमरो सत ही सत संतन वाक सदा ही उचेरा।
दास नरायण रानी उचारत शीतल रूप भयो मन मेरा॥२४॥

जब माता ने उपर्युक्त सन्तों के मुख से वचन सुने कि सद्गुरु जी आपके घर प्रकट होंगे तो वे कुछ लजा गई स्त्री जाति होने के कारण कण्ठ रुक गया मुख से बात नहीं निकलती और सम्पूर्ण अंग प्रफुल्लित हो रहे हैं और आनन्द से भरकर संतों के मुख की ओर एकटक देखने लगी और गद् गद् कण्ठ से वचन उच्चारण किया कि—आज आपने मेरा बहुत बड़ा भाग्य बना दिया है। आपके ये वचन सत्य ही सिद्धि हों क्योंकि सन्तों के वचन बहुत उच्चकोटि के हुआ करते हैं।

स्वामी नारायण दास जी कहते हैं कि माता 'रानी' ने कहा कि आज मेरा मन अत्यन्त शीतल हो गया। ऐसा कहकर माता जी सन्तों को दण्डवत् प्रणाम करती हुई बोली और आग्रह किया कि आप हमारे घर में चरण धरें और हमारा घर पवित्र करें। परन्तु उन सन्तों ने माता से कहा कि हम तो शब्द अहारी हैं अन्न का आहार नहीं करते और इस प्रकार बोले कि हम फिर आयेंगे।

दोहा— दर्शन कर हैं आपका, जब होवै प्रकाश।
सद्गुरु की कृपा भली हम हैं उनके दास॥२५॥

(स्वामी नारायण दास)

तब माता जी नू पूछा कि मुझे कैसे विश्वास हो कि मेरे घर में पारब्रह्म परमेश्वर स्वयं ही प्रकट होंगे। तब सन्तों ने कहा कि जब उनके प्रकट होने का समय आयेगा तो अत्यन्त ही अनेक सूर्यो का प्रकाश होगा। और आपको प्रसूत पीड़ा आदि कुछ नहीं होगी। आपको बालकरूप में उस समय खेलते हुये ही दीख पड़ेंगे। इस प्रकार कह कर सन्त उसी समय अन्तर्ध्यान हो गये। तब रानी जी मन में विचार करती हुई और अति प्रसन्नता सहित घर को चलीं गईं।

दोहा– रानी ने घर जायकर कह्यो सकल वृतान्त।
गद् गद् वाणी प्रेम भर-दिल की मिटी भ्रान्त॥२६॥
माता-पिता आनन्द भये धन हमरे बड़ भाग।
नूतन मंगल होंहि नित-दिये दरिद्र त्याग॥२७॥

जिस समय माता जी घर गईं उनके चेहरे पर अति प्रसन्नता चमक रही थी। यह देखकर माता पिता ने पूछा कि बेटी क्या कारण है। आज तुम्हें क्या अलौकिक वस्तु प्राप्त हो गई जिसके प्राप्त होने पर तुम इतनी प्रसन्न हो, ऐसी प्रसन्नता पहले कभी नहीं देखी गयी। यह सुनकर रानी ने सब वृतांत विस्तार पूर्वक सुना दिया तो माता पिता सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और अनेक प्रकार मंगल कार्य यज्ञदान आदि करने लगे और घर में नई-नई विभूतियाँ प्राप्त होने लगीं, मंगल सूचक लक्षण (शगुन) होने लगे। इसी प्रकार बहुत आनन्द के साथ दिन व्यतीत होने लगे। आनन्द क्यों न हो जहाँ कि साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर ही अपनी माया का आश्रय लेकर यहाँ आये हैं, जिनमें कि सभी मंगल समाये हुये हैं अर्थात् जो मंगलों के घर हैं। इस प्रकार अनेक उत्सव मनाते रहे और उस समय की इंतजार करते रहे जो कि महाराज के प्रकट होने का था और वह समय भी समीप आ गया। उस समय में सभी राशियाँ नवग्रह, योग करण मुहूर्त यह सब अपनी सार्थकता के लिये अनुकूल हो गये और वि. सं. १७७४ वैसाख शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा ब्रह्ममुहूर्त में सूर्योदय से दो मिनट पहले अपने तेजोमय विग्रह (शरीर) को प्रकट किया। इस विषय में स्वा. ब्रह्मानन्द जी अपने "सद्गुरु अवतार लीला" नामक ग्रंथ में इस प्रकार वर्णन करते हैं।

कवित्त–बन्दीछोड़ सुखसार धार तेज अवतार,
मात के गर्भ बीच छिन भी न आयो है।
मात को शरीर भारी देखें मात और नारी,
आप सो खिलारी भारी खेलत ही पायो है॥
बालक शरीर जोई मात को दिखायो सोई,

छिन ही के बीच फिर तन को छिपायो है।
मात सोच करैं हेर, कित गयो बाल फेर,
हेर मात चीत फेर, बाल हो चिचायो है॥२८॥

स्वा. ब्रह्मानन्द जी यहाँ पर उसी प्रकार कथन करते हैं जैसे कि पहले महापुरुषों ने माता जी से कहा था जो पीछे कह आये हैं। बन्दी छोड़ जो सुख के सागर हैं वह अपने (तेजोमय) शरीर को धारण करके प्रकट हो गये और माता के गर्भ में तो क्षण-मात्र भी नहीं आये। जैसा कि हमारे शास्त्रों में अवतारी पुरुषों का प्रादुर्भाव होना लिखा है कि वे गर्भ में नही आते। इसमें शंका होती है कि पहले जो महापुरुष मिले थे उन्होंने कहा था कि आपके गर्भ में सद्गुरु जी हैं और सब लोगों को प्रतीत भी होता है। इस शंका का निवारण स्वा. ब्रह्मानन्द जी करते हैं कि माता को भी शरीर भारी प्रतीत होता है और लोगों को भी यह उसी प्रकार सत्य प्रतीत होता है। जैसा कि सर्व साधारण बालकों के गर्भ से होता है। यह वार्ता केवल प्रतीति मात्र है। क्योंकि जैसे बाजीगर माया द्वारा अनेक खेल दिखाता है वास्तव में वह मिथ्या ही होते हैं। जब वह प्राकृतिक (साधारण) बाजीगर अपनी माया द्वारा अनेक लोगों को भ्रम में डाल देता है तो वह जो मायापति जिसके आश्रित माया रहती है वह अपनी इच्छा से ऐसे खेल रचकर शरीर धारण करले तो क्या आश्चर्य है। एक शरीर तो क्या वह अनेक शरीर धारण कर सकते हैं। जैसे कि भागवत में यह गाथा प्रसिद्ध ही है कि भगवान् ने अपनी योगमाया द्वारा बलराम जी को देवकी के गर्भ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में प्रवेश कर दिया था। ऐसी अनेक कथायें हैं।

इस प्रकार माता को प्रसूत पीड़ा आदि भी मालूम नहीं दी और प्रकट होते समय अनन्त सूर्यों का प्रकाश हुआ और आप खेलते हुए ही दिखाई पड़े। जब माता ने अच्छी प्रकार देख लिया तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह कैसा बालक है? जो कि पैदा होते ही खेलने लगा। यह देखकर विस्मित हो गईं और विचारने लगीं कि क्या यह मैं स्वप्न तो नहीं देख रही? परन्तु फिर देखती हैं कि अवस्था तो जागृत ही है। आखिर हुआ क्या? ऐसा सोच ही रही थी कि सहसा सद्गुरु जी (बालक) आखों से आलोप हो गए। यह चरित्र देखकर माता जी घबरा गईं कि हाय! मेरा बालक कहाँ गया कौन ले

गया। जब माता को अति दुःखित और अधीर देखा तो फिर प्रकट हो गये। साधारण बालकों की भाँति रोने लगे। तब शिशु के रोने के शब्द को सुनकर रानी जी की माता जी और कुटुम्ब की अन्य महिलायें भागी हुई आईं और आकर सब आश्चर्य में पड़ गईं। बालक को जन्माहुवा देख कर राणी से कहने लगी कि तुमने प्रसूतकाल में किसी को भी नहीं बताया। क्या तुम्हें प्रसूत पीड़ा नहीं हुई? या तुम्हें बच्चे के उत्पन्न होने का पता ही नहीं लगा? यह सुनकर जो अघटित घटना थी रानी जी ने सब कह सुनाई। तो सब ने विचार किया कि यह बालक नहीं कोई अलौकिक शक्ति है और माता जी को उस समय उन महापुरुषों के शब्द स्मरण हो आए एवं सत्य प्रतीत होने लगे जो उन्होंने तीन चार मास पहले बताये थे।

यह अलौकिक घटना सारे गाँव में फैल गई और घर घर में चर्चा होने लगी। रानी के माता-पिता और श्री बलरामसिंह जी अति प्रसन्नता से प्रफुल्लित होकर अनेक प्रकार से ब्राह्मणों व गरीबों के प्रति गोदान-वस्त्रदान आभूषण देने लगे। और अनेक महात्माओं को भोजन कराने लगे। अलौकिक बालक की कीर्ति बहुत दूर-दूर तक फैलने लगी। नित्य प्रति साधु-महात्मा और अन्य लोग दर्शन हेतु आने लगे। हरदेव जी के घर में हर समय दर्शकों की भीड़ रहने लगी और नित्य प्रति अनेक मांगलिक उत्सव होने लगे। इस दिन से इस ग्राम में भी अनेक सुख सम्पदा प्राप्त होने लगी क्योंकि जहाँ पर साक्षात् स्वयम् ईश्वर ही अवतरित हों वहाँ तो अष्टसिद्धि नवनिद्धि[१] अपनी सार्थकता के लिए स्वयम् उपस्थित होती हैं।

और माता रानी व बलराम जी तथा रानी जी के माता-पिता अपने बच्चे को बहुत ध्यान से रखते थे क्योंकि उनके मन में यह शंका होती थी कि पता नहीं किस पुण्य प्रताप से हमारे घर में देवी देवताओं व महात्माओं के प्रताप से यह बालक उत्पन्न हुआ है। इसको कहीं कोई नजर आदि न लग जाये।

---

१. (१) पद्म, (२) महा पद्म, (३) शङ्ख, (४) मकर, (५) कच्छप, (६) मुकुन्द, (७) कुन्द, (८) नील, (९) खर्व।

२. (१) अणिमा, (२) महिमा, (३) गरिमा, (४) लछिमा, (५) प्राप्ति, (६) प्राकम्य, (७) इषित्व, (८) वशित्व।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने के पश्चात् फिर वे ही महापुरुष (जो कि कुछ समय पहले माता जी को बता गये थे कि तुम्हारे घर में कबीर साहब प्रकट होंगे)। अपने सद्‌गुरु जी को प्रकट हुआ जानकर 'छुड़ानी' ग्राम में दर्शन करने आ पहुँचे। महापुरुषों को आये देख "हरदेव जी, बलराम जी" और सब कुटुम्ब ने दण्डवत् प्रणाम् करके चरण धोकर चरणामृत लिया और उन्हें बैठने के लिये आसन दिया तथा आशीर्वाद प्राप्ति के पश्चात् प्रार्थना की कि भगवन् हम सेवकों के लिये कुछ आज्ञा दीजिये कि हम आप की क्या सेवा करें। क्योंकि आप महापुरुषों के चरण ही हम गृहस्थियों के घरों को पवित्र करते हैं। तथा आप ईश्वर रूप हैं। जैसे की कबीर साहब ने कहा भी है—

भाग भले जहाँ सन्त पधारे। कर सुमिरन भव सागर तारे।
आये सन्तों का आदर कीजै। चरण धोये चरणामृत लीजै।२९।
सन्त साहिब कुछ अन्तर नाहीं। साहिब का घर संतन माहीं॥
येही संत हैं पर उपकारी। आये शरण को लेत उभारी।३०।
कहें कबीर सन्त भले पधारे। जन्म मरण के दुख निवारे।

इत्यादि अनेक प्रमाणों द्वारा यह बात प्रसिद्ध है कि आप जैसे महापुरुषों के दर्शन से ही हम गृहस्थियों का जीवन सफल होता है। जहाँ आप लोगों के चरण नहीं पड़ते वह घर भी पवित्र नहीं होते हैं इस बात को कबीर साहेब सिद्ध करते हैं—

जिंहि घर सन्त न सेविये हर की पूजा नाहिं।
ते घर मरघट सारिखे भूत बसें तेहिं माहिं॥

तब उन दोनों महापुरुषों ने बड़े गम्भीर स्वर से कहा कि हम आपके द्वारा किसी सेवा के लिये उपस्थित नहीं हुए हैं यदि आप हमारी सेवा ही करना चाहते हैं और हमें प्रसन्न करना चाहते हैं तो आप हमको अपने बालक का दर्शन करा दो जिससे कि हमारा आना सफल हो क्योंकि हम केवल उसी लक्ष्य को लेकर आये हैं। सन्तों का यह वचन सुनकर हरदेव जी व बलराम जी कहने लगे कि महाराज जी आप यह क्या कह रहे हैं कि आप बालक के दर्शन करने आये हैं? तब उन दोनों सन्तों ने कहा कि

आप उनको बालक समझते हैं वह तो हमारे इष्टदेव साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर सद्गुरु कबीर साहेब जी ही बालक रूप से प्रकट हुये हैं। आप उनके ऊपर श्रद्धा करें और बालक भाव का परित्याग कर दें वह तो आपके पूर्व जन्म के तप के पुण्य प्रभाव से आपके यहाँ प्रकट हुये हैं इसलिये आप उनके शीघ्र और अवश्य दर्शन करायें बस हमारी यही सेवा है। सन्तों को अनेक प्रकार से टालने की कोशिश उन्होंने की परन्तु वह तो अपने ध्येय पर अटल रहे और बार-बार इसी बात को दोहराते रहे कि हमें शीघ्र दर्शन करायें। तब उनका हठ देखकर बलराम जी ने बालक को लाकर उनके चरणों में डाल दिया। तब उन महापुरुषों ने सहर्ष उस बालक के रूप में अपने इष्टदेव को उठा लिया और उनके आगे नमस्कार करके स्तुति करने लगे।

मर्यादामवितुं चिरात् त्रिजगतः प्राप्तप्रतिष्ठां परां,
यो शून्योऽपि गुणै र्गुणान्विततया संजायते नैकशः।
साधूनामवनंविनाशनपरं सद्धर्म वाह्यप्रथा—
रीते रस्मि कबीरदासवपुषा जातं नतस्तं विभुम्॥१॥

विश्व में सुप्रतिष्ठित सर्वोतम ऐसी जो अनादि मर्यादा है, उस मर्यादा-पालन के लिए जो स्वयम् निर्गुण और निराकार रहते हुए भी सगुण और साकार होकर अनेक बार आया करते हैं।

कुप्रथाओं को हटाकर सन्त महात्माओं को सत्य सनातन मार्ग दिखाने के लिए कबीर नाम से अवतरित हुए उस व्यापक परमतत्व को नमस्कार है।

सैष प्रादुरभूत् पुनर्मुनिवरं संमानयन् भव्यदः
भक्ताह्लादकरोऽद्वितीयो विभुरनाद्यान्तः कबीराह्वयः
योगीन्द्रं यमथामनन्ति सुधियः सच्चित्प्रकाशात्मकं
कारुण्याब्धिं गरीबदासमनिशं तं चिन्तयामो गुरुम्॥२॥

निज भक्तों के दुःखों को दूर करके सुख प्रदान करने वाले श्री आचार्य देव कबीर नाम के उस अनादि अनन्त अखण्ड ब्रह्म का जो पुनः अवतार

हुआ, जिन सत् चित् प्रकाशात्मा करुणा के सागर योगेश्वर को विद्वान् लोग गरीब दास कहते हैं। उन गुरुवर का बार-बार चिन्तन करता हूँ। कि हे पारब्रह्म परमेश्वर सद्गुरु देव आप अपने भूले हुये हंसों (जीवों) का उद्धार करने के लिये अनेक रूप धारण करते हैं और अनेक भाँति से भूले हुए जीवों को समझाकर (उपदेश देकर) जरा-मरण के दुःख से छुड़ाते हैं। और मोक्ष पदवी देते हो, जो जीव एक बार आपकी शरण में आ गया वह चाहे कितना पापी भी हो आप अपनी दयालुता के कारण उनके अपराधों को न देखते हुए उन्हें सद्गति एवं अपना निज स्थान प्राप्त कराते हैं हम जैसे जीव तो भूलते ही रहते हैं परन्तु आपका स्वभाव तो ऐसा है कि अपने सेवक के अपराध की ओर देखते ही नहीं। शरण में आये जीव को अभय दान देते हैं। इस प्रकार उन सन्तों ने स्तुति करके कहा कि आपकी स्तुति तो सहस्त्रों फणों वाले शेष नाग भी नहीं कर सकते, व शारदा माता भी आपका पार नहीं पा सकतीं। हम जैसे अल्पज्ञ जीवों की तो गति ही क्या है? जैसे कि स्वामी मोहन दास जी कथन करते हैं—

कवित्त- जैसे कोई रवि आगे न खद्योत पाँव लागे,
तैसे हूँ मैं तुम आगे ऐसा रूप आप दा।
जैसे नाहिं पाय सके मशक आकाश अन्त,
तैसे कैसे अन्त पाऊँ तुमरे प्रताप दा॥
स्तुति क्या करूँ तुम्हारी कही नहीं जाय सारी,
महिमा अपार थारी सत्य हूँ मैं भाखदा।
जाके बुद्धि होवे जैसी करहै तो निश्चय तैसी,
अपने तो मन में सो न्यूनता न राखदा॥

इस प्रकार आपकी महिमा का अन्त पाना हमारी शक्ति का काम नहीं है फिर भी जैसी जिसकी बुद्धि होती है वह अपनी बुद्धि के अनुसार खूब प्रशंसा करता है कुछ कमी नहीं रखता—

गियामालतीछंद- क्या करूँ मैं इनकी उपमा कहने में नहीं आव है।
और की तो बात क्या है विधि पार न पाव है॥

करत जो नर ध्यान इनका अति सै मनकुं लाव है।
निश्चय करके पुरुष सो सही परम पद को जाव है॥
करत जो नर ध्यान इनका इन्हीं में मिल जात है।
और दर्शन करत सेवा तिसकी तो क्या बात है॥
होत है जब भोग पूरा छोड़ता जब गात है॥
पवन में ज्यों पवन मिल है त्योंहि तिन में समात है॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

इस प्रकार अपने इष्ट देवकी स्तुति करके अन्त में उनके नाम स्मरण व ध्यान करने का महत्व बतलाया है कि जो प्राणी शुद्ध भाव से इनका स्मरण व ध्यान करेगा वह अन्त समय इस अनित्य देह का परित्याग करके इस बालक स्वरूप परम पुरुष में लीन होगा। इस प्रकार उपदेश देकर और सद्‌गुरु के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके वे महापुरुष अन्तर्ध्यान हो गये। यह चरित्र देखकर माता-पिता आदि सब परिवार आनन्द में नहीं समाते थे। उन महापुरुषों द्वारा की गई स्तुति सुनकर, उनके मुखारविन्द से इनकी अलौकिक शक्ति को समझकर अपने बालक को खूब अच्छी प्रकार लालन पालन करने लगे।

॥ श्री जगद्‌गुरु का नाम संस्करण॥

आपके माता-पिता विनयशील सात्विक स्वभाव सतोगुण के थे। अपने घर परम तेजस्वी सर्वगुण सम्पन्न बालक के प्रादुर्भाव से अति प्रसन्न हुए और अपनी इस सनातन पद्धति (रिवाज) के अनुसार तथा अनेक प्रकार से अपने कुल पूज्य इष्ट की उपासना से यह बालक प्राप्त हुआ था इसलिए अपने कुमार का नाम गरीबदास रखा। आपका स्वरूप और कार्य गरीब और दीन-दुखियों को रक्षण देने वाला होने के योग्य देखकर श्री गरीब-निवाज गरीबाचार्य जी को गरीब संज्ञा का देना यद्यपि उचित नहीं परन्तु माता-पिता अपने वात्सल्य स्वभाव को जो स्वधर्म सिद्ध है वे कैसे त्याग सकते हैं? और वास्तव में देखा जाय तो गरीबदास नाम

श्री आचार्य जी का सार्थक ही है। गरीबदास शब्द का अर्थ स्वा. ब्रह्मानन्द जी भी इस प्रकार वर्णन करते हैं—

कवित्त- अक्षर गकार जोई ज्ञान रूप भाखे सोई।
कारण रिकार कर रमे नाम रूप पर॥
ररे ते रिकार नर छूटै तीनों तापते।
ब विश्व को आधार एक साक्षी शुद्ध ब्रह्म पेख।
नाम रीति भाखी दास पद के अलापते।
सो होत निष्पाप गरीबदास चित्तजास।
तजे बन्ध फाँस बन्दी छोड़ के प्रताप से॥

॥ कबीर और गरीब शब्द की एकता॥

दोहा- कका करता जगत् के बबा वेत्ता जान।
ररा रमता सकल में, सो कबीर पहचान॥
गगा ज्ञान स्वरूप है ररा कर सब ठाम।
बबा व्यापक सकल में गरीब दास यह नाम॥

इस प्रकार श्री आचार्य जी को गरीबदास संज्ञा देना सार्थक ही है। क्योंकि "ग" अक्षर जो है यह ज्ञान स्वरूप है और 'र' सबमें रमा हुवा है "ब" सम्पूर्ण सृष्टि का स्वरूप है एवं सब में व्यापक है और दास शब्द का अर्थ है दीन दुःखियों की रक्षा करना। इन महापुरुषों का मुख्य लक्ष्य तो दुःखी जीवों को सुख देना ही होता है। और "शब्द कोष सन्तमत वाणी" के अनुसार गरीब शब्द का अर्थ विलक्षण और अद्‌भुत भी है। अद्‌भुत शब्द का अर्थ परमात्मा में ही घटता है और परमात्मा ही सबसे विलक्षण है और परमात्मा से अतिरिक्त कोई भी जीव अद्‌भुत और विलक्षण नहीं हो सकता।

श्री गरीबाचार्य का "यश एवं स्वरूप"

श्री जगद्गुरु के स्वरूप व दर्शन से सामुद्रिक (ज्योतिष) शास्त्र के विद्वानों ने आपको महापुरुष एवं जगद्उद्धारक (जगत् का उद्धार करने वाला) रूप से मान लिया है आपके चित्र दर्शन से आपके शुभ लक्षणों का पता चलता है और आपके परिचय से आपकी अगाध शक्ति का ज्ञान होता है तथा आपकी अथाह, निर्गुणमयी वाणी से आपकी अत्यन्त ज्ञान शक्ति का परिचय मिलता है। भारतीय साहित्य अर्थात् इतिहास में जगत्गुरु श्री गरीबाचार्य का नाम व यश स्वर्णाक्षरों में देदीप्यमान है।

भारतीय सन्त महात्माओं एवं अंशावतारी पुरुषों की पंक्ति में आपका दिव्य स्वरूप कुछ अद्भुत छटा दिखा रहा है। ऐसे महापुरुषों के परोपकारी जीवन से जिन्होंने हमारा हित किया है उनके प्रति आदर प्रदर्शन करना अर्थात् उनका नाम स्मरण करना तथा उनके उपदेशामृत से अपने अमूल्य जीवन को सार्थक करना हमारा परम कर्त्तव्य होना चाहिये।

॥ बाल लीला॥

जगद्गुरु श्री गरीबाचार्य का लालन पालन उनके माता-पिता द्वारा खूब अच्छी प्रकार से होने लगा। बाल्य काल से ही आप माता-पिता को आनन्द देने के लिए अनेक लीलायें करते रहते थे। जब आपकी आयु करीब तीन साल की हुई तो ग्रामवासी बालकों के साथ घर से बाहर खेलने जाने लगे। आप अपनी अलौकिक आकर्षमयी वाणी द्वारा बालकों को अपनी ओर ऐसे खींचने लगे जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी ओर खींचता है। आप प्रातः काल से शाम तक खेल में ही मग्न रहते थे और ग्राम के जितने बालक थे। वे भी आपको छोड़कर सायंकाल तक घर को नहीं जाते थे। आपकी यह लीला देखकर ग्रामवासी लोग परस्पर कहते थे कि यह अलौकिक बालक है? पता नहीं इसमें कैसा जादू है कि ग्राम भर के सम्पूर्ण बालक अपने भोजन आदि की भी परवाह नहीं करते हैं दिन भर बलरामसिंह के बालक के पीछे-पीछे फिरते हैं। सायंकाल बड़ी मुश्किल से उनकी मातायें अपने घर लाती हैं और प्रातः होते ही फिर भाग जाते हैं।

आप स्वयं भी अपने भोजन दूध आदि की ओर ध्यान नहीं देते थे। स्वा. ब्रह्मानन्द जी आपकी बाल लीला के विषय में इस प्रकार लिखते है–

दोहा- सद्गुरु सतस्वरूप हैं, परमानन्द अपार।
माया कर तन धार के, विचरे या संसार॥

सद्गुरु ही सत्य वस्तु है। सत्य उसे कहा जाता है जो तीनों कालों में एक रस रहे। तीन काल-भूत, भविष्य, वर्तमान-भूत जो समय बीत चुका, भविष्य-आगे आने वाला, वर्तमान जो इस समय बीत रहा है। उन तीनों कालों में वह सत् और प्रकाश स्वरूप कहा जाता है (जो एक रस न रहे जो कभी हो कभी न हो, कहीं हो कहीं न हो वह पदार्थ परिणामी-मिथ्या कहा जाता है)। वही परमानन्द है वही सद्गुरु परम आनन्द स्वरूप हैं। और अपार हैं जिनका कोई अन्त न पा सके। वह शुद्ध सच्चिदानन्द घन पारब्रह्म परमेश्वर अपनी योग माया का आश्रय लेकर इस असार संसार में फँसे हुए जीवों का उद्धार करने के लिए बालस्वरूप धारण करके अनेक लीलायें करते हैं।

दोहा- या विधि धार शरीर को, करैं केलि सम बाल।
सब कोई जाने बाल यह, पर है रूप विशाल॥१॥

(स्वा. ब्रह्मानन्द जी)

इस प्रकार माया का शरीर धारण करके प्राकृतिक बालकों की तरह आप क्रीड़ा करते थे। और सब लोग आपकी इस लीला को देखकर आपको साधारण बालक समझते थे परन्तु वास्तव में आपके समान और कोई बड़ा नहीं है क्योंकि आपके विराट् स्वरूप में अनेकों हीं ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं अतः आपसे और बड़ा कौन हो सकता है। परन्तु अपने बिछड़े हुए हंसों का उद्धार करने के लिये वह माता-पिता के मनोरथों को सफल करने के लिये आप अनेक तरह की क्रीड़ा करते हैं।

नित्य ही बालकों में बालक बनकर अनेक लीलायें करते थे। सब बालकों में आप बालकों की भाँति ही प्रतीत होते थे और बालकों के साथ खेल में निमग्न होने के कारण आप घर की सुध भूल जाते तब माता बुलाने आती माता के बुलाने पर आप अपना खेल छोड़कर माता के पास

भागे हुए आते और अपनी तोतली बोली द्वारा माता को प्रसन्न करते और माता जी अपने प्रिय शिशु को दही-मक्खन आदि खाने के लिये देती आप खाते जाते और बालकों के साथ खेल की चर्चा माता से कहते। जब बाहर से बालक आपको गरीबा कह कर पुकारते तो अपने साथी बालकों की पुकार सुनकर आप दही माखन में सने हुए हाथ लेकर भाग जाते और फिर बालकों में जाकर खेलने लग जाते। माता देखती कि मेरा बच्चा बीच में हीं दही रोटी छोड़कर भाग गया तो वह फिर बुलाने जाती, आप माता जी को देखकर आगे आगे भागते जब माता जी पकड़ने दौड़ती तो आप कहीं जाकर छुप जाते। इस प्रकार आप नित्य नई-नई लीला करते। प्राकृत बालकों की तरह खेल खेलते रहते। कभी-कभी बालकों में खेलते-खेलते ऐसी लीला करते कि सब बालकों को साधु बनाते और आप गुरु बन कर उच्च आसन पर बैठ जाते अपने बालक शिष्यों को उपदेश देते, किसी से कहते कि तू जल ला, किसी से लकड़ी किसी से आटा, मँगवाते कि भण्डारा करेंगे अनेक प्रकार की ऐसी लीला करते। आप जो जो आज्ञा देते बालक उसी काम को करते थे और उन बालकों को आप अनेक धार्मिक शिक्षा देते कि चोरी न करना, गाली न देना, इत्यादि अनेक शिक्षाएँ आप बाल्य काल से ही अपने साथी बालकों को दिया करते थे। बाल्य काल में आप अपने साथी बच्चों को बराबर अमुक शिक्षा दिया करते थे।

श्री सद्गुरु जी महाराज की बाल्यकाल से ही अद्भुत लीला देखने तथा सुनने में आती थीं। आप अपने साथी बच्चों को बाल्यकाल में ही बड़े-बड़े सुन्दर कल्याणप्रद एवं शास्त्र सम्बन्धी आत्मा के विषय में बराबर सदुपदेश किया करते थे, यही उनकी विशेषकर बाल्यक्रीडा होती थी, और यही प्रायः उनका मनोविनोद था।

वे अपने साथी बच्चों से कहा करते थे कि देखो यह जो तुम्हारा शरीर है यह आत्मा का भोगस्थान है—

"आत्मनो भोगायतनं शरीरम्"

अर्थात् आत्मा के भोग का आयतन (स्थान) यह शरीर है। इसलिये इस शरीर से जितने भी अच्छे कर्म किये जायें उतना ही अच्छा है, और वे

भी यदि कामना रहित होकर किये जायें तो इस पञ्चभौतिक नश्वर शरीर के अन्दर मशीनरी का संचालन करने वाला जो इञ्जीनियर स्थानापन्न है यह चेतन तत्त्व आत्मा है इसके बहुत ही जल्दी इस मशीनरी के सञ्चालनरूपी कार्य से छुटकारा मिल सकता है। कारण कि जितने परोपकार आदि सत्कार्य हैं उनका निष्काम भावना से संपन्न करने पर ही प्रमात्मा सन्तुष्ट होते हैं। और उन की प्रसन्नता पर ही सब कुछ निर्भर है। कहा भी है—

तुष्टे — मोंचयतः सर्वान् तुष्टे — बध्नतः पुनः।

कारागारमिदं विश्वं यस्य तस्मै नमो नमः॥

अर्थात् निष्काम भावना से किये जाने वाले कर्मों के द्वारा होने वाली परमात्मा की प्रसन्नता से यह जीव इस संसार रूपी जेल से हमेशा के लिये छुटकारा प्राप्त कर लेता है। और सकाम कर्मो के करने से सर्वदा के लिये इस संसार रूपी जेल में ही पड़ा रहता है। और उस सकाम कर्मशील व्यक्ति के लिये यही समस्त चराचर विश्व सर्वदा के लिये सेंट्रल जेल (केन्द्र का कारावास) बन जाता है।

इसलिये सद्गुरु महाराज उन अपने साथी बच्चों को क्रीड़ा करते हुये यही कहते थे कि देखो इस नश्वर शरीर से जहाँ तक भी हो सके परोपकार करो और वह भी बदले की भावना से नहीं बल्कि निःस्वार्थ एवं निष्काम भावना से।

तुम्हारा यह मानव शरीर सब प्रकार से ठीक है इसे तुम अभी से ईश्वर भजन परोपकार आदि पारमार्थिक कार्य में लगा दो। जो लोग स्वस्थ एवं निरोग शरीर को प्राप्त करके भी कोई पारमार्थिक कार्य नहीं कर पाते हैं वे लोग मूर्ख हैं व्यर्थ ही में माया जाल में फंसे रहते हैं।

दो प्रकार के मूर्ख होते हैं- एक मूर्ख तो वह होता है जो बिना पढ़ा हुआ होता है। और एक मूर्ख वह होता है जो पढ़ा हुआ होता है। उनके मन में कुछ और रहता है वाणी में कुछ और होता है। परन्तु शास्त्र यह आज्ञा देता है कि- "यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति"।

अर्थात् जो तुम मन के अन्दर निश्चय कर लो उसी को वाणी से कहो शास्त्र ऐसी आज्ञा देता है। परन्तु यह पढ़ा लिखा मूर्ख मन में कुछ और वाणी में कुछ और ही बात रखता है। पढ़े लिखे मूर्ख का ही यह लक्षण है–

"मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्"

अर्थात् मन में और वाणी में और।

दूसरा प्रथम नम्बर का मूर्ख वह होता है जो कि जिस माता के पेट से जन्मा उसी को वह पराई लड़की अर्थात् अपनी स्त्री के कहने में आकर उसे दुरदुराता है, फटकारता है, गाली गुप्ता करता है, आखिर में मारना-पीटना भी प्रारम्भ कर देता है। वही हालत पिता की भी करता है।

इस प्रकार श्री आचार्य देव जी महाराज ने उन अपने साथी बच्चों से कहा कि देखो तुम इस मिट्टी से बने हुये शरीर को उन मूर्खों के समान दुरुपयोग में न लाना, इससे तुम कुछ पारमार्थिक लाभ उठाओ। पारमार्थिक लाभ उठाने पर ही इस शरीर का महत्त्व है अन्यथा जिस शरीर को आप अपना कहते हैं वह एकमात्र आपका नहीं है बल्कि यह बहुतों का है। जिस समय शरीर में जूओं का प्रवेश हो जाता है उस समय वे इसके उन-उन भागों को खाते हैं, घाव होने पर कीड़े इसको खाते हैं, पेट में कीड़े पड़ जाते हैं, दांतों में कानों में जब कीड़े पड़ जाते हैं तो वह भी इसी प्रकार शरीर को खाना और नोचना शुरू करते हैं। इसी प्रकार मच्छर-ततैये-सांप-बिच्छु आदि भी इसे, समय पाकर खाते हैं। जीवन भर आप लोग इसकी रक्षा करते रहते हो किन्तु संयोगवश किसी शेर-भालू-भेड़िया आदि हिंसक जानवर के चक्कर में यदि पड़ जाता है तो वे ही इससे अपना स्वार्थ साधन कर लेते हैं। यह इस शरीर की परिस्थिति है। जगद्गुरु के रूप में अवतरित होने वाले आचार्य देव श्री महाराज कहते हैं कि- हे बच्चो! ऐसी परिस्थिति में बहुतों के द्वारा अधिकृत हुये इस शरीर के ऊपर एकमात्र अपना ही अधिकार यदि कोई समझता है तो यही वास्तविक में मूर्ख का स्वरूप पहिले बतलाया गया है कि जो नाना प्रकार के जीवों का खाद्य तथा भक्ष्य है फिर भी उसे मानव अपना ही समझता है।

इसीलिये साधुओं ने, सन्तों और ऋषि महर्षियों ने, योगी एवं महात्माओं ने, ज्ञानी और तपस्वियों ने, विद्वानों और सन्यासियों ने, मुनियों और सिद्धों ने इस शरीर की वास्तविक उपयोगिता को जाना।

॥ मलूका नाम के बालक की ऊँगली में तारा॥

वयस्यै बालकैः सार्धं क्रीड़न् सद्गुरुरेकदा।

दर्शयामास नक्षत्रं दिवाऽङ्गुल्यां च मुष्टिके॥५॥

आचार्य देव समवयस्क लड़कों के साथ खेलने लगे एक बार खेलते-खेलते मलूक नामक बालक के उङ्गली को चोट आने पर उसको समझाने के लिये आपने दिन में ही उसकी उङ्गली में तारा दिखलाकर उसको उसके मुट्ठी में दे दिया।

इस प्रकार लीला करते हुए जब आप की आयु ५ साल की हुई एक दिन आप बालकों में खेल-खेल रहे थे खूब घोल मथोल हुए खेलते-खेलते इस खेल में जब आप के साथी बालक अधिक थकित हो गये तो आप कंकरियों द्वारा खेलने लगे। कंकरियों से खेलते-खेलते आपने जब "घींची" की चोट चलाई तब वह कंकरी (तरखानों के) मलूका नामक लड़के की कनिष्ट (छोटी) अँगुली में बहुत जोर से लगी लड़के की अँगुली में घाव हो गया, खून बहने लगा। लड़का जोर-जोर से चिल्लाने लगा। तब आपने अपने मन में विचार किया, कि यह तो बहुत बुरा हुआ; क्योंकि यह रोता हुआ अपने माता-पिता के पास जायेगा और मेरा नाम बतायेगा। कि उसने मुझे मारा है। तब इसके माता-पिता हमारे माता-पिता के साथ झगड़ा करेंगे। और माता मुझे मारेगी। यह सोच कर अपनी अलौकिक लीला की–

मलूका से जाकर कहा कि भाई तू रोता क्यों है देख तेरी अँगुली में कितना प्रकाशमय तारा है यह सुन मलूका ने आकाश की ओर देखा कि तारे तो आकाश में होते हैं परन्तु सद्गुरु जी ने उसकी अँगुली पकड़कर कहा कि देख तेरी अँगुली में तारा है और इसको मुट्ठी में बन्द कर ले। ऐसी वस्तु गुप्त रखनी चाहिए। तब उस लड़के ने अपनी अँगुली की ओर देखा

कि न उसमें घाव है न खून बह रहा है और उसकी अँगुली में एक प्रकाशमय तारा दिखाई दिया। तब वह अति प्रसन्न हुआ और अपनी मुट्ठी बन्द करके हँसता हुआ अपने घर की ओर भाग गया और घर जाकर अपने माता-पिता से जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि देखो मेरी मुट्ठी में तारा। यह बात सुनकर उसके माता-पिता हँसे और कहने लगे। अरे बावले! तारे कहीं मुट्ठी में आते हैं? तारे तो आकाश में होते हैं। तब मलूका ने कहा कि तुम देखो तो सही गरीबदास ने मेरी अँगुली में घींची मारकर तारा प्रकट कर दिया तब उसके ऐसा कहने से उसके माता-पिता ने देखने के लिए मुट्ठी खुलवाई। मुट्ठी खोलते ही उसको अकस्मात् दिव्यप्रकाश दिखाई दिया और लुप्त हो गया। यह विचित्र घटना देखकर मलूका के माँ-बाप चकित रह गये। मलूका शोर करने लगा हाय! मेरा तारा कहाँ गया! अभी मुट्ठी में था। यह बात कुछ ही क्षणों मे सारे गाँव में फैल गई। सब लोग परस्पर कहने लगे कि यह रानी का बालक तो अद्भुत लीलायें दिखाता है जो न कभी देखी न सुनी हैं। इस प्रकार घटनाएँ आपने बाल्यकाल में ही बालकों को अनेक बार दिखाई।

मीठा जल बताना

आप की इसी बाल्यावस्था में ही अन्तर्यामिता प्रकट होने लगी। छुड़ानी ग्राम में मीठा पानी नहीं था। पीने के लिए पानी छुड़ानी से दक्षिण की ओर डेढ़ मील की दूरी से वैष्णवों के मकान से लाया जाता था। वहाँ रहने वाले सन्त आशानन्द जोहड़ से एक टोकरी मिट्टी निकालने पर जल लेने देते थे। इस संकट को देखकर आपके पिता बलराम सिंह जी ने "कुआँ" लगवाने के लिए विचार किया और जब कुआँ खोदने लगे। तो आपने अपने पिताजी से कहा कि पिता जी यहाँ इस स्थान पर आप कुआँ न खोदें क्योंकि यहाँ जल खारी है यहाँ से २० गज की दूरी पर आप खोदें तो पानी मीठा निकलेगा। परन्तु आपको बालक समझ कर आपकी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और कुआँ खोदना आरम्भ कर दिया जब माटी खोदते-खोदते जल की प्राप्ति हुई और उस जल को पीकर देखा तो जल खारा ही निकला; तब बलराम जी से सब लोगों ने कहा कि यह

बालक तो काली जीभ वाला है जो कहता है वही सत्य होता है। अब तो बलराम जी ने विचार किया कि खुदाई का परिश्रम ही तो और करना पड़ेगा—जहाँ यह बालक कहता है वहाँ पर ही कुआँ खोदकर देख लेते हैं। अब शुभ मुहूर्त में जहाँ जिस स्थान पर श्री गरीबदास जी ने कहा कि यहाँ पर मीठा पानी निकलेगा। मिट्टी खोदने का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। और पानी निकल आया। जब उस पानी को पीकर देखा तो बड़ा मीठा और स्वादिष्ट निकला तत्पश्चात् कुएँ की पक्की चुनाई कर दी गई। तो अकस्मात् कुएँ की कोठी एक ओर टेढ़ी हो गई तो बलराम जी व माता रानी तथा ग्राम के अन्य लोग भी चिन्तित हुए कि देखो कितना परिश्रम करके यह कार्य आरंभ किया था परन्तु पता नहीं किस क्रूर ग्रह के कारण यह शुभ कार्य सफल न हो सका। अब तो कुएँ की कोठी सीधी करने में कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता।

हमारे यहाँ तो मीठे पानी का पहले ही अभाव था बड़े सौभाग्य से मीठा पानी मिला था परन्तु दैवी प्रकोप से यह असाध्य विघ्न पड़ गया। इस कार्य में सब प्रयत्न असफल देखकर हतोत्साह हो गये तब श्री आचार्य जी ने अपने माता-पिता व परिवार के लोगों को दुःखी देखकर कहा कि पिता जी! आप इतने चिन्तातुर क्यों हो रहे हो यह कार्य आपका अपने आप सँवर जायेगा। तब माता-पिता ने कहा कि बेटा अपने आप कैसे सँवर जायेगा? अब तो इसके ठीक होने की सम्भावना ही नहीं। उस समय कुछ लोगों ने बलराम जी से कहा कि आप पहले देख चुके हैं जो इन्होंने कुआँ खोदते समय खारे पानी के विषय में कहा था उस जगह खारा पानी ही निकला और जहाँ पर मीठा बताया था वहाँ मीठा ही पानी निकला है। जैसे अब यह कह रहा है कि यह कार्य ठीक हो जायेगा, हो सकता है कि इसका यह वचन भी सत्य ही हो और इससे पूछें कि किस भाँति कुएँ की कोठी ठीक हो सकती है। अपने आप होगी तो कब ठीक होगी। तब बलराम जी को भी कुछ विश्वास हुआ कि इसकी वाणी कई बार सत्य हो चुकी है, तब बलराम जी ने गरीबाचार्य महाराज से कहा कि बेटा हमें दुःख कैसे न हो? हमारा बहुत रुपया बरबाद हो गया है। हमारा इतना परिश्रम किया हुआ मिट्टी में मिल गया और तू बार-बार कहता है

कि ठीक हो जायेगा। बता कैसे ठीक होगा! तो आपने कहा कि भूकम्प आयेगा उसके द्वारा यह स्वयं सीधी हो जायेगी। पिता जी! भूचाल कब आयेगा? इसका निश्चय कैसे हो? भूचाल के विषय में तो आजकल कोई भी नहीं बता सकते कि अमुक समय पर भूकम्प आयेगा। ज्योतिष शास्त्र भी ग्रहण आदि को तो ठीक बता देता है कि अमुक दिन व अमुक समय में सूर्य या चन्द्र-ग्रहण होगा परन्तु भूकम्प के समय को वह भी नहीं बता सकता कि किस दिन और किस समय भूचाल आयेगा। तब आपने कहा कि पिता जी आज से पाँचवे दिन रात्रि के चतुर्थ पहर (प्रातः ४ बजे) में भूचाल आयेगा उस समय हमारे कुएँ की कोठी सीधी हो जायेगी। आप देख लेना। तब यह सुनकर माता-पिता को कुछ धैर्य हुआ। परन्तु निश्चिन्त न हुए, उस दिन और उस समय की प्रतीक्षा करने लगे जो समय महाराज जी ने बताया था। जब वह दिन आया तो बहुत से बुद्धिमान् लोग परस्पर कहने लगे की भाई आज तो मकानों के भीतर नहीं सोना चाहिए क्योंकि रानी का बेटा बता रहा था कि भूचाल आयेगा। कुछ लोग कहने लगे कि क्या बालक के कहने का विश्वास कर लिया? इस बात को तो बड़े-बड़े ज्योतिषी नहीं बता सकते तो वह कल का बालक क्या जाने? तब एक और तीसरे आदमी ने कहा कि तुम इसे बालक मत समझो इसकी सब बातें सत्य हैं। तब एक और चौथे आदमी ने कहा कि जब इस छोहरे का जन्म हुआ था तब उसके कुछ दिन बाद दो बाबा जी आये थे वे भी इसके आगे नमस्कार करते थे और उन्होंने इसके बारे में बहुत सी बातें बताईं थीं इत्यादि परस्पर बहुत देर तक बातचीत चलती रही और अपने-अपने घर में सब चले गये और विश्राम करने लगे। परन्तु सबके दिल में शंका तो होती ही थी कि कहीं भूचाल आ ही न जाये। ठीक जब रात्रि का चतुर्थ पहर हुआ (४ बजे) तो बहुत जोर का भूकम्प आया सब लोग घबरा गये और परमात्मा का नाम जपने लगे प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभु आप हमें आज बचाओ इस भयंकर संकट में आप परमेश्वर के बिना हमारी रक्षा कौन करेगा? इतने में भूचाल हट गया और उस कुएँ की कोठी सीधी हो गई। प्रातः काल होते ही बलराम जी और ग्रामवासी लोग भागे हुए गये। देखा तो कुआँ बिल्कुल सीधा हो गया है। अब तो सब लोग आश्चर्य से

चकित होकर परस्पर चर्चा करने लगे कि न जाने यह बालक क्या कोई जादू या कोई ऐसी विद्या जानता है जिससे कि सब बातों को पहले ही बता देता है और सब सत्य होती हैं इस प्रकार आपकी सर्वज्ञता बाल्यकाल से ही प्रकट होने लगी।

॥वैरागियों के घरों की अग्नि बुझाई॥

इसी प्रकार आपने अनेक शक्तियाँ दिखाई। उनमें से मुख्य मुख्य घटनाओं का वर्णन किया जाता है। श्री "छुड़ानी" धाम में कुछ एक वैरागियों के घर हैं (जो गृहस्थी हैं) उस समय उनके फूस के घर थे--दैवयोग से उन वैरागियों के एक छप्पर में आग लग गई और अग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया जिससे कि सम्पूर्ण ग्रामवासियों को डर हो गया कि यह अग्नि तो सारे गाँव को भस्म कर देगी। यह विचार कर सभी ग्रामवासी एकत्रित होकर अग्नि को बुझाने का प्रयास करने लगे परन्तु अग्नि भयंकर रूप धारण कर चुकी थी अतः कोई प्रयत्न सफल न हो सका आप भी बालकों के बीच समीप ही खेल रहे थे। लोगों का हा-हा कार सुनकर अपने साथी बालकों के साथ आप भी वहाँ पहुँच गये और आपने ग्रामवासियों की दीन दशा देखकर और अति पुकार को सुनकर लोगों से गम्भीर स्वर में कहा कि यह अग्नि अभी शान्त हो जाती है। इसे किसी और छप्पर को नहीं लगने दूंगा। आप लोग मत घबरायें। इतना कहते ही आप अग्नि में कूद पड़े। और उस छप्पर के बीच की बल्ली पर चढ़ गये। अग्नि अति प्रचण्ड हो रही थी, यहाँ तक कि आप उस अग्नि की भयंकर लाल-लाल लपटों में दिखाई तक नहीं देते थे। यह देख लोगों में हल-चल मच गई कि गरीबा भानजा जल गया। आप तब तक उस अग्नि से बाहर नहीं आये जब तक कि वह सम्पूर्ण छप्पर जलकर भस्मी भूती होकर पृथ्वी पर नहीं गिर पड़ा। हवा जोर की थी तो भी और साथ छप्परों को आपने आँच नहीं आने दी। जब वह अग्नि छप्पर को जलाकर शान्त हो गई तब आप हँसते हुए बाहर निकल आये।

ग्रामे वह्निमुखे प्राप्ते हाहाशब्देश्च संकुले।
वैराग्यागारमुद्दीप्तं प्रविश्याग्नि पपौ प्रभुः॥

एक समय की बात है कि गाँव के अन्दर किसी गृहस्थ वैरागी के घर में आग लग गई थी। और वायु के कारण गाँव अग्नि के द्वारा एकदम भस्म होने जा रहा था, चारों ओर से हाय! हाय! यह कारूण्यपूर्ण शब्द हो रहा था। ऐसे भयंकर आपत्तिकाल में सर्व समर्थ महाराज जी अपने मित्रों को आश्वासन देकर एकदम उस धधकती हुई आग के अन्दर कूद पड़े और सम्पूर्ण अग्नि का पान कर गये। और उधर आपके साथी बालकों मे से एक दो बालक माता रानी और पिता बलराम के पास भागते हुए और रोते चिल्लाते पहुँचे और उनको कहा कि गरीबे ने अग्नि में छलांग मार दी है। यह सुन माता-पिता भागे-भागे आये। परन्तु पिता जी के वहाँ पहुँचने से पहले ही आप उस अग्नि को शान्त कर हँसते हुए माता-पिता की ओर आ रहे थे। अपने प्राण-प्रिय पुत्र को सकुशल आता हुआ देखकर माता-पिता ने विषाद से पलट कर प्रफुल्लित रूप धारण कर लिया और आपको छाती से लगाया। परमात्मा का धन्यवाद मनाने लगे और अपने पुत्र से कहने लगे कि बेटा तू ऐसा काम क्यों करता है जिससे हमें कष्ट हो। तुझे ऐसे काम नहीं करने चाहिए। तू तो हमारे प्राणों का आधार है। इतने में जो लोग उस स्थान पर एकत्रित हो रहे थे सब आकर बलराम जी से कहने लगे कि आपका बालक गरीबा तो भगवान् ने मृत्यु के मुख से ही बचा दिया आप इसकी देख भाल रखा करो। इतनी भयंकर अग्नि में जान बूझ कर कूद गया। आज तो भगवान् ने सहायता की है जो इसकी जान बच गई। ऐसा सुन कर वहाँ पर जो व्यक्ति खड़े थे उन्होंने कहा कि तुम लोग यह क्या कह रहे हो। अरे! यह तो कोई योगी या साक्षात् परमात्मा ही श्री बलराम के घर में पुत्र रूप में आया है। तुम लोगों ने देखा नहीं कि इतनी भयानक ज्वाला की लपटों को क्षण भर में ऐसे शान्त कर दिया है। जैसे कि थोड़ी सी अग्नि पर बहुत सा जल गिरा देने से अग्नि बुझ जाती है। तब एक और व्यक्ति जिसके बहुत शुद्ध विचार थे कहने लगा कि तुम तो इसे बालक समझ रहे हो मुझे तो इससे बड़ा और कोई दीखता ही नहीं। जिस समय इसने अग्नि में छलाँग लगाई उस समय मैंने अच्छी प्रकार देखा कि इन्होंने बहुत बड़ा रूप धारण कर लिया था और उस सम्पूर्ण अग्नि को पान कर गये। यदि यह साधारण बालक होता तो यह भयंकर

अग्नि इसको और सारे गाँव को भस्म कर देती। विचारो तो सही इतनी भयंकर अग्नि कैसे शान्त हो सकती है? तब इस बात को सुनकर सभी लोग दंग रह गये। माता रानी और बलराम जी बालक को लेकर अपने घर वापस आ गये और सब लोग भी अपने-अपने घर वापस चले गये।

॥गौ चारण का कार्य आरम्भ॥

महाराज इसी प्रकार खेल-खेल में ही अनेक अद्‌भुत कर्म किया करते थे। और जब महाराज आठ वर्ष के हो गये तब लोगों को धर्म मार्ग की शिक्षा देने के लिये आपने गौवें चराना शुरू कर दिया।

कदाचित् वर्जरीक्षेत्रे जग्मुर्गावोऽन्नलोभिताः।

दृष्ट्वा रिक्तं कलौ चाप्ते पुनर्धान्यैश्च पूरितम्॥

हमारे देश में उस समय गोपालन को मुख्य धर्म माना जाता था। गौ सेवा को ही सर्वश्रेष्ट, सर्वोपरि समझा जाता था। क्योंकि गोपालन से व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों ही लाभ होते हैं। आप भी अपने साथी बालकों के साथ गो चारण के लिये जंगल में जाने लगे। धीरे-धीरे गोचारण का सम्पूर्ण भार आपने अपने ऊपर ही ले लिया। बड़े ही प्यार से आप गऊँओं को चराते थे। आपके सुचारु रूप गोचारण से गौ धर्म की वृद्धि होने लगी। और जिधर को आप आगे-आगे चलते उधर ही आपकी गौवें भी चलती एवं जहाँ पर आप खड़ी होने का संकेत कर देते सब गौवें वहीं पर खड़ी हो जातीं और जिधर को संकेत करते उधर को ही चल देती। इस प्रकार आप नित्य प्रति गोचारण के लिये अन्य बालकों के साथ जंगल में जाते थे। जंगल में गऊँओं को छोड़कर आप बालकों में अनेक प्रकार के खेल खेलते और आपके साथी बालक आपके प्रेम से वशीभूत हुये आपको गऊँयें घेरने के लिये नहीं जाने देते थे स्वयं ही घेर लाते थे।

॥गौ सेवा का महत्त्व॥

गंगेशोपाध्याय इन गौ माताओं की सेवा से प्राप्त हुवे आशीर्वाद से बड़े भारी विद्वान् हुवे। इतने बड़े भारी न्यायशास्त्र के विद्वान थे कि इन्हें यदि महर्षि गौतम कह दिया जाय तो कोई भी अतिशयोक्ति न होगी। इनके

अद्भुत एवं अलौकिक पाण्डित्य का प्रधान कारण यही गौ सेवा ही थी।

इनके विषय में ऐसी एक कहानी है कि ये गंगेशोपाध्याय अपने मामा के घर रहा करते थे। और वहाँ इन्हें एकमात्र यही कार्य दिया गया था कि तुम गऊँओं को चराया करो। ये प्रतिदिन गऊँओं को चराकर लाते और शाम को गौवों के पैरों की मालिश किया करते थे। गऊँओं का इन्होंने नामकरण कर रखा था, वे गौवें भी अपना-अपना नाम पुकारने के साथ ही समझ जाती थीं, जिस गौ के नाम से ये पुकारते थे वही गाय रंभाती हुई इनके पास आ जाती थी।

ये शाम को जब गौवें चराकर घर आते थे तो इनकी मामी इन्हें हमेशा बासी रोटी खाने को दिया करतीं थीं। ये उससे परेशान ही रहते थे। एक दिन ये भूखे ही गऊओं को चराने चले गये, सायंकाल हो गया तब भी लौटकर नहीं आये। ये बेचारे अपने साथियों में सबसे अधिक मन्दमति थे, किन्तु निर्भीक थे। इनके साथियों ने इन्हें एक दिन रात्रि के समय श्मशान से अग्नि लाने के लिये कहा, ये अग्नि लेने के लिय चल दिये, चलते समय इन्होंने एक पीताम्बरा नाम की गौ थी उससे इनका बहुत ही अधिक प्रेम था उसके चरण छुए। श्मशान में भी एक पीताम्बरा देवी का मन्दिर था। ये रास्ते में चलते-चलते भी पीताम्बरा का ही नाम रटते जाते थे। इधर इनकी दृष्टि में पीताम्बरा गौ थी, इधर पीताम्बरा देवी को यह भान हुआ कि यह मेरा नाम रटता हुआ आ रहा है। वास्तव में यह सब कृपा थी गौ माता की। क्योंकि उन सब गौवों का इन्हें आशीर्वाद पूर्णरूप से प्राप्त हो चुका था। ये कभी बिना समय के भी गौवों से जाकर कहते थे कि अरे पीताम्बरा! अरे नीलाम्बरा! अरे दिगम्बरा मुझे दूध दो, तुरन्त ये दुहकर दूध निकाल लेते थे, इत्यादि बहुत सी गऊओं के विषय में इनकी कथाएँ हैं।

इधर जब श्मशान में पीताम्बरा का नाम रटते-रटते पहुँचते हैं तो इन्होंने देखा कि यहाँ तो कोई भगवती का मन्दिर भी है तो उस मन्दिर को देखने की इच्छा से मन्दिर के पास गये। और आराम करने की दृष्टि से वहीं बैठ गये। रात्रि के १२ बजे का समय था, बियाबान जंगल था, चारों तरफ 'सैं-सैं' शब्द हो रहा था, परन्तु इन्हें कोई भी परवाह न थी, किसी प्रकार का इन्हें भय भी न था, मजे में आनन्द से भगवती के दरबार में ये

मस्त होकर पड़े हुवे थे। और पड़े-पड़े भी "पीताम्बरा" नाम की रटन्त लगा रहे थे।

इधर पीताम्बरा भगवती इनके ऊपर पूर्ण प्रसन्न हो गयीं। पीताम्बरा देवी ने देखा कि यह मेरी शरण में आकर पड़ा हुआ है, और पड़ा हुआ भी मेरे ही नाम की रटन्त बराबर लगा रहा है, और वह भी रात्रि के १२ बजे, रात्रि भी माघ के जाड़ों की। इस प्रकार की उसकी कठिन तपस्या को देखकर भगवती उस पर पूर्ण प्रसन्न हो गयीं और इनसे भगवती ने कहा तुम 'वर मांगो, गंगेशोपाध्याय ने कहा कि हे भगवती देवी! तुम यदि मुझे वरदान देना चाहती हो तो मुझे पूर्ण विद्वान् बना दो। देवी ने इन्हें वर प्रदान किया जिसके कारण ये अपूर्व एवं अलौकिक अद्भुत न्यायशास्त्र के विद्वान् बने। आज यदि न्यायशास्त्र आभारी और ऋणी है तो एकमात्र गंगेशोपाध्याय जी का।

और गंगेशोपाध्याय को यह सब कुछ देन थी गऊँओं के परमपवित्र हार्दिक आशीर्वाद की। यह गऊँओं का आशीर्वाद इन्हें यहीं तक फलीभूत नहीं हुआ, बल्कि गऊँओं के ही वर प्रसाद से इनका लड़का वर्द्ध मानोपाध्याय भी इन जैसा ही अद्भुत एवं अलौकिक प्रतिभा संपन्न विद्वान् हुआ। इसके बाद अग्नि लेकर वहाँ से जब लौटकर आये तो छात्रों ने इनकी मजाक करते बहुत ही प्रशंसा की। ये चुपचाप उन्हें अग्नि देकर थकावट के कारण उस दिन घर अर्थात् मामा के घर न जाकर वहीं छात्रों में सो गये।

प्रातः काल होते ही उठे और शौचादि से निवृत्त होकर स्नान आदि कार्य संपन्न कर पूजापाठ में बैठ गये। छात्रों को यह सब देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ, और छात्र आपसे बातचीत करने लगे कि यह गौवों को चराने वाला गौर्वाहीक व्यक्ति कहाँ से आज पूजा पाठी ब्राह्मण बन गया। उनकी मुद्रा को देखकर गंगेशोपाध्याय ने धड़ाधड़ संस्कृत में ही बोलना प्रारंभ किया। इसकी उस लच्छेदार धारावाहिक संस्कृत को सुनकर सब बड़ी से बड़ी श्रेणी के भी लड़के आश्चर्य में पड़ गये और आखिर वे यह जान गये कि यह सब इनके ऊपर कृपा माता गौवों की ही इस रूप में फलीभूत हुई है।

इन शास्त्रीय नित्य-नैमित्तिक कर्मों से निवृत्त होकर जब अपने घर गये तो वहाँ सर्वप्रथम इनकी भेंट इनके मामा जी से ही हुई। मामा जी रात्रि को न आने के कारण इनसे बहुत ही असंतुष्ट और नाराज थे, इनको देखते ही उन्होंने कहा अरे गौ! तुम अब आये हो?

इन्होंने गोत्वावच्छिन्न गौ को गोपद का शक्य बतलाते हुवे कहा कि जिसमें गोत्व धर्म रहता है वही गौ कहलाने का अधिकारी है। कारण कि गो पद का शक्यतावच्छेदक तो गोत्व होता है, वह गोत्व तो मेरे में है नहीं, गोत्व तो गले के अन्दर लटकने वाली खाल वाले पशु विशेष में रहता है जिन्हें कि मैं नित्य प्रति चराकर लाता हूँ फिर मुझे आप गो शब्द से क्यों कह रहे हो। मेरे अन्दर तो ब्राह्मणत्व है मनुष्यत्व है अतः उन्हीं शब्दों का आप मेरे लिये प्रयोग करें।

और यदि यह गो शब्द लाक्षणिक है तब तो आप भी गौ हैं। इसके बाद गंगेशोपाध्याय ने यह एक पद्य स्वयं बनाकर कहा कि–

किं गवि गोत्वमुतागवि गोत्वम्।

चेद् गवि गोत्वमनर्थकमेतत्॥

भवदभिलषितगमोरपि गोत्वम्।

भवतु भवत्यपि संप्रति गोत्वम्॥

अर्थात् गंगेशोपाध्याय ने अपने मामा साहब से पूछा कि क्या गौ में 'गोत्व' यह धर्म रहता है अथवा गौ से भिन्न में गोत्व धर्म रहता है? यदि गौ में गोत्व धर्म रहता है तो आपने मेरे लिये गो शब्द का व्यर्थ प्रयोग किया। क्योंकि गौ शब्द से कहा जाने वाला वह पशु विशेष गौ मैं तो हूँ नहीं।

और यदि गोत्व धर्म गौ से भिन्न में रहता है तब तो गौ से भिन्न होने के नाते आप भी गौ हैं। गंगेशोपाध्याय के मामा उसकी इस प्रकार की बातों को सुनकर बड़े प्रसन्न और संतुष्ट हुए। और कहा कि बेटा? मैं तुम्हें एक विद्वान् व्यक्ति के रूप में देखना अवश्य चारहा था और मैंने तुम्हें विद्वान् बनाने की चेष्टा भी बहुत की परन्तु वह मेरा प्रयास व्यर्थ ही रहा।

यह तो इन जगज्जननी जगदम्बा गौ माताओं की तुम्हारे ऊपर कृपा हो गयी कि तुम इस रूप में आ गये।

इस प्रकार और भी बहुत से उदाहरण हमारे सामने आये कि जिनमें गौवों का विलक्षण महत्त्व हमने देखा। इसलिये गौवों की सेवा से विलक्षण एक लोकोत्तर फल की प्राप्ति होती है।

॥ उजड़ा हुआ खेत हरा॥

एवं केलिरतो नित्य चक्रे कर्माण्यलौकिकम्।

पौगण्डे शिक्षयंल्लोकाञ्चारयामास गोधनम्॥

एक दिन आपकी गऊएँ किसी के खेत में हरि-हरि घास के लोभ से (खेड़का ग्राम) छुड़ानी ग्राम की सीमा से लगती है किसी के बाजरे के खेत में घुस गईं आप खेल में लगे रहे। गऊओं ने बाजरे का खेत बिल्कुल साफ कर दिया जब आप अपनी गऊओं को ढूँढते-ढूँढते उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर कि गऊएँ खेत खा रहीं थीं। देखा तो खेत बिल्कुल चौपट हो गया है साँझ को गायें आप तो लेकर अपने घर आ गये।

खेत वाले ने आकर अपना खेत देखा तो खेत को उजड़ा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने बालकों से पूछा कि मेरे खेत को किसकी गऊओं ने उजाड़ा है? तब सब बालकों ने बता दिया कि आपका खेत बलराम की गऊओं ने खाया है। तब खेत वाले ने जाकर फ़रुख नगर वाले नवाब के यहाँ रिपोर्ट लिखा दी तथा मुकदमा दर्ज करा दिया। नवाब की ओर से राजकीय पुरुष भेजे गये और वह जमींदार उनको साथ लेकर छुड़ानी में पहुँच गया। छुड़ानी में आकर उन राज कर्मचारियों ने ग्राम के मुखिया (नम्बरदार) आदि को बुलाया और बलराम जी को बुलाकर नवाब की ओर से जो आदेश मिले थे वह बताये और कहा कि इसके खेत की जितनी क्षति हुई है वह आप दे दो अन्यथा आपके ऊपर राजकीय कार्यवाही की जायेगी। तब यह सुन कर ग्रामवासी व बलराम जी चकित हो गये और कहा किसका नुकसान हुआ है। तब उस जमींदार और राज्य कर्मचारियों ने समस्त वार्ता कह सुनाई। तब ग्राम सभा व बलराम जी उस खेत का निरीक्षण करने राज्य कर्मचारियों को साथ लेकर गये। इधर आचार्य जी को

भी सब वार्ता ज्ञात हो गई। आपने अपने मन में विचार किया कि जब यहाँ सब लोग खेत को बरबाद हुआ देखेंगे तो हमारे पिता को दण्ड भरना पड़ेगा और हमारी हानि होगी। यह वार्ता विचार कर महाराज जी ने अपना अलौकिक शक्ति का चमत्कार दिखाया। जब सम्पूर्ण सभा खेत पर पहुँची तो क्या देखते हैं कि इस खेत में से एक पात भी टूटा हुआ नहीं है और अन्य खेतों से भी अधिक भरा हुआ है। यह अघटित घटना देखकर वह जमींदार अति लज्जा को प्राप्त हुआ।

बलराम जी व ग्राम के मुखिया ने कहा कि आपके खेत का कौन सा नुकसान हुआ है। अब तो वह लज्जा के मारे सिर ऊपर न उठा सका। उल्टा घबराया कि यह तो उल्टा मेरा ही अपराध ठहरेगा और मुझे ही दण्ड मिलेगा। और उसी समय राज्य कर्मचारियों को भी क्रोध आया। यह देखकर उस जमींदार ने विचार किया कि अब मेरा बचाव इन्हीं (बलराम जी) के द्वारा हो सकता है। तब इसने बलराम जी के चरण पकड़ लिये कहा कि मुझे क्षमा कीजिये। और भी व्यक्तियों ने कहा कि इसका दोष नहीं है क्योंकि हमने भी देखा था कि इस खेत में कुछ नहीं था यह तो आपके पुत्र की शक्ति का परिणाम है कि खेत हरा-भरा हो गया। इस प्रकार सब सभा के कहने पर बलराम जी ने उसे क्षमा कर दिया। और सब अपने-अपने घर चले गये। ऐसी-ऐसी अनेकों ही चमत्कारिक लीलायें, (घटनायें) आप दिखाते रहे। आपके इन अलौकिक चरित्रों को देखकर सब लोग चकित रहने लगे। दिन-रात परस्पर इसी प्रकार की वार्ताओं का विचार करते रहते थे। हर दिन कोई न कोई आश्चर्यमय वार्ता इन लोगों के सामने आती रहती थी।

॥ शेर से गोमाता की रक्षा॥

एक समय आप जब गऊओं को लेकर घर पर आ गये, तो बलराम जी (आपके पिता) ने गौवों का निरीक्षण किया तो एक गऊ जो कि बच्चा देने वाली थी उसको न देखकर आप से पूछा कि उस गऊ को कहाँ छोड़ आये। रात्रि का समय हो गया, कहीं उसको कोई हिंसक जानवर जंगल में न मार डाले। इस प्रकार कहते हुए पिता जी आपके ऊपर बहुत कुपित

हुए। तब आपने कहा कि पिता जी आप कोई चिन्ता न करें। प्रातः काल ही गऊ को मैं आप के पास ला दूंगा। कोई जानवर उसको नहीं मार सकता। प्रातः काल होते ही आप जंगल में गये। जाकर देखा तो एक शेर ने गऊ को घेर रखा है और गऊ बच्चा दे चुकी है। बड़ी सावधानी से बच्चे को अपनी ओट में करके गऊ शेर की ओर मुख करके खड़ी है। आप को देखकर गौ बड़ी स्नेहमयी, आर्त वाणी से रम्भाने लगी गऊ के रम्भाने के उत्तर में आप ने कहा 'गौ माता अब आप चिन्ता न करें अब हम आ गये हैं" और आपने शेर की ओर संकेत करते हुए कहा कि तू जंगल का राजा होकर जीवों को दुःख देता है। राजा का तो काम है कि जीवों का पालन करे न कि उल्टा उन्हें दुःख दे। हमारे इस जंगल में तू ऐसा अन्याय करने लगा है? आज से हम तेरे को इस जंगल से निकालते हैं। यहाँ से तू अन्य किसी जंगल में चला जा क्यों कि हम इस जंगल में किसी हिंसक प्राणी को नहीं रहने देंगे। हमारा अहिंसात्मक लक्ष्य है। तब वह शेर आप के चरणों में सिर झुका कर चला गया। अर्थात् उस दिन से इस जंगल में किसी जीव ने किसी की हिंसा नहीं की। और आप गौ को लेकर घर लौट आये। इस प्रकार आपका गो-पालन और साथ ही साथ लोगों को सदूपदेश भी चलता रहा।

॥ जगद्गुरु जी का दो स्वरूप धारण करना॥

गढ़ मुक्तेश्वरे तीर्थे स्नानार्थं पितरौ गतौ।
द्विधा विधाय देहं तदैकेनात्र ररक्ष गा॥१०॥
तीर्थे चैकेन देहेन पित्रोरग्रेगतो विभुः।
साधुसारङ्गीनादेन लोकवृन्दं मुमोह सः॥११॥

एक समय अधिक भीड़ के भय से आपको गो चराने का निमित बनाकर माताजी तथा पिताजी गढ़ मुक्तेश्वर तीर्थ में स्नान करने चले गये, तब आप भी अपने योग बल से एक शरीर के दो शरीर बनाकर एक शरीर से तो गो चराते रहे और दूसरे शरीर से पिताजी के पहले ही मेले में जा पहुँचे और वहाँ पर किसी एक सारंगी बजाने वाले वृद्ध योगी साधु की

सारंगी लेकर ऐसा सुन्दर बिलावल राग गया कि, जिसको सुनकर वहाँ आये हुये मानव तो क्या पशु-पक्षी तक भी मोहित हो गये।

हरियाणा प्रान्त के लोग गढ़ (गण) मुक्तेश्वर के घाट गंगा जी के स्नान के लिए प्रायः जाया करते हैं। मृतक शरीरों की अस्थियाँ भी ये लोग यहाँ पर ही डालते हैं। हरिद्वार में ये लोग कुम्भ के पर्व पर ही जाते हैं। यहाँ पर (गढ़ मुक्तेश्वर) में तो कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को बहुत भारी मेला लगता है। यू.पी. गुडगाँव रोहतक इत्यादि जिलों से बहुत जनता एकत्रित होती है। यह दिन इस देश में "गंगा स्नान" के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवसर पर हर एक ग्राम से बहुत लोग प्रतिवर्ष गंगा स्नान के लिए जाते हैं। गंगा नहाने का समय आया छुड़ानी ग्राम-निवासी बहुत से लोग और माता रानी व बलराम जी गंगा-स्नान के लिए तैयार हुए। अपने माता-पिता को तैयार देखकर आपने भी आग्रह करना आरंभ कर दिया कि मैं भी गंगा नहाने के लिए चलूँगा। यह सुनकर आप के माता-पिता ने विचार किया कि वहाँ तो भीड़ बहुत होती है। भीड़ के कारण बहुत सारे बालक गुम हो जाते हैं यह विचार कर श्री आचार्य जी को कहने लगे कि यदि तू हमारे साथ चलेगा तो पीछे गायों की सँभाल कौंन करेगा। अभी तू बालक है जब बड़ा हो जायेगा तो तुझे भी ले चला करेंगे। वहाँ बहुत भीड़ होती है तू वहाँ गुम हो जायेगा इत्यादि वार्ता कहकर आपको समझाया आप माता-पिता की सब बातों को माना करते थे। और अधिक हठ नहीं करते थे। इनको यहाँ रोक कर अपनी बैलगाड़ी जोतकर ग्राम के लोगों के साथ बलराम जी तथा माता जी चले गये। भला आपके दृढ़ संकल्प को कौन रोक सकता है आपने अपने योग बल से एक शरीर के दो शरीर बना लिये। एक गायें चराने के लिए छुड़ानी रहा और दूसरा गढ़मुक्तेश्वर पहुँच गया। आप का पहुँचना क्या था-पहुँचना तो उसका होता जो पहले वहाँ न हो। चेतन रूप से आप सर्वव्यापक हैं। अपने संकल्प से ही वहाँ प्रकट हो गये। इस जगह पर पहुँच कर आपने गंगा-स्नान किया और स्नान करने के पश्चात् आप घूम फिर कर मेला देखने लगे और आपको इस बात पर भी ध्यान था कि माता-पिता या गाँव का कोई व्यक्ति हमें देख न ले। ऐसे घूमते-घूमते आपने एक जगह देखा कि बहुत लोग एकत्रित हो रहे हैं मन

का झुकाव उधर को हुआ कि चलकर देखें कि वहाँ क्या हो रहा है कौन है? आगे जाकर देखा तो एक योगी सारंगी के साथ भजन गा रहा है। तब आप लोगों के बीच से होकर योगी के पास आ गये और बहुत मीठी वाणी द्वारा आपने उस वृद्ध योगी से कहा कि बाबा जी यह सारंगी मुझे दो मैं भी एक दो भजन गा कर सुनाऊँ। आपके मीठे शब्द और रूप को देखकर वह योगी मोहित हो गया और कहने लगा ले बेटा गाओ, आपके हाथ में सारंगी आते ही आपने ऐसे मीठे स्वर में रागबिलावल को गाना आरम्भ किया। आपका सुरीला स्वर बहुत दूर-दूर तक पहुँचता था जिसे सुनकर बहुत दूर तक जनता एकत्र हो गई और शान्त होकर आपके शब्दों को सुनने लगी। एक तो आपका सुन्दर बाल स्वरूप और सुरीला शब्द ऐसा मोहित करता था। जैसे कि बीन सर्प को करती है। सारंगी का स्वर भी आपने अलौकिक ही निकाला जो हर एक से नहीं निकलता। इसी प्रकार आप "राग बिलावल" गा रहे थे जो कि आपकी वाणी में प्रकाशित है—

इसमें से तीन शब्द नीचे दिये जाते हैं

। राग विलावल।

राग बिलावल में से

ज्ञान तुरंगम[1] पीडया[2] ताजी[3] दरियाई[4]

पारवर[5] घाली प्रेम की चित चाबुक लाई।।टेक।।

परम धाम से ऊतरे हुकमी[6] सैलानी[7]।

शब्द [8]सिन्ध मेला करैं हंसों के दानी।।१।।

---

१. घोड़ा।
२. सजाकर तैयार किया।
३. घोड़ा।
४. दरियाई = दरिया में रहने वाला घोड़ा।
५. काठी के नीचे का नमदा या काठी।
६. हुकुम करने वाला या आज्ञा करने वाला।
७. सैल करने वाला या भ्रमण करने वाला।
८. ब्रह्मरूपी समुद्र।

असंख जुग परलो गए जद के गुणगाऊ।

गयान गुरज[९] है दस्त[१०] में ले हंस चितांऊ[११]॥२॥

शील हमारा सेल[१२] है और छिमा कटारि।

तत्व तीर तक मारि हूँ कहाँ जाय अनारि[१३]॥३॥

बुद्धि हमारि बन्दूक है दिल अन्दर दारू[१४]।

प्रेम प्याला सारका चित्त चकमख[१५] झारू[१६]॥४॥

तत्त्व[१७] हमारि तेग[१८] है जो असल असीलं[१९]

शूंरे[२०] सन्मुख लेत हैं कायर मुख पीलं[२१]॥५॥

घायल घूमें अरस[२२] में जिस लगी करारि[२३]।

औषध[२४] निश्चयनाम है जिनपीड़[२५] पूकारि॥६॥

पाखरिया[२६] सतलोक के रगजीत[२७] पठाये[२८]।

कहता दास गरीब है गुरूगम[२९] से आये॥७॥

---

९. गदा।
१०. हाथ।
११. प्रेरणा तथा उपदेश।
१२. सेला भाला की तरह एक शस्त्र।
१३. मूर्ख तथा अज्ञानी या अज्ञान।
१४. बन्दूक की गोली, बारूद।
१५. एक प्रकार का पत्थर जिससे आग निकलती है।
१६. साफ करने वाला तथा शुद्ध करने वाला।
१७. सार असली वस्तु आत्मज्ञान।
१८. तलवार।
१९. शुद्ध (बढ़िया)।
२०. शूरवीर योद्धा।
२१. पीला।
२२. आकाश।
२३. जबरदस्त (जोर से कठिन)।
२४. दवाई।
२५. दुःख।
२६. घुड़ सवार या निरीक्षक।
२७. युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले।
२८. भेजे।
२९. शक्ति ताकत।

नीचले शब्द में महाराज जी ने व्यवहारिक एवं परमार्थिक दोनों लाभ बताये हैं। यदि किसी को सर्प डस जाये (काट जाय) तो इस शब्द को सात बार पढ़कर मोर पंखो के द्वारा झाड़ने से सर्प का विष नहीं रह सकता। यह हमारा अनुभव किया हुआ मन्त्र है। दिन में २-३ बार झाड़ना चाहिए। झाड़ते समय सतगुरू जी के चरणों का ध्यान रखना चाहिए। और आन्तरिक सर्प (अज्ञान) जो सब को हमेशा काटता रहता है उसको दूर करने के लिए हमारे अन्दर ही जो ज्ञान है वही गारडू। (तांत्रिक) नित्य प्रति जो आत्मज्ञान एवं प्रणव और हंस मन्त्र का जप है उस अज्ञान रूपी सर्प को नाश करने वाला न्यौला (नकुल) है। इस शब्द को सिद्ध करने की विधि-चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण में तथा दिपावली (दिवाली) की रात्री में केवल सात बार इसका पाठ करें। और नित्यप्रति एक पाठ करना चाहिए। नित्य प्रति इस शब्द का पाठ किया जाये तो सर्प भय नहीं होगा।

घट ही अन्दर गारडू[३०] घोखे मर गईया।

सार शब्द चीन्हा[३१] नहीं कुछ भेद न लहिया ।टेक।

न्यौल[३२] जड़ी[३३] कुं सूंघकर ग्रह[३४] डंक लगावै।

सर्पन[३५] बंबी[३६] स्यो डसी[३७] कहीं जान न पावै॥१॥

बाजी अनहद बीन रे फुंबी[३८] फुनकारा[३९]।

भगलविद्या[४०] बाजीगरि[४१] जाने गुरु हमारा॥२॥

---

३०. सरप की जहर उतारने वाला या परमात्मा।
३१. जानना।
३२. न्यौला-एक जीव जो बूटी सूंघकर सर्प से लड़ता है।
३३. बूटी।
३४. सर्प।
३५. सर्प की स्त्री (सर्पणी)।
३६. दीमक की बनाई हुई बरमी (बंबी) जिसमें सर्प रहते हैं।
३७. पकड़ी।
३८. सर्प।
३९. फुंकार मारना।
४०. ब्रह्मविद्या।
४१. ब्रह्मविद्या को जानने की चतुरता।

सतगुरु मिलया गारड़ू जिन मन्त्र दीन्हा।
नाग[४२] दमन निर्गुण जड़ी बिषियर[४३] बश कीन्हा॥३॥
बाजीगर[४४] की डुगडुगी[४५] बिषियर बिरमाया[४६]।
घाल[४७] पिटारै लेचल्या घर बार नचाया॥४॥
ऐसा सतगुरु कीजिये बाजीगर पूरा।
दास गरीब अमर करै दिलदर्श जहूरा[४८]॥५॥

नाम का महात्म्य

सुनो महात्म नाम का मुजरै[४९] चल भाई,
अजामेल गनिका तिरे और सदन कसाई।टेक॥
बालनीक ब्रह्मलोक कुं गए नाद[५०] बजाई।
संख पचायन बाजिया पंडों जग रचाई॥१॥
बेर भीलनी के चढ़े स्योरि[५१] कुलहीनी।
चीर द्रौपदी के गहे सतगुरु बहु दीन्ही॥२॥
तन्दुल[५२] सुदामा के लिए, दुर्योधन आये।
अमृत भोजन छाड़ कर साग विदुर घर पाये॥३॥
रंका बंका तिर गये और सेऊ सूचा।

---

४२. एक प्रकार की बूटी की जड़ जिसको लगाने या खाने से सर्प का विष दूर हो जाता है।
४३. सर्प, अज्ञान।
४४. ब्रह्मवेत्ता, गुरु।
४५. डमरू।
४६. भरमा लिया।
४७. डालकर।
४८. प्रत्यक्ष-सुन्दर।
४९. प्रत्यक्ष।
५०. संख।
५१. भीलनी।
५२. चावल।

संमन के सतगुरु गए इनसे कौन ऊचा॥४॥
सूजा सैन पीपा तिरे और नानक नामा।
धन्ना भक्त से उधरे पहुँचे सत्तधामा॥५॥
ध्रुप्रहलाद उधर गये और जनक विदेही।
धर्मराय की बन्ध तोरिया सुखदे संग लेहि॥६॥
सुलतानी बादशाह से तज्या बल्ख बुखारा।
ऐसे सतगुरु बेलिया[५३] भल ओगणगारा[५४]॥७॥
गोपीचंद और भरथरि भल जोगवियोगी।
रामथली[५५] रोशन करि सीतल रस भोगी॥८॥
गोरख दत्त कबीर हैं रैदास कमाला।
दादू दरस परस[५६] भये पिया प्रेम पियाला॥९॥
केते[५७] अमली अमल में उस देश दिवाने।
ऊँचे कुल कुं कोसना[५८] होहिं धूर समाने॥१०॥
कौन ऊँच कौन नीच है चढ़ नाम निवारे[५९]।
गरीबदास आजिज तिरे बूड़े बट[६०] पारे॥११॥

इस राग के अन्दर २९ शब्द हैं जो बहुत बड़े-बड़े हैं। आप इस प्रकार जिस समय वहाँ गा रहे थे उसी समय आपके माता-पिता व ग्रामवासी भी वहाँ पर आ गये जहाँ पर कि आप गा रहे थे। आपको यहाँ गाते देखकर सब लोग बहुत आश्चर्य मानने लगे। और कहने लगे इसको तो हम लोग घर पर छोड़कर आये थे यह किसके साथ और कैसे यहाँ पहुँच गये।

---

५३. पार किया।
५४. अपराधी।
५५. रामनाम को प्रसिद्ध किया नेपाल काठमाण्डू में है।
५६. स्पर्श करना।
५७. कितने।
५८. निन्दना।
५९. नौका।
६०. अभिमानी।

कहने लगे अच्छा इसको गा लेने दो जब गा चुकेगा तब पूछेंगे। इसका ध्यान रखना। कहीं चुपके से न निकल जाये। और आपने भी देख लिया कि माता-पिता एवं सब ग्रामवासियों ने मुझे देख लिया है। और आपके गाते समय रुपये वर्षा की तरह बरसने लगे। बहुत रुपया लोगों ने चढ़ाया। जनता उस समय आपके शब्दों को इस प्रकार सुन रही थी जैसे मृग वीणाध्वनि पर मस्त हो जाते हैं। ऐसे ही लोग आपके शब्दों पर मस्त होकर कठपुतली बने बैठे थे। राग सम्पूर्ण करके वह जो रुपये आपके आगे चढ़े सम्पूर्ण इकट्ठे कर बाबा से कहा कि लो बाबा अपनी सारंगी और रुपये। आपका यह शब्द सुनकर योगी के मन में आपकी उदारता ने प्रवेश किया और वह कहने लगा बेटा आधे रुपये तू हमको देदे आधे स्वयं ले जा। आपने इस बात से बिल्कुल इंकार कर दिया कि मैंने पैसे लेने के लिये नहीं गाया। योगी के बहुत आग्रह करने पर भी आपने एक पाई तक स्वीकार नहीं की। तब आपकी यह उदारता एवं सन्तोष देखकर योगी अवाक सा रह गया और सब जनता भी परस्पर कहने लगी कि यह बालक तो कोई अलौकिक जान पड़ता है इससे परिचय करना चाहिये कि यह कौन है और कहाँ से आया है इसके लिये बहुत लोग उत्सुक थे कि पूछें यह बालक कौन है कहाँ रहता है। और ग्रामवासियों को भी बलराम जी ने सूचित कर दिया कि ध्यान रखना यदि इसने हम लोगों को देख लिया तो छिप जायेगा और हाथ नहीं आयेगा। इसलिए इसको प्रयत्न करके आप लोग पकड़ लायें, इससे पूछें कि यह यहाँ क्या करने आया है। परन्तु उन्हें कौन पकड़ सकता था। सब लोगों के व ग्रामवासियों के देखते-देखते आप लुप्त हो गये। न जाने कहाँ गये। बहुत खोज की गई परन्तु प्रयास असफल रहा। आखिर सब लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये। आपके माता-पिता को अत्यन्त चिन्ता हो गई कि यह बालक अब कहाँ सोयेगा कहाँ भोजन करेगा यहाँ इसका पोषण कैसे होगा। एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक यह पाँच दिन का मेला होता है। उनको खोजते हुये बराबर पाँच-दिन हो गये—खाना-पीना भी आपके माता-पिता ने त्याग दिया परन्तु आप मिले नहीं। और साथियों के साथ गाड़ी जोतकर आपके पिता छुड़ानी धाम को चल पड़े। परन्तु मन बहुत दुःखी था। पता

नहीं गरीबा कहाँ होगा यह सोचते हुये घर पर पहुँच गये। घर में आकर पूछा कि गरीबा यहाँ आ गया है या नहीं यह सुनकर सबने कहा कि यह गया कहाँ था? तब बलराम जी ने कहा कि गढ़ मुक्तेश्वर में हमने इसे देखा है। इतनी वार्ता सुनकर ग्रामवासी व परिवार के लोग हँसने लगे कि तुम स्वपन की बात कह रहे हो क्या? क्योंकि यह बालक तो कहीं गया ही नहीं। प्रातः काल गौवें लेकर जाता है और शाम को वापस आ जाता है। इस प्रकार परस्पर वार्तालाप हो रहा था इतने में आप भी वहीं पर आ गये तब आपसे पूछा गया कि बता तूँ गढ़ मुक्तेश्वर गया था और वहाँ सारंगी से गा रहा था? यह सुनकर आपने अपनी लीला को गुप्त रखने के लिये और ही और मीठी-मीठी बातें करके उस ओर से माता-पिता का मन हटा दिया। कुछ निर्णय न होने दिया। जब-जब माता-पिता आपकी इन अलौकिक शक्तियों को देखकर विचार करने लगते तो आप अपनी शक्ति से उन्हें भूला देते और मीठी-मीठी बातें करके दूसरी ओर उनका मन लगा देते। आप इस बात का ध्यान रखते कि माता-पिता मेरे में से पुत्र भाव न हटा लें। जब कभी वे (माता-पिता) सोचते कि यह तो कोई शक्तिशाली योगी है उसी समय आप उनकी बुद्धि को बदलकर उनके हृदय में पुत्र भाव उत्पन्न कर देते।

॥ बोदीदास से वार्तालाप॥

एक समय आप (जब कि आपकी आयु १५ वर्ष की थी) अपनी मौसी पठानी (रानी जी की बहन) के सुपुत्र आसानन्द के साथ उनके खेड़ा ग्राम में गये जो कि दिल्ली के समीप है। आप अपनी मौसी पठानी के घर पहुँचे तो मौसी ने आपका बहुत आदर सत्कार किया। जलपान के पश्चात् "आसानन्द" के साथ खेलने के लिये घर से निकले। आसानन्द जी आपको उस चौपाल (धर्मशाला) में ले गये जहाँ पर कि एक वैष्णव सम्प्रदाय के वृद्ध महात्मा रहते थे जिनका नाम बोदीदास था उनके अनेक शिष्य थे। आसानन्द ने और आपने जाकर महात्मा जी से जै गोपाल की। महात्मा जी ने आशीर्वाद दिया और आसानन्द से पूछा कि यह बालक कौन है और किसका पुत्र है इसका क्या नाम है और कहाँ से आया है

आसानन्द ने कहा स्वामीजी यह मेरी मौसी रानी का पुत्र है। मेरा भाई लगता है और यह छुड़ानी ग्राम का रहने वाला है। इसका नाम गरीबदास है। मेरे साथ यह छुड़ानी से मेरी माता को मिलने आया है। आसानन्द ने महाराज गरीबदास जी की कुछ अलौकिक शक्तियों का भी महात्मा जी के आगे वर्णन किया, कहा कि यह तो अनेक प्रकार की लीलायें करता है जिसको बुद्धिमान भी सुनकर चकित रह जाते हैं। यह सुनकर बोदीदास जी ने आचार्य श्री गरीबदास जी से पूछा कि हे बालक! तुम्हारा गुरु कौन है। न तो तुम्हारे माथे पर तिलक है और न गले में कण्ठी है तू किसका नाम जपता है? बिना गुरु और कण्ठी तिलक के तो व्यक्ति पशु के समान होता है चाहे वह कितना ही शक्तिशाली हो। रामायण में कहा है कि—

"गुरु बिनु भव-निधि तरै न कोई।
जो विरंच शंकर सम होई॥

इसी बात को महाराज कबीर जी इस प्रकार कहते हैं—

"गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन दान हराम है, पूछो वेद पुराण॥"

और वेद-पुराण भी इसी बात की पुष्टि करते हैं—

दीक्षाविहीनविष्णुश्चेत्, सर्व भवति निष्फलम्।
निर्गुरोर्दर्शनं कृत्वा, हतपुण्यो भवेन्नरः॥

यदि विष्णु भगवान् भी गुरु दीक्षा से हीन हों तो उनका किया हुआ सब पुण्य कर्म निष्फल हो जाता है और नुगुरे (गुरुहीन) व्यक्ति के दर्शन से पुण्यवान् पुरुष के भी पुण्य क्षीण हो जाते हैं।

इसलिये हमारे पूर्वजों ने यह मर्यादा चलाई है कि परमात्मा भी यदि मनुष्य शरीर में आता है तो उसको भी गुरु दीक्षा लेना अनिवार्य होता है। इसी मर्यादा को पूर्ण करने के लिये भगवान् राम ने वशिष्ठ जी से गुरु-दीक्षा ग्रहण की और भगवान् कृष्ण जी ने सन्दीपनी ऋषि से गुरु-दीक्षा ली और जितने भी कार्क कोटि में महापुरुष आये सबने इस मर्यादा को स्थापित किया। इसलिये सर्वसाधारण को तो इस मर्यादा के ऊपर चलना

आवश्यक है। गुरु-दीक्षा और गुरु-भक्ति के बिना परमात्मा की भक्ति में सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि आगे चलकर "सर्वंगी-साक्षी" के अंग में महाराज भी स्वयं अपने मुखार्विन्द से वर्णन करते हैं—

साखी- **गरीब चन्द सूर्य की आव लग, जे तन रहे शरीर।**
सद्गुरु से भेटा नहीं, तो अन्त कीर का कीर॥

तथा- **गरीब एक पलक जग जीवना जे सद्गुरु भेटा होय।**
रूम रूम तारी लगे, सूरति सुहंगयपोय पाय॥

यदि मनुष्य की आयु इतनी लम्बी भी हो जाये कि जितने दिन चन्द्रमा और सूर्य प्रकाशमान रहें तो भी उस जीव को बिना गुरु के शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। कितना ही धनवान क्यों न हो, कितने ही यज्ञ-दान क्यों न किये हों। परन्तु गुरुविहीन व्यक्ति अन्त में इस संसार से खाली ही जाता है। यदि गुरुमंत्र प्राप्त हो जाये तो एक घड़ी (२४ मिनट) की भी आयु सफल है। और भी अनेक धर्मशास्त्र व वेदपुराण इस बात का ढण्ढोरा देते है—

ब्रह्मविद्योपनिषत् के मंत्र २६ में इस प्रकार

हंस विद्यामृतं लोके नास्ति नित्यत्वसाधनम्।
यो ददाति महाविद्यां हंसाख्यां परमेश्वरीम्॥

इस लोक में अमृत रूप हंसविद्या से अधिक मनुष्य मुक्ति रूपनित्य वस्तु का साधन नहीं है। गुरु ही इस महाविद्या परमेश्वरी को तथा हंस रूप अर्थात् ब्रह्म विद्या को देते हैं।

इस प्रकार गुरु-मंत्र ग्रहण करना सभी मत अर्थात् धर्म स्वीकार करते हैं। संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो कि गुरु के बिना ईश्वर प्राप्ति कर ले। सभी सम्प्रदायों के आचार्यों ने सर्व प्रथम गुरु दीक्षा का लेना आवश्यक बताया है। इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि सब मनुष्य शरीर मात्र को गुरु-मंत्र लेना चाहिए। तत् पश्चात् उस वैष्णव साधु बोदीदास जी ने कहा कि हे बालक! हम तेरे को गुरु-मंत्र देकर अपना शिष्य बनाते हैं और साथ में लोभ देने लगे कि हमारे पास बहुत सम्पत्ति है—बहुत ग्राम हैं, उनका अधिकार हम तेरे हाथ में सौंप देंगे। तुम हम से गुरु-दीक्षा ग्रहण करो। हमारे बहुत से सेवक हैं और कितने ही शिष्य हैं जिन्होंने हमसे

दीक्षा ग्रहण कर रखी है, तुम भी उनमें शामिल हो जाओ और मेरी शिक्षा सुनो मैं अनुभव की वाणी बोलता हूँ, उसे तुम सुनो और ठाकुर जी की पूजा करो। उनका चरणामृत पियो जिससे सब अन्तःकरण के मलदोष दूर हो जायें। मैं तुमको सूक्ष्म मंत्र (राममन्त्र) सुनाता हूँ। जिससे सब अन्दर के विकार दूर हो जायेंगे। हमारा वैष्णव धर्म सबसे आदि (पुराना) कहा गया है। और हम व्रत करते हैं ठाकुर की पूजा करते हैं। तीर्थों में बहुत दूर देशान्तरों में घूमे हैं और जिस के माथे में तिलक गले में कण्ठी (तुलसी की लकड़ी का एक मनका) हो वह पूरा बैरागी कहा जाता है। जो व्यक्ति कण्ठी और तिलक से रहित है वह पशु तुल्य है। कण्ठी और तिलक वैरागियों की शोभा है। हम तुम से बार-बार कहते हैं कि तुम हमारे से दीक्षा ग्रहण करो। देखो यह हमारा सबसे श्रेष्ठ शिष्य योगीदास, सब योगियों में शिरोमणि योगीराज है।

हर समय परमात्मा के चिन्तन में इसका मन लीन रहता है और भी हमारे कई शिष्य हैं जो कि इस विद्या में निपुण हैं। गीता भागवत आदि ग्रंथों की अच्छी प्रकार व्याख्या करते हैं और बड़े त्यागी हैं जो कि अन्न से अतिरिक्त और कुछ संग्रह नहीं करते। ऐसे-ऐसे मेरे शिष्य हैं। यह सब वार्ता सुनकर सद्गुरु जी ने उत्तर देना आरम्भ किया।

महाराज जी ने कहा कि बोदीदास जी इस संसार में थोड़े दिन रहना है क्योंकि मनुष्य की आयु बादलों की बिजली की भांति चंचल है कहा भी है-

जैसी कांटे ओस है, ऐसी तेरी आव,

गरीब दास कर बन्दगी बहुर न ऐसा दाव॥

नलिनीदलगतजलवत्तरलं तद्वज्जीवनमतिशयचपलम्।

क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका॥१॥

जैसे कमल के पत्ते पर पड़ा हुआ जलकण अत्यन्त चलायमान होता है, और थोड़े ही समय में वह नष्ट हो जाता है। वैसे ही मानव जीवन भी चंचल है, कब नष्ट हो जाय इसका कोई भरोसा नहीं।

ऐसी विषम परिस्थिति में सद्गुरु जी का थोड़ा सा भी सहवास हो जाता है तो मनुष्य इस संसार रूपी महाभयंकर समुद्र से पार हो जाता है। इस थोड़े से जीवन को बहिर्मुख क्रियाओं में नष्ट नहीं करना चाहिये। आप जो ठाकुर पूजा, तिलक-कण्ठी, तीर्थ-व्रत आदि को परम-पद, मान रहे हैं उस से तो कुछ भी कार्य सफल नहीं होगा। यह तो बाह्य-क्रियायें हैं इनका कुछ महत्व नहीं है, जब तक कि अन्तरिक शुद्धि न हो। अन्तरिक शुद्धि आत्म-चिन्तन द्वारा ही हो सकती है। बाहर कि क्रियाएँ तो ऐसी हैं। यथा-

गरीब जैसे कलश कुम्हार का ऊपर चित्र अनूप।

वस्तु नहिं तिस मध्य है, जैसे जल बिन कूप॥

अर्थात् जैसे कुम्हार घड़े को ऊपर से चित्रकारी द्वारा सजा देता है और उसके अन्दर कोई वस्तु न हो तो उसकी चित्रकारी से क्या लाभ हो सकता है? अर्थात् जैसे बिना जल का कुआँ किसी की प्यास को शान्त नहीं कर सकता उसी प्रकार आपके तिलक कण्ठी-माला आदि से आन्तरिक शुद्धि के लिये कुछ सहायता नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त यथा-

जैसे चन्दन सर्प लिपटाई।

शीतल तन भया विष नहीं जाई॥

जिस प्रकार से सर्प चन्दन के वृक्ष से लिपट जाते हैं। चन्दन की शीतलता से उनके बाह्य अंग शीतल हो जाते हैं परन्तु आन्तरिक जो विष है वह तो कम नहीं होता। इसी प्रकार से बोदीदास जी आपकी कथन की हुई, क्रियाओं से सिद्ध है कि आपको आत्म-सुख की उपलब्धि नहीं हुई है केवल विक्षेप ही प्राप्त हुआ है।

और जो आपने बार-बार इस बात की पुष्टि की है कि हम आपसे दीक्षा ग्रहण करके कर्मकाण्ड का पालन करें उसके लिए हम आपको एक शब्द में उत्तर दे देते हैं। यथा–

कर्म काण्ड उरले व्यवहारा। नाम लग्या सो गुरु हमारा॥

हम इस झूठे कर्म के चक्कर में नहीं पड़ते हैं। कर्मों का तो यह जाल है जिसमें फँसा हुआ यह जीव जन्म-मरण के चक्कर काटता है। और

कर्म-जाल से कभी नहीं छूटता और कर्म-काण्डी गुरु भी किसी जीव को नहीं छुड़ा सकता। आप तो इन जीवों को उल्टे चक्कर में डालकर कर्म रूपी गड्ढे में ढकेल रहे हैं। हमारा तो गुरु वह है जो कर्मों के जाल से जीव को छुड़ाकर अमृततत्व की प्राप्ति कराता है। यदि आप कहें कि कर्म-काण्ड से अन्तःकरण शुद्ध होता है और कहीं वेदशास्त्र में कर्मों का निषेध नहीं; तो उसका उत्तर वेद-मंत्र से ही देते हैं। यथा-

ज्ञान-शौचं परित्यज्य बाह्ये यो रमते नरः।

स मूढः काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्टं गृह्यति सुव्रत।

(श्री जवाल दर्शनोपनिषत् खण्ड १ मन्त्र २१)

अर्थात् जो पुरुष ज्ञान रूपी शौच (शुद्धि) का परित्याग करके बाहरी जल-मिट्टी से शुद्धि में प्रवृत्त रहता है सो पुरुष ऐसा मूढ़ है जैसे कोई स्वर्ण को त्याग करके लोहे के टुकड़े को उठाता है। मृत्तिका (मिट्टी) के ढेले को उठाता है।

ज्ञानामृतेन तप्तस्यकृतकृत्स्य योगिनः।

न चास्ति किञ्चित् कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्ववित्।

लोकत्रयेऽपि कर्त्तव्यं किञ्चिन्नास्त्यात्मवेदिनाम्।

(श्री जवाल दर्शनोपनिषत् खण्ड १ मन्त्र २२)

जो योगी पुरुष ज्ञान रूपी अमृत से संतृप्त हैं तिस कृत-कृत्य (जो सब कुछ कर चुका) के लिए किञ्चित् मात्र भी कर्त्तव्य नहीं है। वह ब्रह्मवेत्ता है और आत्म ज्ञानी पुरुष को तीन लोक में भी कोई कर्त्तव्य नहीं रह जाता।

इसके अतिरिक्त जो आप ठाकुर पूजा में जोर देते हैं यह भी आपकी एक अज्ञानता ही है। अज्ञान का ही फल है क्योंकि ठाकुर पूजा आदि जो क्रियायें हैं वे तो केवल मूढ़ पुरुषों की प्रवृत्ति के लिए शास्त्र एवं वेदों ने कथन करी हैं वास्तव में यह ठाकुर पूजा कल्याण कारक नहीं है यथा-

गरीब पत्थर पूज दुनियां मुई, पिरतमा पानी लाग।

चेतन होय जड़ पूजहिं, फूटे तिनके भाग॥

सब दुनिया के लोग मूर्ति पूजा में लगे हैं। उस पर जलादि चढ़ाते हैं

इस रूप से अपना समय व्यर्थ खो रहे हैं। मनुष्य स्वयं चेतन होकर जड़ की पूजा करता है। इससे अधिक भाग्य हीन भला कौन हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

निःसन्देह देव नहिं दूजा, ना जहाँ पत्थर पानी पूजा।

कण्ठी माला ना मृगछाला, ना चन्दन के छापे।

पत्थर पूजैं पद नहीं बूझैं, पूरण ब्रह्म न लापे।

(सत्गुरु की वाणी)

अर्थात् इसमें सन्देह नहीं है एवं सब संशय रहित यह वेदान्त सिद्धान्त है कि एक शुद्धानन्द चेतन के अतिरिक्त और कोई दूसरा देव ही नहीं है। उस अवस्था में पत्थर पानी की पूजा नहीं है। ठाकुर पूजा तो केवल मूढ बुद्धि मनुष्य, जो बालकों की भाँति हैं उनके लिए कल्पना की गई है। वास्तव में प्रतिमा आदि की पूजा में कोई महत्व नहीं है। कण्ठीमाला धारण करना-मृगछाला पहनना, तिलक धारण करना यह सम्पूर्ण क्रियायें भेद बुद्धि वाले मनुष्यों के लिए हैं जो उसका विवार नहीं करते बाह्य क्रियाओं में लगे रहते हैं। जो आत्मदेव इस देह रूपी मन्दिर में स्थित है उसका ही पूजन करना चाहिये बाह्य क्रियाओं से कुछ लाभ नहीं है। इस बात को वेद मन्त्र भी पुष्ट करते हैं—

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः।

त्यजेज्ज्ञानं निर्माल्यं सोहं भावेन पूज्यते॥

(मैत्रेयोपनिषद् अ. २ श्लोक १)

अर्थात् महादेव जी ने मैत्रेय ब्राह्मण से कहा कि यह पंच भौतिक (पाँच तत्त्व) शरीर देवालय (मंदिर) रूप है। इस देह रूप मन्दिर में सोजीवात्मा केवल प्रकाश स्वरूप शिव (कल्याण) देव स्थित है। उस प्रकाश स्वरूप आत्मा, शिव रूप आदित्य तेजो मय देवको साक्षात् कर एवं उसके दर्शन करो और उस आत्मरूप देव को अज्ञान रूप नैवेद्य (मेवा आदिक-भोग सामग्री) अर्पण कर दो और जो सत् (सत्य) ज्ञान आनन्द स्वरूप ब्रह्म है सो मैं हूँ ऐसे अद्वैत भाव से अपने आत्मदैव का पूजन करो।

सर्वभूतस्थितं देवं सर्वेशं नित्यमर्चयेत्।

आत्मरूपमालोक्य ज्ञानरूपं निरामयम्॥

(ब्रह्मविद्यो पानिषिद ७७-३)

सर्वभूत प्राणियों में व्यापक रूप से स्थित प्रकाशमय देव सब के ईश्वर ज्ञान स्वरूप सर्वदुःखों से रहित ब्रह्म को अपना आत्मा जानकर अद्वैत भाव से पूजन करे। इस प्रकार आन्तरीय पूजा का विधान वेद व सत्शास्त्र ने किया है और इस प्रकाशमान् आत्मदेव को चढ़ाने के लिए पुष्प इस प्रकार से वर्णन किये गये हैं। यथा–

अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करुणाग्रहः।

तृतीयकं भूतदया चतुर्थ क्षांतिरेव च॥५॥

शमस्तु पञ्चमं पुष्पं ध्यानं चैव तु सप्तमम्।

सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः॥६॥

पद्म पुराण में कहा है कि ब्रह्मा-विष्णु-शिव के प्रेरक केशव अन्तर्यामी परमात्मा के सन्तोष के लिए ही यह आठ पुष्प हैं।

१. मन-वाणी शरीर से किसी भी प्राणी (जीव) को पीड़ा न देना। यह अहिंसा नामक प्रथम पुष्प है।
२. इन्द्रियों का विषयों से निग्रहः (रोकना) यह दम (दमन) नामक द्वितीय पुष्प है
३. सर्वभूत-प्राणियों पर दया करना यह दया नामक तृतीय पुष्प है।
४. निर्बल प्राणियों के अपराध करने पर भी क्रोध न करना क्षमा नामक चतुर्थ पुष्प है।
५. विषयों से मन को रोकना यह शम नामक पञ्चम पुष्प है।
६. और एवच के ग्रहण से यथा लाभ, प्रारब्ध के अनुसार जो प्राप्त हो। उसी में सन्तोष करना, यह छठा पुष्प है।
७. ध्येयाकार (ब्रह्माकार) वृत्तिका करना; ध्यान नामक सप्तम पुष्प है।
८. और कपट से रहित जैसा देखा है और वैसा सुना है वैसा ही सत् भाषण करना अष्टम पुष्प है।

इन आठ पुष्पों को चढ़ाने से (पालन करने से) अन्तर्यामी केशव कल्याणकारी परमात्मा सन्तुष्ट होते हैं। यह अपने आत्मदेव को प्रसन्न करने का मुख्य उपाय है।

और जो आप कहते हैं कि हमने सब तीर्थ किये हैं यह तो आप लोगों ने अपनी बड़ाई का एक ढोंग बना रखा है कि आपको लोग अच्छा माने कि बाबा जी ने तो बड़े तीर्थ किये हैं। वास्तविक तीर्थ तो आप से दूर नहीं– पाती पंच पौध्य कर पूजा, देव निरंजन और न दूजा।

गरीब अठसठ तीर्थ भरमना, भटक मुआ संसार।

बारह[१] बानी ब्रह्म है जाका करो विचार॥१॥

गरीब सरजू सिर्जन हार है जल नहाये क्या होय।

भक्ति भली रघुनाथ की, नहीं बीज दिल बोय॥२॥

गरीब मन-मथुरा तन-द्वारका काया काशी खेत।

गरीब दास यह मुक्ति है, दरसे दर्पण सेत॥३॥

(१) जो अठसठ तीर्थों में जाकर दुःख उठाना और विक्षेप को प्राप्त होना यही भटकना है। क्योंकि यात्रा काल में तमो गुण बढ़ जाता है। तमो गुण के बढ़ जाने से शान्ति नहीं होती। जो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक बारह वानी कहिये शुद्ध परमात्मा उसका विचार करो कि जब वह सर्वत्र है तो क्या हमारे अन्दर नहीं। जब हमारे अन्दर है तो हमें बाहर भटकने की क्या आवश्यकता है।

(२) जैसे आप सरयू नदी की उत्तमता मान रहे हैं वास्तविक सरयू तो सब जीवों को उत्पन्न करने वाला परमात्मा ही है। उसका ध्यान करना सरयू का स्नान करना है। भगवान् राम की सबसे उत्कृष्ट जो भक्ति, उसका बीज तो आपने अपने हृदय में बोया ही नहीं। कल्याण तो परमात्मा की पराभक्ति से ही होगा।

---

१. जैसे बारह बानी का तात्पर्य है कि जैसे बारह बन्नी का स्वर्ण सब स्वर्णों से उत्तम होता है वैसे ही ब्रह्म भी सर्वव्यापक हे।

(३) मन की जो शुद्ध अवस्था है वही मथुरा पुरी है और यह मनुष्य शरीर ही द्वारिका पुरी है। इसमें आकर ही जीव कल्याण को प्राप्त हो सकता है और काशी पुरी यह मनुष्य जन्म ही है। जैसे इन बाहरी पुरियों में जाने से मुक्ति लिखी है वास्तव में वह मुक्ति के देने वाला सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र यह मनुष्य शरीर है। इस मुक्ति रूपी क्षेत्र का लाभ ज्ञानवान् पुरुष ही लेते हैं। अज्ञानी जीव तो बाह्य पत्थर-पानी में ही लगे हुये भटकते रहते हैं। परन्तु वह आत्मतत्व प्राप्त नहीं होता उस आत्म तत्त्व की प्राप्ति तो सच्चा सद्गुरु ही करा सकता है। और उस आत्म तत्त्व के प्राप्त होने पर सब तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है। इस वार्ता को धर्म शास्त्र कार भी पुष्ट करते हैं—

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्ता च सर्वावनिः।
यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिलादेवाश्च संपूजिताः॥
संसाण्च्च समुद्धृतः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ।
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्य मनः प्राप्नुयात्॥

जिस व्यक्ति का मन क्षणमात्र भी ब्रह्म के विचार में लगा हुआ है तिस पुरुष ने सब तीर्थों के जल में स्नान कर लिया है तथा सब पृथ्वी का तिस पुरुष ने दान कर लिया है, तथा हजारों ही यज्ञ तिस पुरुष ने कर लिये हैं तथा सम्पूर्ण देवताओं का पूजन भी तिस पुरुष ने कर लिया है। संसार समुद्र से अपने पित्रों का उद्धार कर लिया है तथा सो पुरुष सम्पूर्ण संसार के पूजने योग्य होता है। इतना महत्व तो एक क्षणमात्र ब्रह्म-विचार करने से होता है। तो फिर बाह्य जल प्रतिमा आदि क्रियाओं से विक्षेप को क्यों प्राप्त होते हो।

आत्मतीर्थं समुत्सृज्य वहिस्तीर्थानि यो व्रजेत्।
करस्थं स महा रत्नं त्यकत्वा काचं विमार्गते॥२४॥

(श्री ज्वालदर्शनोपनिषत्)

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसतेनरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमषं पुष्करं तथा॥२५॥

(स्वद. खण्ड २. अयोध्या म. अ. १०.५६)

श्री ज्वालोपनिषद् में कहा गया है कि सत्-ज्ञान-आनन्द-स्वरूप, आत्मरूप जो तीर्थ है उसका परित्याग करके जो पुरुष मृत पाषाण (मिट्टी, पत्थर) जलरूपक बाहर के तीर्थों में भ्रमण करता है।

ऐसा पुरुष बुद्धि हीन माना जाता है। जैसे कोई पुरुष हाथ में प्राप्त हुए अमूल्य रत्न को त्याग करके तुच्छ काँच के टुकड़े की खोज करता है इसी प्रकार बाह्य भ्रमण करने वाले पुरुष की गति है।

स्कन्द पुराण के अयोध्या माहत्व-में कहा है कि इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष जिस किसी भी स्थान में वास करता है तिस पुरुष को उसी स्थान में महान् पुण्यवान तीर्थ काशी कुरुक्षेत्र तथा नेमीषारण्य[२] और पुष्कर आदि तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है।

गरीब कोटिक तीरथ बरत कर कोटि गज कर दान।
षड़दम केरी बन्दगी, नहिं जग अनुमान॥

करोड़ों ही अश्वमेघ यज्ञ किये हों क्रोड़ों ही तीर्थों में स्नान और करोड़ों ब्रत और हाथियों के दान किये हों परन्तु एक पल भर (२४ सेकेण्ड) भी आत्म-चिन्तन व परमात्मा का ध्यान किया जाय तो वे करोड़ों अश्वमेघ यज्ञादि उसकी तुलना नहीं कर सकते।

इत्यादि अनेक उदाहरणों के द्वारा (जो वेद और पुराणों के हैं) यह सिद्ध होता है कि ज्ञानवान् पुरुष एवं आत्मज्ञान के अधिकारी के लिये बाह्य तीर्थ आदिकों का भ्रमण करना प्रतिबन्धक है। और जो आप (बोदीदास) ने उपवास की पुष्टि की है वह भी केवल बाह्यमुख पुरुषों के लिये सहायक है जो विचारवान् हैं उनका उपवास तो यह है—

उपसमीपे यो वासो जीवात्मपरमात्मनोः।
उपवासः सविज्ञेयो न तु कायस्य शोषणम्॥२४॥

(ब्राहो. अध्या. २-३६)

---

२. "नैमीषारण्य" वह तीर्थ है जहाँ सूत जी ने अठासी हजार ऋषि-समूह को अठारह पुराणों की कथा सुनाई थी। जो अयोध्या के समीप पड़ता है।

बराहउपनिषद् में उपवास का यह अर्थ किया है कि जीवात्मा और परमात्मा की उप-समीप में एक अद्वैत अभेद (दोनों का एक रूप होकर) स्वरूप से जो दशा है ऐसे अद्वैत (समभाव) विषय का नाम उपवास जानना। यह ब्रह्मवित्त (ब्रह्म के जानने वाले) महात्माओं का उपवास है। और अज्ञानियों का हठ करके जो क्षुधा (भूख) पिपासा को हठ से रोकने का जो उपवास है वह विचारशील महात्माओं का नहीं है क्योंकि शुद्ध बुद्ध (व्यापक) सच्चिदानन्द ब्रह्म सब का आत्मा होने से नित्य प्राप्त है।

आप ने अपने मुखार विन्द से अनुभव रूप वाणी द्वारा इस प्रकार कहा कि–

देव ही नहीं तो सेव किसकी करूँ,
किसे पूजूँ कोई नहीं दूजा।
दूजा करता ही नहीं तो कीर्ति किसकी करूँ,
पिण्ड ब्रह्मण्ड में एक सूझया॥१॥
जाग ही रहा तो जाग किसको कहूँ,
सूता ही नहीं तो किसको जगाऊँ।
खोया ही नहीं तो खोज किसकी करूँ,
बिछड़्या ही नहीं जिसे ढूंढ़ ल्याऊँ॥२॥
बोलता संग और डोलता है नहीं,
खलक के कोट में अलख छिप रह्या प्यारा।
गैव सैं आया और गैव छिप जायगा रे,
गैव ही गैव रच्या पसारा॥३॥
प्राण कुं सोध कर मूल कुं दर गहो,
वेद के धुन्ध सैं अलख न्यारा।
वेद कुरान कुं छाड़दे बावरे,
नूर ही नूर कर ले जुहारा॥४॥

कर्मना भर्मना छाड दे बावरे,
छाड सब वरत इक बैठ ठाहीं।
दास गरीब प्रतीत तहकीक हैं,
ब्रह्मण्ड की ज्योति इस पिण्ड माहीं॥५॥

उपरोक्त सम्पूर्ण प्रकर्ण का आशय इस एक ही शब्द में वर्णन कर दिया है कि जब अपने शुद्ध सच्चिदानन्द आत्मास्वरूप से भिन्न कोई 'कर्त्ता' ही नहीं तो सेवा किसकी की जाय। कीर्ति भी उसी की होती है जो अपने से भिन्न हो। पिण्ड से लेकर अनेक ब्रह्माण्डों में एक ही आत्मा व्यापक है। जब कोई अपने से भिन्न है ही नहीं तो फिर उसकी खोज करना भी सर्वथा व्यर्थ ही है। अपने से बिछुड़े हुए को ही खोजा जाता है। किन्तु किसी का अपना स्वरूप बिछुड़ता ही नहीं है अतः उसकी किसी दूसरे स्थान पर खोज की जाय यह मूर्खता नहीं तो और क्या है? आत्मा स्वयं सोता भी नहीं है अतः उसके जगाने का प्रयास करना ही व्यर्थ है। यदि यह कहा जाय कि आत्मा कहाँ है उसका उत्तर यहीं है कि वह आत्मा सृष्टि में ही छिपा है एवं इस ही सृष्टि रूपी किले में व्यापक है। वह सबके साथ रहता है और चलायमान नहीं होता तथा चल अचल दोनों भाव से रहित है। गुप्तरूप से वह आता भी है और गुप्त रूप से चला भी जाता है। वास्तव में आने-जाने की क्रिया उसमें है ही नहीं।

गरीब नहीं जागे नहीं सोवता, नहीं वोह गवन करंत।
नहीं खाता नहीं पीवता, नहीं वोह पंथ चलंत॥

और आश्चर्य यही है कि उस आत्म तत्त्व (शुद्ध सच्चिदानन्द घन ब्रह्म) की लीला आश्चर्यमय है। गुप्तरूप (आश्चर्य रूप) से ही सृष्टि को रच देता है। सृष्टि को रचकर उसमें समा जाता है हर कोई उसे समझ भी नहीं सकता। अपने प्राणों की गति को जिसने विचार द्वारा समझकर अजपा जाप द्वारा अपनी चित्त वृत्ति को एकाग्र किया है उन्होंने ही उस मूल तत्त्व-पारब्रह्म-परमेश्वर को अपने आत्मरूप से जाना है। जब तुम भी ऐसा करोगे तो तुमको अपना स्वरूप सूझेगा, और जो आप वेद या शास्त्रों के

पाठ से ही कल्याण समझते हैं यह आपका विचार सत्य नहीं है। क्योंकि इस बात को श्री कृष्णचन्द्र जी भी गीता में अर्जुन के प्रति कहते हैं। यथा—

"त्रैगुण्या विषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवार्जुन।"

कि- हे अर्जुन चारों ही वेद तीनों गुण अर्थात् (सत-रज-तम) तीन गुणों से युक्त सृष्टि का ही वर्णन करते हैं। तू तीनों गुणों से अतीत हो जा अर्थात् उनसे परे हो जा।

गरीब वेद विलम्बे हद में, वह तो बेहद ठौर।
जाने महल ना अर्थ गति, कहे और की और॥
गरीब अरबी, तुर्की-फारसी, हिन्दवानी पढ़ यार।
इसमें संसय है नहीं, यह जम की वेगार॥
गरीब पढ़ना गुनना चातुरी यह तो बात सुगम।
सत्त सुकृत और वन्दगी, यह तो बात अगम॥

इत्यादिक अनेकों प्रमाण हैं जिनके द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि केवल पठन-पाठन (पढ़ने-पढ़ाने) से भी वह आत्म-तत्त्व जाना नहीं जा सकता। वह जो प्रकाश स्वरूप पारब्रह्म अपना आत्मा है उसी का पूजन करो अन्य कर्मों के चक्कर में पड़कर नाना प्रकार के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। इन सब सकाम कर्म और व्रत आदि बाह्य साधनों का परित्याग करके एक शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा को जानो। वह विश्वास व निश्चय से ही जाना जा सकता है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में व्यापक है। अब आप सब बहिरंग (बाहर) साधनों का परित्याग करके अन्तरंग (अन्दर के) साधनों द्वारा अपने आत्मा में स्थित हो जाओ जिससे कि आपको स्थाई (एक रस) शान्ति प्राप्त हो। यह अभिमान् छोड़ दो जो कि आप कहते हो कि आपका बहुत बड़ा भेष (सम्प्रदाय) है और सबसे उत्तम है। यह तो एक बहुत बड़ा बन्धन है इस बन्धन में पड़कर जीव अपने पथ से भ्रष्ट हो जाता है—

गरीब पन्थों पड़े सो बह गये, हमरी बाट अपंथ।
बचन हमारा मानियों, सेवो सतगुरु सन्त॥

अर्थात् हमारे शब्द को मानकर आप इन झूठे सम्प्रदायक-बन्धनों को छोड़कर सद्गुरु की सेवा में लग जाओ जिससे आपका कल्याण हो।

गरीब भेखों से भगवन्त का, दूर महल है दीप।
मंझ बसे सूझे नहीं, ज्यों मोती मध्य सीप॥

जो व्यक्ति साम्प्रदायिक बन्धनों में बँधे हुये हैं उनसे तो परमात्मा सदा ही अत्यन्त दूर है यह तो उनका बहुत बड़ा अज्ञान है। इनसे तो परमात्मा का स्थान तथा उनका देश बहुत दूर है और अति समीप होते हुए भी दूर है। सबकी बुद्धि रूपी गुफा में वह आत्मा छिपा हुआ है। द्वैतवादी उसे देख नहीं सकता। जैसे सीप के अन्दर के मोती को साधारण व्यक्ति देख नहीं सकता।

यह सब वार्ता सुनकर बोदीदास को बहुत शान्ति मिली और उनको महाराज गरीबदास के अमृतमय उपदेश से आत्म अनुभव होने लगा। तब बोदीदास ने कहा हे लड़के आपने तो बहुत आश्चर्यजनक वार्ता कही। मैं आपसे बलिहार जाता हूँ। आप धन्य हैं और आपके माता-पिता भी धन्य हैं। ऐसा ज्ञान तुमने मेरे को सुनाया जिसको सुनकर मेरा सारा भ्रम चूर-चूर हो गया। सभी बातों का निर्णय तो तुमने कर दिया। परन्तु हम वैरागी (वैष्णव) तो तीर्थ व्रत आदि की फाँसी को ही गले में डाले फिरते हैं। भेषों (सम्प्रदायों) की बहुत बड़ी कैद है और सभी उसके बन्धन में हैं। सभी अपने-अपने पक्ष की कहकर उसी में उलझे हुए रहते हैं। आप जैसे महापुरुष ही निष्पक्षता का उपदेश देकर जीवों का कल्याण करते हैं। अब यदि मैं आपसे दीक्षा ग्रहण करूँ तो हमारे सम्प्रदाय के लोग मुझे तंग करेंगे। क्योंकि वैष्णव सम्प्रदाय बहुत बड़ा है और उनका बहुत प्रभाव है और जब मैं आपके ज्ञान को देखता हूँ उस समय तो आपसे बड़ा कोई नहीं दीखता, जब आपकी अल्पायु की ओर देखने लगता हूँ। तो लज्जा आती है क्योंकि मेरी वृद्ध अवस्था है। तू बालक है तेरे से दीक्षा लेने में मेरे को बहुत लज्जा आती है वैसे आपके उपदेश ने मेरा तन मन हर लिया है। क्योंकि आपका उपदेश उच्च कोटि का है। अतः आपको मैं दण्डवत् प्रणाम् करता हूँ और जय गोपाल बुलाता हूँ। क्योंकि आपने अद्भुत

उपदेश सुनाया और अपनी दृष्टि से ही मुझे निहाल कर दिया।

तेरा कौन गुरु को कहिये, किन तोहि भेद लखाया।
कै तूं आप विज्ञानी सत्गुरु मम कारण चल आया॥

(जैतराम जी की वाणी से)

तेरा गुरु कौन है इस विषय में क्या कहा जाय कि ऐसा अद्भुत भेद तेरे को किसने बताया। तू आप ही परमात्मा है जो बालक रूप धारण करके मेरा कल्याण करने आया है। हम तो आत्मा के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। आप में तो सद्गुरु जैसे लक्षण प्रतीत होते हैं।

गरीबदास तू सत्गुरु पूरा, सर्व गति का मूलम्।
बोदीदास कहै वैरागी, है दुल्हे सिर दूलम्॥

(जैत. वाणी)

बोदीदास जी ने कहा कि हे गरीब दास जी आप पूरे सद्गुरु हैं। सब का मूल हैं यानि सब की गति आप-पर्यन्त ही है। आप साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर हैं। आप सब के शिरोमणि हैं एवं परे से परे हैं।

बोदीदास कहै करजोड़े, तुमरा ज्ञान अपारा।
जैतराम ऐसे सब भाख्या, नहीं जाने संसारा॥

स्वामी जैत राम जी कहते हैं कि बोदीदास जी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा कि हे गुरुदेव आपका ज्ञान अपार है। आपके इस आत्मज्ञान (जो कि आपने मेरे प्रति कहा है) को संसारी जीव एवं जो बाह्य कर्मों में लगे हुए व्यक्ति हैं वह नहीं समझ सकते। इस प्रकार बोदीदास जी ने सद्गुरु जी की अनेक प्रकार से स्तुति की।

तत्पश्चात् सद्गुरु जी ने बोदीदास से कहा कि हमने जो उपदेश दिया है। आप उसका अनुसरण करते हुए अपने जीवन को सफल बनावें। यह कहकर अपनी मौसी पठानी से आज्ञा लेकर छुड़ानी धाम में वापिस आ गये।

उनकी वाणी का ऐसा कथन साधारण व्यक्ति के लिये समझना कठिन था। ग्राम के लोग जो उस समय वहाँ उपस्थित थे वे सद्गुरु जी के

शब्दों को सुनकर कहने लगे कि अरे, यह बालक तो बड़ा बुद्धिमान् प्रतीत होता है। जैसी ज्ञान की बातें अभीं वह कह रहा था हमने कभी सुनी नहीं। सद्गुरु जी ने जो अगम ज्ञान बोदीदास जी को सुनाया वह वार्ता बहुत लम्बी है ग्रंथ के बढ़ने के कारण नहीं दे रहे हैं वह जैतराम जी की वाणी पृ. १९७ में देख लें।

इसी प्रकार से अनेक व्यक्तियों को नित्य प्रति अपने आत्म ज्ञान रूपी उपदेश द्वारा सन्मार्ग एवं आत्मानुभव करवाते थे। बाल चरित्र करते-करते ही आपने अनेक व्यक्तियों को ज्ञान मार्ग का उपदेश दिया।

गुरु दीक्षा

दस वर्ष की आयु में आपने सनातन (प्राचीन) एवं प्राचीन ऋषि महात्माओं की रीति को स्थापित करने के लिये अपने मन में विचार किया कि बिना गुरु-दीक्षा के संसारी लोगों को समझाने में कठिनाई पड़ेगी। इस लिये गुरु धारण करना चाहिये।

यह विचार कर एक दिन आप बालकों के साथ गौएँ चराने बाहर गये, गौओं का भार साथी बालकों को सौंप कर आप एकान्त में बैठ गये और विचार किया कि अपने ही दो रूप धारण करने चाहियें। यह निर्णय करके आप पद्मासन लगा कर ध्यान करने बैठ गये। उधर बालकों ने देखा कि दोपहर होने वाला है परन्तु गरीबदास अभी तक नहीं आया वह अकेला बैठकर क्या कर रहा है? यह सोचकर बालक आपके समीप आये। बालक अभी कुछ कहना ही चाहते थे कि इतने में ही आकाश मण्डल जगमगा उठा। करोड़ों सूर्यों का प्रकाश दिखाई देने लगा जिसको देखकर सब बालक चकित रह गये। परस्पर कहने लगे अरे! यह क्या है? इतना प्रकाश कहाँ से आया। कहीं सूर्य नारायण तो पृथ्वी पर नहीं उतर आये हैं? यह सुनकर दूसरे बालक ने कहा कि यदि सूर्य होते तो उनके तेज से अधिक उष्णता (गर्मी)बढ़ती। लेकिन यह प्रकाश तो शान्त और शीतल है। इतने में ही एक दिव्य आभा से युक्त देवमूर्ति आकाश से पृथ्वी पर उतरती हुई दिखाई दी उसी स्थान पर जहाँ कि आचार्य जी समाधि लगाये

बैठे थे। कबीर साहिब को देखकर कुछ बालक तो घबरा गये कि यह कौन आ गया और कुछ बालकों ने जल्दी से श्री गरीब दास जी को हिलाया और कहा कि आँखें खोल कर देखो आपके पास कौन आया है। बालकों के जगाने से आपने आँखें खोलीं तो क्या देखा कि सामने तेजोमय शरीर धारण किये हुए श्री सद्गुरु कबीर साहब जी खड़े हैं। इसका वर्णन ब्रह्मानन्द जी ने इस प्रकार किया है—

दोहा- शिशुपना जब बीतयो पौगंड भये शरीर।
तब एक अचम्भा देखिया, मिले कबीर-कबीर॥

अर्थात्- जब आपकी कुमार अवस्था आ रही थी उस समय आपने गुरु रूप से श्री कबीर साहेब जी का दूसरा रूप धारण किया। आप स्वयं शिष्य बने। इसी वार्ता को लेकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि यह आश्चर्य पूर्ण कौतूहल है कि स्वयं कबीर साहब ही गुरु और वही शिष्य के रूप में गरीब दास जी बने। आचार्य देव जी ने स्वरचित बानी में इस प्रकार कहा है। यथा-

स्वासा संग शास्त्र निकसैं संख असंखों भेला।
जाकूँ कहो कौन पढ़ावै। आपै गुरु आपै चैला॥

क्योंकि यह वार्ता पहले ही सिद्ध हो चुकी है कि श्री कबीर साहब जी ही श्री गरीब दास जी के स्वरूप में प्रगट हुए हैं।

हाँ तो आप बालकों के जगाने से उठ खड़े हुये और कबीर साहब जी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज आप आज्ञा दें हम आपके लिये भोजन लायें। बहुत प्रार्थना करने पर भी कबीर साहब जी ने भोजन करने से इन्कार कर दिया और कहा कि हम तो दूध पीयेंगे। तब आपने कहा कि सब गायों को हम आपके पास ला देते हैं जितना कहो और जिस गाय का कहो उसका दुग्ध निकाल कर आपको पिलायेंगे। तब कबीर साहब ने उत्तर दिया कि हम तो बिना बियाई (बिना सूई अथवा औंसर) बछिया का दुग्ध पीयेंगे। तब आपने कहा कि हे गुरुदेव जिस बछिया के ऊपर आप अपना हाथ रख देंगे उसी का दूध हम आपको पिला देंगे। और कई बछिया लाकर आपने

कबीर साहब जी के सम्मुख खड़ी कर दीं। कबीर साहब जी ने उसी बछिया पर हाथ रखा जिस पर कि गरीबदास जी अधिक स्नेह रखते थे। तब श्री गरीबदास जी ने उस बछिया के स्तनों के नीचे बर्तन रख कर बछिया की पीठ पर अपना वरद हस्त फेर दिया जिसके परिणामस्वरूप बछिया के स्तनों से स्वयं ही दुग्धधारायें बहने लगीं और कुछ ही क्षणों में वह बर्तन भर गया। दुग्ध का भरा हुआ बर्तन लाकर कबीर साहब के सामने रख दिया। कबीर साहब ने उस दुग्ध को उठाकर मुख से लगाकर पी लिया। पीने से बचा हुआ थोड़ा-सा दूध श्री कबीर साहब ने प्रसाद हेतु गरीबदास जी को दे दिया। यह दूध पीते ही उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो गयी। उस समय श्री कबीर जी ने मर्यादा-पालन के लिये गरीबदास जी को उपदेश व दीक्षा प्रदान की। अपने आप वहीं अन्तर्धान हो गये* इधर श्री गरीबदास जी की ऐसी समाधि लगी कि प्राणों की गति बिल्कुल रूक गई। यह देखकर सब बालक घबराये और कहने लगे कि इस साधु ने गरीबा के ऊपर न जाने क्या जादू किया है जिससे उसका जूठा दूध पीकर यह मर गया है। चलो, जल्दी से गाँव में सूचना दें कि गरीबा के प्राण-पंखेरू उड़ गये। इस प्रकार कह कर कुछ बालक योंही चिल्लाते हुए गाँव की ओर दौड़ पड़े। गाँव में पहुँचते ही बालकों ने हल्ला मचा दिया कि गरीबा मर गया गरीबा मर गया। उसके माता-पिता ने भी सुना कि "गरीबा मर गया" यह शब्द सुनते ही एक दम उनके माता-पिता मूर्छित से हो गये, मानो उनके प्राण भी पुत्र के साथ ही निकल चले हों अन्य ग्रामवासियों को भी गरीबा से हार्दिक स्नेह था अतः वे भी गरीबा के मरने की खबर सुनते ही शोक सागर में विलीन हो गये। किसी को भी इस अचानक घटना को सुनकर यह पूछने का साहस नहीं रहा कि गरीबा के मरने का कारण तो जान लें। जो भी यह शोक समाचार सुनता अनायास ही वह उस स्थान

* यह दिन विक्रमी सम्वत् १७८४ फाल्गुण शुक्ला द्वादशी का था। इस दिन छुड़ानी धाम में अब भी बड़ी धूम-धाम से इस उत्सव को बोधोत्सव के रूप में मनाया जाता हैं यह उत्सव (मेला) उसी समय से होता आ रहा है। एवं बोधेत्सव के रूप में आपने मनाना प्रारंभ किया था। अब भी कोठी स्वामी दास दोनो मेले (फाल्गुण सुदिदसमी, इकादसी, द्वादसी को तथा दूसरा मेला भाद्र पद शुक्ल की दूज को मनाया जाता है यह सद्गुरु जी निर्वान दिवस के रूप में मनाया जाता है।

की ओर दौड़ जाता जहाँ बालक जा रहे थे। सभी ग्रामवासियों के नेत्रों से अश्रु धारा बह रही थी। माता-पिता के दुःख का वर्णन मेरी लेखनी क्या कर सकती है क्योंकि अनुभव करने वाला भी उसे मुख से नहीं कह सकता है। जहाँ पर श्री गरीबदास जी अचेत अवस्था में बैठे थे वहीं पर सब नर-नारी अपनी करुण अवस्था लिये रोदन करते हुये, कुण्ठित स्वर से कुछ कह सकने के लिये अपना असफल प्रयत्न कर रहे थे। उस समय शोक मानो अपने दीर्घ समुदाय सहित उसी स्थान पर आ प्रकट हुआ था। गाँव में उस समय एक विशेष दुःखमय वातावरण उपस्थित हो गया था। अन्त में कुछ वृद्ध और समझदार पुरुषों ने बलराम जी व रानी देवी को धैर्य बँधाया कि जो होने वाला था सो हो गया है अब अपने आपको इसमें समाप्त करने पर क्यों तुल गये हो। तुम्हें तो स्वयं ही ज्ञान है तुमको हम समझायें हीं क्या? आप जैसे ज्ञानी ही जब अधीर हो जायँगे तो अन्य लोगों को शोक-समुद्र से कौन पार करेगा। इस प्रकार की ढांढ़स बँधाकर उनका (गरीबदास जी का) शव श्मशान भूमि को अन्तिम संस्कार के लिये ले गये। वहाँ पर ले जाकर उनकी अर्थी को भूमि पर रख दिया और सभी लोग चारों ओर चिन्तामग्न से होकर बैठ गये। इस आकस्मिक अघटित घटना से सभी को आघात पहुँचा था। इसके कुछ क्षणों के पश्चात् ही श्री गरीबदास जी के पैर का अँगूठा हिलता दिखाई दिया और साथ ही आपके मुख से बन्दी छोड़ सत-साहिब शब्द निकले। यह विलक्षण घटना देख सब के निर्जीव शरीर में रक्त का संचार होने लगा। उन्हें ऐसा लगा था जैसे समुद्र में डूबते को किसी नौका का सहारा मिला हो। तत्क्षण आपके बन्धन खोल दिये गये। बन्धन खुलते ही आप उठ बैठे। तब आपके पिता ने अवरुद्ध कण्ठ से उठ कर आपको छाती से लगा लिया और करुण स्वर से कहा कि बेटा तूने यह क्या किया। हमें और सब ग्रामवासियों को इतना दुःख क्यों दिया, जो हमें जन्मान्तर में भी नहीं होता। तब आपने आश्चर्य से कहा कि पिता जी आप मुझे श्मशान में क्यों ले आये! मेरे को आपने मरा हुआ समझा!! मैं तो सोया हुआ था। यह सुनकर पिताजी ने कहा कि बेटा! यह सोना कैसा था? तुम्हारी तो नाड़ी तक बन्द हो गई थी? जरा देखो तो! इन तुम्हारे साथियों पर और सभी ग्रामवासियों पर दुःख के

बादल छाये हुये थे। इस प्रकार माता-पिता व लोगों में वार्त्तालाप करते-करते प्रसन्नता की लहर उमड़ चली, और दुःख के बादल समाप्त होकर आनन्द प्रवाहित हो चला।

इस दिन से आप की ख्याति (प्रशंसा) दूर-दूर तक फैलने लगी। इसी दिन से आपने लोगों को उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। जो भी आप की शरण आते सो आपकी अमृतमयी वाणी सुनकर प्रभावित हो जाते और आप निरन्तर ध्यान मग्न रहने लगे। सांसारिक व्यवहारों से अत्यन्त उदासीन रहने लगे। हर समय वे सुरति शब्द अभ्यास में लगे रहते या पास आये हुए व्यक्तियों को उपदेश देने में लगे रहते। आपके माता-पिता जिस सांसारिक व्यवहार से आपको लगाते थे उसे आप मन लगाकर नहीं करते थे। समस्त सांसारिक व्यवहारों से आप का मन विमुख सा रहने लगा। आप यही सोचते कि जिस कार्य को करने के लिए हमने यह शरीर धारण किया है वह समय समीप ही आ गया है। उनके समय में यवनों का शासन काल था अतः सनातन धर्म पतन के गर्त में ढकेला जा रहा था, और उत्तरोत्तर ह्रास की ओर अग्रसर हो रहा था। लोगों को अपने धर्म पर अविश्वास हो चला था। क्योंकि यवन उस समय अपना धर्म फैलाने के लिए जी जान से कोशिश कर रहे थे और हिन्दू धर्म की जड़ खोखली कर रहे थे, उसके समूलनाश के लिए उस खोखले स्थान में बारूद भर रहे थे। हिन्दू समाज (धर्म) कुठाराघातों से त्रस्त हो रहा था। इसी कारण ये यवन प्रवृत्ति अग्नि की भीषण ज्वालाओं के समान बढ़ती चली जा रही थी। ऐसे संकट के समय जब आप जैसी महान् शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ; तब स्वाभाविक ही था कि उसका प्रतिरोध और अपना प्रयास दोनों ही बराबर रूप से करते रहते। अतः आपने प्राणियों को सदुपदेश देना प्रारम्भ कर दिया और लगन के साथ उसमें जुट गये। सारा समय आपका केवल सदुपदेश एवं आत्म चिन्तन में ही व्यतीत हो जाता था इसीलिए आप के माता-पिता ने आपको सांसारिक व्यवहारों से विरक्त जानकर, विचार किया कि अब शीघ्रातिशीघ्र ही इसकी शादी कर देनी चाहिए। अतः आपकी सगाई बरोणा ग्राम में करने का निश्चय किया गया। (बरौणा ग्राम असौदा से सोनीपत को जाने वाली सड़क पर जिला वर्तमान सोनीपत में

पड़ता है जो कि छुड़ानी से २९-३० कि. मी. की दूरी पर है। बरौणा से चौधरी न्यादर सिंह की ओर से उनकी सुपुत्री "मोहिनी" की सगाई आयी छुड़ानी में। ग्राम के लोग एकत्रित हुए। आपके (जैसी कि रीति में है) लिए चौकी बिछाई गई। उधर आपको पता लग गया कि मेरी सगाई आई है तो आप जंगल की ओर भाग निकले क्योंकि आप गृहस्थाश्रम के झंझट से दूर रहना चाहते थे। आप सोचते कि हमें तो देश-देशान्तरों में घूम कर जीवों का उद्धार करना है। यदि यह गृहस्थी का बन्धन गले पड़ गया तो हमें बाहर घूमने में बाधा पड़ेगी। परन्तु, माता-पिता अपनी कुल-परम्परा एवं वात्सल्य स्वभाव का परित्याग कैसे कर सकते थे। उन्होंने बलपूर्वक (जबरदस्ती) पकड़कर आपको चौकी पर बैठा दिया और आपको न्यादर सिंह जी की ओर से तिलक कर दिया। समय आने पर बड़ी धूम-धाम और सजधज के साथ आपका विवाह किया गया। इसके पश्चात् आपने लौकिक व पारलौकिक दोनों ही मार्गों का भली प्रकार अनुसरण किया।

॥पानी का घड़ा भरा॥

जिस समय महाराज जी की अवस्था १३ वर्ष की थी। चैत्र का महीना था। फसल की कटाई हो रही थी। आप गऊवें चरा रहे थे। गऊओं को अन्य बालकों के पास छोड़कर आप माता-पिता के पास पहुँचे जहाँ पर कि वे फसल काट रहे थे। पिताजी ने आप को देखकर कहा कि बेटा गौ कहाँ छोड़ आये और तुम उन्हें छोड़ कर यहाँ क्यों चले आये? वे किसी दूसरे का खेत खा जायेंगी और व्यर्थ में किसी से झगड़ा हो जायेगा। आपने कहा कि पिताजी मेरी अनुपस्थिति में गायें किसी का खेत नहीं खा सकतीं। इसी बीच आपकी माता जी ने कहा कि बेटा! प्यास लगी है एक घड़ा पानी तो लाकर रख दो। आपने कहा कि अच्छा! और फिर खेल में लग गये। थोड़ी देर बाद मां ने फिर कहा कि तुझे तो पानी के लिये कहा था अभी तक यहीं है। "जाता हूँ" आप ऐसा कह फिर वहीं बैठ गये। माता भी कह कर अपनी कटाई में लग गई। थोड़ी देर बाद देखा तो आप फिर बैठे दिखाई दिये। तब माता क्रोध से बोली कि तेरे को कितनी बार पानी लाने को कहा और तू अब तक गया नहीं। अभी से हमारी बात नहीं

मानता है। तब आपने उत्तर दिया कि आपको पानी ही चाहिये और क्या? आप पानी पी लीजिये घड़ा तो भरा हुआ रखा है। यह सुनकर माता ने कहा कि अभी-अभी तो घड़ा खाली किया है, उसमें पानी आया कहाँ से? आप बोले कि जरा देखो तो सही, घड़ा पानी से ऊपर तक भरा पड़ा है। तब उन्होंने सोचा कि चल कर देखा तो जाय। आश्चर्यमय होकर रह गये जब उन्होंने देखा कि घड़ा भरा हुआ नहीं है अपितु पानी बाहर निकल कर बहा हुआ है। सोचते हैं कि पानी किस समय भर कर ले आया। यह तो उठकर भी नहीं गया है। न, यहाँ कोई दूसरा बर्तन ऐसा है कि जिससे यह भर लाया होगा। तब आपसे पूछा कि ये पानी कैसे और कहाँ से आया है? आपने उत्तर दिया कि सारी पृथ्वी ही पानी के ऊपर बसी है पानी की क्या कमी है। जिस स्थान पर चाहो पानी वहीं मिल सकता है। यदि विश्वास न हो तो मैं अभी दिखा देता हूँ। ऐसा कहकर थोड़ी सी मिट्टी उन्होंने अपने हाथ से हटाई और उसकी ओर संकेत कर बोले देखिये ये रहा पानी। उन्होंने उस पानी को पीकर देखा तो बड़ा मीठा और स्वादिष्ट पानी था। इस घटना को देखकर वे बड़े आश्चर्य में पड़ गये और उसी दिन से आपको ईश्वर रूप देखने लगे। उनके संशय की निवृत्ति करने के लिए आपने कहा कि यह सब श्री सद्गुरु देव कबीर जी की ही कृपा है। उनके चरण इस स्थान पर पड़े हैं और इसी से यहाँ मीठा पानी निकल आया है। अन्य स्थानों पर भी जहाँ-जहाँ उनकी चरण-धूलि पड़ी है, मीठा ही जल-स्त्रोत प्राप्त होगा। इत्यादि बातों से उनको टाल दिया। उस स्थान का नाम उसी दिन से "राम-कुण्ड" पड़ गया है। वैसे इस क्षेत्र को "नला" बोलते है।

सम्वत् १९५६ में उदासीन सम्प्रदाय के एक महापुरुष (जिनका नाम शम्भूदास था।) उन्होंने उस स्थान पर एक कुई बनवाई जो कि आपकी स्मृति चिह्न की सूचक है। इसका तात्पर्य यह है कि उन साधु महात्मा के अन्दर आपके प्रति प्रेम-श्रद्धा थी। इस प्रकार से दूसरी सम्प्रदाय के लोग भी आपके प्रति श्रद्धा और विश्वास रखते थे। इस का कारण यह है कि निष्पक्ष और स्वार्थ हीन आपके उपदेश, जिन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों की कुप्रथाओं की समानरूप से आलोचना की है। श्री स्वा. शम्भू दास जी अपने जीवन पर्यन्त आपकी समाधि की पूजा करते रहे और अपना जीवन

उसी स्थान पर रहकर व्यतीत किया। इनके पश्चात् बड़े अखाड़े के एक स्वामी फाटक दास जी भी महाराज जी की छत्री के पुजारी रहे हैं। यह प्रकरण भूल से आगे आ गया है। गुरुदीक्षा वाले प्रकरण के नीचे चाहिये था।

॥साधु हाँडी भड़ंगे से वार्ता॥

एक समय एक हाँडी भड़ंगा नामक साधु आपके चरणों में उपस्थित हुआ। दण्डवत्-प्रणाम के पश्चात् आपके समीप बैठ गया। तब आपने उनसे पूछा कि हे महात्मा! आप अपने गुरु के पास से क्यों चले आये। उनका समाचार तो बताओ? तब उस साधु ने कहा कि आप तो अन्तर्यामी हैं। सब कुछ जानते हैं फिर आप मुझ को भ्रम में डालने वाली बातें क्यों पूछते हैं? मैं अपने गुरु (जो कि बहुत बड़े सिद्ध हैं और अल्मोड़ा पर्वत में वास करते हैं) के पास से ही आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। उन्होंने मुझे आपके दर्शन के लिए ही भेजा है। और मुझ को आपके विषय में बहुत कुछ परिचय दिया है। मेरे गुरु जी अलमोड़ा पर्वत की कन्दरा में तप करते हैं और हर समय परमात्म चिन्तन में तल्लीन रहते हैं। उन्होंने मुझ से कहा कि यहाँ से पश्चिम दिशा में देहली के समीप छुड़ानी ग्राम में श्री सद्गुरु देव अवतार लेकर आये हैं। तुम जाओ और उनका दर्शन करो। उन्होंने आपको बड़ी नम्रता पूर्वक दण्डवत् प्रणाम कहा है क्योंकि वह आपके पूर्व शरीर (कबीर) के शिष्य हैं। ध्यानावस्था में हमेशा आपके दर्शन करते हैं। इसीलिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। यह छोटा सा ग्राम है और फिर आप इन कलियुगी प्राणियों के बीच जहाँ ज्ञान-विचार बिल्कुल ही नहीं है यहाँ क्यों आये हो? जैतराम जी इस विषय में लिखते हैं-

छोटी बस्ती कहाँ बसेरा, ये कलियुग के प्राणी।
ज्ञान ध्यान तो परख न आवै, समझैं बचन न वाणी॥१॥
यह कलियुग भय भीत पसारा, बुद्धि विवेक न कोई।
सील सन्तोष दया नहीं धर्मा, किस विधि आवन होई॥२॥

कलियुग के व्यौहार कुटिल हैं, कुटिल रूप सब धारा।
ज्ञान ध्यान को समझें नाही, यौह अँधरा संसारा॥३॥
चोरी यारी प्रसन्न होई, लोभ मोह लिपटाना।
विषयन के लम्पट सब प्राणी, सुरझैं नहिं उरझाना॥४॥
तुम्हारा ज्ञान कौन विधि पावैं, उलटी चाल चलंता।
और सकल का गैला सूधा, तुम्हारा पंथ अपंथा॥५॥
सूक्षम पन्थ नजर नहि आवै, पूरब पश्चिम पंथां
मन बुद्धि सेती अगम अगोचर, कहाँ ज्ञान की संथा॥६॥
जो जन अपने भाव चलत हैं, माने नहीं अमाना।
हाँडि भड़ंगा यूं वचन उचारा, सुन सद्गुरु दिलदाना॥७॥
अकथ कथा तुम्हारी नहि पावै, बिन तुम्हरे सतसंगा।
कोटि ज्ञान कोई समझावौ, जैतराम प्रसंगा॥८॥

इस प्रकार उस साधु जी ने महाराज जी से कलियुगी पापाचारी मनुष्यों का, उनके अज्ञान का, उनकी विषय-वासनाओं का वर्णन करके उन्हें बताया कि आपके अलौकिक पन्थ का, ये हिंसा के पुजारी किस प्रकार आचरण-(अनुसरण) कर पायेंगे। आप अहिंसा का सदुपदेश करते हैं, उसमें धर्म की वास्तविकता को दरसाते हैं और इनकी उलटी गति है। अतः इन सबका मेल कैसे हो सकेगा? इसका प्रत्युत्तर महाराज जी ने क्या दिया। इसे जैतराम जी ने इस प्रकार वर्णन किया है कि-

सद्गुरु कह समझावैं, संतों सद्गुरु कह समझावैं।
भेदी भेद लखावैं।टेक॥
सद्गुरु अनहोनी कर देवैं, जीव अनाथ क्या जानैं।
कर्म उपासी कर्मों बाँधे, ज्ञान ध्यान क्या मानैं॥१॥
कर्म छुड़ाऊँ भक्ति दृढ़ाऊँ भ्रम खण्डन कर डारौं।
काम क्रोध मद लोभ लगारं, दूतर सकल सिंघारौं॥२॥
आशा तृष्णा ममता चेरी, चिन्ता दूती नेसं।

हर्ष शोक मद रोग मिटाऊँ, सील ब्रत उपदेशं॥३॥
माता बिना न बालक जीवै, नित प्रति पौषै जाकूं।
सेवन करैं रैन-दिन ताकी, कुछ न सोधी ताकूं॥४॥
ऐसे सत्गुरु करैं प्रतिपाला, चेला कछु न जानै।
बालक की नाई है भोरा, समझाये सब मानै॥५॥
बिन समझाये कछु न जानै, बाल स्वरूप निदाना।
माता जैसे बालक जानै, बालक से हो स्याना॥६॥
ऐसे सद्गुरु सदा सहाई, पतित उद्धारण नामा।
भरे नवरिया नौका पेलैं, सूरत नगरी धामा॥७॥
हीरा लाल भरे नग नौका, पार लगावै सोई।
सद्गुरु हंस उद्धारण आये, बीज भक्ति का बोई॥८॥
नाम अभय पद निर्मल नीका, अजरा बीज जरावै।
सुवासों सांस बाई कुं पलटे, जन्ममरण मिट जावै॥९॥
सद्गुरु आवैं हंसों कारण, जिनका योही व्यौहारा।
नाम दृढ़ावैं भक्ति बधावैं, ऐसे ही बारम्बारा॥१०॥
सद्गुरु आये या जग माहिं, जाकूं कोई न जानै।
साखी शब्द और ज्ञान ध्यान में, खटकर्मों उरझानै॥११॥
जोग माहिं जोगेश्वर बन्धे, कोई मुद्रा तत्त्व बन्धाना।
कोई कवि कोई साखि बखानै, सद्गुरु निकट न जाना॥१२॥
सद्गुरु सेती जो कोई बन्धे, मिट गयो आवन जाना।
साखी शब्द में जो कोई उरझे, भक्ति माल प्रगटाना॥१३॥
भक्ति माल में आवैं जाहिं, देऊँ निज सत्संगा।
नाम अभय पद-हृदय माहिं, कदे न होहीं भंगा॥१५॥
भक्ति मार्ग सा और न दूजा, सन्त समागम सारा।
सत संगत में आवै जाहिं, ना भ्रमैं भव द्वारा॥१५॥

ऐसे मैं यह जग में आऊँ, ज्यों पारस और लोहा।
जान अजान मिले पारस पद, कञ्चन होवे लोहा॥१६॥
लोहे का कछु कर्त्तव्य नाहिं, पारस का योहि बयाना।
लोहे कुं कंचन कर डारे, पलटै अंग अमाना॥१७॥
पारस रूप सद्गुरु कहिये, लोहे रूप प्राना।
लोहे से कंचन कर लेवे, कर हैं अकल अमाना॥१८॥
सद्गुरु सन्त और अवतारा, जिनका योही है व्यवहारा।
गरीबदास सद्गुरु यों बोले, यौं हम धरे अवतारा॥१९॥

(महाराज जैतराम जी की वाणी)

हाँड़ी भड़ंगा साधु के शंका करने पर आपने उसे इस प्रकार दूर किया जिसका सारांश यह है कि उन दुराचारी-पापात्मा और हिंसक एवं अज्ञानी जीवों का कल्याण करना ही हमारा उद्देश्य है। जिस प्रकार लोहा पारस के संसर्ग से सोने का रूप धारण कर लेता है, उसका काला रंग अग्नि के तेज सा हो जाता है। ठीक उसी प्रकार ये "शब्द" और "नाम" रूपी पारस के समान सत्संग पाकर यह लोहा रूपी अज्ञानी जनता स्वर्ण रूपी उज्वल ज्ञान को प्राप्त कर सकेगी। इसी से मेरा फिर से अवतार हुआ है।

इस प्रकार उस साधु को सद्गुरु जी ने समझाया। तब उनका जो संशय था वह निवृत्त हुआ। वह महाराज जी को प्रणाम कर उनकी स्तुति कर अपने स्थान को लौट गया। यहाँ पर यह प्रकरण संक्षेप से दिया गया है। यदि पाठकों को विशेष देखने की इच्छा हो तो जैतराम जी की वाणी में पृ. ३६६ से ४०१ तक देख लें। इस प्रकरण का सारांश यह है कि महात्मा स्वामी मनसाराम जी कबीर साहब के शिष्य जो कि अल्मोड़ा पर्वत की कन्दरा में रहते थे और बहुत बड़े सिद्ध थे उन्होंने अपने शिष्य हाँडी भड़ंगा से महाराज के अवतीर्ण (अवतार) होने के विषय में बताया था कि सद्गुरु कबीर साहिब ने गरीबदास नाम से श्री छुड़ानी में शरीर धारण किया है। यह सुनकर हाँडी भड़ंगा को शंका हो गई कि ऐसे छोटे से ग्राम में और घोर कलियुग के कारण पापों से जीवों के हृदय मलिन हो चुके हैं।

सद्‌गुरु के उपदेश को ग्रहण करने वाली बुद्धि मलिन हो चुकी है। इस दशा में सद्‌गुरु जी क्यों आवेंगे। तब श्री मनसाराम जी ने अपने शिष्य को उनकी शंका की निवृत्ति के लिये श्री छुड़ानी धाम महाराज के पास भेजा था और कहा था कि तुम उनसे जाकर स्वयं प्रश्न करके अपने संशय की निवृत्ति करो। इसी उद्देश्य को लेकर हाँडी भड़ंगा ने महाराज के साथ वार्तालाप किया था। महाराज जी ने अपने अवतीर्ण होने का कारण बतलाया कि हम हमेशा ही भूले हुए जीवों को सही मार्ग पर चलाने के लिये एवं जहाँ से वे बिछुड़े हैं उन्हें वहाँ मिलाने के लिये ही हमारा आना होता है। आपने स्वयं अपनी अमृतमय वाणी में कहा है कि–

अमर करूँ सत लोक पठाऊँ, ताँते बन्दी छोड़ कहाऊँ॥

अर्थात्- जीवों को जन्म-मरण से रहित करके अमृतत्त्व प्राप्त कराना हमारा लक्ष्य है। भूले हुए जीवों को जहाँ से बिछुड़े हुए हैं वहीं मिलाना अर्थात् जन्म-मरण के बन्धनों को तोड़कर मुक्त करना हमारा काम है। इस प्रकार उपदेश ग्रहण करके हाँडी भड़ंगा अपने स्थान को गये। इस कथा का विस्तार पूर्वक वर्णन स्वामी जैतराम जी की बानी में है।

॥अर्जुन सुर्जन॥

ये दोनों भी महाराज जी के पूर्व (कबीर जी) शरीर के शिष्य थे। जिस समय महाराज कबीर साहिब जी काशी में अपने शिष्यों की परीक्षा के लिए शीशी में गंगाजल भर कर और वेश्या को साथ लेकर बाजार में निकले थे (यह प्रकरण ग्रन्थ आदि में विस्तार से लिखा जा चुका है) उस समय जो वचन आपने अर्जुन और सुर्जन को दिये थे कि काशी के बिछड़े हुए इन जीवों का उद्धार करने के लिए हम गरीबदास नाम से छुड़ानी धाम में शरीर धारण करेंगे तब से अर्जुन और सुर्जन महाराज जी के दर्शन करने के लिए अपने (उसी शरीर से जो काशी जी में था) के सहित हरयाना प्रांत जिला रोहतक में हुमायूँपुर ग्राम में रहे, (जो खरखौदा से ७ मील रोहतक जाने वाली सड़क पर है) जब इनको पता लग गया कि सद्‌गुरु देव श्री कबीर साहिब जी ही गरीबदास नाम से प्रकट हो गये हैं तब ये दोनों महाराज के दर्शन की इच्छा करके उस जिमींदार (जिस भक्त के खेत में

आप रहते थे) से कहा कि, अपनी बैलगाड़ी जोड़ कर हमें श्री छुड़ानी धाम में ले चलो। तब उस भक्त ने इनकी आज्ञा के अनुसार गाड़ी जोड़ ली और इन दोनों महापुरुषों को गाडी के ऊपर बिठा कर श्री छुड़ानी धाम की ओर चल पड़ा। क्योंकि यह अति वृद्ध हो चुके थे। इनकी आयु लगभग साढ़े तीन या चार सौ वर्ष की हो चुकी थी चलने फिरने में असमर्थ थे। श्री छुड़ानी धाम में पहुँचकर जब सतगुरु जी के सम्मुख आये। तब सद्‌गुरु जी ने उन्हें दूर से देखकर आश्चर्य वाचक शब्दों द्वारा कहा कि, हे अर्जुन और सुर्जन तुमने इस अति जीर्ण खोखले (शरीर) का त्याग नहीं किया। इतनी देर तक इसको क्यों खीचें फिर रहे हो। यह सुनकर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम करके नम्रता पूर्वक कहा कि, बन्दी छोड़ हमने इस चोले को केवल आपके दर्शन करने के लिए रख छोड़ा था। आपने हमें कहा था कि हम श्री छुड़ानी धाम में प्रकट होंगे बस इसी इच्छा से कि यह शरीर महाराज जी के इस समय के भी दर्शन अपने नेत्रों द्वारा कर लें इसलिए इसको नहीं त्यागा अब हमारा मनोरथ सफल हो गया है। अब हम दोनों इस अति पुराने घर का त्याग करके आपके परमधाम को जायँगे। ऐसा कहकर उन दोनों (अर्जुन और सुर्जन) ने महाराज जी के चरणों में अपने शरीर का उसी दिन परित्याग कर दिया। सद्‌गुरु जी ने उनका अन्तिम संस्कार विधिवत् करवाया। कुछ एक आवश्यक बातें इसमें से मुझे विस्मृत भी हो गयी हैं और सद्‌गुरु जी के पास आने का इनका सम्वत् मुझे प्राप्त नहीं हुआ।

॥गो हत्यारे को गंगा स्नान॥

बागड़ देश (जो राजस्थान में पड़ता है) में एक जमींदार बाजरे के खेत की रखवाली करता था। रात्रि के समय में उसे खेत के अन्दर किसी जानवर का खटका हुआ और सोचा कि कोई सूअर खेत को उजाड़ कर नष्ट कर रहा है। यह जान कर उसने बन्दूक का निशाना उसकी ओर किया और गोली छोड़ दी। गोली उस जानवर के मर्म स्थल को बींधती हुई निकल गयी। उसी समय गाय अपनी करुण आवाज से रम्भाती हुई गिर पड़ी और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। गऊ की आवाज सुनते ही उस

जमींदार ने बहुत पश्चाताप किया तथा दौड़कर उसके पास आया और अपने मन से कहने लगा कि यह तो मैंने महापाप कर दिया। इसका बदला मैं कैसे चुकाऊँगा? जन्मान्तर में भी गो हत्या का पाप नहीं टलेगा। इस प्रकार से आन्तरिक दुःख में रोते-बिलखते हुए उसने रात्रि व्यतीत की। प्रातः होते ही गाँव में गया। और गाँव के लोगों को एकत्र कर कहने लगा कि भाइयो आज अंधेरी रात्रि में मुझ पापी से गऊ की हत्या हो गयी। इस महान् भूल का बदला मैं कैसे उतार सकूंगा? सब लोगों ने उसकी गलती का कारण पूछा। अपने साथ हुई घटना का सम्पूर्ण वृतान्त उसने सब गाँव वालों के सम्मुख कह दिया और कहा कि अब मुझे ऐसा दण्ड दो कि जिससे मेरा यह घोर पाप दूर हो जावे। तब लोगों ने अपनी हिन्दू संस्कृति के अनुसार उस गऊ हत्यारे को गंगा स्नान का आदेश दिया। क्योंकि हमारे हिन्दू धर्म में प्राचीन काल से ही ऐसा नियम है कि जिस व्यक्ति से भूल के कारण गऊ हत्या हो जाय वह व्यक्ति सिर पर कौवे का पंख बाँधकर और उस गऊ की पूँछ लाठी में बाँधकर पैदल गंगा स्नान करने को जाय। मार्ग में किसी नगर अथवा गाँव के बीच होकर भी न जावे। यदि जाय तो गाँव के समीप जाकर "मैं गौ हत्यारा हूँ" ऐसा उच्चारण करे। और भिक्षा माँगता हुआ कहे कि मैं भूखा हूँ कोई मुझे भोजन दो। इस प्रकार की क्रिया का केवल यही अभिप्राय है कि सब लोग जान जाएँ कि यह व्यक्ति गौ हत्यारा है। गौ हत्या करने वाले को इस प्रकार दंड दिया जाता है। दूसरे धर्मशास्त्रों का यह मत है कि पाप और पुण्य सबके सामने बार-बार कहने से क्षीण हो जाते हैं और गुप्त रखने से दोनों ही बढ़ते हैं। इसलिये पुण्य कर्म को किसी से न कहे कि मैंने यह पुण्य किया है और पाप को गुप्त न रखे उसे सभी के सामने प्रकट कर देना चाहिए जिससे वह बढ़ने न पाये। इन्हीं कारणों से पूर्वजों ने यह विधान गौ हत्यारे के लिए किया है। कि उसका पाप क्षीण हो जावे।

इस प्रकार से उस गौहत्यारे को पूर्वोक्त नियमों के अनुसार गाँव वालों ने गङ्गा जी स्नान के लिए भेज दिया। और वह इन नियमों का पालन करता हुआ गङ्गा जी की ओर चल पड़ा। चलता-चलता छुड़ानी धाम में पहुँच गया। और वह मार्ग में बहुत दिनों से चलता हुआ अति दुःखी हो

गया। क्योंकि गौ हत्यारे को कोई पास में भी नहीं बैठाता था और उससे सम्भाषण भी कोई नहीं करता था। सभी यह सोचते थे कि यदि इससे बातचीत करेंगे तो हमें भी गौ हत्या का दोष लगेगा। श्री छुड़ानी धाम में पहुँचने पर उसको पता चला कि यहाँ एक बहुत बड़े दयालु महापुरुष हैं जो पतित से पतित का भी उद्धार कर देते हैं। यह विचार कर उसने सोचा कि मैं भी उन महापुरुषों के दर्शन तो कर लूँ यदि पास में नहीं जाने देगें। तो दूर से दर्शन कर लूँगा। यह विचार करके वह महाराज जी के समीप में आया और दूर से ही दण्डवत् प्रणाम कर आर्तस्वर में कहने लगा कि हे भगवन् मैं बहुत अपराधी हूँ और अति दुःखी हूँ। किसी प्रकार मेरी रक्षा करो। मेरे इस भयंकर पाप को आप ही निवृत्त कर सकते हैं। मैं अबोध आपकी शरण में आया हूँ। और आप कृपालु तथा दया के सागर हैं। आप अनेकों पतितों का उद्धार करते हैं। मेरा भी उद्धार आप करो। मैं पापी से भी महान् पापी हूँ महापुरुष तो दयालु होते हैं। आप तो दया के भण्डार हो, मैं आपकी शरण में आया हूँ आप मुझ दीन की रक्षा करें। जिस समय उस गौ हत्यारे के अनेक दीनता से भरे हुए शब्द सुने, उसी समय आचार्य जी का हृदय द्रवीभूत हो गया। उसके दीन शब्दों को आप सहन न कर सके आपने उसी समय कहा कि हे हंस (आप सब जीवों को हंस कहकर पुकारा करते थे) तुझे क्या दुख है, किस कारण से तू इतना दुःखी हो रहा है। तू हमें बता कि तुझे क्या दुःख है हम तेरे दुख को अवश्य दूर करेंगे। हमारी यह प्रतिज्ञा है, कि जो जीव हमारी शरण में आ गया हम उसे दुःखी नहीं देख सकते। अथवा उसके दुखों को तुरन्त दूर कर देते हैं। तू किसी प्रकार मत डर हम तुझसे सत्य कह रहे हैं तू हमारे सामने अपने दुख को सत्य सत्य वर्णन कर दे। तब उस गौ हत्यारे ने कहा कि भगवन् मैं गऊ हत्यारा हूँ। मेरे से भूल में गऊ हत्या हो गयी। उस गौ हत्या की निवृत्ति के लिए मेरी जाति वालों ने मुझे गंगा स्नान के लिए भेजा है। मैं बागड़ प्रान्त से चलकर आया हूँ। भूखा प्यासा चलता और मेरा शरीर चलते-चलते सूख कर पिंजर हो गया। मेरे में चलने की भी शक्ति नहीं रही। अब मैं क्या करूँ। इस महान् पाप से कैसे छुटकारा पाऊँ। अब मेरे लिए गङ्गा जी पर पहुँचना भी कठिन हो गया है। पता नहीं रास्ते में ही मेरे प्राण पंखेरू उड़

जायें। तो इस भयंकर पाप का फल मुझे परलोक में भोगना पड़ेगा। इस प्रकार कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगा। तब महाराज जी ने द्रवीभूत होकर अति दयालुता से उसे कहा कि तू घबरा मत हम तुझे यहीं पर गङ्गा जी का स्नान करवा देंगे। तू अपने मन में क्यों इतना विषाद करता है। तेरी इस दीन दशा को देखकर हमारे हृदय में बड़ी दया आई है। आप ने अपनी अमृतमयी वाणी में इस बात को बहुत सुन्दर ढङ्ग से कहा है।

साखी- गरीब, दया सर्व का मूल है, छिमा छिक्या[१] जो होय।
त्रिलोकी कुँ तियार[२] दे नाम निरंजन गोय॥

इसके बाद अनेक वचनों द्वारा आपने उस गौहत्यारे को सात्वँना दी और कहा, कि हम तुझे प्रातः काल यहीं पर गङ्गा जी का स्नान करवायेंगे और तेरे पाप का नाश होकर तेरी गौहत्या निवृत्त हो जायगी। उसको महाराज जी ने खाने के लिए अच्छा भोजन दिलवाया और विश्राम के लिए स्थान दिया रात्रि को उस गौ हत्यारे ने महाराज जी के उपदेश और सत्संग से अपने मन को शान्त किया। प्रातः काल होते ही महाराज जी ने सब सन्तों एवम् सेवकों को आज्ञा दी, कि गङ्गा जी में स्नान के लिए तैयार हो जाओ। अपना-अपना स्नान के लिए वस्त्र लेकर सब उपस्थित हो गए और गोहत्यारे को भी महाराज जी ने बुला लिया और कहा कि नेत्र बन्द करो। सबने नेत्र बन्द कर लिए दूसरे क्षण में नेत्र खोलने की आज्ञा दी सबने नेत्र खोलकर देखा, कि गङ्गा जी की विशाल धारा बड़े वेग से बह रही है और सबके सब किनारे पर बैठे हैं। यह देखकर वह गौ हत्यारा महाराज जी के चरणों में बारंबार नमस्कार करने लगा और गंगा जी की जय जयकार करने लगा। तब महाराज जी ने सब सन्तों और सेवकों को स्नान करने की आज्ञा दी। एक सेवक कुछ दिन पहले गंगा स्नान के लिए हरिद्वार में गया हुआ था। उसी दिन गंगा स्नान का विशेष पर्व था। उधर वह सेवक भी हर की पैडी (ब्रह्मकुण्ड) पर स्नान करने लगा। उसके हाथ से अपना लोटा छूट गया और वह गंगा जी की धारा में बह गया। बहुत

---

१. तृप्त।
२. उद्धार कल्याण।

खोज की परन्तु धारा का वेग तीव्र था इसलिए वह लोटा पकड़ा न जा सका। इधर महाराज जी जब सब सेवकों सन्तों और गौ हत्यारे के सहित गङ्गा जी में स्नान कर रहे थे उसी समय जब उस गौ हत्यारे ने गङ्गा जी में गोता लगाया तब उसके हाथ वही लोटा (जो हरिद्वार में उस सेवक के हाथ से छूटा था) लग गया। जब स्नान कर के बाहर आये तब उस गौ हत्यारे ने महाराज जी से प्रार्थना पूर्वक कहा कि, प्रभो, यह लोटा मुझे गङ्गा जी में से मिला है। महाराज जी ने कहा कि यह लोटा तो किसी प्रेमी का है जो हरिद्वार स्नान करने गया है। यह सुनकर गौ हत्यारे ने अपने मन में सोचा कि, कितनी दूर पर हरिद्वार है वहाँ का लोटा यहाँ कैसे आ गया। उसके मन की शंका को जानकर सद्गुरु जी ने कहा, कि जब वहाँ से गङ्गा यहाँ आ सकती है। तब क्या लोटा आना कठिन है वह भक्त जिस समय हरिद्वार की सीढ़ियों पर स्नान करने लगा था उसके हाथ से यह 'लोटा छूट गया है। जब वह आयेगा तो तुम्हें स्वयं पता लग जायेगा। यह बात सत्य है या नहीं।' जो सन्त एवम् सेवक महाराज जी की शक्ति को अनेक बार देख चुके थे उन्होंने तो इस बात को सत्य मान ही लिया। किन्तु जो कोई नये प्रेमी थे, और वह गौ हत्यारा था, उनके मन में यह शंका बनी ही रही और वह अपने मन में कहने लगे कि जब वह हरिद्वार से यहाँ आयेगा तब इस बात का पूरा निर्णय हो सकेगा। स्नान करने के पश्चात् सब महाराज जी के सहित अपने स्थान पर आ गये। तथा जो गंगा जी के घाट पर पण्डे होते हैं वह यहाँ इस गंगा पर भी उस समय उपस्थित थे। उन्होंने उस गौ हत्यारे के पूर्वज जो गंगा पर गये हुये थे उनके नाम बताये। इससे गौ हत्यारे को पूर्ण निश्चय हो गया कि मैं गंगा जी पर पहुँच गया हूँ। और उन पण्डों ने पत्रिका लिखकर दी कि यह गौ हत्यारा गंगा जी पर आया और स्नान दान किया हम यह पत्र अपने हाथ से लिखकर दे रहे हैं, कि गंगा स्नान करने से अब इसकी गौ हत्या दूर हो गई है। यह प्रमाण पत्र गौ हत्यारे को महाराज जी ने दिलवाया। कुछ ही दिनों के पश्चात् वह व्यक्ति भी (जिसका गंगा जी में लोटा छूट गया था) श्री छुड़ानी धाम में आ पहुँचा। आकर महाराज जी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया और हरिद्वार का सम्पूर्ण समाचार बताया। कहा कि भगवन् स्नान करते समय

मेरा लोटा हाथ से छूट जाने के कारण गंगा जी में बह गया। महाराज जी ने एक शिष्य को आदेश दिया कि वह लोटा लाओ जो तुम्हें गंगा स्नान करते समय यहाँ मिला था। वह शिष्य उस लोटे को ले आया। महाराज जी बोले कि देखो ये लोटा तुम्हारा ही है क्या? लोटे को देखकर उस सेवक ने कहा कि यही मेरा लोटा है जो गंगा में बह गया था। इस बात से सबके मन की शंकाएँ दूर हो गईं। तत्पश्चात् वह गो हत्यारा भी महाराज जी से आज्ञा लेकर अपने घर को लौट गया। सम्पूर्ण समाचार अपने ग्रामवासियों को जाकर सुनाया। तब उस की जाति वालों ने उस गौहत्यारे को अपने साथ मिला लिया।

॥सम उपदेश॥

इस प्रकार आपके उपदेशों और परिचयों (शक्ति) से बहुत लोग लाभान्वित होने लगे। सभी जातियों पर आपका प्रभाव था। दूर-दूर तक इस बात की धूम मच गई। आपके प्रभाव से बहुत दूर-दूर से लोग आने लगे और आकर आपसे सदुपदेश लेने लगे। जो आपसे उपदेश लेकर अपने घर जाते थे, वे अपने-अपने ग्राम में जाकर आपके आश्चर्यमय परिचयों (शक्तियों) का लोगों के सामने वर्णन करते। और कहते कि वह तो साक्षात् भगवान् ही ऐसा स्वरूप धारण करके आये हैं। क्योंकि इतनी छोटी आयु में तो ऐसी शक्ति ईश्वर के अतिरिक्त किसी भी मनुष्य में नहीं हो सकती और ऐसी ऐसी वाणी उच्चारण करके सुनाते हैं कि जिसके अर्थ को विचार लेने से सम्पूर्ण संशय विनष्ट हो जाते हैं। इन परिचयों को सुनकर आपके दर्शनों के लिये हिन्दू तथा मुसलमान सभी आते थे। आप सभी को समान उपदेश देते थे। जाति पाति का आपके हृदय में कोई भेद भाव नहीं था। इस विषय में आपके सामने एक घटना आई थी जिसका वर्णन इस प्रकार है।

जिस समय आपकी आयु लगभग १५ वर्ष की थी, उस समय झज्जर के हिन्दू और मुसलमानों में विवाद हो गया कि मुसलमान तो कहते हैं कि खुदा का नाम बड़ा है हिन्दू कहते हैं कि राम आदि का नाम बड़ा है इत्यादि विवाद करते हुए सद्गुरु जी के पास आये कि इस वार्ता का

निर्णय यही करेंगे, क्योंकि आपकी निष्पक्षता इन में कई मनुष्य देख और सुन चुके थे। दोनों पक्षों ने आकर अपना-अपना पक्ष आपके सामने सुना दिया। यह सुन कर आपने इस प्रकार का उपदेश देना आरम्भ किया जिससे कि दोनों के बीच का भेद दूर हो कर यह एक ईश्वर को समझने लगे—

गरीब, शब्द[१] सिन्धु में लोक हैं, ऐसा गहर गंभीर।
राम कहौ साहिब कहौ, सोहं सत्य कबीर॥१॥
गरीब, ब्रह्म कहौ अविगति कहो, करता कहो करीम।
कादर बेपरबाह है, रमता राम रहीम॥२॥
गरीब, मौले कहो मुरशिद[२] कहो, खालिक[३] कहो खुदाय।
अलख कहो अलह कहो, आवागमन[४] न जाय॥३॥
गरीब, मालिक कहो मीरां[५] कहो, मेहरबान मुरार।
तूही कहो तालिब[६] कहो, है सो अपरम्पार॥४॥
गरीब, पिदर कहो मादिर कहो, सुंन स्नेही जान।
उस खालिक में खलिक[७] है, जाकुं ले पहचान॥५॥
गरीब, सत् कहो सतगुरु कहो, समर्थ कहो सलेश।
निर्भय कहो निर्गुण कहो, दावा बन्ध है नेश॥६॥
गरीब, वार पार मध्य तू हीं है, पिंड ब्रह्मण्ड में एक।
नाम निनामें[८] के धरे, ज्यौं का त्यौंहि देख॥७॥

---

१. शब्द ब्रह्मरूपी समुद्र।
२. गुरु।
३. परमात्मा।
४. जन्ममरण।
५. सबसे बड़ा, परमात्मा।
६. परमात्मा।
७. संसार = सृष्टि।
८. नाम से रहित।

गरीब, जै जगदीश जगतगुरु, जोगी जुगता सार।
तन मन अरप चढ़ाइये, ऐसा अधम[९] उधार॥८॥
गरीब, जै गोपाल[१०] डिंडौत कर, पैरी[११] पर प्रणाम।
दुवाकरो[१२] दिलपाख[१३] सैं, असला असलि सलाम॥८॥
गरीब, कुलका खाविंद[१४] एक है, दूजा[१५] नहीं गवार[१६]।
दोय कहै सो दोजखी[१७], पकर्या जाय दरबार[१८]॥९॥
गरीब, विचि की भीति[१९] सफा करो, भ्रम बुरज का कोट।
जिन्ह याह भीत खड़ी करि, तिसके तोड़ू होठ॥१०॥
गरीब, ग्यासि[२०] कहो रोजा कहो, कहिये नेम नमाज।
कहने हि में भेद है, रसोई में नाज[२१]॥११॥
गरीब, माला कहो तसबी कहो, कहो चौपाड़ मसीत।
विसमल कहो सत् राम कहो, आकीन कहो परतीत॥१२॥
गरीब, गायत्री कलमां कहो, बैकुण्ठ भिस्त नहीं दोय।
जाका दर्पण[२२] पाख (पाक) है, ताका मेला होय॥१३॥

---

९. पतित = नीच।
१०. यह शब्द नमस्कार वाचक है, कृष्ण के उपासकों का।
११. नमस्कार।
१२. प्रार्थना।
१३. पाक = पवित्र।
१४. स्वामी = पति।
१५. दूसरा।
१६. मूर्ख।
१७. नरक में जाने वाला।
१८. यमराज का दरबार।
१९. दिवार।
२०. एकादशी तिथि।
२१. अन्न = भोजन।
२२. शीशा (अतः करण) पाक = पवित्र।

गरीब, आँख कहो चिसमें कहो, नाक कहो नासूत।
बाँह कहो कर भुज कहौ, जोर[२३] कहो भावें कूत[२४]॥१४॥
गरीब, कान कहो श्रवण कहो, जीभ कहो जुवान।
काजी कहो पंडित कहो, एके वेद कुरान॥१५॥
गरीब, देह कहो काया कहो, पारा कहोक बिंद।
नाला कहो नदिया कहो, तीर्थ कहो समंद॥१६॥
गरीब, घोड़ा कहो ताजि कहो, सुतर कहो अक ऊँट।
द्रव्य कहो माया कहो, दिशा कहो भावें खूँट[२५]॥१७॥
गरीब, बाग कहो बारी कहो, पौहप कहो भावें फूल।
सब घट गैबी गंध है, बे दाना मख[२६] मूल॥१८॥
गरीब, वार पार उत नहीं है, आदि अन्त नहीं मध्य।
पूरण ब्रह्मविचारिये, निर्गुण निर्मल शुद्ध॥१९॥
गरीब, अजर अमर सत् पुरुष है, सोहं सुकृत सीर।
बिन दम देह दयाल जी, जाका नाम कबीर॥२०॥
गरीब, करता ऊपर चोट है, केते हैं करतार।
मूल लहें नहीं मूर्खा, गिनते हैं क्यों डार[२७]॥२१॥
गरीब, सतगुरु साहब एक है दूजा भर्म विरोध।
सुन्न सनेही शब्द है, आभ्यन्तर[२८] में खोज॥२२॥
गरीब, यौह सतगुरु साहिब सही, माटी का गुणमेट।
सुरति निरति सै परख ले, पार ब्रह्म कुँ भेट॥२३॥

---

२३. ताकत = शक्ति।
२४. बल।
२५. गुप्त = परमात्मा = व्यापक।
२६. कूंट = दिशा।
२७. वृक्ष की शाखा।
२८. अपने अन्दर।

इस प्रकार मुसलमान और हिन्दुओं के बीच जो परस्पर विरोध था आप उसको अपने अमृत उपदेश से दूर कर देते थे। बहुत से मुसलमान आपके उपदेश से प्रभावित होकर आपके अनुयायी (शिष्य) हो गये। आपके अनुयायी बन कर औरों को भी जाकर कहा करते थे कि छुड़ानी वाले श्री गरीबदास जी बहुत शक्तिशाली पुरुष हैं। आपकी अनेक अघटित घटनाएँ लोगों को सुनाते। किसी एक मुसलमान से झज्जर के नवाब नूर हसन खान से आपके परिचयों (शक्तियों) के विषय में बताया और कहा कि छुड़ानी में एक पीर रहता है जिसका नाम गरीब दास है। वह हिन्दू मुसलमान सबको शिष्य बनाता है और उसमें बहुत शक्ति है जो भी कोई व्यक्ति उनके पास एक बार चला जाता है वह उनके दर्शन और उपदेश से उनका अनुयायी बन जाता है। यह वार्ता सुनकर नवाब ने कहा कि लोग तो बे समझ होते हैं जहाँ कहीं थोड़े से आदमी झुके वहाँ दूसरे बिना सोचे-समझे पीर मानने लगते हैं। क्योंकि इन सब में विचार बुद्धि तो होती नहीं। हम उस हिन्दुओं के पीर (गुरु) की परीक्षा लेंगे। देखेंगे कि उसमें कितनी शक्ति है। यदि उसने हमारी बात को जान लिया तो समझ लेंगे कि वह शक्तिशाली पुरुष है। यदि न जान सका तो हम उसको दण्ड देवेंगे। वह हमारे दीन के लोगों (मुसलमानों) को अपना अनुयायी बनाता है।

दूसरे दिन नवाब ने २० कनस्तर गोबर से भरवा कर उनके मुख पर दो दो किलो घी डलवा दिया और कनस्तरों को बन्द करके टाँके लगवा दिये और अपने नौकरों से कहा कि यह कनस्तर छुड़ानी में गरीब दास के पास ले जाओ। उनसे कहना कि यह घी के कनस्तर नवाब साहब ने आपके भण्डारे के लिए भेजे हैं आप इनको अपने प्रयोग में लें। यह सुनकर नौकर लोग टीन मजदूरों के सिर पर उठवा कर शीघ्र छुड़ानी धाम में पहुँच गये और जहाँ पर श्री महाराज जी बैठे थे वहाँ लाकर रख दिए एवं दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने कहा कि यह घी के टीन आपके भण्डारे के लिए नवाब साहब ने भेजे हैं। आपने कहा कि हमें इनकी जरूरत नहीं है इनको नवाब साहब के पास ही ले जाओ और उनसे कहना कि जो कुछ ऊपर है वही नीचे है। नौकरों के बहुत कहने पर भी आपने वह कनस्तर लौटा दिये। जब वह नौकर झज्जर में पहुँचे तो नवाब ने उन्हें कनस्तरों सहित

देखकर पूछा कि क्या बात है? क्यों वापस ले आये? तब नौकरों ने कहा कि शहनशाह हमने तो देने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु उन्होंने लिये नहीं। तब नवाब ने पूछा कि उसने कुछ कहा भी था क्या? तब नौकरों ने बताया कि उन्होंने कहा कि हमें इन कनस्तरों की जरूरत नहीं है और नवाब से कहना कि जो कुछ ऊपर है वही नीचे है। गरीबदास जी की यह बात सुनकर हमारी समझ में तो कुछ आया नहीं। तब नवाब ने कहा कि इस बात को हम जानते हैं। यह हमारी गुप्त बात थी उसका उत्तर उन्होंने दे दिया। तब नौकरों ने पूछा कि वह कौन सी बात थी। नवाब ने कहा कि कनस्तरों को खोलो अभी सबको पता चल जायगा कि क्या बात थी। तब कनस्तर खोले गये और उन्हें देखने लगे तो सम्पूर्ण कनस्तर घृत से भरे थे। घी के अतिरिक्त उनमें और कुछ भी न था केवल शुद्ध घी ही था। यह घटना देखकर नवाब आश्चर्य चकित हो गया। कुछ देर तक कुछ न बोल सका अवाक् रह गया। कुछ देर बाद नवाब ने सबके सामने यह बात स्पष्ट कर दी कि वह तो कोई खुदा का खास प्यारा है। जिसमें इतनी शक्ति है वह कोई पैगम्बर तथा औलिया है। इतनी शक्ति किसी साधन करने वाले साधक में नहीं हो सकती, जिन्होंने गोबर से घी बना दिया। वे कोई साधारण हस्ती (शक्ति) नहीं हैं। हमने उनकी परीक्षा लेने के लिए गोबर के ऊपर थोड़ा घी डाल दिया था जिसका उन्होंने केवल घी ही घी बना दिया है। यह उनकी अलौकिक शक्ति ही तो है। ऐसे महापुरुषों के तो दर्शन दुर्लभ होते हैं।

तब नवाब कुछ काजी मुल्लाओं को साथ लेकर छुड़ानी धाम में पहुँचे और वहाँ आकर महाराज जी के चरणों में प्रणाम किया। महाराज जी ने उनको आशीर्वाद दिया और आपसे कुछ उपदेश सुनने के लिए प्रार्थना करने लगा तब आपने अनेक उदाहरणों द्वारा नवाब को समझाया। आपके उपदेशामृत से नवाब बहुत प्रभावित हुआ। नवाब को प्रभावित हुआ देखकर काजियों के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने विचारा कि जब नवाब ही इनका अनुयायी हो जायेगा तो अन्य मुसलमान तो अपना दीन (धर्म) छोड़कर हिन्दू ही बनने लगेंगे। यह विचार कर काजियों ने कई शिकायतें की और कहने लगे कि आप जो नवाब को अहिंसा का उपदेश

देते हो यह तो हमारे मजहब (सम्प्रदाय) के विरुद्ध है क्योंकि हमारे शरह में जीवहिंसा है। हम गौ से मुर्गे तक अनेक जीवों को विस्मलकर (काट) सकते हैं। इसके उत्तर में तब आपने कहना आरम्भ किया।

बिसमल कित सैं आई काजी बिसमल कित सैं आई।
तांते बोलो राम खुदाई॥ (टेक)
ऊहाँ तो लोह लुहार नहीं रे, करद[२९] घड़ी किन भाई।
अहरनि[३०] नहिं हथौड़ा नाहिं, बिन आरन[३१] कहाँ ताई[३२]॥१॥
जा ममड़ी[३३] का दूध पीवत हो, दही घृत बहु खाई।
ताकूं फेर हलाल[३४] करत हो, लेकर करद कसाई॥२॥
गोस्त माटी चाम उधेरया, रूह[३५] कहाँ पहुँचाई।
उस दरगाह[३६] की खबर नहीं है, कौन हुकम सैं ढाही॥३॥
हक्क हक्क कर मुल्ला बोलै, महजिद बांग सुनाई।
तीसों रोजे खून करत हो, खोज न पाया राई॥४॥
सूर गऊ की एकै माटी, आत्म रूह[३७] इलाही।

२३. ताकत = शक्ति।
२४. बल।
२५. गुप्त = परमात्मा = व्यापक।
२६. कूंट = दिशा।
२७. वृक्ष की शाखा।
२८. अपने अन्दर।
२९. छुरी।
३०. जिसके ऊपर रखकर लोहा कूटा जाता है।
३१. भट्टी जिसमें लोहा गर्म किया जाता है।
३२. गर्म करी।
३३. माता-गौमाता।
३४. मारते।
३५. जीवात्मा।
३६. धर्म राय का दरबार।
३७. प्रमात्मा की अंश।

दास गरीब एक औह साहिब जिन यह उमत[३८] उपाई[३९]॥५॥
वही मुहमद वही महादेव, वैही विष्णु वही ब्रह्मा।
दास गरीब दूसरा को है; देखो अपने घरमा॥६॥

इस प्रकार अहिंसा का उपदेश देकर उन्हें बताया कि तीसों रोजे करने का तुमको कोई प्रतिफल प्राप्त नहीं होता है। तुम ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकोगे क्योंकि दिन भर रोजा रखा और रात्रि में जीव हलाल करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है।

इसी प्रकार नमाज आदि पढ़ना, मक्के-मदीने, काबे आदि जाना सब व्यर्थ ही है। न कोई मुहम्मद और महादेव में अन्तर है न काबे कैलाश में अन्तर है। ब्रह्मा-विष्णु-महादेव मुहम्मद आदि सब एक ही ब्रह्म तो हैं? उसके अतिरिक्त दूसरा है ही कौन?

आदि-आदि उपदेश आपने मुसलमानों को दिये। आप जीव-हिंसा करने वालों के एक दम विरुद्ध थे। आप तो जीव-मात्र को ईश्वर का स्वरूप मानते थे। आपने लिखा है कि—

मुर्गी बकरी चिड़ी बटेरी। सूर[४०] गौ में एके सेरी[४१]॥१॥
गरीब मुसलमान कुं गाये भखी, हिन्दू खाया सूर।
गरीबदास दोहूँ दीन से, राम रहीमा दूर॥२॥
गरीब जीव-हिंसा जो करत हैं; या आगे क्या पाप।
कण्टक[४२] जूनी जहाँन में; भेड़िया सिंह और साँप॥३॥

इस प्रकार आप हिन्दू और मुसलमानों को समान रूप से अहिंसा का उपदेश देते थे। उन्हें जीव-हत्या से दूर रह कर ही अपने-अपने धर्म पर आरूढ़ रहने की शिक्षा देते थे। आपका उपदेश था कि जीव-दया से

३८. सृष्टि-संसार।
३९. उत्पन्न करी।
४०. सूअर।
४१. मार्ग रास्ता।
४२. हिन्सक जीव = जंगली जीव।

बढ़कर कोई दूसरा धर्म ही नहीं है। मनुष्य का सर्वोत्तम सर्वश्रेष्ट यही धर्म है और यही कर्म है। यथा–

गरीब आत्म-प्राण उधारहीं, ऐसा धर्म न और।

कोटि यज्ञ असमेध फल, शब्द समाना भौर[४३]॥

इस प्रकार से आप जीवोद्धार करना अपना और सभी का सबसे बड़ा धर्म मानते थे। अतः नवाब के साथ में आये हुए मुल्ला और काजी आदि सभी ने महाराज जी से अहिंसा का उपदेश तथा व्रत लिया। उस दिन से इस रियासत में गोवध को तो अपने राज्य का वैधानिक नियम बनाकर-बिल्कुल बन्द कर दिया था। महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर नवाब नूर हसन खान ने महाराज के प्रति श्रद्धा भाव दिखाते हुए ४८ बीघे का बड़ बेरियों का बाग समर्पित किया था। जो अभी तक सरकारी रिकार्ड में मिलता है। इसकी चर्चा गोरखपुर में छपे गो-अंक में भी प्रकाशित की गई थी कि झज्जर के नवाब के राज्य में गो वध नहीं होता था। इसी प्रकार आपने अनेक मुसलमानों को अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए उनकी हिंसक प्रवृत्ति को छुड़ाकर अग्रसर किया। उन्हें बार-बार हिंसा से घृणा करने के लिए सदुपदेश दिये। कारण कि उस समय मुसलमानी राज्य था जनता में पापाचरण बढ़ता जा रहा था। जीवों की हत्या साग-सब्जियों की तरह की जा रही थी। ऐसे समय में आप जैसे महापुरुषों का ही कार्य था जो कि निष्पक्ष-निर्बैर हो जनता में हिन्दू और मुसलमान दोनों को उनका सही मार्ग प्रदर्शित करा अहिंसक और जीवोत्कर्ष मार्ग पर चलने के लिए कहते थे। आपकी वाणी में प्रकरण मुसलमानों के प्रति अधिक आते हैं। इनसे सिद्ध होता है कि वे लोग आपसे ईर्षा-वश विवाद करने आते थे परन्तु आपकी अकाट्य बातों से विवश हो उनको आप ही की बातें माननी पड़ती थीं और आपका सदुपदेश जादू उन पर अपना प्रभाव डाल देता था। इसी से वे लोग आपसे उपदेश लेकर जाते थे और आपके अनुयायी हो जाते थे। आपकी सभी बातें सभी उपदेश हिन्दू

---

४३. जीवात्मा।

और मुसलमान दोनों के लिए समान रूप से थे। यथा–

वह विस्मल वह झटका करहिं। दोनों दीन नरक में परहि॥

॥ बाबा स्वामी सन्तोषदास जी॥

श्री सन्तोषदास जी का जन्म आसौदा ग्राम (देहली से रोहतक जाने वाली रेलवे लाईन पर है) कान्हराम अग्रवाल के घर में हुआ। आपके पिता जी (कान्हराम) बहुत बड़े धनी-मानी व्यक्ति थे तथा २४ ग्रामों के शासक थे। आपको दिल्ली सम्राट की ओर से अपराधी व्यक्तियों को ६ मास का कारावास और ५०० रु आर्थिक दण्ड देने का अधिकार था। सन्तोषदास जी बाल्यकाल से ही सांसारिक पदार्थों से तटस्थ रहते थे। आप सांसारिक पदार्थों से उदासीन रहते हुए ईश्वर के भजनानन्द में ही मगन रहते थे। आपकी उदासीन प्रवृत्ति को जानकर आपके पिता कान्हराम ने इस विचार से कि कहीं सन्तोषदास परिवार का परित्याग करके साधु न हो जाये सन्तोषदास का विवाह दिल्ली गुड़मण्डी निवासी (जो गुड़मण्डी वाले संज्ञा से प्रसिद्ध) सेठ की सुपुत्री लक्ष्मीबाई से करने का निश्चय किया। आप को इस बात की सूचना मिली और आपने पिता जी से कहा कि मैं विवाह नहीं कराऊँगा परन्तु आपके पिता इस बात को कहाँ मानने वाले थे। आपकी विवाह के विपरीत इच्छा होते हुए भी विवाह कर दिया गया। आप छोटी अवस्था से ही श्री गरीबाचार्य के दर्शनार्थ नित्य प्रति छुड़ानी जाया करते थे। परन्तु आपके जाने का ज्ञान किसी को भी नहीं था। क्योंकि आप रात्रि में सब परिवार के सो जाने के पश्चात् ही जाया करते थे और उनके जाग्रत होने से पहले ही घर लौट आते थे। इस प्रकार आप अपना समय सत्संग में ही व्यतीत करते थे। एक दिन आपकी माता ने अर्द्धरात्रि में उठकर देखा कि आपकी शय्या खाली पड़ी थी यह देखकर इनकी माता ने इनके पिता कान्हराम से कहा कि इतनी रात्रि में हमारा पुत्र कहाँ गया क्योंकि यह समय कहीं जाने का नहीं है। पिता ने कहा कि शौच आदि को गया होगा, माता जी ने उत्तर दिया कि मैं बहुत समय से देख रही हूँ वह यहाँ नहीं है और मेरा अनुमान है कि नित्य ही रात्रि में

कहीं जाता है। इसी विषय में चिन्ता करते हुए अधिक समय व्यतीत हो गया और इतने में आप भी छुड़ानी धाम से आ गये। तब माता-पिता आपसे पूछने लगे कि बेटा इस समय कहाँ गया था। क्योंकि घोर रात्रि के समय कोई भी व्यक्ति घर से बाहर नहीं निकलता। तुम ही क्यों ऐसे दुःखद समय में कहीं गये थे। इससे हमको बहुत दुःख होता है। हमारे प्राणों के आधार एकमात्र तुम्हीं हो इससे तुम्हें वह कार्य नहीं करना चाहिये जिससे हमें दुःख प्राप्त हो। आपने स्पष्ट उत्तर न देकर माता के सामने आना-कानी की परन्तु माता-पिता तो आपसे स्पष्ट जानना चाहते थे। अन्त में इनके विशेष आग्रह से आपको स्पष्ट कारण बताना ही पड़ा। आपने कहा कि मैं छुड़ानी धाम को श्री सद्‌गुरु गरीबाचार्य के दर्शनार्थ जाया करता हूँ। यह सुनकर माता-पिता ने वहाँ जाने से मना किया और कहा कि इस प्रकार ठगने वाले साधु दुनियाँ में अनेक हैं उनके बहकाव में आकर सुख नहीं मिल सकता और अनेक प्रकार की नास्तिकता सम्बन्धी बातें कीं ताकि आप वहाँ जाने से रुक जावें। परन्तु आप अपनी दृढ़ता से कब हटने वाले थे। आपको तो उस आत्मानंद परमात्मा का आभास होने लगा था जो कि श्री सद्‌गुरु जी की असीम कृपा से प्राप्त हुआ था। इस प्रकार प्रत्येक दिन मना करने पर भी जब आप नहीं माने तब आपके माता-पिता ने एक दिन तंग आकर आपको एक कमरे में बन्द करके ताला लगा दिया। परन्तु आप (अपने नियमानुसार) अपने योग बल से छुड़ानी धाम में गये। प्रातः काल जब आपके कमरे का ताला खोला गया तब उन्होंने देखा कि आपके पैरों पर ओस से सनी हुई बहुत सी मिट्टी थी। यह देखकर उन्होंने पूछा कि यह मिट्टी कहाँ से आयी? तब आपने कहा कि मैं तो अपने नियत स्थान सद्‌गुरु जी की शरण में गया था इसी कारण से वह मिट्टी पैरों में लगी है। यह सुनकर माता-पिता आश्चर्यचकित हो कहने लगे कि ताला बन्द रहते हुए तुम वहाँ कैसे गये? आपने उत्तर दिया कि उन परिपूर्ण परमेश्वर सद्‌गुरु देव की जिस पर कृपा होती है उसको एक ताले में तो क्या अनेक तालों में भी बन्द नहीं किया जा सकता। यह सुनकर माता-पिता जान गये कि यह तो पूर्व जन्म का योगी प्रतीत होता है। आज से इसके किसी भी

कार्य में विघ्न-बाधा नहीं उपस्थित करेंगे। अब आप अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र हो गये हम उसमें कोई भी प्रतिबन्ध नहीं रखेंगे। फिर तो स्वच्छन्दता पूर्वक आपका सद्‌गुरु जी की शरण में आना-जाना हो गया।

कुछ समय पश्चात् आपकी स्त्री लक्ष्मीबाई का आसौदा में आना-जाना प्रारम्भ हो गया। अपनी स्त्री को भजन-पाठ में विघ्न का कारण समझ कर गृहस्थ परित्याग का अपने मन में विचार किया और श्री सद्‌गुरु देव जी के चरणों में जाकर प्रार्थना की, कि हे गुरुदेव जी मैंने अच्छी तरह देख लिया कि इस संसार में कोई भी वस्तु सुखद नहीं है। अतः मैं इस दुःखमयी असार संसार के समस्त पदार्थों के उपभोग की वृत्ति का परित्याग कर आपकी चरण-सेवा ही करना चाहता हूँ। सन्तोषदास की इस प्रकार की गयी प्रार्थना को सुनकर श्री जगद्‌गुरु जी ने उनसे कहा कि कोई भी ज्ञानी एवं आत्मसाक्षात्कार करने वाला पुरुष घर में रहकर भी आत्मानन्द अनुभव कर सकता है। यदि तुमको सद्‌गुरु देव के वचनों में दृढ़ विश्वास है तो उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण करते हुए तुम गृहस्थ जीवन के बीच भी भजन का आनन्द प्राप्त कर सकते हो। प्राचीन काल में जनक जी ने भी इसी प्रकार गृहस्थी-राजपाट आदि के साथ ही साथ विदेहमुक्त का आनन्द प्राप्त किया था। वे संसार में रहते हुए भी सांसारिक प्रपंचों से सर्वथा निर्लेप रहने के कारण 'विदेह' कहलाते थे। अतः तुम्हें भी कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है। तुम भी अपने घर पर रहकर स्वात्मा का साक्षात्कार करते रहो।

श्री सद्‌गुरुदेव जी के वचन सुनकर सन्तोषदास जी बोले हे सद्‌गुरु देव जी जैसे आप जी ने कहा सो तो ठीक है किन्तु मेरे घर पर रहने से भजन बन्दगी में अनेक तरह के विघ्न आते रहते हैं। जिससे मन विक्षिप्त हो जाता है। जिससे भजन बन्दगी ठीक तरह से नहीं होते। इस प्रकार भजन में विघ्न बाधाओं को आते देखकर मैं वहाँ पर रहकर खुश नहीं। मेरा तो यह पक्का निश्चय हो गया है कि मैं घर बार का परित्याग करके आप की आज्ञा से एकान्त का सेवन करता हुआ अपनी आत्मनिष्ठा की धारणा और भी इतनी सुदृढ़ बनाऊँगा जिससे कि मेरे अन्तःकरण में

अनेक बाधाओं के आने पर भी विक्षेप न हो और अनन्तकाल तक मेरा मन आपके चरणों में लगा रहे।

जबकि सन्तोषदास जी श्री सद्गुरु देव जी के चरण-कमलों में इस प्रकार की प्रार्थना कर रहे थे तथी उनके माता-पिता तथा उनकी धर्मपत्नी एवं श्वसुर कई ग्रामों की पंचायत को साथ लेकर श्री छुड़ानी धाम में श्री सद्गुरु जी के दरबार में पहुँच गये। और जगद्गुरु जी से कहने लगे कि आपने हमारे लड़के को घर से बेघर कर दिया। क्या आप लोग इसी ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहते हैं? क्या आप के इसी ज्ञान से आप की तथा आपके पास में आने वालों की मुक्ति होगी? क्या आप यह विचार नहीं करते कि युवावस्था में विवाहित लड़का घर छोड़कर आपके पास में आकर साधु बनेगा तो उसके घर वालों एवं उसकी पत्नी की क्या दशा होगी? क्या उसके माता-पिता जिन्होंने उसको पालपोस कर इतना बड़ा किया, जोकि यह चाहते थे कि वृद्धावस्था में यह अपनी शुभ कमाई से हमारी सेवा करेगा तथा हमारी तरह अपने कुल को भी अच्छी तरह बढ़ायेगा और यह तो हमारी आँखों के आगे एक ही लाल है इसके आश्रित हमारा जीवन है। क्या आप नहीं जानते हैं कि इसके घर छोड़ने पर हमारी क्या दुर्दशा होगी। इस प्रकार अनेक आक्षेप इन्होंने महाराज जी पर किये तब श्री जगद्गुरु जी उनके मन के भाव को ठीक तरह से जानकर शान्तिपूर्वक इस प्रकार बोले कि--

हे कान्हराम! आप को तो यह सन्देह व्यर्थ ही हो गया है। आप हमारी तरफ देखिए कि हम स्वयं घर में रहकर अपने जीवन का तथा सर्व साधारण प्राणीमात्र का यथा शक्ति उपकार करते हैं। हमारे पास में तो जो कोई भी आता है हम उसको यही कहते हैं कि अपनी सच्ची कमाई करो। जो कर्म शरीर से बने और जो कर्म अन्तःकरण से बने सब में सच्चाई होनी चाहिए। सच्चे मनुष्य को कहीं पर भी दोष नहीं दिया जा सकता। हम सबको उसी परम परमेश्वर के परम धाम में जाना है। इसलिए सब उस परमेश्वर का भजन करें। जिससे हम सब प्राणियों सहित अपने धाम में निर्विघ्न पहुँच सकें। इस प्रकार श्री सद्गुरुदेव जी ने अपने वचनों से उनको आश्वासन दिया और कहा कि आप का पुत्र आपके पास में बैठा

है। आप इसे समझा बुझा कर अपने घर ले जायें। हम तो इस बात में बहुत खुश हैं कि यह अपने घर में रहकर ही अपने साधन में लगा हुआ अपने माता-पिता की सेवा करे। घर के लिए आपके यहाँ आने से पहले हमने इनको बहुत समझाया है।

उनके वचन सुन श्री कान्हराम जी ने सन्तोषदास जी को समझाया और साथ में आए हुए पंचायतियों ने तथा लक्ष्मीबाई के पिता जी ने भी इनको बहुत समझाया। जब इनके सब प्रकार से समझाने का सन्तोषदास जी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब वे भी सद्गुरु जी से फिर प्रार्थना करने लगे कि आप ही किसी प्रकार इन्हें समझावें। क्योंकि हमें अपनी तो उतनी चिन्ता नहीं जितनी कि इस नव युवती लक्ष्मीबाई की है।

उनकी प्रार्थना सुनकर श्री आचार्य जी बोले कि सन्तोष दास के घर छोड़ने से लक्ष्मी बाई को ही सबसे अधिक दुःख है। जिसे हम सब मानते हैं। अतः इस बात का निर्णय इस पर ही छोड़ दिया जाय और श्रीमती लक्ष्मी बाई जो निर्णय कर देगी वह आपको और श्री सन्तोष दास आदि सबको मानना होगा। श्री गुरुजी का यह न्याय दोनों पक्षों ने स्वीकार किया। तब श्री जगद्गुरु जी ने लक्ष्मी बाई के सामने एक पीला तथा एक सफेद दो वस्त्र रख दिए और बोले बेटी! यदि तू सन्तोष दास को गृहस्थी रखना चाहती है तो सफेद वस्त्र उठाकर सन्तोष दास जी को दे दे और यदि तू सन्तोष दास को साधु बनाकर तथा स्वयं ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करती हुई अपना जीवन बीताना चाहती है तो इसे पीला वस्त्र उठाकर दे दे। ऐसा सुनकर श्रीमती लक्ष्मी बाई ने दोनों वस्त्रों में से पीला वस्त्र उठाकर श्री सन्तोषदास जी को देना चाहा, किन्तु सभी पंचायत के लोगों ने कहा कि लक्ष्मीबाई भूल गयी। कपड़ा फिर उठाया जावे, तब श्रीमती लक्ष्मीबाई ने दूसरी बार भी भगवा वस्त्र ही उठाकर सन्तोषदास को देना चाहा किन्तु पंचायत के लोगों ने "लक्ष्मीबाई भूल गयी है" ऐसा कहकर वस्त्र वापिस रखवा दिया। अब अन्तिम बार भी भगवा वस्त्र श्रीमती लक्ष्मीबाई ने उठा लिया और श्री सन्तोषदास जी को दे दिया जिसको सभी पंचायत के लोगों ने तथा सन्तोषदास ने स्वीकार किया। तब भगवा वस्त्र सन्तोषदास को देकर श्रीमती लक्ष्मीबाई ने श्री जगद्गुरु जी से

प्रार्थना की कि हे सद्‌गुरु जी मेरी एक प्रार्थना है कि मैंने अपने हाथ से भगवा वस्त्र उठाकर इनको दे दिया है। अतः अब मैं सारा जीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुई बिताऊँगी। किन्तु मैं यह चाहती हूँ कि ये (श्री सन्तोषदास जी) हमारे पास में रहें। मैं इनके भजन में कोई विघ्न नहीं आने दूंगी तथा नाहीं अपनी तरफ से कोई बाधा इनके कार्य में डालूँगी। सेवा ही करती रहूँगी।

तभी श्री सन्तोषदास जी के पिता ने भी प्रार्थना की कि हे जगद्‌गुरु जी हमारे घर में तो यह एक ही लड़का था जो कि साधु हो गया। अब हम क्या करें। हमारी प्रार्थना मानकर आप हमारे ऊपर इतनी कृपा करें कि सन्तोषदास हमारे साथ चला जाय। हम अपना जीवन इसे देख-देखकर ही बिताते रहेगें और हम इनके भजन में कोई विघ्न नहीं डालेंगे। हम इनके भजन करने के लिये एक मकान अलग ही बना देंगे। ये वहाँ पर रहें और भजन करते रहें।

इस प्रकार से लक्ष्मीबाई और श्रीकान्हराम जी की प्रार्थना सुनकर श्री सद्‌गुरु जी ने सन्तोषदास को वापिस घर जाने के लिए समझा दिया। जिसको श्री सन्तोषदास जी ने स्वीकार कर लिया सद्‌गुरु ने कान्हराम जी को आशीर्वाद दिया कि तुम चिन्ता न करो; तुम्हारे घर एक पुत्र और भी पैदा होगा। इसलिए सन्तोषदास को भजन ही करने दो।

तब सब पंचायत के लोग तथा सन्तोषदास जी श्री सद्‌गुरु जी से प्रार्थना करके तथा आज्ञा लेकर आसौदा को चले गये। वहाँ पर श्री कान्हराम जी ने सन्तोषदास के भजन करने के लिये एक मकान अलग बना दिया। जिसमें श्री सन्तोषदास जी रहने लगे। तथा लक्ष्मीबाई के लिये भी एक चौबारा अलग बना दिया। जिसमें रहकर लक्ष्मीबाई उनकी सेवा करने लगी। श्री सद्‌गुरु जी की आज्ञानुसार कान्हराम के घर ठीक समय पर एक लड़का उत्पन्न हो गया। श्री सन्तोषदास जी के प्रेम के वशीभूत होकर श्री महाराज जी ने कई चातुर्मास आसौदा में किये। जिस मकान में बाबा सन्तोषदास रहा करते थे। वहीं पर ही महाराज जी भी टिका करते थे और इस मकान में अब तक भी महाराज जी का निवारी पलंग सुरक्षित

रखा हुआ है। जिसकी मेले के समय तथा वैसे भी सभी लोग पूजा करते हैं। संतोषदास जी के बाद में अब इस मकान में सन्त महात्मा ही रहते हैं। और बाबा सन्तोषदास जी की समाधि ग्राम से पूर्व में तालाब के किनारे बनी हुई है। समाधि पर एक बहुत बड़ी छतरी बनी हुई है। और यह तालाब भी उनके सामने का बना हुआ है। इनके पिताजी ने इसी तालाब के किनारे शिवमन्दिर भी बनवा दिया था। श्री कान्हराम जी भगवान् शङ्कर के उपासक थे। उन्होंने आसौदा से दिल्ली तक कई शिव मन्दिर बनवाये ऐसा सुना जाता है। इसी स्थान पर मार्गशीर्ष (मंग्सर) शुदी द्वितीया (दूज) को बाबा सन्तोषदास जी की जन्म स्मृति के उपलक्ष में ज्ञानगुदड़ी के नाम से मेला होता है। अर्थात् उस दिन को ज्ञान गुदड़ी कहते हैं। ऐसा सुना जाता है कि यह दिन बाबा सन्तोषदास जी का ज्ञान प्राप्ति का दिन है। इस समय इस स्थान का संचालन सूर्यदेव आचार्य कर रहे हैं।

आसौदे का मनिराम ब्राह्मण

एक बार इस आसौदा गाँव के लोगों ने श्री मद्‌भागवत की कथा आरम्भ करवाई। कई मास कथा होती रही। कथा की समाप्ति कुछ दिनों में होने ही वाली थी तब कुछ नासतिक पक्ष के लोगों ने वेश्या को बुलाकर उसका नृत्य करवाना आरम्भ कर दिया। उधर कथा का भोग लगा तो केवल तीस रुपये कथा वाचक को उपलब्ध हुए। और उस नृत्य करने वाली को पाँच सौ रुपये दिये गये। तब वह ब्राह्मण दुःखित होकर महाराज जी के पास श्री छुड़ानी धाम में उपस्थित हुआ। आकर दण्डवत् प्रणाम किया और चुपचाप बैठ गया तब उस ब्राह्मण का दुःखित मन देखकर महाराज जी ने कहा कि पण्डित जी क्या कारण है? आप इतने उदास क्यों हो रहे हो? तब पण्डित जी ने सम्पूर्ण व्यथा विस्तार पूर्वक निवेदन कर दी, यह सुनकर श्री जगद्‌गुरु जी ने पूछा, कि इस बात के मुखिया कौन थे। तब उस ब्राह्मण ने दो व्यक्तियों के नाम लिये एक का नाम जगदीश दूसरे का नाम विवेक। तब महाराज जी ने यह साखी कही—

साखी- **गरीब फूटी आँख विवेक की, अन्धा है जगदीस,**

चम्पाकली को पाँच सौ, मनीराम को तीस।

तत्पश्चात् मनिराम ब्राह्मण को महाराज जी ने अनेक प्रकार से समझाया और कहा, कि इस जीव की इच्छाएँ कभी भी पूर्ण नहीं हो सकतीं। इच्छाओं के वशीभूत हुआ यह जीव कभी स्वर्ग, कभी पाताल के चक्कर काटता हुआ अनेक योनियों में भटकता फिरता है। बिना सन्तोष के इस जीव को कभी सुख नहीं मिलता और यहाँ पर महाराज जी ने यह तीन शब्द कहे। जो कि राग आसावरी के अन्तर्गत है।

"राग आसावरी"

(१) मन तूं चलरे सुख के सागर[1], जहाँ शब्द सिंधु[2] रतनागर[3]। टेक।
कोटि जन्म जुग भर्मत हो गये, कछु न हाथ लग्या रे।
कूकर[4] सूकर[5] खर[6] भया बौरे[7], कऊवा हंस बुगारे[8] ॥१॥
कोटि जन्म जुग राजा किन्हा, मिटी न मन की आसा।
भिक्षुक होय कर दर दर हांढ़्या[9], मिल्या न निर्गुन रासा[10] ॥२॥
इन्द्र कुबेर ईस की पदवी, ब्रह्मा वरुण[11] धर्मराया।
विष्णु नाथ के पूर कुं पौहुच्या, बौहर अपूठा आया॥३॥
असंख्य जन्म जुग मरते हो गये जीवत क्यों न मरै रे।
द्वादस[12] मध महल मठ बौरे बौहर न देह धरै रे॥४॥

---

१. समुद्र।
२. शब्द ब्रह्मरूपी समुद्र।
३. जिस समुद्र में से रत्न निकलते हैं।
४. कुत्ता।
५. सूअर।
६. गधा।
७. पगले कसी को समझाते समय कहा जाने वाला शब्द।
८. बगुला एक सफेदरङ्गका पक्षी जो मच्छी मेंढक खाता है।
९. घूमा।
१०. सही, स्वरूप।
११. जलों का स्वामी।
१२. बारह की संख्या, प्रणों की गति बारां अंगुल तक होती है उसको समझ लेने से फिर मृत्यु के चक्र में नहीं आता।

दोजख भिस्त सभै तैं देखे, राज पाट के रसिया।
त्रिलोकी सैं त्रिपत नाहीं, यौह मन भोगी खसिया॥५॥
सतुगुरु मिलैं तो इच्छ्या मेटैं पद मिल पदहि समाना।
चल हंसा उस देश पठाऊं[13], जहाँ आदि अमर अस्थाना॥६॥
चारि मुक्ति जहाँ चंपी[14] कर हैं, माया हो रही दासी।
दास गरीब अभै[15] पद परसे, मिले राम अविनाशी॥७॥
(२) मनि तु सुख के सागर बसरे, और न ऐसा जस रे।टेक॥
सर्व सोने की लंका होती, रावन से रण धीरं।
एक पलक में राज विराजी[16], जम के परे जँजीरं॥१॥
उदै[17] अस्त बिच चक्र चलैं थे, ऐसी जन ठकुराई।
चुणक ऋषीश्वर कल्प करी, जहाँ खोज न पाया राई॥२॥
दुर्योधन से राजा होते, संग इकोतर भाई।
ग्यारह खुंहनी संग चलैं थीं, देही गीधन खाई॥३॥
साठ हजार सगर के होते, कपिल मुनीश्वर खाये।
एकै पुत्र उत्तानपाद कै, परमात्म पद पाये॥४॥
राम नाम प्रह्लाद पढ़े थे, हिरनाकुश नहीं भाये।
नरसिंह रूप धरे नारायण, खंभ पार कर आये॥५॥
नामदे नाम निरंजन राते, जाकी छान छिवाई।
एक पलक में देवल फेरया, मिर्तक गऊ जिवाई॥६॥
काशी पुरी कबीरा होते, ताहि लखो रे भाई।

---

१३. भेजूं।
१४. चरणसेवा।
१५. भय से रहित स्थान।
१६. त्यागी छूट गया।
१७. सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य मान धाता राजा करता था उसको भी चुणक ऋषिश्वर ने क्षण भर में नष्ट कर दिया।

जहाँ केशो बनजारा उतर्या नौलख बालद आई॥७॥
कनक जनेऊ कंध दिखाया, भक्ति करी रैदासा।
दास गरीब कौन गति पावै, मघहर मुक्ति बिलासा॥८॥
(३) मनि तुं मान सरोवर न्हारे, इहां, न भटका खायेरे॥टेक॥
सुरज मुखी फूल जहाँ फूले, शंख पद्म उजियारा।
गंगा जमुना मध्य सरस्वती, त्रिबैनी की धारा॥
जहाँ कमोदनि चन्द्र गता है, कमल कमल मध्य तूरा।
अनहद नाद अजब धुनि होंहि, जानै सतगुरु पूरा॥
औघट घाटि विषम है दरिया, न्हावैं संत सुजाना।
मोक्ष मुक्ति की परबी लै रे, साखी हैं शशि भाना॥
जहां उहां हँस कतूहल करहैं, मोती मुक्ता खाहीं।
ऐसा देश हमेश हमारै, अमृत भोजन भाहीं॥
शंखो लहर मिहर की उपजैं, कहर नहीं जहाँ कोई।
दास गरीब अचल अविनाशी, सुख का सागर सोई॥

इस प्रकार आपने मनिराम ब्राह्मण को सम्पूर्ण पदार्थों के अन्दर असारता दिखलाकर उसको उस अमर पद की ओर लगा दिया। जिसको प्राप्त करके पुनः जन्म-मरण का दुःख न उठाना पड़े और वह मनिराम ब्राह्मण भी सद्गुरु जी के उपदेश के अनुसार अपने मन से सम्पूर्ण इच्छाओं का परित्याग करके उस अमरत्व की प्राप्ति में लग गया। जिसको प्राप्त होकर फिर जन्म-मरण का दुःख न उठाना पड़े। इस प्रकार आपकी शरण में आकर अनेक जीव संसारी दुःखों से छूट कर अपने कल्याण मार्ग में प्रवृत्त हो जाते थे।

॥स्वामी बनखण्डी दास जी॥

यह खरावर (कलावड़) ग्राम देहली से रोहतक जाने वाली रेलवे लाईन और राजमार्ग पर पड़ता है। उसमें इनका क्षत्रिय कुल (जाटों) में जन्म हुआ था। एक बार यह यमुना पार से बाजरे की गाड़ी लेकर आ रहे

थे। जब आसौदा ग्राम में (आसौदा रोहतक वाली रेलवे लाईन पर पड़ता है) पहुँचे वहाँ दुकान पर कुछ सामान लेने गये तो दुकान पर कुछ लोग बैठे हुए परस्पर स्वामी सन्तोषदास जी के विषय में उनकी चर्चा कर रहे थे। कि देखो इस वैश्य घर में उत्पन्न लड़के ने छोटी सी अवस्था में श्री गरीबाचार्य जी की कृपा से कितनी महान शक्ति प्राप्त कर ली है। इस प्रकार की वार्त्ता को जब उस व्यक्ति ने (जो बाजरे की गाड़ी यमुना पार से लिये आ रहा था। वह जो वार्त्ता स्वामी सन्तोषदास जी के विषय में हो रही थी) सुनी, तब वह बोला, "कि वह सन्तोषदास जी कहाँ रहते हैं? तब उन्होंने कहा कि यह पास में ही उनका मकान है। वहाँ रहते हैं। वह सीधा उसी समय सन्तोषदास जी के पास गया। जाकर नमस्कार करके बैठ गया। सन्तोष दास जी ने कहा कि भाई तुम जाओ, तुम्हारी गाड़ी गाँव से बाहर पहुँच गई है। तेरे साथी तेरा इन्तजार कर रहे हैं। यह अन्तर्यामिता की बात सुनकर उसकी बड़ी श्रद्धा हुई और चरणों में पड़ गया। कहने लगा कि भगवन् आप मुझे अपने चरणों में ही रख लो मैं आपके चरणों से दूर नहीं जाना चाहता। तब सन्तोष दास जी ने कहा कि अपने घर में ही घर का काम करते हुए सद्गुरु जी को याद रखो। जब आप परमात्मा को नहीं भूलेंगे तब आप घर में रहते हुए भी साधु ही हो। इसमें किञ्चित भी संशय नहीं परन्तु वह हठ करने लगा कि मैं तो घर नहीं जाना चाहता। तो भी आपने समझा-बुझाकर उसको भेज दिया। वह आपकी आज्ञा मानकर चला तो गया, परन्तु उसका मन यहीं रहा। दूसरे दिन फिर आ गया और कहने लगा कि मुझे अपना शिष्य बना लो। तब आपने कहा कि, हम तो किसी को शिष्य नहीं बनाते। यदि आपको शिष्य बनना ही है तो हमारे सद्गुरु जी के शिष्य बन जाओ। उसने पूछा, आपके सद्गुरु जी कहाँ हैं और कौन हैं, तब आपने बताया कि हमारे सद्गुरु जी जिनका नाम श्री गरीबाचार्य (गरीबदास) जी है वह श्री छुड़ानी धाम में निवास करते हैं। यह सुनकर उसकी और भी उत्कण्ठा महाराज जी के दर्शनों के लिये बढ़ गई और कहने लगा कि मुझे उन श्री सद्गुरु जी के दर्शन कराओ आपने कहा कि किसी दिन चलेंगे। अब तुम अपने घर पर जाओ। तेरे घर वाले तुझे ढूँढ रहे हैं। परन्तु वह हठ करने लगा कि नहीं महाराज जी आज ही

श्री छुड़ानी धाम चलो। उसका अति आग्रह देखकर आपने कहा कि आज तो तुम अपने घर जाओ कल आ जाना। फिर छुड़ानी में चलेंगे। तब तुम्हें सद्गुरु जी का शिष्य बनवा देंगे। जब आपने उसको वचन दे दिया तो वह विचारने लगा कि सन्त सत्यवादी होते हैं मुझे अब इन्होंने वचन भी दे दिया है अतः अब मैं घर चला जाऊँ। इससे इनकी आज्ञा का पालन भी हो जायगा और कल सद्गुरु जी के दर्शन भी प्राप्त हो जायेंगे। एक पंथ दो काज; ऐसा विचार कर वह उनको नमस्कार कर अपने घर लौट गया। दूसरे दिन प्रातः काल ही उसने अपनी चद्दर में कुछ शक्कर ली और चलने लगा। घर से निकलते ही उसे घर वालों ने पूछा कि कहाँ जाते हो और यह शक्कर कहाँ ले जा रहे हो। उसने कहा कि मैं साँपला मण्डी में इसका नमूना दिखलाने ले जा रहा हूँ। इस प्रकार बहाना बनाकर वह घर वालों के चगुंल से छूट गया। सीधा आसौदे ग्राम में पहुँचा। वहाँ से स्वामी सन्तोषदास जी को साथ लेकर छुड़ानी धाम को प्रस्थान किया। महाराज जी के दरबार में जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

तदनन्तर सन्तोषदास जी ने महाराज जी से प्रार्थना की कि यह हंस (प्राणी) आपकी शरण में रहना चाहता है। कृपा कर इसे भी अपनी शरण में ले लीजिये। तब महाराज जी ने कहा कि घर में रह कर ही परमात्मा का नाम जपो। अपने घर का काम भी साथ-साथ करो। क्योंकि आपका मुख्य उद्देश्य यही था कि घर में रहते हुए ही परमात्मा का भजन करना चाहिए। इतने में उसके घर वाले भी यहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आप के आगे प्रार्थना करी कि भगवन्। हमारे लड़के को समझा कर हमारे साथ भेज दो। परन्तु उसने तो जाने से बिलकुल इन्कार कर दिया। जब वह किसी प्रकार भी न माना तब घर वालों ने कहा कि यदि तू भजन हीं करना चाहता है तो वहाँ तेरे लिये अलग मकान बनवा देंगे। तू वहाँ ही रह कर भजन करना तब महाराज जी ने उसे दीक्षा देकर उनके साथ भेज दिया। उससे कह दिया कि दोनों बात ठीक होनी चाहिएँ। एक तो तेरे माता-पिता का हठ भी पूरा हो जायेगा। यह भी तुझे छोड़ना नहीं चाहते। दूसरे तुमने भजन ही करना है, वहीं बैठ कर करते रहना। अब तेरे को अपने गाँव में अवश्य जाना पड़ेगा और उसका नाम बनखण्डी दास रखा और कहा कि

तेरे को वहीं पर वस्तु प्राप्त होगी। जो बन में रहकर साधन करने वाले को प्राप्त होती है। तब बनखण्डी दास जी महाराज जी का वचन मान कर अपने घर (खरावर में) वालों के साथ आ गये। अलग मकान बना कर साधन करने लगे। इतना कठोर साधन किया कि जिसके द्वारा थोड़े ही दिनों में सिद्धि को प्राप्त हो गये। अनेक परिचय (शक्तियाँ) दिखाने लगे। आप का वह मकान अब भी है। उसमें गरीबदासी साधु रहते हैं। उसमें आप (बनखण्डीदास) की समाधि बनी हुई है। इस समय वहां श्री स्वामी वेद प्रकाश हैं और उन्होंने इस मकान का जीर्णोद्धार भी करवाया है।

॥माता रानी जी को गंगा स्नान॥

एक समय छुड़ानी ग्राम के बहुत से लोग गढमुक्तेश्वर गंगास्नान के लिए जा रहे थे। माता रानी जी भी गंगा स्नान जाने के लिए कहने लगीं। परन्तु आपने दो दिन यों ही आनाकानी सी करने में बिता दिये। तब माता जी ने फिर कहा कि, बेटा मेरे को गंगास्नान किये कई वर्ष हो गये हैं। साल भर में यह कार्तिक पूर्णिमा का स्नान महान पुण्यदायक होता है। तथा पुण्य से ही प्राप्त होता है। और हमारे देश में इस स्नान का बहुत बड़ा महत्त्व है। इस मास में तो पूरे मास के स्नान करने का बड़ा महत्त्व बताया गया है। यदि सम्पूर्ण मास गंगा-स्नान न किया जा सके तो अन्त के पाँच दिन (कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा) तक तो अवश्य ही गंगा स्नान करने से मास भर का फल प्राप्त हो जाता है। यदि किसी कार्य वश पाँच दिन भी कोई स्नान न कर सके तो पूर्णिमा के दिन तो अवश्य ही स्नान करना चाहिए। हमारे ग्राम के सभी लोग स्नान कर रहें होंगे। तुमने न तो मुझको उनके साथ जाने दिया और ना ही स्वयं ले गये। आपने कहा कि माता जी मैं आपको गंगा स्नान करा दूँगा। तब माता जी ने कहा कि बेटा अब तो किसी भी प्रकार हम गङ्गा जी पर नहीं पहुँच सकते, तो बता तू स्नान कैसे करा देगा? आपने बहुत विश्वास दिलाया परन्तु माता जी को विश्वास कैसे होता? दूसरे दिन प्रातः काल ही आप उठे और माता जी से कहा कि माता जी मैं आपको अभी गङ्गा-स्नान कराऊँगा। ऐसा कहकर आप जहाँ से चल पड़े जहां चन्द्रावती नदी बहती थी गाँव से पश्चिम की

ओर चल पड़े। जहाँ कि चन्द्रावती नदी थी। जिसे अब भी 'गंगा' नाम से पुकारते हैं-वहाँ जाकर उसके किनारे पर बैठकर आपने गङ्गा जी का अववाहन किया। अह्वाहन करते ही गङ्गा जी की निर्मल धारा बहने लगी। आप भागे हुए घर आये और माता जी से कहा, माता जी चलो गङ्गा जी आ गई हैं, आप चलकर स्नान करो। यह सुनकर माता जी कहने लगी-कि बेटा क्या कह रहा है? गङ्गा जी यहाँ कहाँ? वह तो गढ़मुक्तेश्वर में हैं। गङ्गा जी के आने का शब्द सारे गाँव में फैल गया। परन्तु इस बात का कोई भी विश्वास नहीं करता था अब सब लोग एकत्रित हो गये। तब आपने सोचा कि इन लोगों को ऐसे ही ले जाकर नहला भी दिया तो भी इनको विश्वास नहीं होगा। इन सबको यहाँ पर गढ़मुक्तेश्वर ही प्रतीत होना चाहिये। यह विचार कर आपने कहा कि सब लोग नेत्र बन्द करो। आपके कथनानुसार सबने नेत्र बन्द कर लिये। कुछ ही क्षण के पश्चात् सबसे कह दिया कि नेत्र खोलो। नेत्र खोलकर क्या देखते हैं कि गंगा जी की विशाल धारा बह रही है और वहीं गढ़मुक्तेश्वर का दृश्य देखने में आया और बड़ी प्रसन्नता के साथ सबने स्नान किया। सबके स्नान कर चुकने के पश्चात् वही आदेश दिया कि नेत्र फिर बन्द करो। नेत्र बन्द करते ही सब अपने-अपने स्थान पर पहुँच गये और सोचते हैं कि क्या हमने यह स्वप्न देखा है या साक्षात् गंगा जी का ही स्नान हुआ है। इस प्रकार परस्पर लोग विचार करने लगे। तब कुछ लोगों ने कहा कि अभी तो तुम गंगा जी में स्नान करने लगे। तब कुछ लोगों ने कहा कि अभी तो तुम गंगा जी में स्नान करके आये ही हो, गंगा की चलती हुई विशाल धारा देखी। इसमें संशय की वार्ता ही क्या है? इतना बड़ा मेला भरा हुआ था। जो सबने देखा। यदि यह शंका करते हो कि इतनी जल्दी स्नान कर कैसे लौट आये–यह तो इन महापुरुष योगेश्वर जी की शक्ति का प्रभाव है। इतने में एक सेवक ने कहा कि सद्गुरु देव जी मैं तो अपनी धोती गंगा जी पर ही भूल आया। तब महाराज जी ने कहा कि चन्द्रावती नदी पर पहुँच जा तेरी धोती वहीं पर पड़ी हुई है। यह सुनकर लोगों को और भी आश्चर्य हुआ कि स्नान तो गढ़मुक्तेश्वर में किया और धोती पड़ी है चन्द्रावती नदी पर तो जिस व्यक्ति की धोती गंगा पर भूल गई थी वह गया। जाकर देखा

तो धोती किनारे पर पड़ी है। इस प्रकार आपने तीन बार छुड़ानी धाम में गंगा जी को प्रकट किया। वैसे तो जिस स्थान पर महापुरुष एवं सत्पुरुष निवास करते हैं वह समस्त भूमि तीर्थ रूप होती है। सो इस विषय के परिचय का उल्लेख आगे किया जायेगा।

॥नौयोगेश्वरों का छुड़ानी धाम मे आना॥

इस प्रकार छोटी सी आयु में आपके अनेकों ही शिष्य और सेवक बन गये। आपकी कीर्ति सुनकर दूर-दूर से महात्मा लोग आने लगे। यहाँ तक की सम्वत् १७९४ बैसाख शुक्ल चतुर्दशी के दिन सायंकाल को सूर्यास्त से ४ घड़ी पहले आकाश मार्ग से नौयोगेश्वर आपके दर्शन करने छुड़ानी धाम में आये। गाँव से बाहर चन्द्रावती किनारे पर बड़ वृक्ष के नीचे योगेश्वरों ने अपने आसन लगाने का विचार किया महाराज जी के यहाँ आसन लगाने के लिये कुछ फूलादि मँगवाकर अपने आसन लगा लिये और इधर से महाराज जी भी नवयोगेश्वरों के आने की सूचना मिलते ही स्वयं उन्हें जलपान के लिए दूध लिवा ले गये तथा श्री आचार्य जी के साथ गाँव के बहुत से लोग भी जलपान ले आये। परस्पर नमस्कारादि के पश्चात् आचार्य जी ने उनसे भोजन के लिए प्रार्थना की। कहा कि भगवन् बताइये हमारे यहाँ का बना हुआ खाइयेगा या स्वयं बनाओगे। तब योगेश्वरों ने कहा कि देव भोजन की इच्छा तो अब नहीं है। भोजन तो हम प्रातः (सुबह) ही पायेगें। आपके दर्शन की इच्छा से ही हम लोग चल कर आये हैं। आपके दर्शन-मात्र से ही हमारी तृप्ति हो गई। हम आप पर बलिहार जाते हैं। महाराज जी को योगेश्वरों ने अपने पास आसन पर बैठा लिया और परस्पर ज्ञान चर्चा करने लगे। महाराज जी ने पूछा कि आप किस देश से आये हो और आगे कहाँ जाने का विचार है। तब योगेश्वरों ने उत्तर दिया कि हम उत्तर दिशा से आ रहे हैं और आगे दक्षिण की ओर जाने का विचार है। इस उत्तर के पश्चात् उन्होंने गरीबाचार्य जी से जो प्रश्न किये और आपने जो उत्तर दिये उनका वर्णन जैतराम जी की वाणी में देखें यहाँ स्थानाभाव के कारण नहीं लिखे गये। कुछ उत्तर इस प्रकार हैं :–

सुन्न मण्डल सत् लोक हमारा, अकह देश कहलावै।
पूर्व पश्चिम पन्थ पुरातम[1], बंक नाल[2] होय आवै॥१॥

वह साक्षी-चेतन जिसकी सत्ता-स्फुरती से सब क्रियायें होती हैं वह सदा एक रस है। इन चर्म-चक्षुओं (बाह्यनेत्रों) से वह नजर नहीं आता। उसका वास सब प्राणियों के दशम द्वार में है। अर्थात् आकाश की नाई सर्वत्र व्यापक है परन्तु योगियों को गगन मण्डल (दशम द्वार) में ही प्राप्त होता है। जितने भी पिण्ड और ब्रह्मांड हैं सभी उस चेतन ब्रह्म की सत्ता से गूँज रहे हैं एवं क्रियमान हो रहे हैं। सर्वत्र व्यापक होने से उसे दूर नहीं कह सकते। अति निकट होते हुए भी बिना सद्गुरु के वह अलौकिक लीला दृष्टिगोचर नहीं हो सकती। बिना ही मन्दिर के और बिना किसी दीपक बाती के और बिना ही तेल के वह चेतन सर्वत्र जगमगा रहा है। तथा यह सब बातें योगी को या सुरति शब्द अभ्यासी को साधन काल में बिना ही नेत्रों के देखने में आती है। जिसको वह विकट खेल देखने की इच्छा हो वह सद्गुरु द्वारा सुरति शब्द का अभ्यास करके उस जगमगाते हुए तेज स्वरूप आत्मा को अपने अन्दर ही देख लें। इन्हीं सब साधनों द्वारा महात्मा और सद्गुरु भूले हुए जीवों को बार-बार मार्ग दिखाने के लिये इस संसार में आते हैं। यह कठिन मार्ग सद्गुरु और सन्तों के उपदेश बिना प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार हम मोह रूपी निद्रा में सूते (सोये) हुए जीवों को जगाते हैं और उनके ऊपर काल ने जो कर्म रूपी बन्धन डाला हुआ है। हम अपने ज्ञान उपदेश द्वारा काल एवं कर्मों के बन्धन को नाश कर देते हैं। जीव जहाँ से बिछड़ा है वहीं मिला देते हैं फिर उसे अपने देश में ले जाते हैं। हमारा जो देश है उसे विदेश कहिये। वह अमर लोक अनादि है। उस लोक में पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व नहीं हैं। न वहाँ चन्द्रमा है न सूर्य है, न अग्नि है, न जल है और न ही वहाँ बन्धन और मोक्ष है। जैसे स्वामी जैतराम जी ने अपनी वाणी में कहा है :–

---

१. किसी समय यहाँ पर चन्द्रावति नदी भी बहती थी।
२. बंकनाल उसी को कहते हैं जो कि शरीर के अन्दर योग की एक टेढ़ी नाड़ी है। इस बंकनाल के मार्ग को वही जान सकता है जो योग मार्ग द्वारा ब्रह्मरिन्द्र के अन्दर प्रवेश कर लौट कर आया हो एवं उसमें आ जा सकता हो।

हमारा देश विदेश अनादि, भूमि विहूना लोकं।
चन्द सूर्य नहिं पावक पानी, नहिं बन्ध नहिं मोखं॥
उत्पत्ति परलो जन्म न जूनि नहीं रजनी नहिं भोरा।
निकट न दूर नूर निर्वानी शब्द घोर घन घोरा॥

इस प्रकार नव योगेश्वरों के साथ महाराज जी ने वार्तालाप किया। कुछ बातें तो योगेश्वरों से उस समय की कहीं जिस समय कि उनका जनक जी के साथ सम्वाद हुआ था। वह वार्ता कही कि इसी प्रकार श्वास ब्रह्म के विषय में आप (नौ जोगेश्वरों) से जनक जी ने पूछी थीं और आपने उसी प्रकार कहीं जिस प्रकार कि जनक राजा को ज्ञान हो जाये। श्वास ब्रह्म सभी के शरीरों में व्यापक है जो कोई अभ्यास द्वारा स्वासों को स्थिर करके अजपा जाप का साधन करे वह साधक ब्रह्म-रूप हो जाता है और वही ब्रह्म कहलाने का अधिकारी है, जिसने श्वासों को स्थिर किया है वही पुरुष ब्रह्म परायण (आसरे) होता है। आत्मा रूपी सूत्र सब में व्यापक है। जैसे मणियों में धागा व्यापक होता है। उसी प्रकार आत्मा सर्वत्र व्यापक श्वासों का अभ्यास ओ३म् सोऽहं के द्वारा होता है। इसी को अजपा जाप भी कहते हैं। यह गुप्त भेद बिना सद्गुरु जी की कृपा के प्राप्त नहीं होता है। इत्यादि अनेक वार्तायें नौ योगेश्वरों के साथ हुई। उधर सूर्य नारायण भी अस्त हो गये। तब नौ योगेश्वरों ने अपनी-अपनी रुचि अनुसार दुग्ध-पान किया और अपने-अपने आसन पर विराजमान हो गये। गरीबदास जी महाराज भी अपने साथी सेवकों समेत अपने स्थान को लौट आए। रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातः के क्रिया कर्म से निवृत्ति हो योगेश्वरों ने पूजा वन्दन आदि किया। सूर्य ने पृथ्वी पर चारों ओर धूप फैला दी। योगेश्वरों ने चन्द्रावती नदी के किनारे ही भोजन सामग्री दूध चावल दाल आदि एवं जो आवश्यक सामग्री थी मंगवाली स्वयं ही वहाँ पर भोजन बनाया रसोई तैयार करके उन्होंने महाराज जी को बुलाया। दस पत्तल तैयार की गईं। पत्तल तैयार होने के बाद योगेश्वरों ने नागफनी बजाई एवं संख-फूँका। और आकाश की ओर घुमाया। संख के शब्द से सम्पूर्ण आकाश ध्वनित

हो उठा। उस नाद का शब्द होते ही अनन्तों योगेश्वर प्रकट हो गये। मानों कहीं पास ही बैठे थे। बहुत भारी मेला लग गया। जिधर को दृष्टि पात होती योगेश्वर ही दिखाई पड़ते। दशों दिशायें साधुओं से भरी थीं। यह असीम भीड़ देखकर योगेश्वर कहने लगे कि भगवन् (गरीबाचार्य जी) अब क्या किया जाय। इन अगणित साधुओं को इस दस मूर्ति के भोजन-मात्र से तृप्ति कैसे होगी? तब आपने कहा कि चिन्ता की कोई बात नहीं, भोजन सबको दिया जायेगा। यह सुन कर योगेश्वरों ने कहा कि पहले तो हमारे पास इतनी भी जन सामग्री ही नहीं है, यदि यह भी हो जाय तो भोजन इतना जल्दी बनेगा भी कैसे? और इतने साधुओं को बरताया कैसे जायेगा? तब फिर से महाराज जी ने कहा कि आप लोग चिन्ता क्यों करते हो? यह भी कोई बड़ी बात है? आप निश्चिन्त हो जाइये हम अभी सबको उनकी रुचि के अनुसार भोजन करवाते हैं। और आपने यह साखी बोल कर भोजन करवाना प्रारम्भ करवाया यथा—

गरीब सुख देना दुःख मेटना, ताजा राखे तन।
सुर तैतीसों खुश किये, नमस्कार तोहि अन्न॥
खुल्या भण्डारा गैव का बिन चिट्ठी बिन नाम।
गरीब दास मुक्ता तुलैं धन केशो बलि जाम॥

आपने इस प्रकार की अनेक साखियाँ उच्चारण कीं जो कि आपकी बाणी में हैं। उसी समय आपने अन्न देव की स्तुति बोधक बड़ी आरती की जो रत्न सागर में छपी हुई है। ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहाँ नहीं लिखी गई है।

तत्पश्चात् आपने उस थोड़े से भोजन को ही बरताने की योगेश्वरों को आज्ञा दी कि आप बरताना आरम्भ कर दीजिये। सद्गुरु जी की कृपा से यह भण्डार अटूट होगा। किसी प्रकार की कमी नहीं आयेगी जो पदार्थ भी आप चाहेंगे पर्दे के पीछे से सब मिलता रहेगा। ऐसा सुनकर योगेश्वरों ने उस भोजन को परोसना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही समय के अन्दर सबको भोजन पहुँच गया। जो भी किसी ने मांगा वही पदार्थ वहाँ से प्राप्त

कर उन्हें दिया गया। सब ने तृप्त होकर भोजन किया। एक क्षण भर में सब तृप्त हो गये और भोजन के पश्चात् सब आये हुए साधु अन्तर्ध्यान हो गये। किसी को कुछ पता न चला कि कहाँ से आये और कहाँ गये। तब पीछे वही नौके नौ योगेश्वर रह गये। उन्होंने भी प्रसन्ना पूर्वक महाराज जी के साथ बैठकर भोजन किया और तृप्ति हो जाने के पश्चात् आपकी अलौकिक शक्ति देखकर वे दंग रह गये और सारी देह रोमांचित हो गयी और उन्होंने आपकी अनेक प्रकार से स्तुति की और कहा कि आप तो सर्वदा इस पृथ्वी पर जीवों का उद्धार करने के लिये अनेक रूप धारण करके आते ही रहते हो। यदि आप अनेक रूपों में न आवें तो पतित जीवों का उद्धार कैसे हो। हम भी आपके दर्शन के लिये आये थे। आपके दर्शनों से अलौकिक सुख की प्राप्ति हुई है। जीवन भर में ऐसा सुख पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ।

हमारी एक प्रार्थना और है कि आप हमें अपने शरीर का एक वस्त्र देने की कृपा करें। तब महाराज ने कहा कि योगेश्वरो हम आपको बड़े-से-बड़े और बढ़िया-से-बढ़िया कपड़े के थान मँगवा देते हैं। योगेश्वर बोले कि हमें और कपड़े की आवश्यकता ही नहीं है। आप अपने शरीर से स्पर्श हुआ कोई छोटा सा वस्त्र दे दीजिये। उनका हठ देख कर आपने उन्हें एक दुपट्टा दे दिया। उसे लेकर योगेश्वरों ने अपने-अपने मस्तक पर लगाया और चलने की तैयारी की। अपने कथनानुसार दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। कुछ दूर तक सद्गुरु जी भी उनके साथ-साथ गये। लौटते समय योगेश्वरों ने दण्डवत् प्रणाम किया और जय-जय कार के शब्द उच्चारण करते हुए नौ योगेश्वर आकाश मार्ग से चले गये। इस प्रकार उनको आकाश मार्ग से जाते हुए देखकर ग्रामवासियों को बहुत आश्चर्य हुआ। तत् पश्चात् महाराज जी से पूछने लगे कि यह कौन महापुरुष थे क्योंकि इनमें बहुत शक्ति थी कि इन्होंने अपना संख बजाकर ही लाखों साधु कहाँ से बुलाये थे और यह पृथ्वी से आकाश में जाकर अलोप हो गये।

यह प्रकरण श्री स्वामी जैतराम जी की वाणी में बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

॥मुहम्मदशाह रंगीला से वार्ता॥

मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला बड़ा ही भोग-विलासलिप्त बादशाह था। जब यह राजसिंहासन पर बैठा तब सारा समय भोग-विलास में ही बिताने के कारण इसके राज्य को प्रान्तीय सरकारों ने पृथक्-पृथक् बाँट लिया। क्योंकि यह अधिक विलासी होने के कारण राज्य की व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं कर पाता था। सब प्रान्त स्वतन्त्र हो चुके थे, एकमात्र देहली ही इसके पास शेष रही। अपना सब राज्य हाथ से निकल जाने के कारण यह बहुत चिन्तित था। ऐसे समय में इससे (श्री महाराज जी के विषय में) किसी राज्य कर्मचारी ने चर्चा की और मुहम्मदशाह ने अपने मन्त्रियों से कहा कि हमारा सम्पूर्ण राज्य हाथ से निकला जा रहा है। इसका बचाव किस प्रकार हो सकता है। सब लोग उपाय विचारें, जिससे हमारा शासन बना रहे। तब इन मन्त्रियों में से एक हिन्दू ने कहा कि राजन्, अब तो इस राज्य की रक्षा हमारे या आपके वश से बाहर की बात है। आपका राज्य नष्ट होता जा रहा है। इसकी रक्षा कोई महान् पुरुष या पीर-फकीर ही कर सकता है। वह यदि थोड़ी सी कृपा कर दें तो आपका गया हुआ राज्य भी फिर प्राप्त हो सकता है। तब राजा ने कहा कि ऐसा शक्तिमान् महापुरुष कहाँ प्राप्त हो सकता है। यदि कहीं हो तो उसे देहली बुलवाया जाय। तुम खोज करो। तब मन्त्री ने कहा कि बहुत दिनों से एक महापुरुष के विषय में हम अनेक घटनाएँ सुन रहे हैं। यहाँ (दिल्ली) से पश्चिम दिशा में तीस मील की दूरी पर छुड़ानी गाँव है। उसी में एक बहुत शक्तिशाली महात्मा रहते सुने जाते हैं। यह सुनकर कुछ और मुसलमान मन्त्रियों व काजी-मुल्लाओं ने कहा- कि, उन्हें जरूर बुलाएँ। उनकी शक्ति देखें कि उनमें ऐसी शक्ति है, जैसी हम सुन रहे हैं या ढोंगमात्र बना रखा है। इस विषय में पहले भी जो राजा होते थे वह परीक्षा कर लिया करते थे। तब राजा ने अपने उस हिन्दू मन्त्री से कहा- तुम हाथी और पालकी लेकर जाओ और उनको यहाँ बुला लाओ। बादशाह की आज्ञा मानकर इधर से मन्त्री चला ही था कि उधर महाराज जी ने आपके सेवकों और शिष्यों से कहा- हमें बुलाने के लिए देहली के राजा का मन्त्री आ रहा है। मन्त्री भी शाम तक श्री छुड़ानी धाम में पहुँच गया और हाथी से उतर कर महाराज

जी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। महाराज जी ने कहा कि आप जिस कार्य के लिये आये हैं वह कार्य तो हमारे जाने से भी सफल नहीं होगा। मन्त्री ने सोचा कि मैंने तो अभी कुछ बताया ही नहीं, उन्होंने राजा और मेरे मन की बात पहले ही कह दी। सम्भव है यह किसी और कार्य की बात कह रहे हों। तब मन्त्री ने प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। हमारे राजा के ऊपर बड़ी विपत्ति आई है। उन्होंने अपनी रक्षा के लिए ही आपसे प्रार्थना करने के लिए आप श्रीमान् को दिल्ली बुलाया है। तब महाराज जी ने कहा- हम किसी भी राज-दरबार में नहीं जाते। राज-दरबार में दो ही व्यक्ति जाया करते हैं। या तो जिसने कोई अपराध किया हो वह, या जिसे राजा की ओर से धन या मान की इच्छा होती है वह। हम में यह दोनों ही बातें नहीं हैं। हमने कोई अपराध भी नहीं किया है और न हमें राजा से कुछ लेना ही है। राजा लोगों से दूर रहना ही अच्छा है। क्योंकि ये लोग असली बात को तो समझ नहीं सकते। जैसा किसी ने बहका दिया वैसा ही करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। इनमें विचार तथा बुद्धि नहीं होती है। ये लोग आँखों से देख करके भी सुनी हुई बात पर शीघ्र अमल करने लग जाते हैं। महाराज जी ने कहा कि राजा को आवश्यकता हो तो वह हमारे पास आ जावे, हम नहीं जायेंगे। इस वार्ता के फलस्वरूप मन्त्री का आना असफल ही रहा। वह खाली हाथ दिल्ली लौट आया और वहाँ की सम्पूर्ण वार्त्ता जो महाराज जी से हुई थी मुहम्मदशाह से कह सुनायी। तब मुहम्मदशाह ने एक पत्र लिखवाया। उसमें अनेक प्रकार से प्रार्थना की कि- जैसे भी आप आज्ञा करेंगे मैं उसी प्रकार आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। एक बार आप दर्शन देने की अवश्य कृपा करें। महापुरुष तो दयालु होते हैं और दुखी जीवों पर दया ही करते हैं। इस समय मेरी नाव डगमगा रही है। आप ही इसको किनारे लगाने के लिये मल्लाह हो सकते हैं। मैं आपके सामने राजा नहीं हूँ। महात्मा पुरुषों का तो मैं दास ही हूँ। राजा तो प्रजा का हूँ। किसी प्रकार भी आप भी मुझे दिल्ली में आकर अवश्य दर्शन देने की कृपा करें। पत्र में इसी प्रकार और भी अनेक प्रार्थना की गयी। यह पत्र देकर दुबारा मन्त्री को फिर श्री छुड़ानी में भेजा। मन्त्री ने आकर वह पत्र महाराज जी के चरणों में

रख दिया और राजा की प्रार्थना जबानी सुनाते हुए कहा- भगवन्! यह पत्र आपकी सेवा में राजा ने दिया है। और मुझे फिर भेजते हुए आपसे बार-बार प्रार्थना की है। मन्त्री ने पत्र पढ़कर महाराज जी को सुनाया, और अनेक प्रकार से विनती की कि, भगवन्! मेरी भी लज्जा बचाओ। क्योंकि वह मुगल राजा है। मैं हिन्दू हूँ। वह कहेगा कि पता नहीं इसने उनके पास जाकर मेरी ओर से कुछ कहा भी है या नहीं, और मुझे किसी प्रकार का दण्ड न देदे। इसलिए आप अवश्य ही मेरे साथ चलें। तब महाराज जी ने इस प्रकार कहा-

दोहा- सन्तन सों तब ही भने, समाचार है जोय।
बादशाह चित जो चहे, उल्टी होवे सोय॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

महाराज जी ने सन्तों से सम्पूर्ण समाचार कह दिया। जो राजा के मन में था। राजा जिस लिए हमें दिल्ली बुला रहा है वह कार्य नहीं होगा। उससे विपरीत होगा। मन्त्री ने कहा-

दोहा- हाथ जोड़ तब कहत है, क्षण-क्षण बारम्बार।
बादशाह चित चाहत है, भगवन् आप दीदार॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

इस प्रकार मन्त्री की बारम्बार की गई प्रार्थना को स्वीकार करके आपने कहा कि "अच्छा तुम इस जगह तीन दिन ठहरो फिर हम तुम्हारे साथ चलेंगे।" मन्त्री ठहर गया। तब आपने सन्तों से कहा कि पाँच महात्मा हमारे साथ चलेंगे।" मन्त्री ठहर गया। तब आपने सन्तों से कहा कि पाँच महात्मा हमारे साथ चलने के लिए तैयार हो जाओ। वहाँ पर हमारा कोई खास कार्य तो है नहीं।

सवैया- सन्तन को मुख आप भने,
हम साथ करो तुम पांच तैयारी।
आवन जावन है हमरा,
कछु काज नहीं हमरो उत भारी॥

जो मन चाहत है अपने,
वह होत नहीं हम आज पुकारी।
नीति विषय यह रीति लिखी,
घर राजन जात न होवत हारी॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

केवल वहाँ आना-जाना मात्र ही है। जो कुछ होना है वह तो हमें अभी ज्ञात है, परन्तु नीति में लिखा है कि राजा के बुलाने पर जाना ही चाहिये। इसमें कोई हानि नहीं। यदि न जाओगे तो विरोध ही बढ़ेगा। तीन दिन व्यतीत होने पर मंत्री ने फिर प्रार्थना की। तब आप पाँच महात्माओं को साथ लेकर चले। चलते समय आपको तो हाथी पर बिठाया गया और अन्य महात्माओं के लिये रथ तैयार किया गया। दिल्ली पहुँचने पर आपने मंत्री से कहा कि आज हम महात्मा चरणदास जी के यहाँ ठहरेंगे।(चरणदास जी भी आपके समय में ही हुए हैं। वह भी उच्चकोटि के महापुरुष और स्वयं चरणदासीय सम्प्रदाय के आचार्य हुये हैं) मंत्री जी आपको चरणदास जी के निवास-स्थान पर छोड़कर चले गये और राजा को जाकर सूचना दे दी कि गरीबाचार्य जी आ गये हैं। रात आपने स्वामी चरणदासजी के यहाँ रहकर व्यतीत की। ये दोनों महापुरुष परस्पर मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। स्वामी चरणदास जी ने आपको एक पीले रंग का रेशमी अँगरखा पहनने के लिये भेंट किया। जो अभी तक भी छुड़ानी धाम में जीर्णशीर्ण अवस्था में सुरक्षित रखा है। स्वामी चरणदास जी पीले रंग के ही वस्त्र पहना करते थे। प्रातः काल राजा ने अपना दरबार सजवाया। अच्छे-अच्छे मखमली आसन बिछवा दिये और महाराज जी को बड़ी धूमधाम से राजदरबार में बुलवाया। जब महाराज जी दरबार में जाकर आसन पर स्थित हो गये और साथ में आये हुए अन्य महात्मा भी बैठ गये, तत्पश्चात् राजा ने अपनी सम्पूर्ण स्थिति महाराज जी के आगे वर्णन की। राजा ने कहा कि भगवन्! मेरा सम्पूर्ण राज्य दबा कर छोटे-छोटे राजाओं ने अपने-अपने प्रान्त बना लिये हैं। वे सब स्वतन्त्र हो गये हैं और काबुल का राजा नादिर शाह मेरे ऊपर चढ़ाई (आक्रमण) करके देहली के शासन को भी मेरे से छीनना

चाहता है। आप महापुरुष ही इस आपत्ति काल में मेरी रक्षा कर सकते हैं। दूसरा कोई उपाय अब नहीं है। जिस प्रकार भी मेरा राज्य बच सके वही उपाय आप मुझे बताइये। मैं आपके आदेशानुसार ही कार्य करूंगा। इस प्रकार के अति अधीन होकर जब राजा बारम्बार प्रार्थना करने लगा, तब महाराज जी ने इस प्रकार कहा-

"असुर निकन्द रमैणी में से"

चौपाई- जे कोई माने शब्द हमारा।
राज करे काबुल कन्धारा॥
अरब खरब मक्के कुँ ध्याऊँ।
मदीना बाँध हद में ल्याऊँ॥
ईरां तूरां कहाँ शिकारी।
गढ़ गजनी लग है असवारी॥

इस प्रकार आपने मुहम्मदशाह से कहा कि "यदि आप हमारे वचन का पालन करें तो पूर्वोक्त सम्पूर्ण देशों पर मक्के-मदीने तक आपका शासन हो सकता है। और तो क्या मक्का-मदीना भी आपकी सीमा के अन्दर आ सकता है। हमारी तीन बातों का आप पालन कर सकते हो तो यह सब कार्य बड़ी सुगमता से हो जायेगा।" तब मुहम्मदशाह ने कहा कि भगवन्, ऐसी कौन-सी बात है जो मैं अपने लाभ के लिए न मान सकूँ। मैं अवश्य आपकी बात मानूँगा। आपकी आज्ञा पालन न करनी होती तो मैं आपको यहाँ तक क्यों बुलाता। आप आज्ञा कीजिये आपकी कौन-सी तीन बातें हैं? तब महराज जी ने कहा कि राजन्! पहली एक बात यह बहुत ही अनुचित है कि आपने सैकड़ों देवियों को बलात्कार के साथ महलों में बन्द कर रखा है और आप उन सब की देखभाल भी नहीं कर सकते, वे राजमहलों में वैसे ही तड़प रही हैं। एक या दो के अतिरिक्त जितनी स्त्रियाँ हैं सबको मुक्त कर दो। जिसकी जहाँ इच्छा हो उसे वहीं पहुँचा दो। दूसरी यह कि गौ-हत्या बन्द करो। इन्हीं पापों के कारण आपका राज्य चला गया। गऊ का वध करना तो अति पाप है। गऊ माता

सब को सुख पहुँचाने वाली है। इसका दूध अति गुणकारी और घी भी गुणकारक है। इसके दूध-घी के समान और किसी भी पशु का दूध-घी गुणकारक नहीं है। गऊ के तो गोबर व मूत्र से ही अनेक रोग दूर होते हैं। पहले जो मुसलमान राजा होते थे वे भी गौ-वध एवम् गऊ का मांस खाना बहुत बुरा मानते थे। तब आपने इस प्रकार कहा-

"साखी"

दोहा- गऊ हमारी मात है, जा पर छुरी न बाहि
गरीब दास इस दूध को, सब ही आतम खाहिं

इत्यादि अनेक साखियों द्वारा आपने सिद्ध किया कि गऊ सब की माता है। इसको दुख देना एवम् इसको मारना या उसका भक्षण करना बहुत बड़ा अत्याचार है। इसका कबीर साहब ने भी अपने उपदेश में इस प्रकार वर्णन किया है। महाराज कबीर जी गौ-वध के कितने विरोधी थे। वे गौ-वध करने वालों को बहुत कटु शब्द कह कर उन्हें इस घृणित कार्य से ग्लानि करवाते थे। यह शब्द श्री कबीर जी के ग्रन्थों में पाये जाते हैं-

रमैणी

तुर्की धर्म बहुत हम खोजा,
बहु बजगार करै ऐ बोधा,
गाफिल गर्व करे अधिकाई,
स्वार्थ अर्थ बधैं ऐ गाई,
जाको दूध धाय कर पीजै,
ताँ माता कौ वध क्यों कीजै,
लहुरें थकैं दुहि कर पीया खीरो,
ताका अहमक भखैं शरीरौ,
बे अक्ली अक्ल न जान्हीं,
भूलै फिरें ऐ लोये,

दिल दरिया दिदार बिन,

भिस्त कहाँ थैं होइ,

कबीर साहिब जी के कथन से यह स्पष्ट है कि वे कितने कट्टर गौ-उपासक एवं भक्त थे। गौ-वध करने वालों के कितने विरोधी थे। वे ऐसे को मूढ़ ही नहीं कृतघ्न समझते थे। गौ माता जो हम पर उपकार करती है उसको न मान कर उलटा उसका मांस भक्षण करना कितना निन्द्य कार्य है। कबीर जी को तो यह बातें अति घृणित प्रतीत होती थीं। वह कहते थे, जो गौ-वध करते हैं अथवा गौ-मांस भक्षण करते हैं उन लोगों में बुद्धि का सर्वथा अभाव होता है। इस कर्म से कबीर साहिब मुसलमानों को बहुत फटकारा करते थे।

"कबीर ग्रन्थावली"

कबीर चल्या जाये था, आगे मिल्या खुदाइ।

मीरा मुझ सौं यूँ कहा, किन फरमाई गाइ॥

गोरखपुर से निकले हुए कल्याण के गौ-अङ्क में अनेक मुस्लिम मत के मूल ग्रन्थों एवम् कुरान आदि में गौ-वध का कहीं विधान नहीं बताया गया है। उन्होंने अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि मुस्लिम धर्म के संचालक एवम् पैगम्बर ने भी कहीं गौ-मांस का प्रयोग नहीं किया। वहाँ पर कल्याण के पृष्ठ ५०८ में इस प्रकार बताया है कि गौ-वध के लिये किसी इस्लाम धर्म का आग्रह नहीं है। कुरान मजीद में जो गौ-बलि की कथा है, उससे यही सिद्ध होता है कि खुदा ने गौ के मांस खाने के लिये मारने की आज्ञा नहीं दी थी उसने तो यह कहा था कि अपने विरोधियों का पता लगाने के लिये किसी सुन्दर गौ की बलि दो और उसके रक्त के छींटे उक्त शव पर मारो। इससे वह आप ही उठ पड़ेगा। अपने हत्यारे का पता बता देगा। अल्लाह ने ऐसा क्यों कहा? उसे अल्लाह ही जान सकता है तथा उसके आधार पर दृढ़ता के साथ यही कहा जा सकता है कि यह गौ-वध का विधान नहीं। किन्तु किसी हत्यारे को ढूँढने का उपाय है। तो क्या अल्लाह का यह आदेश यूँ ही भुलाया जा सकता है? उससे कबीर

की वाणी की तुक को नहीं मिलाया जा सकता? पेट पूर्ति के लिये गाय का वध करना किस कुरान में आया है? यही तो कबीर साहब जानना चाहते हैं।

इत्यादि गो-वध का विरोध सभी धर्मों में मिलता है। श्री गरीबाचार्य न तो बहुत ही कटु शब्दों में गौ-हत्यारों की आलोचना की है। यह उनकी वाणी से ही प्रसिद्ध है कि वे गो-वध के कितने विरोध में थे। उन्होंने अनेक काजी-मुल्लाओं को इस का उपदेश दिया है। वे गो-हिंसा का विरोध करते समय किसी प्रकार का भय नहीं मानते थे। उन्होंने ऐसे शब्द कहे हैं जिनको एक साधारण व्यक्ति नहीं कह सकता। और किसी से वे क्या भय मानते, जबकि उन्होंने दिल्ली के शासनकर्त्ता मुहम्मदशाह को भी अनेक बातें गो-वध बंद करने के लिए कहीं। और कहा कि कहीं भी कुरान में गो-वध व गो-माँस खाने का विधान नहीं है। मुहम्मद व एक लाख अस्सी ऐसे पैगम्बर हुए हैं जिन्होंने मांस खाने का नियम बन्द कर दिया था।

एक लाख अस्सी कुँ सौगन्ध,

जिन नहीं करद् चलाया॥

फिर वर्तमान काल के मुसलमान गौ-वध की पुष्टि कैसे करते हैं? मुगल सम्राट् हुमायूँ ने भी गो मांस का बहुत विरोध किया है। इस प्रकार से महाराज जी ने मुहम्मदशाह को अनेक दृष्टांत देकर समझाया। विचार करके देखा जाये तो गौ-मांस भक्षण की पुष्टि किसी भी मत के मुखिया सिद्ध नहीं करते एवं विरोध ही करते हैं। इस पर गोरखपुर से छपे हुए गो अंक में सम्राट् हुमायूँ की गो-मांस से घृणा दिखलाई है। उसमें लिखा है-

मुगल बादशाह हुमायूँ के खास सेवक "जौहर" ने हुमायूँ की कुछ स्मरणीय बातें फारसी में लिखकर रखीं थीं जिनका अनुवाद "मेजर चार्ल्स स्टूआर्ट" ने स. १९०० में करके प्रकाशित किया। उस अनुवादित ग्रन्थ के ११० पृष्ठ पर लिखा है, एक बार ईरान को जाते समय हुमायूँ को सारे दिन में एक बार भी खाने के लिए कुछ प्राप्त न हुआ। रात के समय पड़ाव पर पहुँचने पर उन्हें बड़े जोर की भूख लगी। उनको पता चला कि उनके

सौतेले (मतेई माता के पुत्र) भाई कामरॉन् और माँ रायकी बेगम का पड़ाव भी थोड़ी दूर पर है। यह जानकर हुमायूँ ने अपने अनुचरों (नौकरों) को भेजकर कामरॉन् के पास से कुछ भोजन मँगवाया। भोजन में थोड़ी साग-सब्जी और कुछ माँस के पदार्थ थे। बादशाह भोजन करने थाल पर बैठ गये किन्तु अकस्मात् उन्हें एक शंका हुई कि कहीं इस भोजन में गौ-मांस न हो। उन्होंने भोजन की ओर बढ़ाया हुआ हाथ पीछे खींच लिया और पूछताछ करायी, पता चला कि उस भोजन में गौ-मांस भी है। इस पर हुमायूँ घबराकर बोल उठे- हाय अरे कामरॉन् तूने पेट भरने का यही रास्ता निकाला है? अपनी पवित्र माँ को तू यही गौ-मांस खिलाता है? उसके लिये तू चार बकरियाँ लेने में समर्थ नहीं है? हमारे पिता की कबर को झाड़ने-बुहारने वालों के लिये भी गो-मांस खाना अनुचित है। पिता जी ने जिस प्रकार अपने कुटुम्ब-कबीले वालों का पोषण किया- क्या उसी तरह हम चारों पुत्र नहीं कर सकते? ऐसे खेद पूर्ण उद्‌गार (वाक्य) प्रगट करते हुए बादशाह ने उस भोजन के थाल को बगल में सरका दिया और खाया नहीं। केवल एक गिलास शर्बत पीकर ही वह रात काटी। दूसरे दिन कहीं भोजन मिला। इस घटना से यह भली-भाँति पता लगता है कि भारत सम्राट् मुगल बादशाह हुमायूँ गो-मांस भक्षण करने वालों के कितने विरोधी थे।"

इस अंक के सम्पूर्ण विश्व के धर्मों का मत दिखाया गया है। किसी धर्म में भी गो-मांस खाने का विधान नहीं है किन्तु निषेध ही मिलता है।

उपर्युक्त लेख यहाँ इसलिये दिया गया है कि सद्‌गुरु जी ने जिस प्रकार गोवध का विरोध किया है उसी प्रकार पहले मुसलमान भी मानते थे। इसके पश्चात् महाराज ने मुहम्मदशाह से तीसरा नियम बताते हुये कहा है कि तीसरी बात यह कि अनाज के ऊपर जो कर (टैक्स) लगता है वह नहीं होना चाहिये। यदि आप हमारे बताये हुये इन तीन नियमों का पालन करोगे तो सम्पूर्ण गया हुआ राज्य ही नहीं जैसे हमने ऊपर कहा है, उसी प्रकार मक्के-मदीने तक आपका राज्य हो जायेगा। इसमें किंचित् भी संशय नहीं। यह सुनकर मुहम्मदशाह ने राज्य के फिर प्राप्त हो जाने के

प्रलोभन से सब बातें मान लीं। कहा कि जो कुछ आपने आज्ञा दी है मैं उसका बिल्कुल पालन करूँगा। मुहम्मद शाह ने महाराज को बारह ग्राम भेंट किये। तब सद्‌गुरु जी ने कहा कि राजन्! हमें इसकी जरूरत नहीं। हमारे पास तो अपनी ही जमीन बहुत है। तब राजा ने बहुत आग्रह किया कि भगवन्! मेरी यह थोड़ी सी सेवा तो अवश्य स्वीकार करें। अब तो मैंने इस पट्टे का संकल्प कर लिया है। इसको लौटाना तो मेरे लिए ठीक नहीं। तब महाराज जी ने कहा अच्छा आप यह पट्टा स्वामी चरणदास जी को दे दो। यह देहली में रहते हैं। शहर में रहने वालों का खर्चा भी अधिक होता है। इस लिये आपने वह पट्टा चरणदास जी के चरणों में रख दिया। स्वामी चरणदास जी को बादशाह खूब अच्छी तरह जानता था, क्योंकि बादशाह ने उनके कई चमत्कारी परिचय देखे थे। जब काजी-मुल्लाओं तथा मुसलमान मन्त्रियों को सभा में इस बात का पता लगा कि इन हिन्दू धर्मावलम्बी महात्माओं ने अपने हिन्दू धर्म के अनुसार बादशाह से नियम कराये हैं और बादशाह ने भी उनकी बातें स्वीकार कर ली हैं। तब काजी व राजा के मुसलमान पीर और वज़ीरों ने मिलकर राजा से कहा कि आपने हिन्दू धर्म के नियमों को स्वीकार क्यों किया है? ये काफिर तो हमारे धर्म के विरोधी हैं। इसलिये इनकी बात स्वीकार करना उचित नहीं है और हमारे मुस्लिम धर्म में गौ-वध करने-करवाने का बहुत सदियों से राजा के लिये विशेष विधान है। फिर आप इन काफिरों के बहकावे में क्यों आये? यदि आप इनके कहने के अनुसार चलेंगे तो हम आपको काफिर का फतवा (दोष व लांच्छन) लगा कर शरह (बिरादरी) से बाहर कर देंगे और फिर आपको राज्य से भी हाथ धोने पड़ेंगे। अब तो बादशाह को परवश होकर उनकी बात माननी पड़ी और कहा कि मैं उन महात्माओं की बात पर अमल नहीं करूँगा। मन्त्रियों ने कहा कि इन काफिरों को कुछ दण्ड देना चाहिए। बादशाह ने कहा कि पीर-फकीरों के साथ विरोध करना ठीक नहीं होता क्योंकि इनमें बड़ी शक्तियाँ होती हैं। कहीं क्रोध में आकर राज्य का तख्ता न उलट दें। तब काजी व मन्त्रियों ने कहा कि हम इनकी शक्ति अवश्य देखेंगे कि ये क्या कर सकते हैं। इस बात से राजा ने उनको बहुत

मना किया परन्तु वह तो सब के सब मज़हब के कट्टर थे। राजा को कहने लगे कि इनको एक मकान में बैठाकर बाहर से ताले लगा दो और खाने पीने को मत दो। मकान के आगे पहरा लगा दो। अब राजा को विवश होकर यह कार्य करना पड़ा। उधर इस बात को महाराज जी भी जान गए। स्वामी चरणदास जी को महाराज जी ने पहिले ही भेज दिया था। वह अपने मकान पर चले गये थे। बादशाह ने काज़ी-मुल्लाओं के बस होकर महाराज जी को एक मकान में बन्द करने के लिए नौकरों से कह दिया कि इनको एक मकान में बन्द करके बाहर से ताले लगा दो। तब नौकरों ने सद्गुरु जी को बन्द करने के लिये राज-दरबार से उठने के लिए कहा। तब आपने उठते समय तख्त (सिंहासन) को चरण की ठोकर मार दी और कहा कि हम तो पहले ही कहते थे कि राजाओं को बुद्धि नहीं होती- यह कानों के कच्चे होते हैं। इस बात की पुष्टि स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने की है-

दोहा- **बादशाह के कान हैं, नयन नहीं वत् जान।**
दीखत की मानी नहीं, कान सुनी लई मान॥
बादशाह तब पल्ट्यो, मुख से दियो सुनाये।
मन्दिर बीच बैठाय के, दियो किवाड़ लगाये॥
महा-पुरुष तत्काल ही, समझ गये तिस ठौर।
पूर्व वचन मिटाय के, वचन कीन्ह अब और॥

तब आपने असुर निकन्द रमैणी की रचना की और यह वचन कहे-

दिल्ली मण्डल पाप की भुंमा।
धरती नाल जगाऊं सुंमा॥
हस्ती घोड़ा कटक सिंहारों।
दृष्टि पैरै असुरों दल मारों॥

इस प्रकार कहा कि यह दिल्ली मण्डल पृथ्वी पाप से भरी हुई है। इसको घोड़ों की सुम्मों द्वारा जगाया जायेगा। एवं शत्रु जब आक्रमण करके आयेगा उसके घोड़ों के सुम्म (पौड़) धरती पर बजेंगे तब इनको होश आयेगा। इस राज्य के इन पापियों को हस्ती घोड़ों के सहित मारूँगा। जहाँ

तक भी असुर दिखाई पड़ेंगे सबका नाश किया जायेगा। स्वामी ब्रह्मानन्द जी कहते है कि-

दोहा- **ऐसे मुख से भाख हैं, तिसहि सभा मंझार।**
दिल्ली में कतलसु होयेगे, कोई न राखन हार॥
सन्तन सहित सो तहां, मन्दिर बीच बैठाये
तुर्कों अपने हाथ से, दीन्हें किवाड़ लगाये।

आपने भरी हुई सभा के बीच में कहा कि दिल्ली में शत्रुओं द्वारा कतले-आम होगी। कोई रक्षक नहीं होगा। आपको एक मकान में बैठाकर वहाँ ताले लगा दिये। बाहर पहरेदार खड़े कर दिये गये। सारा दिन व्यतीत हो गया। जब संध्या का समय आया तो सन्तों ने कहा कि सद्गुरुदेव सन्ध्या आरती का समय हो गया है अब तो हमें इस बन्धन से छुड़ाओ। बन्धन से मुक्त हुए बिना एवं बिना नहाये-धोये सन्ध्या आरती कैसे करें? हम तो पवित्र स्थान छुड़ानी में ही आरती करना चाहते हैं। कृपा करके हमें वहाँ ही ले चलो।

तब आपने कहा कि अपने-अपने नेत्र बन्द करो-अभी तुम्हें छुड़ानी में ले चलते हैं। यह सुनकर शिष्यों ने नेत्र बन्द कर लिये और दूसरे ही क्षण में सद्गुरुजी ने नेत्र खोलने को कहा। जब शिष्यों ने नेत्र खोलकर देखा तो अपने आपको छुड़ानी धाम में पाया और उठ कर महाराज जी के चरणों में प्रणाम किया तथा अन्य शिष्यों ने भी प्रणाम किया और सतसाहिब उच्चारण किया। दिल्ली की सम्पूर्ण घटना (उन सन्तों ने जो दिल्ली महाराज जी के साथ गये थे) सबको बताई। महाराज के पवित्र दर्शन कर सब शिष्यों को शान्ति की प्राप्ति हुई। जैसे कि प्यासे मनुष्य को जल से तृप्ति होती है।

उधर सतगुरु जी ने दिल्ली में जो वार्ता राज्य के पतन होने के विषय में कही थी वह प्रत्यक्ष मूर्तिमान् देखने में आयी। महाराज जी के दिल्ली से छुड़ानी में आ जाने के पश्चात् नादिर शाह (काबुल तथा फारस का राजा) ने दिल्ली पर आक्रमण की तैयारी की।

॥आक्रमण की घटनाएँ॥

वि. सं. १७९६ ई. स. १७३९ में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। उसको रोकने के लिए दिल्ली से एक छोटी सी सेना की टुकड़ी भेजी गयी। परन्तु नादिरशाह ने उसे बड़ी सरलता से पराजित कर दिया। और वह बिना किसी रोक-टोक के करनाल तक पहुँच गया। फिर दुर्बल मुगल सेना ने उसे रोका किन्तु नादिरशाह ने उसके आठ सौ सैनिक मार दिये और सीधा दिल्ली में पहुँच गया। तब मुहम्मद शाह ने उसके आधीन होकर एक सन्धि करने की वार्ता की जिसके अनुसार नादिरशाह बीस करोड़ की सम्पत्ति लेकर दिल्ली से लौटने के लिए सहमत हो गया। इतने में किसी ने अफवाह फैला दी कि नादिरशाह मारा गया यह सुनकर दिल्ली की जनता ने उपद्रव कर दिया और नादिरशाह के कुछ सैनिकों को भी मार दिया। नादिरशाह अपनी मृत्यु की झूठी अफवाह सुनकर मारे क्रोध के आग बबूला हो गया और उसने बचे अपने सैनिकों को दिल्ली में कतलेआम की आज्ञा दे दी। दिल्ली के बाज़ारों में अत्यन्त अत्याचार हुआ। पाँच या छः घंटे के ही बीच भारी रक्तपात हुआ और नादिरशाह ने स्वयं शाही कोष को लूटा। कोहेनूर हीरा और मयूर सिंहासन को भी लूट लिया। इस प्रकार नादिरशाह ने दिल्ली के जन-धन का अत्यन्त नाश किया और मुगल राज्य की जड़ें हिला दी।

यह सब महापुरुषों के वचन के उल्लधंन तथा तिरस्कार का फल प्रत्यक्ष मिल गया।

दोहा- **वचन न मानत सन्त को, जो देवत दुख दान।**
धन पुत्रादिक राज सब, नष्ट होत है जान॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

जो महात्माओं के वचन का उल्लंधन करता है तथा उन्हें दुख देता है उसका सर्वस्व नाश हो जाता हैं गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं।

सन्त अवज्ञा कर फल ऐसा। जरे नगर अनाथ कर जैसा।

हनुमान जी की अवज्ञा करने से रावण की लंका ऐसे जल गई जैसे बिना रक्षक के किसी का घर जल जाता है। बस इसी प्रकार मुहम्मद शाह का भी सर्वस्व लुट गया।

दोहा- **दिल्ली में जो कुछ कियो, सो मैं दियो सुनाय।**
ब्रह्मानन्द अब देत हैं, संशय सकल नसाय॥

॥जीवोद्धारविचार॥

तत्पश्चात् आप अनेक प्रकार से जीवों को समझाने का मार्ग सोचने लगे जैसे कि स्वा. ब्रह्मानन्द जी ने लिखा है-

बहुरि कियो मन माहिं बिचारा।
क्यों कर होवे हंस उद्धारा॥

इस प्रकार आपने अपने मन में विचार किया कि बिना अनुभव वाणी के उपदेश के कोई भी सांसारिक प्राणी किसी के वचन पर विश्वास नहीं करता। वाणी को ही इस संसार के जीव मुख्य मानते हैं। अतः जब तक इनको कोई अनुभव न कराया जाय तब तक परमात्मा भी स्वयं उपस्थित होजाय तो भी यह कलियुगी जीव नहीं मानते क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष देखे बिना विश्वास नहीं करते। इस युग में पापों के कारण जीवों के हृदय अति मलीन हैं अतः इन्हें सही मार्ग पर चलाने के लिए अनुभव वाणी का उपदेश आवश्यक हो जाता है। यह विचार कर आपने अपने स्वरूप को बहुत सुन्दर प्रतिभावान् एवं शौर्यवान् किया जिसे देखते ही प्राणी मोहित हो जाते थे। जब आप जहाँ-तहाँ जाते थे वहाँ के जो लोग आपको देखते थे वे सभी आपका अलौकिक रूप देखकर और वाणी सुनकर अनायास ही आपकी ओर आकर्षित हो जाते थे। उस रूप को देखकर स्वाभाविक रूप से ही मनुष्य शान्ति और सुख को प्राप्त हो जाते थे। जो भी प्राणी एक बार आपका दर्शन कर लेते उनके मन में यह दृढ़-विश्वास हो जाता कि आप ही सच्चे सद्गुरु हैं और हम इनके चरण सेवक बनेंगे आपके मुखारविन्द से निकली हुई वाणी जिनके कानों में पड़ गई वह आपके चरणानुचर सदा के लिए बन जाते। आपके दर्शन करके जीव शान्ति को

प्राप्त हो जाते थे जिसका वर्णन स्वयं ही आप के मुखारविन्द से इस प्रकार निकलता है-

गरीब जिन मिलते सुख ऊपजे,
मेटैं कोट उपाध।
भवन चतुर्दश ढूँढिये,
परम सनेही साध॥

आपने कहा कि जिन महापुरुषों के दर्शनों से चित्त को शान्ति मिले और जन्म-मरण के अनेक पाप-दुःख नष्ट हो जायें ऐसे महापुरुषों को चौदह भुवनों एवं तीनों लोकों में खोजना चाहिए। अर्थात् उनकी हर स्थान पर खोज करो।

इस प्रकार से आपका उपदेश ले-लेकर जनता जाया करती थी। आपकी वाणी की मधुरता एवं रसमयता से परिपूर्ण देखकर जनता परमानन्द को प्राप्त हो आत्म-विभोर हो उठती थी। दिन-प्रतिदिन आपकी कीर्ति फैलती गई। आपने अब अपने मन में निश्चय किया कि वेद-मंत्रों का सरलार्थ (स्पष्टीकरण) करना चाहिए। क्योंकि लोगों का वेद-सद्शासत्रों में परम्परा से ही विश्वास रहता आया है। इसके सरल होने से लोगों में दृढ़-विश्वास हो जायेगा। अतः वेद के मन्त्रों के अर्थ प्रचलित भाषा में गूँथकर जीवों के कल्याण के लिए अनुभवी वाणी द्वारा ब्रह्म विद्या का उच्चारण करेंगे। इस बात की स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने इस प्रकार पुष्टि की है (यह गोपाल पुर जिला सोनीपत की शाखाके हैं)—

तब सद्गुरु मन माँहि विचारा।
वेद वाक् बिन नहिं निस्तारा॥
अब वेदार्थ उच्चारण करहूँ।
भाषा शब्द गूँथकर धरहूँ॥
तब सद्गुरु यह वाणी कीन्हीं।
भेष चलाया सु सबकों दीन्हीं॥

इस प्रकार वाणी का उच्चारण करना प्रारम्भ कर दिया। जो जैसा अधिकारी होता था उसके लिये उसी प्रकार की उपदेश-धारा को आप प्रवाहित करते थे।

शिष्यन के मन थिर भये कैसे।
निरवात जगह में दीपक जैसे॥

वेद स्वरूप अनुभवी वाणी को सुनकर आपके शिष्यों के मन इस प्रकार स्थिर हो गये जैसे कि वायु रहित स्थान में दीप की शिखा स्थिर (अडोल) रहती है।

॥वाणी का उल्लेख॥

(स्वामी गोपाल दास जी महाराज दादू पंथी द्वारा)

आपकी ख्याति बहुत दूर तक दिन-प्रतिदिन फैल रही थी। आपके यश को सुनकर दादूजी की सम्प्रदाय के एक महात्मा (जिनका नाम गोपाल दास था) आपके दर्शन की इच्छा से छुड़ानी धाम में आये। उन्होंने छुड़ानी धाम में आकर आपके दर्शन किए। दर्शन करते ही उनको अलौकिक सुख प्राप्त होने लगा। इन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि ये तो कोई साधारण महात्मा नहीं हैं—साक्षात् परमात्मा के स्वरूप ही प्रतीत होते हैं। इनमें तो सद्गुरुओं के लक्षण घटते हैं। यह निश्चय करके उन महात्मा जी (श्री गोपाल दास जी) ने यहीं कुछ दिन रहने का अपने मन में निश्चय कर लिया। दो चार दिन महाराज जी का अनुभव का उपदेश सुन कर विचार किया कि यह इनके अनुभव से निकली हुई अमृतमय वाणी है अतः यह अमूल्य वस्तु है। यदि इसको लिखा जाय तो एक बहुत बड़ा ग्रंथ बन सकता है। जिसके पढ़ने से जीवों को अनन्त लाभ हो सकते हैं। इस उपदेश का अनुसरण करने से अनन्त जीवों को भविष्य में सुख की प्राप्ति होगी। यह निश्चय करके महाराज जी से विनम्र निवेदन किया कि आपके मुख कमल से यह जो अमूल्य रत्न निकलते हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इनको एकत्रित करता रहूँ एवं आपकी इस अनुभवी अमृतरूपी वाणी को लिखने के लिये मेरी तीव्र इच्छा है। इस प्रकार इनकी इस प्रार्थना में

और भी सन्त व सेवक सहमत हो गए। तब श्री गरीबाचार्य जी ने उनको अनुमति दे दी। तब उन महात्मा ने प्रार्थना की कि हे प्रभु यह शुभ कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है जब आप एक स्थान पर बैठकर किसी निश्चित समय में उपदेश दिया करें। क्योंकि चलते-फिरते भी आप तो हर जगह जीवों को उपदेश करते हैं परन्तु हर समय इसका लिखना मेरे लिए कठिन होगा। इसलिये निश्चित स्थान और निश्चित समय पर उपदेश होना चाहिए। तब आपने इस प्रार्थना को स्वीकार करके एक जण्ड (शमी) के वृक्ष के (जो कि गाँव के बहुत बाहर बगीचे में था) नीचे बैठकर वाणी उच्चारण करने का निश्चय किया जो स्थान इस समय छुड़ानी धाम में आपके कोठी वाले सद्गुरु सन्त मन्दिर से उत्तर को दरवाजे के सामने है। आजकल उसको "जण्ड साहिब" के नाम से पुकारते हैं। वह जण्ड का पेड़ तो बहुत समय का हो जाने के कारण जीर्ण होकर उखड़ गया है। उस जण्ड के होते ही उसके बीच में एक बन का वृक्ष जिसको पीलू लगते हैं उग आया था। वह पेड़ भी पुराना होकर उखड़ गया। उस जण्ड के नीचे बैठकर नित्य प्रति आप वाणी का उच्चारण किया करते थे और वह महात्मा जी साथ-साथ लिखते जाते थे। सम्पूर्ण आयु पर्यन्त वह महात्मा आपके पास ही रहे। जिस समय भी आप वाणी बोलते थे तब वे बड़ी सावधानी से लिखते रहते थे। वह आपका सदुपदेश आज हमारे सामने ग्रन्थ साहिब के नाम से विख्यात है।

जो नर याकूँ भले विचारे।

सद्गुरु कहे अर्थ कुँ धारे॥

इस अनुभवी वाणी को जो व्यक्ति भली प्रकार से विचारता है और सद्गुरु के कथनानुसार अर्थ को ग्रहण करता है–

तास पुरुष के बन्धन नाशत।

मिटे अविद्या आतम भासत॥

उस व्यक्ति के बिना किसी प्रयत्न के ही कर्मरूपी बन्धन निवृत्त हो जाते हैं और अविद्या (अज्ञान) नाश हो जाती है और आत्मानुभव होने लगता है तथा आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। महापुरुषों की जो अमृतमयी

अनुभवगम्य वाणी होती है वह साक्षात् वेदरूप ही होती है क्योंकि इसकी साक्षी श्रुतियाँ भी देती हैं।

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"

अर्थ- ब्रह्मवेत्ता साक्षात् ब्रह्मरूप ही है इसलिये उनकी वाणी वेद है। विचार सागर में भी श्री स्वामी निश्चलदास जी ने इस बात को स्पष्ट किया है कि–

ब्रह्म रूप है ब्रह्म वित, ताकी वाणी वेद।

भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद॥

इसी बात को स्वामी ब्रह्मानन्द जी भी कहते हैं-

ब्रह्मवेत्ता है ब्रह्म ही, यूं श्रुति करे बखान।

ताकी वाणी वेद है, यामें भेद न मान॥

(सद्गुरु अवतार लीला में)

इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की वाणी वेदरूप है। वह संस्कृत भाषा में हो या प्रकृत भाषा में। वह जीव के अनेक अज्ञान जन्य भेद को दूर करती है इसमें संशय नहीं है। यह वेदों व महापुरुषों द्वारा सिद्ध है। अब यह जानने की आवश्यकता है कि वेद किसके बनाये हुये हैं।

वेद अपौरुषेय हैं–अपौरुषेय शब्द का अर्थ है पुरुषों द्वारा एवं किसी भी मनुष्य द्वारा जिसकी रचना न की गई हो। वेद को किसी भी मनुष्य ने नहीं बनाया। वह अनादि है। देव, गन्धर्व, किन्नर, नर, दानव आदि सभी जीवों की उत्पत्ति और विनाश होता है। अतः उसका रचयिता इनमें कोई नहीं हो सकता। ऋषि आदि भी वेदमंत्रों के द्रष्टा (देखने वाले) हैं, उनके स्रष्टा (रचने वाले) नहीं हैं। ब्रह्माजी भी वेद के रचयिता नहीं हैं उनके हृदय में भी वेद का प्रकाश भगवान की कृपा से अपने आप होता है और परमात्मा भी वेद का उपदेश हृदय से ही ब्रह्मा को देते हैं। यथा–

तेने ब्रह्म हृदाय आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै॥

(श्रीमद्भागवत)

इत्यादि सैकड़ों ही प्रमाण इस बात को सिद्ध करते हैं कि परमात्मा ब्रह्मा को उत्पन्न कर उसको वेद का उपदेश देते हैं। उपदेश देने का अर्थ रचना करना या बनाना नहीं होता। महाभारत, गीता, रामायण, पुराण तथा और भी अनेक ग्रन्थों का बहुत से पण्डित उपदेश देते हैं। परन्तु वे उपदेश देने से उन ग्रन्थों के बनाने वाले नहीं कहे जा सकते। भगवान् उपदेश देते हैं इस वाक्य से यही अर्थ निकलता है कि वे भी वेद के निर्माता (बनाने वाले) नहीं हैं। वेद तो अनादि हैं और स्वतः सिद्ध हैं। परमात्मा ही वेद है और वेद ही परमात्मा है। वेद और परमात्मा पर्यायवाची शब्द हैं। वेद शब्द विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है ज्ञान। ज्ञान परमात्मा ही है।

श्रुति कहती है-

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"।

वह शुद्ध ब्रह्म सत्य है और अनन्त ज्ञानस्वरूप है।

अब प्रश्न उठता है कि वेद शब्द है, या शब्द के अर्थ समझने से जो ज्ञान होता है वह वेद है? मननशील लोगों के लिए इस प्रश्न का उत्तर सरल है। वेद में जो शब्द हैं–मंत्र हैं और उनके जो अर्थ हैं अर्थात् उन मंत्रों से जो ज्ञान होता है, वे दो वस्तु नहीं है वरन् एक ही हैं। कहने के समय शब्द और अर्थ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु विचार करने से दोनों ही अभिन्न (एक) हैं। तुलसीदास जी ने कहा है–

"गिरा अर्थ जल-बीचि-सम, कहियत भिन्न न भिन्न।"

शब्द और अर्थ, जल और झाग की भाँति भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं परन्तु झाग जल रूप ही है भिन्न नहीं है।

ल सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥

यह श्लोक भी शब्द और उससे होने वाले ज्ञान को एकरूप कहता है। "पाणिनीय व्याकरण" केवल शब्दों को ही सिद्ध करने का साधन नहीं है। वह एक दर्शन भी है। उक्त व्याकरण में सिद्ध कर दिया गया है कि

शब्द की न उत्पत्ति होती है न नाश होता है। शब्द ही ब्रह्म है हमारे श्री आचार्य देव स्वयं इस बात को सिद्ध करते हैं–

शब्द ब्रह्म को चीन्हत नांहि।
तांते लख चौरासी जांहि॥

"सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे"

पातञ्जल महाभाष्य में सिद्ध कर दिखाया है कि शब्द-अर्थ और इन दोनों का सम्बन्ध नित्य है।

शब्द ही ब्रह्म है। शब्द और उससे भासित (प्रतीत) होने वाला ज्ञान दोनों अभिन्न हैं अर्थात् एक ही हैं। शब्दमय होने पर भी वेद किसी का बनाया नहीं है। वही ब्रह्म है। सारा संसार उसी ब्रह्म से बनता है और उसी में लीन हो जाता है। श्री आचार्यदेव शुद्ध ब्रह्म ही थे इसीलिए उन्होंने स्वयं कहा है-

हम हैं शब्द-शब्द हम माहिं।
हम सैं भिन्न और कछु नाहिं॥

मंजूषा तथा वैयाकरण भूषण आदि ग्रन्थों में पूरा प्रकाश डालकर शब्द-ब्रह्म की सिद्धि की गई है। यहाँ पर संक्षेप से ही प्रकाश डालना उचित समझा गया है। कान से जो कुछ सुन पड़ता है वह शब्द कुछ देरी के लिये प्रायः लुप्त-सा हो जाता है किन्तु वास्तव में उसका लोप नहीं होता। वह तिरोहित (छिपा हुआ) होकर अपने मूल रूप में ही रहता है। शब्द की प्रकट (प्रत्यक्ष) उत्पत्ति नहीं होती किन्तु अभिव्यक्ति होती है। उत्पत्ति का अर्थ होता है जो वस्तु पहले कभी नहीं थी उसका होना, और छिपी हुई वस्तु के प्रकट होने का नाम अभिव्यक्ति है। जैसे लकड़ियों में अग्नि पहले ही छिपी हुई है। दो लकड़ियों के संघर्षण (रगड़ने) से अग्नि की अभिव्यक्ति होती है उत्पत्ति नहीं। शब्द के विषय में भी वैसी ही बात है। शब्द सर्वत्र व्यापक है। वह निराकार ब्रह्म है। सभी प्राणियों के भीतर व बाहर सर्वत्र वह गुप्त रूप से विराजमान रहता है।

सभी मनुष्यों के भीतर चार प्रकार की वाणी होती है–परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। इन चारों के चार ही स्थान हैं। परा नाभि में, पश्यन्ती

हृदय में, मध्यमा कण्ठ में और वैखरी मुख में रहती है। यहाँ बारी-बारी से प्राण-वायु का आघात पड़ता है। इसी से शब्द प्रकट होता है। शब्द पहले से ही अपने मूलरूप में रहता है अर्थात् छिपा हुआ रहता है। आपस में टकराने से वह शब्द प्रकट होता है। यदि शब्द उत्पन्न होता हो तो वह नष्ट भी अवश्य होगा। उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता हो तो रेडियों द्वारा दिल्ली में उच्चारण किया हुआ शब्द अमृतसर के लोग कैसे सुनते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि शब्द उत्पत्ति-नाश से रहित है, इसलिए वह ब्रह्म है।

शब्द और ज्ञान यदि एक रूप न होते तो किसी बात का ज्ञान बिना शब्द के क्यों नहीं होता। संकेत के द्वारा भी जो ज्ञान होता है वहाँ पर भी मन-ही-मन शब्द का उच्चारण हो जाता है। यदि वे दोनों वस्तुयें (शब्द और अर्थ) भिन्न-भिन्न हों तो एक क्षण के लिए भी शब्द से ज्ञान अलग हो सकता था। परन्तु ऐसा क्यों नहीं होता? जैसे सूर्य से गर्मी क्षण भर के लिए अलग नहीं हो सकती वैसे ही शब्द से ज्ञान क्षण भर के लिए अलग नहीं रह सकता। जैसे मनन-शीलों (समझदारों) को सूर्य और उसकी गर्मी में भेद नहीं दीख सकता। ब्रह्म तथा प्रकृति में भेद नहीं प्रतीत होता और अल्पज्ञ लोग समझ की कमी से दोनों में भेद देखते हैं। वैसे ही शब्द अर्थ में भिन्नता देखना बेसमझी है। अब यहाँ यह सिद्ध हो चुका कि वेद के शब्द और अर्थ (ज्ञान) एक ही हैं। ज्ञान सृष्टि से पहले भी था और संसार के नाश होने पर भी रहेगा और जब तक संसार है तब भी ज्ञान संसार नहीं तो भी ज्ञान है क्योंकि वह सत्य है, नित्य है, अविनाशी है और वही ब्रह्म है। जिसे दिशा का भ्रम हो जाता है वह कहने लगता है कि सूर्य पश्चिम से उदय हुआ है। वास्तव में सूर्य कभी पश्चिम से उदय नहीं होता। भ्रान्ति से ही प्रतीत होता है। जो लोग वेद को आपौरुपेय नहीं मानते वे ज्ञान के सम्बन्ध में भी अलग मत रखते हैं। वे कहते हैं कि पहले मनुष्य की उत्पत्ति हुई। तब उसमें ज्ञान की उत्पत्ति हुई। पहले मनुष्यों में सभ्यता नहीं थी। वे नग्न रहते थे। तब वे पशुओं के समान थे। धीरे-धीरे उनमें ज्ञान बढ़ा तो उन्हें बन में धधकती हुई आग और वृक्षों को उखाड़ फेंकने वाली वायु की गाँठ जो कि गोलाकार होकर चलती है जिससे मिट्टी तथा पत्ते भी उड़ जाते हैं और वृक्ष भी उखड़ जाते हैं, उनसे परिचय हुआ

और उन्हें देखकर वे डर गये। इसी कारण वे वायु आदि को देवता समझने लगे। ऐसे व्यक्तियों से यदि यह पूछा जाय कि पहले ज्ञान था या मनुष्य? यदि कहें कि पहले मनुष्य की सृष्टि हुई तब ज्ञान हुआ, तो इसका तात्पर्य यह होता है कि मनुष्य के होने से पहले ज्ञान था ही नहीं—अर्थात् मानव-सृष्टि से पहले ज्ञान का एकदम अभाव था। जो ज्ञान पहिले था ही नहीं तो मनुष्य के होने के बाद क्यों आया और कैसे आया? क्योंकि जो वस्तु पहले हुई ही नहीं उसका भाव अर्थात् उनका होना नहीं हो सकता। जो वस्तु पहले से है अर्थात् सत्य है उसका सर्वथा नाश नहीं हो सकता। चाहे वह सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में रहे परन्तु रहेगी अवश्य। इत्यादिक प्रमाणों से चार्वाक आदि नास्तिकों के मत का खण्डन करके वैदिक मत की दृढ़ता सिद्ध हो चुकी है। दुःख इस बात का है कि वैज्ञानिक कहलाने का दावा करने वाले धार्मिक ग्रंथों को तो पढ़ते ही नहीं तो फिर वे नास्तिक क्यों न हों? अब मानना पड़ेगा कि मनुष्य की सृष्टि होने के पहले ही ज्ञान था। तभी तो मनुष्य में आया, नहीं तो कैसे आता? यदि कहें कि सृष्टि के पहले ज्ञान था, यह कैसे माना जाय? क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय के बिना ज्ञान का रहना कैसे हो सकता है? यह सब विचार करने पर समझ में आ जाता है कि सृष्टि के नाश होने पर ज्ञाता और ज्ञेय का अस्तित्व (होना) अलग नहीं रहता। ज्ञाता और ज्ञेय इन दोनों को अपने में मिलाकर ज्ञान अकेला ही रह जाता है। ज्ञान ही का दूसरा नाम ब्रह्म है उसका नाश नहीं होता। और वही ज्ञान वेद है। इस प्रकार जितने भी इस संसार में महापुरुष आवेषावतार (अवतार रूप) में आये हैं उनकी जो अनुभवी वाणियाँ हैं वे सभी वेद रूप हैं।

वेद का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान ही है परमात्मा। इसी बात को श्री गरीबाचार्य जी ने अपनी वाणी में अनेकों स्थानों पर सिद्ध किया है। कि शब्द ही ब्रह्म है। जैसे कि सन्ध्या आरती में कहा है—

पाप पुण्य दो बीज बनाया।
शब्द भेद किन्हें बिरले पाया।
हम हैं शब्द, शब्द हम माहिं।

हमसे भिन्न और कछु नाहिं॥

शब्द स्थावर जंगम जोगी।

दास गरीब शब्द रस भोगी॥

इस प्रकार आपने अनेकों ही बार शब्द को ब्रह्म रूप कहकर कथन किया है। सम्पूर्ण वाणी ही ब्रह्म रूप सिद्ध हुई इसलिए इसको ब्रह्मरूप करके मानना और पूजना, मानव मात्र का कर्त्तव्य हो जाता है। आपके इस अनुभव रूप ज्ञान से सम्पूर्ण प्राणियों को लौकिक व पारलौकिक दोनों लाभ होते हैं। महापुरुषों की वाणी से ज्ञान प्राप्त करना प्राणिमात्र का अधिकार है। तथापि आपके सम्प्रदाय के अनुयायियों का तो मुख्य कर्त्तव्य है कि आपके इस ज्ञान रूप परमात्म स्वरूप जो वाणी ग्रन्थ साहिब के रूप में हमारे सामने है उसका श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम के सहित पाठ-पूजा करना व इसके अनुसार आचरण करना व अन्य साधारण जनता को उस सद्मार्ग की ओर लगाना भी परम कर्त्तव्य है।

श्री सद्गुरुजी का तेजोमय शरीर

एक समय सद्गुरुजी कहीं बाहर घूमने के लिए जा रहे थे। उस समय रास्ते में दो व्यक्ति आ रहे थे उन्हीं में से एक तो दूर खड़ा हो गया और एक सद्गुरुदेव जी को दण्डवत् प्रणाम करने लगा। जो व्यक्ति दूर खड़ा था उसको सद्गुरुजी के शरीर के बीच में से पीछे के वृक्षादि दिखाई पड़े। जैसे शीशे में से दूसरी तरफ के सब पदार्थ दिखाई देते हैं जब उसका साथी नमस्कार करके हटा तो उसने कहा कि देखो इनका शरीर तो शीशे की तरह शुद्ध है। यह सुन उसने भी ध्यान से देखा कि महाराज जी के पीछे की ओर जितनी भी सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुयें थीं वे सब दिखाई पड़ रहीं हैं। यह देखकर उन्होंने मन में विचार किया यह तो साक्षात् भगवान् ही हैं। क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और किसी का शरीर ऐसा नहीं हो सकता है। परमेश्वर का ही शरीर शुद्ध माया रचित हुआ करता है। उसी परमेश्वर में यह लक्षण घट सकते हैं जो इनके शरीर में दृष्टिगोचर हो रहे हैं अन्य पांच भौतिक शरीरधारी मनुष्यों का इनकी तरह शरीर नहीं हो

सकता क्योंकि अन्य मनुष्य तो हाड़-मांस के बने हुए होते हैं परन्तु इनके शरीर में हाड़-मांस कुछ भी प्रतीत नहीं होता है। यदि इनका शरीर भी और मनुष्यों की भाँति हाड़-मांस का होता तो दूसरी ओर के वृक्ष आदि न दीखते। इससे सिद्ध हुआ कि साक्षात् भगवान् ने ही जीवों का कल्याण करने के लिए और धर्म की रक्षा करने के लिए यह शरीर धारण कर रखा है। तब उन दोनों व्यक्तियों ने पुनः सद्गुरु जी के श्री चरणों में दण्डवत् प्रणाम करके सद्गुरु जी से प्रार्थना की। प्रभो! आपने जीवों के कल्याण करने के लिए यह तेजोमय शरीर धारण कर रखा है। इसलिए आप हमें भी उपदेश देकर हमारा कल्याण करें।

इस प्रकार अनेक प्रार्थना करने पर महाराज जी उनको अपने साथ ही अपने स्थान पर ले आये। वहाँ उनको सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर चलाया और वह संसार का परित्याग कर निज स्वरूप की खोज करने के लिए सद्गुरु जी के चरणों में ही रहने लगें। महाराज जी के सत्संग एवं उपदेश द्वारा अपने जीवन को कृतार्थ करने लगे। इस परिचय से यह वार्ता सिद्ध हुई कि आपका शरीर तेजोमय था। (पांचभौतिक नहीं था) यदि पाञ्चभौतिक (पाँच तत्त्व का) होता तो यह अन्य जीवों की भाँति ही होता। उसमें उपरोक्त शीशे की भाँति शुद्धता एवं स्वच्छता नहीं होती। इसी कारण (तेज समूह होने से) बन्धन में नहीं आये (वह प्रकरण आगे कह रहे हैं)।

॥ रामराय का श्रीछुड़ानी धाम में आना॥

एक बार एक महापुरुष बाबा मेहर दास जी जो आपके शिष्य थे भ्रमण करते हुये बासिअर्क ग्राम में आ पहुँचे। (यह स्थान पंजाव प्रान्त में सुनाम शहर के समीप ही है।) वहाँ जाकर सन्ध्या का समय तो था ही एक कच्चे तालाब के किनारे आसन लगाया। रात्रि व्यतीत हुई। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौचादि से निवृत्त होकर आप बड़े प्रेम से मस्त होकर महाराज जी की अमृतमयी वाणी का "ब्रह्म-वेदी" पाठ गाने लगे। ब्रह्मवेदी के पश्चात् "रागबिलावल" तथा "राग आसावरी" आदि के शब्द भी आपने गाये। उस समय बासिअर्क ग्राम का प्रधान रामराय उस तालाब

पर स्नानादि के लिये आया। प्रधान का मन भी महाराज जी की वाणी द्वारा महात्माओं की ओर आकर्षित हुआ। पास में जाकर बैठ गये। बड़े प्रेम में मग्न होकर वाणी सुनी। जब महात्मा जी ने वाणी का पाठ पूरा किया। तब रामराय जोकि प्रधान था उसने पूछा- स्वामी जी ये जो वाणी आपने अभी गाई थी यह अमृतमयी धारा आपने कहाँ से प्राप्त की है? क्या यह आपके स्वयं के अनुभव की है? तब महात्मा जी ने उत्तर दिया कि नहीं हमारे अन्दर इतनी योग्यता कहाँ हो सकती है। हम तो उन श्री आचार्य गरीबदास जी के चरणों की धूलि हैं जिनकी यह वाणी है।

रामराय–भगवन् उनका निवास (सद्गुरु का) स्थान कहाँ पर है। वे कहाँ विराजमान रहते हैं। कुछ परिचय हमें भी दो। तब उस महात्मा ने महाराज जी की अनेक घटनायें उन्हें सुनाई और उन्हें (रामराय को) बताया कि हरियाना प्रान्त जिला रोहतक में एक छुड़ानी ग्राम है। उसी ग्राम में हमारे सद्गुरु साहिब जी निवास कर रहे हैं। तब रामराय का मन सद्गुरु जी की ओर को आकर्षित हुआ। और उसने महात्मा जी से प्रार्थना की कि क्या वह आपके सद्गुरु साहिब हमें भी अपनी शरण में ले सकते हैं। तब महात्मा जी ने कहा कि क्यों नहीं वह तो अपनी शरण में आये हुये पतित से पतित का भी उद्धार कर देते है। वह स्वयं अपनी वाणी में कहते हैं- जो कोई सतगुरु शरणीं आवै, आनन्द घन पद माहिं समावै। उनका तो यह प्रण है कि जो व्यक्ति हमारी शरण में आ जाये वह चाहे कितना भी बुरा क्यों न हो हम उसे भी परमात्मा की प्राप्ति करने योग्य बना देते हैं। उन श्री गरीबदास जी महाराज का अवतार ही जीवों का उद्धार करने के लिये हुआ है। यह सुनकर रामराय ने श्री छुड़ानी धाम जाने का मार्ग अच्छी प्रकार महात्मा जी से समझ लिया और उसी दिन घरवालों से विदा होकर छुड़ानी धाम की ओर चल पड़ा।

थोड़े ही दिनों में पैदल चलकर श्री छुड़ानी धाम में पहुँच गया। छुड़ानी में पहुँच कर महाराज जी का स्थान पूछता हुआ उनके स्थान पर आ गया। आकर पूछने लगा कि सद्गुरु गरीबदास जी कहाँ हैं। तब सेवकों ने बतलाया कि वे घूमने के लिये गये हैं। आप बैठिए अभी थोड़ी ही देर में आ जायेंगे, परन्तु इनकी तो इच्छा दर्शनों के लिये इतनी प्रबल

हुई कि एक क्षण भी दर्शन किये बिना रूकना अच्छा न लगा। सेवकों से कहा कि आप मुझे बता दीजिए कि महाराज किस तरफ गये हैं। मैं उधर ही जाकर दर्शन करूँगा। सेवकों ने बहुत कहा कि आप दूर से चलकर आये हैं, थकावट हो गई होगी। यहाँ पहुँच गये हो अब जल्दी की कौन-सी बात है। महाराज जी आ ही जायेंगे किन्तु आपने हठ किया कि मुझे आप रास्ता बता दीजिए। मैं पहले महाराज के दर्शन करूँगा। दर्शन करना ही मेरा विश्राम है और उनके दर्शन से ही मेरे को जो मार्ग में थकावट हुई है वह सब दूर होगी। तब सेवकों ने उन (रामराय) को रास्ता बता दिया कि आप सीधे चले जाइए आपको बाहर वृक्ष के नीचे सेवकों व सन्तों सहित बैठे हुये महाराज मिल जायेंगे। रामराय जी बताये हुए मार्ग की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर जाने पर कुछ सेवकों के सहित श्री आचार्य जी साधारण भेष में आ रहे थे। रामराय जी ने आप से पूछा कि मैं महाराज गरीबदास जी के दर्शन करने आया हूँ वे कहाँ मिलेंगे। तब आपने यह तो नहीं बताया कि हम ही हैं।' परन्तु इतना कहा कि आप हमारे साथ आओ। आपको उनसे मिला देंगे तब रामराय जी साथ-साथ लौट कर उसी स्थान पर आ गये। जहाँ पर महाराज विराजमान होते थे। आपके लिये पहले से ही ऊँचे स्थान पर आसन बिछा हुआ था आप उस पर बैठ गये। सेवकों व सन्तों ने आपको दण्डवत् प्रणाम किया। रामराय भी समझ गये कि यही श्री गरीबदास जी हैं। नमस्कार करके वह भी बैठ गया। मन में विचार किया कि ये तो एक साधारण ग्राम के बड़े जिमीदार मालूम होते हैं। कोई विशेषता तो इनमें मुझे प्रतीत होती नहीं। ऐसे तो मैं भी कोई छोटा जमींदार नहीं हूँ। मेरे गाँव वाले भी सब लोग मेरे आने पर उठकर खड़े होते हैं और मेरे आगे हाथ जोड़ते हैं। इनमें और मेरे में कुछ अन्तर नहीं हैं। यह विचार कर मन में कहने लगा कि, मैंने तो उस महात्मा के बहकावे में आकर अपना समय भी नष्ट किया और मार्ग चलने का कष्ट भी उठाया। अच्छा आज तो यहाँ रहना ही पड़ेगा। कल यहाँ से चल पड़ूँगा। जब इसके मन में यह शंका हुई तो श्री आचार्य जी ने उसी समय जान लिया और सेवकों ने आपके स्नाान के लिए जल लाकर रखा। तब आपने सबको वहाँ से किसी को किसी काम पर और किसी को किसी

काम पर भेज दिया। विचार किया कि यह रामराय बहुत दूर से चलकर अति श्रद्धा भक्ति से आया था परन्तु अब इसके मन में जो शंका उत्पन्न हुई है यह दूर करनी चाहिए, नहीं तो यह बेचारा निराश होकर हमारे दरबार से खाली ही चला जायेगा। यह तो बहुत बुरी बात है कि हमारे पास से कोई जीव बिना ही लाभ उठाये खाली लौट जाये। आप यह निश्चय करके कि इसका संशय दूर करना चाहिए, पास में पड़ी हुई चौकी पर जा बैठे। और स्नान किया, स्नान करने के पश्चात् आपने रामराय से कहा कि चौधरी साहब हमारी अँगुली में चोट लगी हुई है। इससे गाँठ नहीं लग सकती आप जरा हमारी कोपीन (लंगोटी) की गाँठ लगा दें। रामराय ने उठ कर महाराज की कमर में कोपीन की गाँठ देकर ज्योंही उसको जोर से खैंचा तो उस गाँठ में सद्गुरु जी का शरीर तो था नहीं कपड़े की गाँठ पड़ी हुई दोनों हाथों में दिखाई पड़ी। परेशानी और हैरानी से सोचने लगा कि यह क्या हुआ। महाराज जी ने कहा कि जरा सावधानी से गाँठ दीजिए। दूसरी बार फिर वैसा ही किया। गाँठ देते समय रामराय ने ध्यान रखा परन्तु इस बार भी वैसी ही घटना घटी। तब तो रामराय मन में विचारने लगा कि यह क्या बात है। मैं बड़े ध्यान से इनकी कमर में लपेटकर गाँठ देता हूँ तो भी यह बीच में से कैसे निकल जाते हैं। तब महाराज जी ने कहा कि क्या बात है? आप से गाँठ क्यों नहीं आती?? अबकी बार अच्छी प्रकार सावधानी से गाँठ दो। अब तो रामराय संशय में पड़ गये परन्तु साहस करके तीसरी बार भी कोपीन बाँधने के लिए उद्यत हुए और मन में विचार किया सम्भव है मैंने ही भूल की हो। शरीर को बीच में बिना लिए ही गाँठ दे दी हो और महाराज जी ने भी कहा कि देखना अबकी बार पहले की तरह भूल न जाना। अब तो रामराय जी ने गाँठ मारने से पहले अच्छी तरह देख लिया कि, कोपीन के कपड़े का शरीर पर लपेट अच्छी प्रकार आ गया है अब संशय की बात नहीं है। अब की गाँठ लग ही जायेगी। परन्तु गाँठ की अण्टी लगाकर ज्योंहीं जोर से खींची, गाँठ तो जोर से लग गई तो भी पहले की भाँति शरीर बीच में फिर भी न आया। तब महाराज जी ने कहा—यह क्या बात है? जैसे तुम जमींदार अपने गाँव के मुखिया हो वैसे ही मैं भी एक

साधारण जमींदार हूँ। जब आपमें और हमारे में कोई अन्तर ही नहीं तो आपसे यह छोटा-सा कार्य भी नहीं हो सका। जब महाराज जी ने उसके मन की बात कह दी तब तो रामराय समझ गया कि ये तो अन्तरयामी हैं। मेरे मन की बात को इन्होंने जान लिया है। एकदम महाराज जी के चरणों में पड़ गया। अपनी भूल की क्षमा माँगने लगा कि, आप तो साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर हैं जो कि सबके अन्तर की बातें जानने वाले हैं। मैं तुच्छ बुद्धि आपको कैसे जान सकता हूँ। जब तक आप स्वयं न जना दें। आपके जना देने से ही यह जीव जान सकता है। जैसे कि रामायण में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

सो जाने जेहिं देहो जनाई।

जानत तुमहिं, तुमहिं हो जाई॥

आपको जानकर यह जीव आपका ही स्वरूप हो जाता है। इस लिए आपकी कृपा के बिना मेरे जैसे अज्ञानी जीव आपके वास्तविक रूप को नहीं जान सकते। इस प्रकार महाराज जी से बार-बार क्षमा माँगी। जब महाराज जी अपने आसन पर विराजमान हुए तब रामराय ने नम्रतापूर्वक जगद्गुरु के आगे प्रार्थना की कि हे तरनतारण, सब दुःखनिवारण, शरण में आये दुःखी जीवों का उद्धार करने वाले तथा मेरे जैसे अभिमानी जीवों के अहंकार को दूर करने वाले पारब्रह्म परमेश्वर; मैं आपकी शरण हूँ। अब आप कृपा करके मेरे को जन्म-मरण रूपी इस संसार को दूर करने वाला अमृतमय उपदेश करो। जिससे मैं सुखी हो जाऊँ। इस प्रकार रामराय की प्रार्थना को सुनकर उसको बहुत विस्तारपूर्वक उपदेश दिया जो कि आपके ग्रन्थ साहब में "झुमकरा" नाम से प्रसिद्ध है। आप बार-बार यह सम्बोधन देते रहे है कि "सुनो राय झुमकरा"। झुमकरा तो छन्द का नाम है, राय कहकर आप रामराय को सम्बोधित करते हैं। उसमें से कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं।

॥झूमकरे॥

सर्वलोक सब ठौर है राइ झूमकरा।

क्या उत्तम क्या नीच सुनो राइ झूमकरा॥१॥

गृही द्वारे देखिये राइ झूमकरा।
वैरागी ब्रह्मचारी सुनो राइ झूमकरा॥२॥
पंडित के पट बीच है राइ झूमकरा।
न कछु भिन्न चमार सुनो राइ झूमकरा॥३॥
चार वर्ण षट्[१] आश्रम[२] राइ झूमकरा।
सर्बंगी सब माहिं, सुनो राइ झूमकरा॥४॥
क्षण पल नहीं वियोग है राइ झूमकरा।
न्यारा है अक माहिं सुनो राइ झूमकरा॥५॥
ब्रह्मा सनकादिक रटें राइ झूमकरा।
गावें शंकर शेष सुनो राइ झूमकरा॥६॥

---

१. छः दर्शन :–
(१) पूर्व मिमांसा
कर्मकाण्ड – इसके रचयिता जैमिनिऋषिकर्म को ही प्रधान कर्ता मानते है।
(२) उत्तर मीमांसा
वेदान्त – जिसके प्रवर्तक आचार्य वेद व्यास जी वेदान्त शास्त्र को ही श्रेष्ठ मानते है। जिसमें जीव ब्रह्म की एकता का ही कथन है।
(३) न्याय
न्याय शास्त्र – इसके रचयिता गौतमऋषि हैं जो न्याय को ही श्रेष्ठ मानते हैं और तर्क के आधार पर (नित्यं कुशादिकं कतं जन्यं कार्यत्वात् घटवत्) ईश्वर को सिद्ध करते हैं, १६– पदार्थ मानते हैं।
(४) वैशेषिक
वैशेषिक शास्त्र – इसके रचयिता ऋषि कणांद हैं जो विशेष सप्त पदार्थ (१) द्रव्य, (२) गुण, (३) कर्म सामान्य (५) विशेष (६) समवाय (७) अभाव मानते है।
(५) सांख्य
सांख्य शास्त्र – इसके रचयिता कपिल मुनि हैं जो प्रकृति पुरुष के ज्ञान को ही सब कुछ मानते हैं इस विवेक ज्ञान से पुरुष (जीवात्मा) मुक्त हो जाते हैं।
(६) योग शास्त्र
इसके प्रवर्तक आचार्य पातञ्जलि महर्षि हैं। इसमें निर्विकल्प समाधि पुर्वक विचार को ही सबसे श्रेष्ठ माना गया है।
२. चार आश्रम।

धरणी गगन पग ना धरैं राइ झूमकरा।
सुन वे सुन से न्यार सुनो राइ झूमकरा॥७॥
अनन्त कोट ब्रह्मण्ड हैं राइ झूमकरा।
एक रति नहीं भार सुनो राइ झूमकरा॥८॥
शक्ति शेष हैरान हैं राइ झूमकरा।
गति मति लखी न जाये सुनो राइ झूमकरा॥९॥
तर्क दुनी त्याग दे राइ झूमकरा।
परमानन्द सैं प्रीत सुनो राइ झूमकरा॥१०॥
दास गरीब अमर पटा राइ झूमकरा।
सद्गुरु शब्द अतीत सुनो राइ झूमकरा॥११॥
सब गीता का मूल है राइ झूमकरा।
भागौत रामायण वांच सुनो राइ झूमकरा॥१२॥
तत्व ज्ञान कोई ना कहै राइ झूमकरा।
पैसे ऊपर नाच सुनो राइ झूमकरा॥१३॥
नादी वादी लम्पटी राइ झूमकरा।
कामी क्रोधी कूर सुना राइ झूमकरा॥१४॥
तत्वज्ञान सुखदेव कह्या राइ झूमकरा।
विश्वामित्र वशिष्ट सुनो राइ झूमकरा॥१५॥
जिन शिव शक्ति उपाइया राइ झूमकरा।
है निर्गुण निह तत्व सुनो राइ झूमकरा॥१६॥
दास गरीब दसों दिशा राइ झूमकरा।
वार पार नहीं अन्त सुनो राइ झूमकरा॥१७॥

इस एक झूमकरे छन्द में आचार्य श्री ने वह तत्व रामराय को समझाया जिसको सम्पूर्ण वेदों व शास्त्रों का निचोड़ कहा जा सकता है। इस बात को वेदांत की श्रुतियों को जानने वाले विद्वान् भली प्रकार

समझेंगे। वही सार इन शब्दों में श्री आचार्य जी ने साधारण भाषा में भर दिया है। जिस तत्व को बड़े-बड़े योगीराज सन्त महात्मा खोजते हैं। इस तत्व को साधारण व्यक्ति नहीं समझेंगे। वे ही महापुरुष समझ सकते हैं जो दिन-रात उसकी खोज में लगे हैं। उस तत्व को महाराज जी ने खूब भली प्रकार से समझाया है। इसी से आप (पाठकगण) अनुमान लगा लेंगे कि श्री आचार्य जी के जिज्ञासुओं को समझाने का ढंग कैसा सुन्दर है। इस पर अधिक इसलिए नहीं लिखा कि अधिक लिखने से प्रकरण बहुत बढ़ जायेगा और बुद्धिमान् पाठक तो समझ ही जायेंगे। महाराज जी ने फिर यह पद कहा–

ऐसा सतगुरु सेइये राइ झूमकरा।

मुक्त रूप सब साज, सुनो राइ झूमकरा॥

इस प्रकार रामराय जी को महाराज जी ने आत्मतत्त्व का उपदेश दिया। यहाँ पर संक्षेप से थोड़ा-सा दिखाया गया। यदि किसी को अधिक देखने की आवश्यकता हो तो महाराज जी की वाणी में झूमकरे वाले प्रकरण को देखें।

इस आत्मरूपी उपदेश को प्राप्त होकर रामराय बाह्य क्रियाओं को छोड़कर अन्तर्मुख हो गये। इस संसार को असार (असत्य) समझ कर फिर लौटकर घर पर नहीं गये। इस प्रकार के आपके उपदेश द्वारा आत्म-सुख को प्राप्त करके अनन्त शिष्य व सेवक मुक्ति पद की प्राप्ति करते रहे और कर रहे हैं।

"महन्त अटकलीदास का श्रीमहाराजजी के पास आना"

एक समय महन्त अटकलीदास, जो कि वैष्णव सम्प्रदाय के एक बहुत बड़े सिद्ध थे और इनके साथ बहुत बड़ी साधुओं की जमात थी, इन्होंने सुना कि हरियाना प्रान्त में एक गरीबदास नाम के कोई सन्त हैं। जिनको लोग आचार्य मानते हैं और उन्होंने अपना सम्प्रदाय भी चलाया है। यह सुनकर महन्त अटकलीदास को बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने

लगा कि वह (गरीबदास) गृहस्थ आश्रम में रहते हैं और सम्प्रदाय भी चलाते हैं। हम भी चलकर उनको देखेंगे। जो बात हमने सुनी है उसको देखना भी चाहिए। यदि वह कोई सिद्ध होगा तो हम उसके साथ अड़ेंगे और यदि कोई साधारण व्यक्ति हुआ, कोई शक्ति न दिखाई तो हम उसे अपना शिष्य बनाकर बाँध करके अपने साथ में ले आयेंगे। यह विचार करके अपनी जमात साथ लेकर श्रीछुड़ानीधाम में पहुँचे। सत्गुरू जी का बड बेर का बगीचा था वहाँ आकर आपने आसन लगा दिए। शंख, तुरी, नागफणी, गौमुखी बजाने लगे तथा जलधारा, धूनी आदि अनेक प्रकार के कौतुक करने लगे। रामायण, गीता, स्तोत्र आदि का पाठ करने में कुछ महात्मा लग गये। जमात का जो महन्त था, उसने इन लोगों को नाना प्रकार के कौतुक करते हुए देखकर सबसे कहा कि आराम से बैठकर राम-नाम जपो। दंगा मत मचाओ ऐसा काम मत करो जिससे हमारी हानि हो। क्योंकि हम यहाँ एक सिद्ध से लड़ने आये हैं और कहा कि रघुबरदास को भेजो वह उन (गरीबदास जी) से भोजन की सामग्री ले आवे और इधर सदगुरु जी ने भी अपने शिष्यों से कहा कि शीघ्र भोजन की सामग्री तैयार करो और अपने एक मुख्य शिष्य धारीराम (जो सतगुरू जी के भंडारी थे) से इस प्रकार कहा-

दौरवे, दौरवे, दौरवे बालके,
राम दरबार में एक अवधूत आया।
हाथ मे घोटा और काँख में कूंडी है
पाँच सातां कुं तो मूँड लाया।
दास गरीब कबीर का बालका
एक अटकली दास महन्त आया॥

धारीराम से कहा कि जल्दी दौड़ो हमारे बाग में एक बहुत भारी सिद्ध महात्मा आया है। इसके साथ बहुत भारी जमात है। पाँच सातों को तो आज ही कहीं से नए शिष्य बनाकर लाया है। उनके लिये शीघ्रातिशीघ्र सब भोजन की सामग्री तैयार करो यदि देरी हो गई तो यह दंगा करेंगे

क्योंकि यह भाँग के नशे में हैं। अपना कूंडा सोटा भी साथ में रखा हुआ है। उनकी इच्छा मालपूड़े, खाने की है इसलिये खाँड, आटा, मैदा, दूध, घी इत्यादि सब सामान इकट्ठा करो सवा सौ साधू उसके साथ हैं और उनको लकड़ियो की भी बहुत आवश्यकता है। क्योंकि इनमें बहुत से साधू धूनी तापने वाले हैं उनको किसी बात की कमी न रहे। "जो आज्ञा गुरूदेव" ऐसा कहकर धारीराम महाराज जी की आज्ञानुसार सेवकों को सब सामान उठवाकर और उनके चरणों में शीश झुका कर लेकर चले। इधर अटकलीदास ने भी रघुबर दास को सीधा (सामग्री) लेने भेजा। परन्तु इधर से महाराज जी ने तो उनके हृदय की बात जानकर पहले ही धारीराम को भेज दिया। रास्ते में ही दोनों धारीराम और रघुवरदास का आपस में मेल हो गया। तब धारीराम जी बोले कि आप वापस लौट चलिये, हम सब सामान का प्रबनध करके ले आये हैं। ऐसा सुनकर रघुबरदास जी उल्टे चल पड़े। धारीराम जी ने जाकर महन्त अटकलीदासजी को "सत् साहिब" कहा और उनसे प्रर्थाना की कि महाराज यह भोजन सामग्री हमारे सद्गुरूजी ने भिजवाई है आप इसे देख लीजिये जो वसतु कम हो उसे हम और ले आयेंगे। लकड़ियाँ भी अभी पीछे आ रही हैं। यह देखकर महन्त दंग हो गया कि उन्होंने यह बातें कैसे जानी कि इतने सन्त आये हैं इनके लिए भोजन-वस्तु भी चाहिए। और इधर रघुबरदास ने धारीराम के लौटने से पहिले ही उनके मार्ग में सांकल (लोहे की बेल) लगा दिया जिससे इनकी परीक्षा भी साथ ही हो जाय। तब धारीरामजी ने उस संगल को अपने पाँव से दबा करके पृथ्वी मे धँसा दिया और कहा कि लो अब आप मेरे पैर को उठाकर दिखाओ। तब रघुवर दास उनके पाँव को उठाने लगे। बहुत जोर लगाया परन्तु पाँव नहीं उठा। तब रघुबरदास ने बीस-तीस साधू बुला लिये। सबने मिलकर जोर लगाया परन्तु धारीराम जी का पाँव हिला तक नही। जिस प्रकार रावण की सभा में राम के भक्त अंगद का पैर सम्पूर्ण राक्षसों से हिला भी नहीं था उसी प्रकार धारीराम जी का पैर इन सबसे नहीं उखाड़ा जा सका। इस बात की पुष्टि ब्रह्मानन्द जी ने की है। यथा-

"कवित्त"

पाँव सो दबाये जाय संगल दियो धसाये।
सभा के मंझारी सो दिखायो जोर कारी है॥
मानो अंगद समान पाँव राखयो सुजान आन।
कौन सके टारी पांव भयो अति भारी है॥
जा जमात के मंझारी, बलवान अति भारी।
सके न निहारी पांव, सके कैसे टारी है॥
निज बल को दिखायो पाद आपनो उठायो।
बोल के कहारन को चाल्यो अगारी है॥

दोहा- जैसे सूरज उदय बिनु, अरूण हने तम आय।
तैसे धारी राम ने, लीन्हें सर्व दबाय॥

इस प्रकार धारीरामजी ने सब बैरागियों की जमात के बीच में अपने महाराज की शक्ति की सूचना दे दी जिस प्रकार सूर्य उदय होने के पहले ही अरूण (सूर्य भगवान् के एक सेवक का नाम जो सूर्य उदय होने के पहले ही आता है) ही अन्धेरे को दूर कर देता है। ऐसे ही धारीराम जी ने श्री आचार्य जी से वार्त्ता होने से पहले ही उन सिद्धों के गर्व को रौंध (दरड़) दिया। धारीराम जी के पैर उठाकर चले आने के पश्चात उस संगल को भी उन्होंने बहुत-सी पृथ्वी खोद कर बड़ी कठिनता से निकाला और धारीराम जी के बल को स्मरण केरके मन में उदास होने लगे। तत्पश्चात् महन्त अटकलीदास जी ने अपने भंडारी को बुलाकर कहा कि जल्दी भोजन बनाओ। भोजन पाकर अपना-अपना तिलक कर और जनेऊ पहन लो। फिर इनके साथ बातचीत करेंगे। जो परमात्मा करेगा वही होगा। यहाँ पर और कोई रक्षक नहीं है। रघुबरदास से कहा, कि आप चिन्ता मत करो। हमें भगवान राम पर भरोसा है कि हम ही जीतेंगे। आज तक जहाँ-तहाँ हम ही जीतते रहे हैं। हमारी कहीं हार नहीं हुई। क्योंकि श्री मद्भगवद्-गीता सम्पूर्ण हमारे कंठस्थ है और पुराणों की अनेक कथाएँ हमारे कंठस्थ है और पुराणों की अनेक कथाएँ हैं। जब बहुत बड़े-बड़े

विद्वान् और सिद्ध हमारे सामने हार गये तब यह बिचारे साधारण जमींदार क्या करेंगे भगवान् रघुबर की दया से आज हम इनको शक्ति का परिचय देंगे अपने वश में करके इनको जनेऊ पहरायेंगे और तिलक धारण करायेंगे और ठाकुरों की पूजा करनी इनको सिखायेंगे। और इनको बांध कर अपने साथ ले चलेंगे। ऐसा संसार में कौन सा कार्य है जो हमारे से न हो सके, बड़े से बड़े कार्य को हम एक क्षण भर में कर सकते हैं। इस प्रकार कहकर अपनी माला जपने लग गये। और उधर धारीराम जी भी जगतगुरू के पास पहुँच गये। महाराज जी ने सब बात को जान लिया और सब सन्तों से कहा, कि धारीराम ने उनको परिचय दे दिया है। तब धारीराम जी ने कहा गुरूदेव यह तो सब आपकी कृपा है। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अकेला ही इन सबको भगा दूँ और इनके दण्ठ-कमण्डल मृगछाला आदि सब खोस लूँ। तब सतगुरू जी ने कहा, कि नहीं ऐसा मत करो क्योंकि वे बिचारे बहुत दूर से अपनी शक्ति दिखाने के लिए आये हैं। पहले उनको दिखाने दो वह तो स्वयं ही चले जायेंगे। इस प्रकार कह के महाराज जी ने आज्ञा दी, कि सब भोजनपालो/भोजन करके फिर चलो सन्तों के दर्शन करें। भोजन करने के पश्चात् अपने सन्तों को साथ लेकर महाराज जी चले। उधर आगे वह महात्मा भी भोजन पाने के लिये पंक्ति लगाकर बैठे थे। महाराज जी ने जाकर 'जै गोपाल' बुलाई। और महन्त जी तथा और उनकी जमात ने आगे से "जै गोपाल" कह दिया। सतगुरू जी ने खड़े-खड़े ही सन्तो के दर्शन कर लिये और कहा, सब सन्त जाँटी (एक जंगली शमी वृक्ष) के नीचे चलो। ऐसे कहकर आप स्वयं भी चल पड़े। दरी, गलीचे आदि बिछाये गये अटकलीदास जी अपनी जमात के सहित आगये। सब महात्मा बैठ गये। तब महन्त अटकलीदास जी ने कहा, कि- आपने भेष किस प्रकार चलाया है ? न तो अपके गले में कण्ठी है और न जनेऊ है और न मस्तक में तिलक है। यह सब हम आपको देते हैं। कण्ठी धारण करो और हम आपको ठाकुर-पूजा भी सिखाते हैं। नहीं तो आप हमें कोई परिचय दिखाओ बिना ही किसी शक्ति के आप भेष क्यों चलाते हो। नहीं तो पहले हम आपको परिचय दिखाते हैं। क्योंकि बिना परिचय के तुम हमें

नहीं मानोगे। यह कहकर, एक कंकरी हाथ में लेकर मन्त्र पढ़ा और वह मन्त्रित की हुई कंकरी एक कीकर के वृक्ष में मारी जो थोड़ी सी दूरी पर खड़ी थी। उस कीकर में कंकरी लगते ही वह दो खण्ड होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी यह देखकर श्री गरीबाचार्य जी ने कहा कि सिद्ध जी यह आपने अनुमित कार्य किय है। हरा वृक्ष बिना किसी कारण के नष्ट करना बहुत पाप है। इससे तो कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसके नीचे बहुत से मानुष और पशु विश्राम करते थे और ऊपर पक्षी आराम करते थे। इसको गिरा देने से हानि के अतिरिक्त लाभ तो कुछ हुआ नहीं और इसका मालिक भी यहाँ नहीं था। मालिक की अनुपस्थिति में इसे गिरा देना आपकी सिद्धि कोई नही मान सकता। तब सिद्ध ने कहा कि जो आपकी अपनी हो उसे बताइये। हम इसे उपाड़ सकते हैं। तब आपने कहा कि लो हम अपने हाथ में रखनेवाली छड़ी पृथ्वी मे गाड़ते है। आप इसे उपाड़ दिखाइए। इस प्रकार कहकर आपने अपनी छड़ी धरती में खड़ी कर दी और कहा, लो इसे उपाड़ो। इसको उपाड़ने वाला हम से अतिरिक्त कोई नहीं है। यदि आप इसको उपाड़ देंगे तो हम आपकी आज्ञा का पालन करेंगे । यदि यह मेरी लकड़ी आपसे न फटी या उपाड़ी गई तो आपको मेरे मतानुयायी होना पड़ेगा। जो आप मेरे को ठाकुर देकर पूजा करने को कहते हैं उसको आप स्वयं ही अपने गले में बांधे रखें। हमारे तो ठाकुर और ही है। जिस ठाकुर की हम पूजा करते हैं वह ठाकुर तो सर्वत्र व्यापक हैं। उससे भिन्न जो जड़ ठाकुर हैं उनकी पूजा तो बहिर्मुख अज्ञानी पुरूषों के लिए है। जैसे बालकों को खेलने के लिए खिलौने आदि होते है। बाह्य जलमृतिका एवं पाषाण आदि के ठाकुरों में जो प्रवृत्त हैं वे भी बालकों की नाईं हैं। उन अज्ञानी पुरूषों को शास्त्रकारों ने बालक ही कहा है। आपने यह पंक्ति वहाँ पर कहीः- हमरा ठाकुर और है, चरणसहंसमुखगंग।

ठाकुर तो हम ठोक जराये, हर की हाट उठाई।

राम रहीम मजूरी कर हैं, उस दर्गाह में भाई॥

मैं उस ठाकुर को पूजता हूँ जिस ठाकुर के दरबार में अनन्तों ही ब्रह्मा विष्णु हाथ बाँधे खड़े हैं। राम और रहीम आदि सभी उस ठाकुर के

उपासक हैं। वह ठाकुर सबके अन्दर-बाहर व्यापक है। यह बात सुन कर महन्त अटकलीदास को बड़ा क्रोध हुआ। और कहने लगा हम अभी इसको फाड़ करके गिरा देंगे। यह लकड़ी बेचारी तो क्या हम पहाड़ों को उखाड़ कर फेंक दें! इतना कहकर अपने यंत्र मंत्र चलाने लगे। जितने भूत प्रेत बस में थे सबका अह्वान किया परन्तु कोई सफलता न मिली। बारम्बार अपना जोर लगाया वह लकड़ी तो रिंचक मात्र भी नहीं हिली। तब कहने लगा! क्या कारण है कुछ जान नहीं पड़ता? हमारे बस में जितने भूत प्रेत थे वह आज कहाँ भाग गये एवं कहाँ मर गये। इस प्रकार कहकर नेत्र लाल किये और दोनों हाथ जोर से पृथ्वी पर मारे परन्तु सब प्रयत्न विफल हुए। तब अपने मुख से रघुबरदास को कहा कि हमारे से तो यह लकड़ी नहीं उखाड़ी जायेगी। आपमें कुछ शक्ति हो तो लगाओ। यह सुनकर रघुबरदास ने लकड़ी उपाड़ने के लिए भैरों को बुलाया क्योंकि इसने भैरों अपने बस में कर रखा था। भैरों को याद करते ही तुरन्त आ गया और आज्ञा माँगी। तब रघुबरदास ने कहा कि इस लकड़ी को उखाड़ो। और महाराज की ओर संकेत कर कहा कि उखाड़ कर इसको मारो। रघुबर ने फिर कहा कि आज अपना पूरा बल दिखाओ। यहाँ पर जितने भी सन्त समाज व स्त्री-पुरुष बैठे हैं वे सब आपके बल को देखें। यह सुनकर भैरों ने उस लकड़ी को उखाड़ने के लिए सावधानी से पकड़ा और मन में सोचा कि इसको उखाड़ दूर कर सकता हूँ परन्तु वह लकड़ी तिल मात्र भी न हिली। भैरों बारम्बार जोर लगाने लगा परन्तु वह लकड़ी तो रिंचक मात्र भी न हिली टूटनी तो क्या थी? भैरों उसके चारों ओर चक्कर काट-काट कर हार गया। तब वह भैरों सद्‌गुरु की ओर बढ़ा। सद्‌गुरु ने पहले ही शिव का रूप धारण कर लिया। शंकर का रूप देखते ही भैरों हाथ में गुर्ज लिये हुए रघुबर दास की ओर बढ़ा। आगे बढ़कर एक गुर्ज रघुबर दास को लगा दी। तब रघुबर दास को गुर्ज लगने से बड़ा दुःख हुआ और हाहाकार करने लगा। और मन में विचारा कि अब यह भैरों मेरे ही प्राण लेगा। सद्‌गुरु की ओर देखा सामने शिव बैठे हैं। अब तो रघुबर महाराज के चरणों में लिपट गया और कहने लगा कि भगवन्! मैं आपका

दास हूँ। आपके बिना मेरा कोई रक्षक नहीं है। आज मुझे इस भैरों से बचाओ और इस भैरों को जल्दी हटा दो। तब सद्‌गुरु ने भैरों को अपनी ओर बुलाया। भैरों लाल नेत्र किये आगे को बढ़ा परन्तु सामने शंकर को बैठे देखकर हाथ जोड़ लिये और कहा प्रभु, जो आपकी आज्ञा हो वही करूँगा। यदि आपकी आज्ञा हो तो इस सब जमात को मार-मार कर यहाँ से भगा दूँ। तब सद्‌गुरु जी ने कहा कि नहीं ऐसा मत करो। जैसा हम कहें वैसा करो। महात्माओं के बीच में रौला (हल्ला) मत करो। इनकी शक्ति को तो मैं स्वयं ही देख लूंगा तेरी सहायता की मेरे को जरूरत नहीं। तू जहाँ से आया है वहीं चला जा। यह सुनकर भैरों तो सद्‌गुरु जी के चरणों में सीस नवा कर चला गया तब सद्‌गुरु जी ने अपना शिवस्वरूप रघुबर दयाल व महन्त अटकलीदास के सहित सब जमात को दिखाया। सन्त समाज व जो भी नर-नारी उस सभा में उपस्थित थे सबने आपको शंकर रूप में देखा। और बार-बार आपके दर्शन करने लगे और जय-जयकार की ध्वनियाँ होने लगीं। महन्त ने अपनी जमात के सहित दोनों हाथ जोड़कर सद्‌गुरु जी से नम्रता पूर्वक कहा, भगवन्! हमारे अपराध को क्षमा करो। हमने बहुत भूल की जो कि आपके साथ इतना विवाद किया। हम तो आपके चरण रज के समान भी नहीं हैं। हम आपकी महिमा को नहीं जानते थे। आपकी महिमा का शेष शारदा भी पार नहीं पा सकते। तब हम जैसे अल्पज्ञों की तो गिनती ही क्या हो सकती है? उनके बार-बार प्रार्थना करने के पश्चात् सद्‌गुरु जी ने अपना वही नर स्वरूप धारण कर लिया। तब महन्त ने हाथ जोड़कर कहा कि भगवन्! हम तो आपके आगे हारने का शब्द तो कह ही नहीं सकते क्योंकि आप साक्षात् परमेश्वर हैं। सृष्टि की उत्पत्ति पालन और संहार आप ही के द्वारा होता है। इसलिए आपके सामने हम जैसे तुच्छ जीवों की क्या गणना है। इस प्रकार अनेक स्तुति करके आज्ञा माँगी कि भगवन्! अब हमें जाने की आज्ञा दीजिए। सद्‌गुरु को दण्डवत् प्रणाम कर सब सन्तों को सत्त साहिब बुलाकर चल पड़े। शिव स्वरूप का ध्यान करते हुए और महाराज का यश गाते हुए अपनी जमात को साथ लेकर अटकलीदास ने प्रस्थान कर दिया।

हरलाल के संशय की निवृत्ति

जिला रोहतक वर्तमान जिला झझर में बेरी नामक एक कस्बा है। वहाँ पर एक व्यक्ति हरलाल नाम का था। आपका बड़ा ही प्रेमी और श्रद्धालु सेवक था। एक बार वह आपकी सेवा में उपस्थित हुआ और कई दिन तक आपके उपदेशों का लाभ प्राप्त करता रहा। एक दिन उसके मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि गुरुदेव का उपदेश तो ऐसा लगता है कि जैसे सांसारिक प्रपञ्च से विरक्त एवं वैरागी (विरागवान्) हुये पुरुष का हो। अपने ही उपदेशों से ये स्वयं परमात्मा ही सिद्ध होते हैं। परन्तु इनके घर की स्थिति तो साधारण सांसारिक लोगों के प्रकार ही है। क्योंकि घर में सुयोग्य सन्तान भी है। और सुलक्षणा स्त्री भी है, धन सम्पत्ति भी किसी से कम नहीं है। घोड़ी आदि सवारियों का भी सब प्रबन्ध है। हम सभी मनुष्यों की तरह ही ये खाते-पीते हैं। शरीर भी हमारे ही जैसा है। देवता व ईश्वर के समान इनमें से कोई भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ता है। फिर लोग इन्हें ईश्वर का अवतार क्यों कहते हैं विष्णु के तो चार भुजायें, और उन प्रत्येक भुजाओं में शंख-चक्र-गदा और पद्म लिये हुए होते हैं। उनके गले में वैजयन्ती-माला होती है। पीताम्बरधारी शरीर होता है। इन सब लक्षणों के अभाव में भी इन्हें अवतारी संज्ञा दी जाती है। साधारण मनुष्य की भाँति ही चाल-ढाल है, वही पृथ्वी पर गमना-गमन है। अन्तर्यामी भी यह दिखाई नहीं पड़ते हैं। फिर भी इन्हें सद्‌गुरु की संज्ञा दी गई है। ऐसा क्यों हुआ? परन्तु उधर गुरुदेव अन्तर्यामी तो थे ही। तुरन्त ही हरलाल के हृदय की बात को जान गये। और सोचा कि इसके मन में जो शंका रूपी अंकुर उत्पन्न हुआ है इसे तुरन्त ही नष्ट कर दिया जाय। अन्यथा कुछ समय पश्चात् यह अंकुर विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेगा। विशालरूप धारण करने के पश्चात् इसे उखाड़ने में कष्ट होगा। इस बात को स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने अपनी मधुर वाणी से इस प्रकार वर्णन सद्‌गुरु अवतार लीला नामक पुस्तक में किया है—

दोहा- सेवक के मन की लखी, बन्दी छोड़ विचार।
हर-हर कर मुख से उठे, दीनों बदन उघार॥

सेवक देखो नैन सों, ना मन करो सन्देश।
सद्‌गुरु साहिब रूप हैं, या में शंक न लेश॥
ऐसे मुखों उचार कै, दीनो तन बदलाये।
झूले बीच आकाश के, ऊचो कह्यो न जाये॥

सवैया- ना भग लिंग तिसै तन में, अरु दीखत है नभ दीपक कैसो।
धावत जावत है नभ में, क्षण बीच गयो वध बावन जैसो॥
दीरघ दीखत है नभ में, अरु पावत है तब रूप सो वैसो।
सेवक चीत विचार करै, हम चाहत सां भव दीखत तैसो॥
है दर चक्र और गदा, कर बीच सरोज भुजा तन चारी।
धार पीताम्बर शोभत हैं, शुभ फूलन माल गले बन धारी॥
ईशसरूप दिखा तब ही, क्षण बीच भयो तब केहरी भारी।
सेवक की गणना कित है, सब संत निहार रहे नर नारी॥

इस प्रकार सेवक की भावना के अनुसार जैसा वह चाहता था वैसा ही रूप धारण करके आप आकाश के बीच में विचरण करने लगे। और दूसरे क्षण में ऐसा विशाल शरीर धारण किया जैसे बलि राजा को छलते समय बावन भगवान ने अपने शरीर को बढ़ाया था। फिर नरसिंह का रूप धारण कर लिया। अति भयंकर नरसिंह रूप को देखकर हरलाल का तो कहना ही क्या था जितने भी महात्मा गण एवं सेवक समाज था सब काँप उठा। और हाथ जोड़ कर सभी ने प्रार्थना की कि प्रभु हम तो आपके उसी स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं जिस रूप में पहले आप विराजमान थे। यह नरसिंह स्वरूप तो हम अपनी आँखों से देख नहीं सकते। इस भयंकर एवं विशाल स्वरूप से हम इसी प्रकार भयभीत हो गये हैं जैसे प्रहलाद की रक्षा करते समय आपके भयावह स्वरूप से राक्षसों के प्राण विसर्जित हो गये थे। हम अज्ञानियों के जो अपराध हैं उन्हें क्षमा करो। अपनी मूर्खता के कारण ही ये विचार हमारे मन में आये। आप उसी सर्वशक्तिमान् परमात्मा का स्वरूप धारण कर आये हो, आप देवाधिदेव, करुणानिधि भगवान् हो। हम पर करुणा करो और अपना यह विकराल

रूप हमारी आँखों के सामने से लुप्त कर लो। उसी श्वेत वस्त्रधारी, सुन्दर लावण्ययुक्त शरीर में ही हम आपको देखना चाहते हैं, आप उसी स्वरूप में हमारे सामने विराजमान हो जाइये। उसी शान्त स्वरूप में जिसमें कि आप हमें उपदेश दिया करते थे। लोगों की दीनता से भरी पुकार सुनकर अपना कौतुक भरा स्वरूप लुप्त कर लोगों के सामने उसी साधारण स्वरूप में विराजमान हो गये। ऐसा स्वरूप देखकर शिष्यगण आपके चरणों में बिछ गये, आपकी जय-जयकार करने लगे। और हरलाल के मन की शंका तो इस प्रकार लोप हुई जैसे कि सूर्य से अन्धकार और उन्होंने (हरलाल ने) तो यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं जीवनभर आपकी चरण-शरण छोड़कर कहीं भी नहीं जाऊँगा और अपने जीवन को सार्थक करूँगा। तब महाराज जी ने यह साखी कही—

गरीब गाड़ी बाहो घर रहो, खेती करो खुशाल।
साँई सिरपर राखियो, तो सही भक्त हरलाल॥

इस प्रकार गरीबदास जी ने हरलाल से कहा कि तुम घर पर रहकर ही यह सब कुछ करते रहो—गाड़ी चलाना, खेती करना तथा अन्य प्रकार के सभी कार्य-व्यवहार करते रहो और उस परमपिता परमात्मा को हर स्वास के साथ स्मरण करो, उसकी छाया निरन्तर अपने सिर पर समझो। याद रखो कि उसकी दृष्टि हमारे हर कार्य पर रहती है। शुभ-अशुभ प्रत्येक कर्म को वह देखता ही रहता है। उसके निरन्तर स्मरण से आपके हर कार्य में विघ्न-बाधायें उपस्थित नहीं होगी। और हर क्षण उसका स्मरण करने से ही तुम परमात्मा के सच्चे और अनन्य भक्त कहलाओगे। अतः तुम्हारे जीवन में प्रसन्नता ही भरी रहेगी।

॥ भगत तोखराम॥

भगत तोखराम का पिता बाजीदपुर में शोरे के व्यापार का कार्य किया करता था। यह दोनों पिता-पुत्र सद्‌गुरु श्रीगरीबदास जी के अनन्य भक्त थे। तोखराम का तो सद्‌गुरु जी के प्रति अत्यन्त प्रेम था। यह सद्‌गुरु जी को कई बार बाजीदपुर ले जाकर कई-कई महीने ठहराता था तथा उनसे

सदुपदेश सुनता और महाराज जी की सेवा कर के अपने आपको कृतार्थ मानता था। एक समय भगत तोखराम के पिता ने कहा कि बनजारे शोरा लेने आवेंगे उनको खेत में जाकर तुम शोरा तोल देना क्योंकि यदि समय पर शोरा न तोला गया तो बनजारों (व्यापारियों) का खर्चा हमारे सिर पड़ेगा। इसलिये तुम इस कार्य को भूल नहीं जाना। इतना कहकर तोखराम का पिता कहीं काम पर चला गया। जब वह लौटकर आया, देखा तो तोखराम घर में ही सोया पड़ा है। पिता ने कहा कि मैं तेरे को शोरा तोलने के लिए कह गया था परन्तु तुमने वह काम नहीं किया। बनजारे सुबह के आये होंगे वह हमारे से अपना खर्चा वसूल करेंगे। यह कहकर अपने बाग में गया जहाँ शोरा पड़ा था।

जाकर क्या देखा कि तोखराम बनजारों के लिये शोरा तोल रहा है। पिता ने यह देख मन में विचार किया कि मैं अभी इसको घर सोया हुआ छोड़कर आया हूँ। उसी समय लौटकर फिर घर गया जाकर देखा कि तोखराम वहाँ सोया पड़ा है। इस प्रकार उसने दो-तीन चक्कर लगाये तो तोखराम को दोनों जगह—बाग में काम करता और घर में सोया पाया तब उसने निश्चय कर लिया कि यह कोई महापुरुष है। इसने सद्‌गुरु जी की सेवा से अलौकिक शक्ति प्राप्त कर ली है। आज से तोखराम जी को किसी काम के लिये नहीं कहा जायेगा, यह अपना भजन पाठ करता रहे। और उसी बाग में तोखराम जी के लिए अलग मकान बना दिया जिससे उसके भजन में किसी प्रकार का विघ्न न पड़े। उसी बाग में श्री महाराज जी ठहरा करते थे। तोखराम ने अपनी मृत्यु के बारे में कुछ समय पहले ही बता दिया कि मेरे को मारने वाला हलालपुर में गऊ का दूध निकाल रहा है और शाम को वह धाड़ लेकर हमारे गाँव पर चढ़ेंगे उसी में ही वह मेरे को मार देगा। इनके कथनानुसार इनकी मृत्यु हुई। बाद में इस मकान में साधु ही रहते रहे। कुछ समय पश्चात् श्री स्वामी गंगेश्वरानन्द जी ने उस बाग के थोड़ी दूरी पर एक मकान का निर्माण करवाया। जिसमें सन्त लोग ठहरते हैं उसका जीर्णोद्धार मेरे प्रामर्ष से स्वामी पदमदास जी ने ग्रामवासी सेवकों की सहायता से करवाया। इस समय इस आश्रम की शोभा बढ़ रही है।

कणौदा ग्राम का साहब राय

एक बार श्री जगद्‌गुरु जी को बाजीदपुर में बुलाकर महाराज जी का चतुरमासा वहीं करवाया। उस समय छुड़ानी आदि बहुत से ग्रामों में टिड्डीदल ने सब फसलों को खा लिया था इसलिये अकाल पड़ गया था। बाजीदपुर के भी सब खेत टिड्डी ने उजाड़ दिये केवल भगत तोखराम की फसल ही बची थी। उनके खेतों में टिड्डी दल ने बिल्कुल नहीं खायीं। उनमें फसल बहुत हुई थी। जब सत्‌गुरु जी चतुर्मास पूरा करके छुड़ानी धाम को चलने लगे तो तोखराम ने एक गाड़ी बाजरे की श्री सत्‌गुरु जी को भेंट की। और कहा कि यह बाजरा आप अवश्य ले जाइये। क्योंकि टिड्डी दल ने सभी जगह नुकसान किया है। अतः आप इस अन्न को अवश्य ले जाइये। उनके बहुत आग्रह करने पर महाराज जी अनाज की गाड़ी लेकर चल पड़े। जब कणौंदा ग्राम के पास से निकलने लगे तब कणौंदा के मुखिया साहबराय ने अपने ग्राम वालों को कहा कि अकाल के कारण भूखे क्यों मर रहे हो। यह बाजरे की गाड़ी पास से जा रही है। इसे लूट लो। यह सुनते ही लोग गाड़ी पर टूट पड़े। सब बाजरा लूट ले गये। और उस ग्राम के मुखिया साहब राय ने सत्‌गुरु जी को काठ मार दिया। (काठ एक लकड़ी का यन्त्र होता था जिसमें किसी का भी पांव फँसा देने पर उस व्यक्ति को बहुत कष्ट होता था) काठ के बन्धन में बन्धे हुए आप आनन्दपूर्वक बैठे रहे। जब यह समाचार बाजीदपुर में मिला कि बाजरी लूट ली है तथा सत्‌गुरु जी को काठ मार दिया है। यह सुनकर वे लोग कणौंदा में पहुँचे और साहब राय से कहा कि तुमने तो यह बहुत बड़ा अनर्थ एवं पाप कर्म किया है। जिससे छुटकारा होना बड़ा कठिन है। जिस जगद्‌गुरु गरीबाचार्य जी को तुमने बांधा है वह तो सब प्राणियों के दुःखों का नाश करने वाले हैं। सो आपको उनके बाँधने के पाप से कैसे मुक्ति मिलेगी। अतः इनको जल्दी खोल दीजिये। ये सुनते ही साहब राय मारे डर के काँप उठा और सद्‌गुरु जी के पाँव से काठ खोल दिया और उनके चरणों में मस्तक को रखकर अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगा। तब सद्‌गुरु जी ने कहा कि हमने तेरा कसूर तो माफ कर दिया। परन्तु थोड़े ही

दिन के बाद तेरे हाथ अवश्य ही कट जायेंगे। क्योंकि इनके द्वारा तुमने अधिक अपराध किया है। सो यह अवश्य ही कट जायेंगे। आज से पाँचवे दिन जब तू टट्टी होकर उठेगा। तो उसी समय दो आदमी घोड़ों पर चढ़कर आयेंगे और तेरे हाथों को काटेंगे।

ऐसा कहकर सद्‌गुरु जी छुड़ानी धाम को चले गये। जब पाँचवें दिन वही निश्चित समय आया जिस समय साहब राय हाथ धोने के लिये जोहड़ (तालाब) पर जा रहा था। तो उसी समय दो आदमी घोड़ों पर चढ़कर आये और साहब राय के दोनों हाथ काट दिये। और साहब राय के देखते-देखते दोनों लुप्त हो गये। तब वह साहबराय अपने सम्बन्धियों को साथ लेकर छुड़ानी धाम में पहुँचा। और जाकर प्रार्थना की कि गुरुदेव मैं तो अब किसी काम लायक नहीं रहा मुझे कोई उपाय बताओ जिससे मेरा जीवन सुखमय हो। तब आप ने कहा कि सब सुखों का मूल सद्‌गुरु की शरण है। तू सद्‌गुरु का नाम जपा कर। तेरी स्त्री तेरी सेवा करेगी। तब उसने प्रार्थना कि गुरुदेव जी आप वहाँ चलके मुझे दर्शन दें। महाराज जी ने कहा कि साहब राय सन्तों के लिये एक चौबारा बना। तब उसने प्रार्थना की कि हे सद्‌गुरु जी हमारे ग्राम में एक मुसलमान पीर है। वह अपने मकान से ऊँचा किसी का मकान नहीं बनने देता। यदि कोई बनावे तो अपनी शक्ति से तभी ढाह देता है। तब श्री महाराज जी ने कहा कि तुम चौबारा बनाओ हम देखेंगे कि वह पीर चौबारा कैसे ढाहता है। तब श्री सद्‌गुरु जी भी वहीं कणौंदा में पहुँच गये। जब चौबारा बनकर तैयार हो गया तो पीर ने उसको ढहाने के लिये अपनी शक्ति लगाई। जब किसी भी प्रकार से शक्ति नहीं चली तो वह "श्री सद्‌गुरु महाराज जी कोई बहुत बड़ा योगी है" ऐसा जानकर उनके सामने गया और माफी मांगी। श्री सत्‌गुरुजी महाराज ने कहा कि देखो कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे लोगों को दुःख हो। तब वह बोले "मैं किसी को दुःख नहीं दूँगा" ऐसी प्रतिज्ञा करके और महाराज को नमस्कार करके चला गया। महाराज की ऐसी शक्ति देखकर सभी लोगों ने अपने घरों पर चौबारे बना लिये। उसके बाद भी श्री महाराज जी उनके यहाँ कभी-कभी जाते रहते थे। उस समय से अब तक उस मकान में साधु लोग रहते हैं।

एक सन्त को दिव्य दृष्टि

एक समय जगद्गुरु श्री गरीबाचार्य जी बाहर पीली जोहड़ी के खेत में बैठे हुए ज्वार का गन्ना चूस रहे थे। (वह ज्वार अति स्वादिष्ट होती है, इस प्रान्त में ईख की खेती नहीं होती थी।) पास में एक आपका शिष्य बैठा हुआ आपके चूसे जूठे छिलके को चूसने लगा ज्योंही उसने वह छिलका चूसा त्योंही उस महा भाग्यवान् महात्मा के आन्तरिक दिव्य चक्षु (अन्दर के नेत्र) खुल गये। उसी समय उस महात्मा ने सद्गुरु जी से कहा कि बन्दी छोड़ महाराज यहाँ समीप में एक धन का खजाना दबा पड़ा है। उससे संतों के भंडारे किया करेंगे तथा इस धन से हमारी कई पीढ़ियों की रक्षा भी हो सकेगी। महाराज जी ने कहा कि बेटा ऐसा खजाना कहाँ है। वह कहने लगा कि यह देखो पास ही धरती में गड़ा पड़ा है। सद्गुरु जी ने कहा कि हमारे समीप में आकर बताओ कहाँ खजाना है। जब वह पास में आया तो सद्गुरु जी ने अपना कोमल हाथ उस के सिर पर रखकर कहा कि अब बता कहाँ है वह खजाना। तब शिष्य दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा कि गुरुदेव मुझको तो खजाने का कोई ज्ञान नहीं है। आप किस खजाने के विषय में कह रहे हैं।

अपना हाथ उसके मस्तक पर धरते ही उस शिष्य की दिव्य दृष्टि जो उसको श्री महाराज के जूठे छिलके के चूसने से मिली थी वह वापिस खैंच ली। यह कार्य सद्गुरु जी ने इसलिए किया कि यह जाकर इस विषय में और लोगों से बताया करेगा तथा लोगों की गुप्त बातों की खोज किया करेगा। एवं इसके मन में अभिमान उत्पन्न हो जावेगा यह लोगों को अपनी शक्तियाँ दिखाने में ही लगा रह जायेगा जिससे इसका भजन पाठ आदि सब छूट जायेगा।

इस घटना से आप (पाठक) लोगों को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि जगद्गुरु जी सर्वशक्ति से सम्पन्न होते हुए भी अपनी शक्ति को गुप्त रखने के लिए तथा मेरे शिष्य के अन्दर किसी प्रकार का अभिमान या प्रभुता न हो जावे इस विचार को लेकर ही अपने शिष्यों की रक्षा किया करते थे। और इस प्रकार का उपदेश भी देते थे कि हे शिष्यो तुम लोगों को

किसी प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि में नहीं फँसना चाहिए। यह सिद्धियाँ तो एक प्रकार का असाध्य रोग है जिससे हम कभी भी छूटकर अपने असली ध्येय पर नहीं पहुँच सकते हैं। आपने अपनी पवित्र वाणी में चौबीस प्रकार की सिद्धियाँ कहीं हैं। जो अष्ट सिद्धियों के अन्तर्गत हैं। वे ये हैं—

ब्रह्म रमैणी में से

शब्द महल में सिद्धि चौबीसा,
हंस बिछोरे बिस्वे बीसा।
एक[१] सिद्धि सुर देव मिलावे,
एक[२] सिद्धि मन बिरति बतावै॥
एक[३] सिद्धि है पौन सरूपी
एक[४] सिद्धि होवे अनरूपी।
एक[५] सिद्धि निसवासर जागै।
एक[६] सिद्धि सेवक होय आगै॥
एक[७] सिद्धि सुरगा पुर धावै,
एक[८] सिद्धि जो सब हाट छावै।
एक[९] सिद्धि सब सागर पीवै,
एक[१०] सिद्धि जो बहु जुग जीवै॥
एक[११] सिद्धि जो उड़े अकाशा,
एक[१२] सिद्धि परलोकै वासा।
एक[१३] सिद्धि कष्टि तन जारा,
एक[१४] सिद्धि तन हंस न्यारा॥
एक[१५] सिद्धि जल डूब न जाई,
एक[१६] सिद्धि जल पैर न लाई।
एक[१७] सिद्धि बहु चोले धारै,
एक[१८] सिद्धि निह तत्त्व विचारै॥

एक[१९] सिद्धि पाँचों तत्त नीरं,
एक[२०] सिद्धि जो बजर शरीरं॥
एक[२१] सिद्धि पीवे नहीं खाई,
एक[२२] सिद्धि जो गुप्त छिपाई॥
एक[२३] सिद्धि ब्रह्मण्ड चलावे,
एक[२४] सिद्धि सब नाद मिलावे॥
एता खेल खिलारि खेलै,
सोहं हंसा प्रगट वेलै॥
चौबीसां कूं ना दिल चावे,
सो हंसा शब्द अतीत कहावे॥
परा सिद्धि पूर्ण पटरानी,
सत् लोक की कहूँ निशानी।
सत लोक सुख सागर पाया,
सत्गुरु भेद कबीर लखाया॥
परम हंस पेखो परवाना,
जन कहता दास गरीब दिवाना॥

इस प्रकार आपने चौबीस प्रकार की सिद्धियों का वर्णन करके अपने शिष्य को निमित्त बनाकर हमको उपदेश दिया है कि तुम इन सिद्धियों में न फँसना, इनसे आगे पूर्ण सिद्धि जिसे सब सिद्धियों की पटरानी (पराभक्ति या ब्रह्म विद्या) कहते हैं उसके द्वारा ही हमारा मोक्ष हो सकता है एवं हम जन्म-मरन रूपी चक्कर से छूटकारा पा सकते हैं। यही सतलोक एवं सुखसागर (शुद्ध ब्रह्म) की प्राप्ति सद्गुरु कबीर साहेब जी ने अपने हंसों को कराई। महाराज गरीब दास जी कह रहे हैं उसी परमहंस (ब्रह्म) को देखो तथा प्राप्त करो। इस उपदेशानुसार हम सबको पारब्रह्म परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि सद्गुरु जी ने इस उपदेश द्वारा यह बताया है कि तुम जो अपने स्वप्न आदि में चमत्कार हो जाने से ही अभिमान कर

लेते हो या कोई एक आध अपना वचन सत्य होने से ही अपने आपको सिद्ध मान लेते हो यह तुम्हारी बड़ी भूल है। यदि तुम्हें चौबीस सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जायें तो भी बिना आत्मज्ञान के कल्याण नहीं होगा।

॥ बानी के पाठ से बनजारों की रक्षा॥

आपके पास प्रायः सभी प्रकार के लोग आते थे और आप सबको देश काल के अनुसार तथा जैसा अधिकारी समझते उसको वैसे ही समझाते तथा सद्मार्ग का उपदेश देते थे। आपके आश्चर्यमय परिचयों (शक्ति) व अलौकिक अमृतमय उपदेशों की दूर-दूर तक धूम मच रही थी। एक समय कुछ बनजारे (जो कि देश-देशान्तरों में घोड़ों का व्यापार करते थे) आपका यश सुनकर छुड़ानी में घूमते-घामते आ पहुँचे। छुड़ानी में आ जाने पर उन्होंने रात्रि को रहने के लिये गाँव वालों से पूछा। गाँव वालों ने उनको श्री बलराम सिंह जी के यहाँ रहने की सुविधा बताई। बनजारे बलराम जी के घर आये और रात्रि में रहने के लिये अपनी इच्छा प्रकट की। तब बलराम सिंह जी ने बनजारों को विनम्र शब्दों से कहा कि आप बड़े आराम से रहें। हमारे यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं है। उनको जगह बता दी गई और बनजारों ने वहाँ घोड़े बाँध दिये और उनके घोड़ों के लिये घास-दाना दे दिया गया और बनजारों को भोजन आदि दिया गया। भोजन कर लेने के पश्चात् उन बनजारों ने जब महाराज जी का सत्संग सुना तो बड़े प्रसन्न हुये और परस्पर कहने लगे कि आज का दिन तो बहुत ही भाग्य से मिला है। जोकि परमात्मा रूप महापुरुष के दर्शनों का लाभ हुआ है। ऐसे महान् पुरुषों के दर्शन अनेक जन्मों के पुण्य जब एकत्रित होते हैं तब जाकर कहीं प्राप्त होते हैं। जैसी इनकी महिमा हमने पहले सुनी आज वह सब आँखों से देखकर हमारा जन्म सफल हुआ। इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करते रात्रि व्यतीत हुई। प्रातःकाल उठे, शौचादि से निवृत्त होकर महाराज जी के चरणों में फिर उपस्थित हुये। आपका अमृतोपदेश श्रवण करते रहे और इस प्रकार आपका सदुपदेश सुनने के लिये वह बनजारे कई दिन तक ठहरे रहे और आपसे बार-बार गुरु-दीक्षा लेने के लिये प्रार्थना करते रहे। इन व्यापारियों का दृढ़-प्रेम देखकर आपने गुरु-दीक्षा

देकर इनको अनेकों धार्मिक शिक्षाएँ दीं और तीनों सन्ध्या करने का उपदेश आपने उन्हें दिया। कहा कि प्रातःकाल ब्रह्मवेदी का पाठ और मध्याह्न के बाद असुर-निकन्द रामायणी का और रात्रि को सन्ध्या आरती का। तीनों पाठ नियम से करते रहना। इनके नित्य-प्रति करने से किसी स्थान व किसी देश में भी तुमको किसी प्रकार का भय या विघ्न उपस्थित नहीं होगा। वह बनजारे आपके उपदेश को ग्रहण करके और आपकी आज्ञा लेकर आगे चल दिये। इस प्रकार देश देशान्तर में अपना व्यापार करते घूमते रहते थे और आपकी आज्ञा का पालन नियमपूर्वक करते रहते थे। कहीं से दो चोर घोड़ों को चुराने के लिये बंजारों के पीछे लग गये। रात्रि के समय वे दोनों चोर घोड़ों के बीच में छिपकर बैठ गये और सोचा कि बंजारों के सो जाने पर घोड़े ले जायेंगे। जब सन्ध्या आरती का समय हुआ तो बनजारों ने सन्ध्या आरती पढ़नी आरम्भ कर दी। वह आरती करते-करते घोड़ों के चारों ओर एक बड़ा मजबूत किला बन गया। तब चोर घबराये और परस्पर (आपस में) कहने लगे कि अब यहाँ से कैसे निकला जाय। जब प्रातः ब्रह्ममुहूर्त का समय हुआ तब बनजारों ने ब्रह्मवेदी का पाठ आरंभ किया ब्रह्मवेदी का पाठ सम्पूर्ण होते ही वह किला भी वहाँ से बिल्कुल लोप हो गया। इसी प्रकार कई दिनों तक यहां कार्यक्रम चलता रहा। वे चोर रात्रि को किले में बन्द हो जाते और प्रातः किला हट जाने और बंजारों के जग जाने के कारण भाग जाते। एक दिन दैवयोग से उन बनजारों को सोते-सोते देर हो गई, सूर्य उदय हो गया। ब्रह्मवेदी का पाठ न होने के कारण वे चोर भीतर ही घिरे रहे। जब बनजारे ब्रह्मवेदी कर घोड़ों के बीच गये तो उन्होंने देखा दो आदमी घोड़ों के बीच छुपे बैठे हैं। बनजारों ने उनसे पूछा कि तुम कौन हो? तब उन्होंने बताया कि हम चोर हैं। बनजारे बोले कि यदि चोर हो तो यहाँ क्यों बैठे हो? उन चोरों ने सब वृतान्त सच-सच बता दिया कि हम तो बहुत दिनों से आपके घोड़े चुराने के पीछे लगे हुए हैं। जब हम रात्रि होने पर घोड़ों के बीच आकर छुप जाते और सोचते कि अर्ध-रात्रि में घोड़े खोलेंगे। परन्तु आप जो सायंकाल मंत्र आदि पढ़ते थे उससे चारों ओर एक बहुत भारी किला बन जाता था जिससे हम बाहर निकलने में असमर्थ रहते। प्रातःकाल आपके पाठ करने

से वह किला दूर हो जाता था। उजाले के होने से और आपके डर से हम यहाँ से भाग जाते। लोभ के कारण हम हट भी नहीं सके। अतः नित्यप्रति इस प्रकार बन्द होते रहे। आज तुमने यह सुबह का पाठ देरी से किया इसलिये यह दीवार भी देरी से हटी। उजाले की अधिकता से हम भाग नहीं सके। हमने सारा वृतान्त आपको सही-सही सुना दिया अब आपकी जो इच्छा हो सो आप कर सकते हैं। आज से हम यह निन्दनीय कर्म भी नहीं करेंगे। तब बनजारों ने उन चोरों को छोड़ दिया और कहा कि, जिस महापुरुष की कृपा हमारे ऊपर है। तुम्हें भी उनकी शरण अवश्य लेनी चाहिये। इससे तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। उन चोरों ने महाराज जी का स्थानादि पूछकर छुड़ानी धाम में श्री आचार्य जी के शरण में पहुँच कर प्रणाम करके हाथ जोड़कर अपने कर्मों का वर्णन श्री आचार्य जी को सुनाया तथा अपने उद्धार के लिए प्रार्थना की। श्री सद्‌गुरु जी ने इस प्रकार कहा—

चौरासी की चाल क्या, मो सेती सुन लेह।
चोरी जारी करत हैं, जाके मोंहडे खेह॥

उधर बनजारे घूमते-घूमते सौराष्ट्र देश के जामनगर शहर से कुछ आगे चले जा रहे थे। उधर एक और वैष्णव सम्प्रदाय के साधु द्वारिकापुरी की यात्रा को जा रहे थे। किसी जंगल में ठहरे हुये थे। उन बनजारों के समीप ही वह साधु भी ठहर गये। रात्रि के समय जब बनजारों ने महाराज जी की अमृतमयी वाणी सन्ध्या-आरती का पाठ किया तो वे वैरागी महात्मा बड़े ध्यान से सुनते रहे। फिर प्रातः को ब्रह्मवेदी का पाठ उसी तन्मयता से गाया तब उस महात्मा को प्रतीत हुआ कि यह वाणी तो किसी उच्चकोटि के महापुरुष की है या किसी मनुष्य-शरीरधारी साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर ही की हो सकती है। सूर्योदय के पश्चात् वह महात्मा बनजारों के पास आये। बनजारों ने उनका आदर पूर्वक सत्कार किया। तत्पश्चात् महात्मा जी ने पूछा कि प्रेमी बनजारों तुम तो भगवान् के भक्त मालूम होते हो। किन्तु यह जो पाठ सुबह-सायं तुमने किया है यह तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुआ है? तब बनजारों ने कहा कि स्वामी जी यह तो हमारे

सद्गुरु देव जी की वाणी है। तब महात्मा जी ने पूछा कि भक्तो! वह सद्गुरु तुम्हारे कौन हैं? उनका नाम क्या है? और उनका निवास-स्थान कहाँ हैं? तब उन बनजारों ने कहा कि हमारे सद्गुरु देव जी तो श्री गरीबाचार्य जी महाराज हैं, लोग उनको गरीबदास जी के नाम से पुकारते हैं। वह हरियाणा देश के झझर जिले में जो देहली से ३० मील के लगभग पश्चिम में पड़ता है—वहाँ छुड़ानी नाम के गाँव में रहते हैं। यह सुनकर उन महात्मा जी के हृदय में आपके प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी और उनके दर्शन करने को मन चाहने लगा। उन्होंने विचार किया कि जिनकी रची द्वारिकापुरी के दर्शन करने मैं जा रहा हूँ वही तो एक महापुरुष के रूप में हैं, जो उस हरियाना प्रान्त में प्रकट हुये हैं। मैं इस कृत्रिम पुरी को न जाकर उन साक्षात् श्री श्रीकृष्ण रूपी महापुरुष के दर्शन क्यों न करूँ। वहाँ से देहली की ओर मुख फेर लिया और चल पड़े। चलते-चलते पूछते-पूछते वे महात्मा छुड़ानी धाम में पहुँच गये। जब आप श्री आचार्य जी के समीप पहुँचे तो आपको समीप आते देख महाराज जी ने पहले ही कह दिया कि महात्मा जी तुमने बहुत गलती की क्योंकि द्वारिका के बिलकुल पास पहुँचकर श्री द्वारिकाधीश के दर्शन बिना किये ही इतनी दूर पीछे हट जाये। आप यदि श्रीद्वारिकाजी की यात्रा कर आते तो अच्छा था। १०-१५ दिन और अधिक लग जाते, हम तो यहाँ हीं थे फिर भी मिल जाते। इतनी जल्दी भी क्या थी? आपके यह वचन सुनते ही उन महात्मा के हृदय में अति प्रेम-रूपी वायु ने अज्ञानरूपी बादलों को दूर कर दिया और कहने लगे कि हे गुरुदेव मैं द्वारिका जाकर क्या करता। जब आप स्वयं ही द्वारिकाधीश यहाँ पर विराजमान हो तो वहाँ जाकर मैं करता ही क्या? इस प्रकार कहकर वह महात्मा गुरुदेव के चरणों में लोट गये और फूट-फूट कर रोने लगे। तब गुरुदेव ने उनके सिर पर अपना कर-कमल रखा और उनको उठा कर अपने हृदय से लगा लिया और कहा कि तुम तो हमारी आत्मा हो। तुम्हारे इस प्रेम ने तुम्हारे हृदय के अज्ञानरूपी मेघों को दूर कर दिया। जैसा कि आपने अपनी वाणी में कहा है—

ज्यौं सूरज के आगे बदरा, ऐसे कर्म छयारे।
प्रेम की पवन करे चित्त मज्जन, झलके तेज न्यारे।

जैसे सूर्य के ऊपर बादल आ जाने से सूर्य का प्रकाश ढक जाता है उसी प्रकार आत्मा को कर्मरूपी बादल ढक लेते हैं। जैसे वायु द्वारा वह सूर्य के आगे आये हुये बादल विनष्ट हो जाते हैं वैसे ही आत्मारूपी सूर्य के आगे जो कर्मरूपी बादल हैं वह प्रेमरूपी वायु से नाश हो जाते हैं। सूर्य की तरह आत्म-प्रकाश हो जाता है एवं आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है। इस प्रकार उन महात्मा के हृदय में जो प्रेम उत्पन्न हुआ उस प्रेम ने उनके सम्पूर्ण कर्मरूपी बादल विनष्ट कर दिये। अन्तःकरण शुद्ध हो गया तो श्रीआचार्य जी उनको साक्षात् श्रीकृष्णरूप ही दिखने लगे। तब महाराज ने उनको आत्मसाक्षात्कार हुआ देखकर उनका नाम आत्माराम ही रख दिया। ऐसे उत्तम अधिकारी के लिये अधिक उपदेश की आवश्यकता नहीं रहती। वह तो सम्मुख होते ही कृतकृत्य हो जाता है। जैसे कि तुलसीकृत रामायण में भगवान् राम भिलनी के प्रति कहते हैं कि—

मम दर्शन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥

भगवान् कहते हैं कि जिस जीव को मेरे दर्शन हो जाते हैं वह अपने स्वरूप (ब्रह्म) को स्वाभाविक ही प्राप्त हो जाता है। यह मेरे दर्शनों का अनुपम फल है। बस इसी प्रकार गरीबाचार्य जी के दर्शनमात्र से वह महात्मा अपने आत्मस्वरूप में मग्न हो गये। बाह्य पदार्थों की उनको सुध ही नहीं रही। हर समय अपनी आत्मा में ही मग्न रहने लगे। निर्भय होकर इस पृथ्वी में विचरण करते हुये टांकड़ी ग्राम जि. महिन्दर गढ़ में रहे इन की शाखा के कई एक मकान राजस्थान में हैं।

॥स्वामी ठण्डीराम॥

स्वामी ठण्डीराम सद्गुरु जी की शरण में आये। उन्होंने आपके शिष्य बनने का अपने मन में विचार कर लिया था। एक दिन ठण्डीराम जी ने आपसे प्रार्थना की कि महाराज जी मेरे लिए भी कोई सेवा बताओ। मैं भी सेवा करना चाहता हूँ। तब महाराज जी ने उसे कह दिया कि तुम खेत में जाकर खेत की रखवाली करो। महाराज जी की आज्ञा होते ही वे उठकर सीधे खेत में पहुँच गये और वहाँ खेत की रखवाली करने लगे। लौटकर

भोजन करने के लिए भी नहीं आये। जब तीन दिन व्यतीत हो चुके तब सद्‌गुरु जी खेत में कुछ शिष्यों सहित गये। जाकर देखा तो वह तो मचान पर बैठे हैं और सद्‌गुरु जी की वाणी के भजन गा रहे हैं। सद्‌गुरु जी को देख कर नीचे उतर दण्डवत्-प्रणाम किया। महाराज जी ने पूछा कि तू तो भोजन करने घर पर तीन दिन से नहीं आया। भोजन कहाँ पाया? तब उसने नम्रतापूर्वक कहा—गुरुदेव आपने मुझे खेत की रखवाली करने की आज्ञा दी थी; खाने पीने को आज्ञा नहीं दी थी। इसलिए मैंने कुछ भी नहीं खाया। यदि आप आज्ञा देते तो मैं आ जाता। आपने खेत में आने की आज्ञा दी तो मैं यहाँ आ गया। उनकी ऐसी निष्ठा देखकर जगद्‌गुरु बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि यह तो वचन का पालन करने वाला है। इसकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो गई है। इसलिए आज से इसका नाम ठण्डीराम होगा और उसे कहा कि अब तेरे को किसी सेवा कार्य में नियुक्त नहीं किया जायेगा। क्योंकि तेरा अन्तःकरण तो इस तीन दिन की निष्काम सेवा से शुद्ध हो गया। तब ठण्डीराम जी ने प्रार्थना की कि सद्‌गुरुदेव जी मैं किधर को जाऊँ? तब आपने कहा कि जिधर को तेरा मुख है उधर ही को जा। उस समय उसका उत्तर दिशा की ओर मुख था, उधर को ही चल पड़ा और उसने मन में संकल्प किया कि चलो चलकर उत्तराखण्ड में भजन करेंगे। चलते-चलते जिला मेरठ जमुना के किनारे एक बोढ़ा ग्राम है (जो कि गूजरों का है) वहाँ आपको उन गूजरों ने रोक लिया। जब भी आप चलना चाहते थे तो वहाँ के प्रेमी आपको अनेक प्रार्थना करके रोक लेते थे। अन्त में उन प्रेमियों की प्रेम-रूपी जंजीर में बन्ध कर आपको वहाँ रहना पड़ा। आपके लिए वहाँ गाँव से बाहर कुटिया बना दी थी। आप वहाँ रहने लगे। उन लोगों के सम्पूर्ण व्यसन शराब, माँस, हुक्का, तम्बाकू, चोरी-जारी आदि आपने दूर करवा दिये। जो कि आज तक भी उन घरों में कोई व्यक्ति हुक्के तक को नहीं छूता। आपकी कुटिया अभी तक उस गाँव में है। वहाँ के लोग प्रत्येक वर्ष श्री छुड़ानी धाम के मेले पर कोठी स्वामी दयाल दास में आते हैं जिसने आपकी कुटिया के लिये जमीन दी थी उससे किसी दूसरे गाँव वालों से लड़ाई में एक आदमी मर गया था जिसके कारण उस आदमी को फाँसी का हुक्म हो गया था। इन दिनों में

ही आप बोढ़ा में आये थे। उस खूनी व्यक्ति के परिवार वाले आपके पास आकर बहुत रोये तब आपने कहा कि आज से तम्बाकू आदि दुर्व्यसनों का त्याग कर दोगे तो हम सद्‌गुरु जी की प्रार्थना करके उसको फाँसी से छुड़ा लेंगे। उन सब लोगों ने आपकी बात स्वीकार कर ली। तब आपने कहा कि तुम अपील करो वह पहली ही तारीख में निर्दोष होकर घर आ जायेगा। ऐसा ही हुआ। जब वह छूटकर अपने गाँव में आया उसी दिन आपकी कुटिया बनानी आरम्भ कर दी। आपके इन्कार करने पर भी कुटिया बना ही दी गयी। इसी घटना को देखकर लोगों की आपके ऊपर अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ने लगी। बोढ़ा गाँव वाले गूजरों की एक दूसरे ग्राम वाले मुसलमानों के साथ बहुत लाग-डाट थी। ये मुसलमान संख्या में बहुत अधिक थे और गूजरों का गाँव छोटा सा ही था। एक दिन सब मुसलमानों ने मिलकर बोढ़ा गाँव पर चढ़ाई कर दी। जब मुसलमान गाँव से थोड़ी ही दूर रह गये तब इन लोगों को पता चला परन्तु क्या करें यहाँ तो संख्या बहुत थोड़ी थी। मुसलमान हजारों की संख्या में धूल उड़ाते हुए चले आ रहे थे। मुसलमानों के साथ मुकाबला करने के लिए कोई उपाय न सूझा। जब व्यक्ति को सहारा नहीं सूझता तो वह परमात्मा या परमात्मा के प्यारे महापुरुषों की शरण में जाता है और वहाँ से इसको सहायता भी मिल जाती है। इन ग्रामवासियों के भी एक ही यह महापुरुष सहारा थे। घबराये हुए सबने आकर महात्मा जी से प्रार्थना की कि स्वामी जी त्राहि-त्राहि हमारी रक्षा करो। आपने कहा कि क्या बात है क्यों इतने घबराये हुए हो। तब सबने एक स्वर में होकर कहा कि भगवन् यह समीप में ही मुसलमान हमारे ऊपर चढ़ाई करके आ गये हैं। ये तो हमें बाल-बच्चों सहित मार डालेंगे। आपके बिना इस समय हमारी रक्षा करने वाला कोई नहीं। तब आप एकदम खड़े हो गये। जल की चिप्पी हाथ में लेकर कहने लगे तुम यहाँ बैठो मैं अभी आता हूँ। आपने वहाँ से ही मंगलाचरण का पाठ करते हुए पानी के छींटे मारने आरम्भ किये। उनके छींटों से ही उन मुसलमानों को यह प्रतीत होने लगा कि सामने से बहुत भारी सशस्त्र सेना आगे बढ़ी आ रही है। यह देख शत्रुओं में भगदड़ मच गई। उनके पैरों की जूतियाँ निकल गईं और अपने वस्त्र सँभालते हुए एक दूसरे से आगे

भागने का प्रयत्न करने लगे। हाथों के जो अस्त्र थे सब डर के मारे छूट गये। उन सबको भगाकर आप अपनी कुटिया पर लौट आये और सब लोगों से कहा कि जाओ वे मुसलमान बहुत-सा सामान गिरा कर भाग गये हैं उसे उठा लाओ।

इसी प्रकार एक बार एक लड़का आपसे कहने लगा कि मुझे आप अपना शिष्य बना लो। परन्तु आपने उसे इन्कार कर दिया। मना करने पर भी उसने आप का पीछा छोड़ा ही नहीं फिर भी अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करने लगा। उससे पिण्ड छुड़ाने के लिये आप गढ़मुक्तेश्वर गंगा-स्नान के लिये चल पड़े। वह भी आपके पीछे चल पड़ा और रास्ते में आपसे मिल गया। उसकी माता विधवा थी और वह लड़का भी उसका अकेला ही था। इसके अतिरिक्त उस विधवा का और कोई सहारा नहीं था। किसी ने उस लड़के की माता से आकर कह दिया कि तेरा पुत्र तो आज बाबा जी के साथ चला गया और अब वे बाबा उसको भी मूँड़ कर चेला बना लेंगे। ज्यों ही उसकी माता ने सुना, तुरन्त ही बाबा जी को गालियों की बौछार करनी शुरू कर दी। सिर पीटने लगी, बिलख-बिलख कर रोने लगी। सिर को दीवारों में और धरती पर पटक-पटक कर अपना बुरा हाल कर लिया और उसी के लिये पागल हो गयी। उधर तो उसकी माता ने अपना विचित्र रूप धारण कर ही लिया। इधर स्वामी जी गढ़मुक्तेश्वर में उस लड़के को कहने लगे कि तुम्हारी माता तो फूट-फूटकर रो रही है और मेरे को भी दोष लगा रही है। उसका तो बड़ा बुरा हाल हो रहा है। वह तुम्हारी ममता में पगली हो रही है और कह रही है कि बाबा जी तो उसके लड़के को भी उड़ाकर ले गये। तू अपने घर को जा। परन्तु वह लड़का माना ही नहीं। तब आप शीघ्र ही उसको साथ लेकर लौट आये। घर पर जाकर उसकी माता से कहा कि ले देख तेरा सुपुत्र आया है सँभाल। हमें झूठा दोष क्यों लगाती थी। हम तो इसको लेकर ही नहीं गये। इस शुभ समाचार से उस माई का हृदय गद्-गद् हो गया। वह बड़ी प्रसन्नता और शान्ति को प्राप्त हुई। इस प्रकार से आपकी बहुत-सी लीलायें देखने में आई।

॥रामसहाय॥

चौधरी रामसहाय बादली नामक ग्राम में क्षत्रिय जाट जाति में उत्पन्न हुए थे। ये चौबीस ग्रामों के चौधरी थे। इनके ग्राम के लोग प्रायः महाराज जी के पास आया-जाया करते थे। रामसहाय जी ने भी श्री सद्गुरु जी की अलौकिक लीलाओं एवं उनकी शक्ति की चर्चा सुनी। एक दिन उनकी भी इच्छा हुई कि मैं भी छुड़ानी चलकर गुरुजी के दर्शन कर आऊँ। एक दिन घोड़ी पर चढ़ कर चल दिये। परन्तु थोड़ा सा मार्ग व्यतीत करके उनके मन में आया कि मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा मैं भी तो उससे कम हस्ती का आदमी नहीं हूँ। ऐसा विचार करते ही उसने घोड़ी की लगाम वापस गाँव की ओर को ही मोड़ ली। फिर विचार किया कि अब छुड़ानी के समीप आ ही गये हैं देख ही लेना चाहिये कि उनका कैसा प्रचार है। इस प्रकार फिर छुड़ानी की तरफ को मुड़ चला। फिर विचार बदला और अपने गाँव को मुड़ चला। इस प्रकार कई बार इधर से उधर मुड़ा। अन्त में वह इन विचारों में उलट-पलट होते हुए छुड़ानी की ओर चल पड़ा। परन्तु अपने मन में फिर विचारता है कि वह सद्गुरु (गरीबदास) तो सभी को जो उनसे मिलने जाता है अपने पास चारपाई पर भी नहीं बैठाते, सभी को नीचे पृथ्वी पर ही बैठाते हैं।

इस प्रकार विचारों की शृंखला में बंधा हुआ वह छुड़ानी में पहुँच ही गया। घोड़ी को एक वृक्ष से बाँधकर महाराज जी के पास आया। महाराज जी ने उन्हें देखकर बड़े नम्रभाव से कहा! आइये चौधरी साहब! बैठिये!! चारपाई के सरहाने की ओर, महाराज जी ने जगह छोड़ दी और कहा आओ-आओ यहाँ बैठो। जब वह चारपाई पर बैठा तो महाराज जी ने कहा कि जिधर आप बैठते हैं यह तो पाऊतें हैं। रामसहाय जी ने भी देखा कि यह तो पाऊँत है फिर रामसहाय जी उसके दूसरी तरफ (सरहाने) बैठे। थोड़ी देर बैठने के बाद उन्हें उधर भी रस्सियाँ चुभने लगीं। वस्त्र उठाकर देखा तो दामन है। उसके दूसरी ओर कपड़ा उठाकर देखा तो उधर सरहाना था। इस प्रकार उसने कई बार इधर और कई बार उधर जगह बदली परन्तु जिधर बैठता उसे उधर ही पाऊँते दिखाई पड़ती। अन्त में

उनकी शक्ति देखकर उसे शरमिन्दा होना पड़ा और नीचे ही बैठना पड़ा। नीचे बैठा देख कर महाराज जी ने फिर उसे कहा कि चौधरी साहब ऊपर बैठो वहाँ क्यों बैठ गये। परन्तु बेचारे चौधरी साहब तो शर्म के मारे पृथ्वी में धँसने को तैयार थे। उसका उत्तर तो दूर रहा। उनकी ऊपर तक आँख ही नहीं उठी। महाराज जी तो लेट गये। उधर गुरु महाराज के लेटने पर राम सहाय जी उनके पैर दबाने लगे। पैर दबाते-दबाते उसके मन में फिर शंका हुई कि मैंने आकर बहुत बड़ी गलती की। मैं २४ गांवों का चौधरी और एक चारपाई पर बैठते-बैठते ही मेरी बेइज्जती हो गई। सभी मेरी हँसी उड़ाने लगेंगे। और फिर यह छोटे से गाँव का जमींदार होते हुये भी मैं इनके पैर दबा रहा हूँ। यह भी तो लज्जा की ही बात है। यदि कोई हमारे चौबीस गाँवों में से यहाँ आया तो मेरे को इनके पैर दबाते हुये देख कर अथवा नीचे बैठे देखकर क्या कहेगा? मुझे तो वह मूर्ख ही समझ बैठेगा। कहेगा कि यह इतना बड़ा चौधरी होते हुए भी इस छोटे से जागीरदार को साधु समझकर इसके पाँव दबा रहा है। इसी प्रकार की कल्पनाओं के अन्तर्गत होते हुये उसकी दृष्टि पलंग पर रुक गई। उसकी एक बाही (पट्टी) पर अपना सिर रख लिया। हाथों का कार्य भी प्रायः रूक सा ही गया। उसी समय महाराज जी ने अँगड़ाई ली। अँगड़ाई लेने से चौधरी की काल्पनिक तन्द्रा भंग हो गई। और जैसे ही उसकी दृष्टि पैरों की ओर गई वैसे ही उसने दो शेरों को महाराज जी के पैर चाटते हुए देखा। उनको देखते ही चौधरी रामसहाय के श्वांस रूक गये। महाराज जी तो उसके अन्तर की भावनाएँ ताड़ गये थे। इसी से कहने लगे कि चौधरी साहब आप तो चौबीसी गाँवों के चौधरी हैं इन शेरों को देखकर ही घबराने लगे? हम एक ही गाँव के जमींदार हैं हम तो इनसे घबराये नहीं फिर आप ही क्यों डरे? निरुत्तर हो रामसहाय जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, कि महाराज इन शेरों को देखकर तो मेरे प्राण निकले जा रहे हैं कृपा करके इन्हें यहाँ से हटाइये। इन भयानक जंगली जानवरों को देखकर मैं क्षणभर भी इनके सामने खड़ा रहनें में असमर्थ हूँ। आपकी शक्ति अपार है। आप अलौकिक प्रतिभावान् हैं। हम जैसे अज्ञानी, मूढ़ और अल्पबुद्धि जीव कैसे

समझने में समर्थ हो सकते हैं अपने ही पापों के कारण अपने ही मूर्ख स्वभाव के कारण मैंने अनेक प्रकार की निराधार कल्पनाएँ आपके प्रति की हैं। आप कृपालु हैं, दयालु हैं, अतः क्षमा कर दीजिये। इस प्रकार के रामसहाय ने अति दीन भाव से महाराज जी से क्षमा प्रार्थना की। उस चौधरी को इस प्रकार भय से कम्पित देखकर महाराज जी ने उन दोनों शेरों के सिर पर हाथ रखा और उन्हें जाने की आज्ञा दी। शेरों ने चरणों में शीश झुकाया और चल दिये। तब चौधरी के मन को शान्ति प्राप्त हुई। और उसी दिन से ये महाराज जी के सेवक बन गये। उसके पश्चात् कई बार सद्गुरु जी को बड़ी श्रद्धा के साथ अपने ग्राम में ले गये। उन्होंने सन्तों के रहने के लिये अपने गाँव में एक स्थान भी बनवाया था। जो अब जीर्ण-शीर्ण हालत को प्राप्त है। कुछ जमीन भी इसके साथ दी गई थी (उसकी छतरी के महन्तों ने बेच खाया)। उनके वंश के लोग अब तक भी छुड़ानी ग्राम में वार्षिक मेलों पर आते हैं।

॥स्मरण मात्र से मृत्यु टली॥

रोहतक के पास एक ग्राम में एक महाराज जी का भक्त कुएँ पर चड़स पकड़ रहा था। चड़स पकड़ते समय वह चड़स को अपनी ओर न खींच सका। चड़स की खींच पड़ने से उसके साथ ही कुएँ में गिर गया। कुएँ में वह सिर के बल गिरा। जाकर नाल में उसका सिर फँस गया। उधर ऊपर जो बैल हाँकने वाला था। उसने शोर मचाया तब आसपास के लोग सुनकर भागे हुये आये। लोगों के एकत्रित होने में दस-पन्द्रह मिनट लग गये। ऊपर से देखा तो कुएँ में कुछ दिखाई नहीं दिया। सबने सोचा कि अब तक तो वह मर गया होगा। यदि जीवित होता तो अब तक पानी के ऊपर आ जाता। उधर कुएँ में जब उस भक्त का सिर नाल में फँस गया तब उसने सोचा अब मैं किसी प्रकार भी बच नहीं सकता। उसी समय श्री गोसाँई साहिब, श्री गरीबदास जी महाराज की याद करने लगा। मन में निश्चय किया कि यदि मैं इस समय किसी प्रकार बच जाऊँ तो आपके पास श्री छुड़ानी धाम में आकर सम्पूर्ण जीवन आपका हल जोतकर सेवा करूँगा। इतनी प्रार्थना करते ही उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे उसकी

टाँगों को किसी ने ऊपर को खींचकर कुएँ की नाल से बाहर उसका सिर निकाल दिया और अपने चड़स को सिर पर रखकर वह पानी के ऊपर निकल आया। उधर से बाहर एकत्र लोगों के कुएँ में नीचे उतरने का प्रयत्न किया ही था कि तत्क्षण अन्दर से उसकी आवाज सुनाई दी कि मुझे कुएँ से बाहर निकालो। उसका शब्द सुन कर लोग आश्चर्य में पड़ गये और तुरन्त ही रस्सी नीचे फेंक दी। भक्त (वह मनुष्य जो कुएँ में गिरा था) रस्सी के सहारे ऊपर आ गया। लोग उससे पूछने लगे कि तू इतनी देर पानी में जीवित कैसे रहाः बिना साँस लिये मनुष्य इतनी देर तक जीवित रह ही नहीं सकता। तब उसने कहा कि मेरा सिर तो नीचे कुएँ की नाल में फँस गया था। मेरी करुण पुकार सुनकर महाराज जी ने ही मुझे इसमें से निकाला है अतः अब मैं उन्हीं के शरण में जाता हूँ। मेरा जीवन तो आज समाप्त हो चुका है। अब जो कुछ शेष है यह उन्हीं के प्रताप का फल है अतः उन्हीं का इस पर अब पूर्ण अधिकार है। मेरा तो कुछ नहीं। बस इतना वृत्तान्त सुनाकर वह सद्गुरु की सेवा के लिये छुड़ानी को चल पड़ा। वहाँ पहुँचते ही सद्गुरु जी को दण्डवत करने लगा और सामने खड़ा होकर दूर से ही उनकी अनेक प्रकार से स्तुति करने लगा। तब महाराज जी ने उसे आशीर्वाद दिया। इसके उपरान्त उसने अपनी सम्पूर्ण घटना सब सन्त-समाज के समक्ष सुनाई। और श्री सद्गुरु जी से विनम्र निवेदन किया कि मुझे इस जीवन भर आप अपनी चरण-सेवा में रहने की आज्ञा प्रदान करें और अपने हल-वाहक का कार्यभार सौंप कर मुझे अनुगृहीत करें। प्रार्थना स्वीकृत होने पर वह आनन्द-मंगल के साथ महाराज जी की सेवा में तन-मन-धन से जुट गया। यह भक्त जाति का चमार था इसी से अपने योग्य सेवा-हल जोतने का कार्य ही इसने महाराज जी से मांगा। उसकी इच्छित सेवा उसे मिल गई। इसी सेवा को करते-करते उस का अन्तःकरण पवित्रता और शुद्धता की सीमा पर जा पहुँचा। जो भी वचन उसके मुख से किसी के प्रति निकल जाता था गुरु महाराज की कृपा से सत्य हो जाता था। अतः सेवा धर्म सभी तपस्याओं से उत्तम कहा गया है।

इस विषय में श्री आचार्य जी स्वयं कहते हैं कि–

गरीब झिलमिल दीपक तेज के, दसों दिशा दरहाल।
सतगुरु की सेवा करे, पावे मुक्ता माल॥
मम सन्त सेवा करत हैं जो राजी,
बिछरैं न तासों अनन्त जाहैं बाजी॥
मम संत सेवा करे चरण चंपी,
अदि अनादं नहीं काल झंपी॥
साहिब सेवा माहिं है, वे प्रवाही दास।

इन शब्दों के अनुसार सद्गुरु की सेवा का अक्षय फल जानकर अपने जीवन का यही लाभ समझकर दिन-रात सेवा में तत्पर हो गया। जो सद्गुरु की सकाम सेवा करेगा उसको परमात्मा के धाम में अनंत तेजोमय दीपकों द्वारा सुसज्जित भवन में निवास मिलेगा। जिधर भी वह जायेगा उसी दिशा में उसे प्रकाश ही प्रकाश के दर्शन होंगे। प्रकाश ही परमात्मा का स्वरूप है और जो निष्काम भाव से सद्गुरु जी की सेवा में प्रवृत्त होगा उसको वह अटूट एकरस रहने वाला सुख मिलेगा एवं अपने निज स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होगा जिसके लिये श्री आचार्य जी इस प्रकार कथन करते हैं–

चार मुक्ति जहाँ चम्पी करहैं, माया हो रही दासी।
दास गरीब अभय पद परसै, मिलैं राम अविनाशी॥

अभय पद उसे कहते हैं जिसको प्राप्त कर लेने पर किसी प्रकार (जन्म-मृत्यु) का भय नहीं रहता। उस पद को ही अविनाशी एवं राम की प्राप्ति कहा जाता है। यही कैवल्य मोक्ष है।

॥ सन्तों के लिए भोजन ॥

एक दिन प्रातःकाल ही चार महात्मा कहीं से घूमते-फिरते महाराज जी के दर्शनों की इच्छा से आ पहुँचे। उनकी नमस्कार के उपरान्त महाराज जी ने उन महात्माओं को सत्कार पूर्वक बैठाया, उन्हें जलपान आदि कराया। तत्पश्चात् उन्हें विश्राम करने के लिए कहा। परन्तु उन

महात्माओं ने कहा कि हम लोग तो आगे "छारा" ग्राम को प्रस्थान करेंगे आज हमने वहीं जाने का संकल्प किया है। तिस पर गुरुदेव जी ने कहा कि भगवन् भोजन का प्रबन्ध कराये देते हैं उसके पश्चात् आप चले जाइये। उन महात्माओं ने आपके प्रेम वश भोजन करना स्वीकार तो कर लिया परन्तु मन में दुविधा ही रही। इधर महाराज जी भी अपने भण्डारी को भोजन के लिए कहकर बाहर घूमने चले गये। अब महात्मा लोगों ने विचार किया यदि भोजन करके चले तो धूप बढ़ने से गर्मी भी बढ़ जायेगी और मार्ग में चलना दूभर हो जायेगा। इस प्रकार से विचार कर वहाँ से चुपचाप चलते बने। कुछ देर बाद महाराज जी भी बाहर से आ गये। महात्मा लोगों को वहाँ न देखकर पूछा कि महात्मा लोग कहाँ गये हैं। उन्हें मालूम हुआ कि वे तो "छारा" ग्राम की ओर गये हैं। उन्होंने तुरन्त ही सेवक उनके पीछे भेजा और आज्ञा दी कि कहीं समीप में ही मिल जायें तो उन्हें लौटाकर ले आना। स्वयं भी दुःखित से हो पश्चात्ताप करने लगे कि आज बड़ा अनर्थ हुआ कि हमारे यहाँ से महापुरुष लोग भूखे चले गये। ऐसे लोगों के दर्शन बड़े पुण्यों से प्राप्त होते हैं। जिस द्वारे से संत लोग भूखे चले जाते हैं उस घर का सर्वस्व पुण्य उन सन्तों के साथ ही चला जाता है और उनका पाप उस द्वार पर ही छूट जाता है। इसलिए उन महात्माओं को खोज कर लाओ यदि कहीं मिल जायें तो। परन्तु वे लोग (महात्मा) काफी दूर निकल चुके थे। अतः शिष्यगण खाली हाथ लौट आये। तब आपने अपने मन में बहुत पश्चात्ताप किया कि देखो—हमारे कैसे भाग्य हैं कि जिसके यहाँ से अतिथि भूखे चले गये। अतिथि का निराश होकर जाना तो बहुत बुरा है। आपने कहा कि जो भोजन हमने उन महात्माओं के लिए बनाया था उसे हम भी ग्रहण नहीं करेंगे। यह किसी अतिथी को ही खिलायेंगे। अकस्मात् उसी क्षण काफी संख्या में विद्यार्थी आ गये। उन ब्रह्मचारी गणों (विद्यार्थीयों) ने कहा कि महाराज हम बहुत दूर से पैदल यात्रा करके आये हैं इसी से भूख बहुत सता रही है। अतः भोजन तैयार हो तो हमें करा दीजिये। उधर उनके भण्डारे में तो केवल चार मूर्त्तियों का ही भोजन तैयार था। आपने शिष्य धारीराम जी से कहा कि

उस भोजन को पर्दे के अन्दर रख दो और उसे परसना आरम्भ कर दो वही पूरा हो जायेगा। यह सुनकर धारीराम जी ने सब विद्यार्थियों को भोजन खिला दिया उनकी पूर्ण तृप्ति करा दी और दक्षिणा भी उन्हें दी। दक्षिणा लेकर विद्यार्थी प्रसन्नतापूर्वक विदा हुए।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा से विद्यार्थी बुलाये। उन्हें भोजन कराया तत्पश्चात् स्वयं भोजन किया। इसी प्रकार की शिक्षा आप अपने शिष्यों को भी दिया करते थे कि भूखों को भोजन कराओ। आपने अन्न देवता की दो आरती की हैं। इनमें अन्न देवता की अनेक प्रकार से स्तुति की है कि—

दास गरीब कहे दरवेशा, रोटी बाँटो सदा हमेशा॥

गरीब भूख्याँ भोजन देत हैं, कर्म जग जौनार।

सो गज फीलों चढ़त हैं, पालक कँध कहार॥

इस प्रकार से आपने अनेक स्थानों पर विभिन्न प्रकार से आदेश दिये हैं। अन्नदान आपने सब दानों से उत्तम बताया है।

॥ एक ब्राह्मण का गर्व हरण॥

एक समय सद्गुरु गरीबदास जी महाराज बरौणा ग्राम में गये हुए थे (जहाँ आपका विवाह हुआ था), बहुत से लोग आपके पास बैठे हुए थे तो इतने में इसी ग्राम का एक विद्वान् ब्राह्मण आया उसने आकर उन लोगों से पूछा, जो महाराज जी के पास बैठे थे कि यह जो सुन्दर लड़का शय्या पर बैठा है यह कौन है। उन लोगों ने कहा कि हमारे दामाद गरीबदास जी हैं जो छुड़ानी से आये हैं। यह सुनकर पण्डित जी ने अपने मन में विचार किया कि इसके नीचे सब से ऊँचा पलंग है तथा इसी के बराबर सिरहाने की ओर बैठना चाहिये। यह विचार कर पण्डित जी आगे बढ़े, लोगों ने पण्डित जी से कहा कि आप इधर आकर बैठें। परन्तु पण्डित जी सीधे महाराज जी के पलंग की ओर गए महाराज जी भी पण्डित जी के मन की बात को जान गये कि यह पण्डित अभिमान सहित हमारे सिरहाने बैठना चाहता है।

आज इसके अभिमान को जरूर दूर करना चाहिए। यह विचार कर महाराज जी ने पण्डित जी के लिए सिरहाने की ओर जगह छोड़ दी और कहा आइए पण्डित जी बैठिये। पण्डित ज्योंहीं बैठे त्योंहीं नीचे से चारपाई की दावन चुभने लगी, पण्डित जी ने समझा कि इधर तो सिरहाना नहीं है। पण्डित जी खड़े होकर दूसरी ओर जा बैठे। उधर भी वैसे ही दावन की रस्सियाँ चुभने लगीं। फिर कपड़ा उठाकर देखा कि इधर तो दावन है। पण्डित फिर खड़े हो गये तो महाराज जी ने कहा कि सिरहाना तो इधर है आप उधर बैठें। पंडित जी ने बैठने से पहले कपड़ा उठाकर देख लिया कि यही सिरहाना है यह निश्चय करके पण्डित जी बैठ गये। पुनः बैठते ही दावन चुभने लगी। पण्डित जी भी इसी प्रकार कभी इधर कभी उधर बैठे परन्तु बैठते ही दावन चुभने लगे। यह अलौकिक लीला देख कर पण्डित को बहुत आश्चर्य हुआ। अपने मन में विचार किया कि यह तो कोई शक्तिशाली पुरुष है। मैंने जो अभिमान वश अपराध किया है उसके लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ। आप दयालु हैं इसलिये मुझे क्षमा कीजिये अब मैं जान गया हूँ कि आप हम जैसे अभिमानियों का अभिमान दूर कर के कल्याण मार्ग दर्शाने के लिये ही मृत्यु-मण्डल में अवतरित हुए हैं।

आपको पहचानना भी हर किसी की सामर्थ्य से बाहर है कि जो आपको पहचान सके। क्योंकि आप अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य को गुप्त रखने के लिए साधारण व्यक्तियों की नाई ही व्यवहार करते हैं। इस प्रकार पण्डित जी ने महाराज जी को पहचान कर उनकी अनेक प्रकार से स्तुति की।

तत्पश्चात् श्री सद्गुरु जी ने पण्डित जी से कहा कि आप विद्वान हैं और ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हैं तथा लोगों को धर्म शिक्षा देने वाले आप ही हैं। जब आप लोगों में ही अभिमान, ईर्षा आदि दोष होंगे तो अन्य जनता पर आपका क्या प्रभाव पड़ेगा—एवं उनके दोष कैसे दूर होंगे। जो लोग समाज के मान्य होते हैं जिनको समाज उपदेशक एवं गुरु मानता है उनसे ही शिक्षा-ग्रहण करता है। उनसे ही समाज को सन्मार्ग का ज्ञान होता है। जो समाज के गुरु (उपदेशक) होते हैं। वे ही समाज को अच्छे

मार्ग पर ले जाते हैं। यदि उपदेशक, लोग ही मर्यादा को छोड़ देंगे तो उनके जो उपदेश हैं अर्थात् जिनको उपदेशक उपदेश देते हैं वे मर्यादा का पालन कैसे करेंगे। इसलिये हे पण्डित जी आप अपने अभिमान को छोड़ दीजिये। निरभिमान होकर निर्दावे जगत में रहो। अभिमानरहित व्यक्ति सदा सुखी रहता है। आपको गुण-ग्राही बनना चाहिए। गुण-ग्राही व्यक्ति हमेशा नम्र-स्वभाव वाले होते हैं। जैसे फलों से लदा हुआ वृक्ष बहुत ऊँची-ऊँची शाखाओं को नीचे की ओर झुका देता है। अर्थात् उस फल वाले वृक्ष में नम्रता आ जाती है। जैसे—

दास भाव जो हृदय होई, तापर बज्र परै नहीं कोई।

दास भाव है अगम अगाहा, दास भाव सा और न लाहा॥

साखी- गरीब दास भाव बिन बहु गये, रावण से रणधीर।

लंक बिलंका लुट गई, जम के परे जंजीर॥

अर्थात् जो व्यक्ति दासभाव से युक्त होता है अर्थात् नम्र होता है, उस पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती। जो व्यक्ति नम्र रहता है वह सदा नये गुणों की प्राप्ति करता है। देखिए अभिमानी व्यक्ति के कुछ हाथ नहीं लगता। जैसे रावणादि सब मारे गये। उनके कुछ हाथ नहीं लगा। इसलिये आप समाज के उपदेशक हैं। आप सब प्रकार के अभिमानादि दोषों को परित्याग कर दें जिससे समाज के प्राणी आपसे शिक्षा ले सकें। इस प्रकार महाराज जी के वचन सुन पण्डित जी बहुत प्रभावित हुए और सदा के लिए महाराज के अनुयायी बन गये तथा उनकी वाणी का पाठ नित्यप्रति करने लगे।

श्री महाराज जी ने जब पण्डित को अपनी शक्ति दिखाई थी तब कहा था कि आप किसी को भी न बताएँ। यदि बता देंगे तो हम आपके यहाँ फिर कभी नहीं आयेंगे। ऐसा कहने पर भी पण्डित जी ने और लोगों को बता दिया। ऐसा पता लगने पर श्री महाराज जी ने उस ग्राम में फिर आना-जाना छोड़ दिया और कभी भी उस गांव में गये नहीं। किन्तु पण्डित जी ने सदा के लिए महाराज की वाणी का पाठ करते हुए अपने जीवन का सुधार किया और जीवन भर भजन ध्यान किया।

॥ सन्त हरिदास जी ॥

संत हरिदास जी झाड़ौदा ग्राम में रहा करते थे। यह झाड़ौदा ग्राम बहादुर गढ़ से ३ किलो मीटर दूर नजफगढ़ जाने वाली सड़क पर है। संत हरिदास जी भगवान् के भजन-चिंतन में सारा ही समय व्यतीत करते थे तथा भजन पाठ द्वारा आपको कई सिद्धियाँ भी प्राप्त हो गई थीं। जब आपने श्री गरीबाचार्य जी की महिमा सुनी तो आपने उनकी परीक्षा लेने का विचार किया कि वे कितने बड़े सिद्ध हैं। यह सोचकर संत हरिदास जी ने अपनी सिद्धियों से महाराज जी को प्रभावित करने का प्रयत्न किया। परन्तु अनन्त समुद्र की थाह को कौन पा सकता है। यहाँ तो स्वयं त्रिलोकी नायक (स्वामी) जिनके आगे सिद्धियाँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं एवं जहाँ से सर्व सिद्धियों की उत्पत्ति होती है उनका अंत कौन पा सकता है। जब हरिदास जी की कोई भी सिद्धि सफल न हुई तो संत जी के मन में महाराज जी के प्रति अति श्रद्धा जागृत हुई।

तदनन्तर श्री छुड़ानी धाम मे आकर हरिदास जी ने सतगुरु जी के दर्शन किये और आपके अमृतमय उपदेशों को ग्रहण किया। आज तक आप अपने घर में ही रहते थे। महाराज जी का सत्संग होने से आपको उस ब्रह्मतत्व की प्राप्ति हुई जिस ब्रह्मतत्व की प्राप्ति के लिए ऋषि-मुनि एवं सन्त-महात्मा जन्म-जन्मान्तर प्रयत्न करते हैं तब कहीं उस ब्रह्मतत्व की प्राप्ति होती है। वही ब्रह्मतत्व आचार्य गुरुदेव की कृपा से हरिदास जी को क्षणमात्र के सत्संग एवं उपदेश से प्राप्त हो गया। क्योंकि इनका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्धता को प्राप्त हो चुका था। इसीलिए सतगुरु महाराज द्वारा प्रणव तथा हंस मंत्र के उपदेश का कानों के साथ सम्बन्ध होते ही आत्मसाक्षात्कार हो गया। क्योंकि आपके वचनों में वह शक्ति है कि जो व्यक्ति श्रद्धा सहित एक बार सुन ले तो उसको ब्रह्मज्ञान अवश्य ही हो जाता है। इस बात का विचारवान् पक्षपात से रहित व्यक्ति आपकी अमृतमयी वाणी का पाठ करने वाले भलीभाँति समझते हैं। अन्त में आपने अपने मुखारविन्द से कहा कि हरिदास वह परमात्मा तुम्हारे से दूर नहीं है तुम्हारे पास ही है यथा—

गरीब हरि में हरि के दास हैं दासन के हरि पास।

यह उपदेश सुनकर आप निर्द्वन्द्व हो गये तथा आत्म-चिंतन में लग गये और सतगुरु जी के पास आप हमेशा दर्शन करने आते रहते थे।

इस प्रकार आपने अपने जीवन को सुखमय व्यतीत किया। जब आप इस पंचभौतिक शरीर का त्याग करने लगे तो झाड़ौदा के बहुत से लोग एकत्रित होकर प्रार्थना करने लगे कि भगवन् हमें आपके दर्शन से बहुत लाभ है इसलिए आप हमें और कुछ समय तक दर्शन दें। यह लोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कह रहे थे। यह सुनकर उस समय आपने अपने अनुभव से यह शब्द उच्चारण किया।

हरिदास विरह पी बिना, दुख पावते दो नयन वे।

दिलके स्नेही दर्द वे ही, बिछुड़ता एक लाल वे।

इस प्रकार आपने विरह भरे शब्दों में श्री सतगुरु जी को कहा कि यह दुनिया अपने स्वार्थ के लिए प्रेम करती है। हरिदास जी कहते हैं कि मेरे दर्द को जानने वाले वही मेरे स्वामी हैं जिनके विरह में मेरे नेत्रों से आँसू निकल रहे हैं। वह पारब्रह्म परमेश्वर सतगुरु देव मेरे से बिछुड़ रहे हैं। इतना कहते ही जगद्गुरु जी ने उसी समय वहाँ प्रगट होकर हरिदास जी को दर्शन दिये तथा भक्त ने दर्शन करते ही अपने पंच भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया। महाराज जी हरिदास जी के भाई (जो कि हरिदास जी की तरह ही भजन पाठ में तल्लीन रहता था) को सान्त्वना देकर छुड़ानी धाम में वापिस आ गये। तत्पश्चात् उनके भाई तथा अन्य सेवकों ने हरिदास जी की समाधि बनवायी जो झाड़ौदा ग्राम में आज तक है और वहाँ हरिदास जी के नाम से मेला लगता है। सन्त हरीदास द्वारा उच्चारित वाणी की हस्त लिखित पुस्तक मेरे पास है। जिसमें उन्होंने सद्गुरु गरीबदास महाराज को अपना गुरु माना है। उस पुस्तक में से कुछ वाणी यहाँ पर दी जा रही है :—

सत् परमात्माय नमः श्री गुरु देवायः नमः

अथ बाबा श्री हरिदास जी (झड़ौदा वालों की वाणी लिखतं)

नमो नमो निज देवा, पूजौं आदि गणेशा,
मंगल रूप अमाना, हरदम जपौ हमेसा॥
सकल मनोरथ पूर्ण, ज्ञान ध्यान प्रवेसा,
रिद्धि सिद्धि दाता दानी करम भ्रम भै नेसा,
गण गंधर्व सब ध्यावैं, सहंस मुखी फुन सेसा,
कच्छ मच्छ कूरंभा, धौल धरण धर ध्याना,
चरण कमल पर वारी, अर्पण करौं प्राणा,
भाव भगति मोहे दिजै, कौल नयन निर्बाना,
हरस हरस गुण गावैं साधू दरस दिवाना,
जम जौरा नहीं चपै गणनायक गलताना
कल्प कलंदर बीना, मेटो आवन जाना
॥ प्रथमे संतों की महिमा लिखंत॥

चौपाई— नमो नमो गुरु देवा, आदि अंत मैं करिहौ सेवा॥१॥
नमो नमो सत् पुरुष कबीरा, जुगन जुगन मेटौ दुःख पीरा॥२॥
नमो नमो सुर नर मुनि ज्ञानी, हमरी भगति करौ प्रवानी॥३॥
नमो नमो सब संतन केरी, हमरी भौजल पार उतारौ बेरी॥४॥
नमो नमो सकल संतां, आदि अंत जो हूए मध्यंता॥५॥
नमो नमो ब्रह्मा स्यौ बिसनं, नमो नमो रामचंद और किसनं॥६॥
नमो नमो कारतग स्याम गणेसा नमो नमो नारद सारद सेसा॥७॥
नमो नमो आदि तोहि शक्ति, दिजै दान परम मोहि भगति॥८॥
नमो नमो तोहि अद्या, नमो नमो नौ नाथ चौरासी सिद्धा॥९॥
नमो नमो सावित्री लक्ष्मी गौरा हमरा थीर करो तुम भौरा॥१०॥
नमो नमो गरुड़ काग भुसंडा, तुम प्रसाद ज्ञान ध्यान प्रचण्डा॥११॥
नमो नमो ध्रुव प्रह्लादा, तुम प्रसाद गये बाद बिबादा॥१२॥

नमो नमो नानक और दादू, तुम प्रसाद बजे अनहद नादू॥१३॥
नमो नमो ब्यास बालमीका, भाव भगति दीजै मोहि टीका॥१४॥
नमो नमो पीपा रैदासा, तुम प्रसाद ब्रह्म प्रकाशा॥१५॥
नमो नमो सुखदेव जनक बदेहा, तुम प्रसाद मिटे सकल संअदेहा॥१६॥
नमो नमो जैदे और नामा तुम प्रसाद ब्रह्म पद जाना॥१७॥
नमोनमोबिशिष्ट विश्वामित्र ज्ञाना, तुम प्रसाद मिट्या आवनजाना॥१८॥
नमो नमो अमरीक हरि चन्दा, तुम प्रसाद मिटे दुःख द्वंदा॥१९॥
नमो नमो भरथर गोपी चंदा, तुम मिल्यां सब होये आनन्दा॥२०॥
नमो नमो बाजीद फरीदा, तुम प्रसाद मोहि रहै अकीदा॥२१॥
नमो नमो दत्तात्रे ज्ञाना, तुम प्रसाद मिटै आवन जाना॥२२॥

दोहा— संतन की फुल माल है, वरणो वित अनुमान।
हरिदास की बीनती, सुनियों संत सुजान॥२३॥

साखी—सतगुरु गुण भूलैं नहीं जै जुग जाहिं असंख।
गरीब दास के चरण की, धूर रमाऊँ नंक॥२४॥

चौपाई— नमो नमो गोरख अवधूता, तुम प्रसाद देखे अनभूता॥२५॥
नमो नमो सत पुरुष मुरारी, सकल व्यापी सुन अधारी॥२६॥
नमो नमो तोहि अलख अभेवा, सुर नर मुनि जन जपते देवा॥२७॥

दोहा— मैं आजिज तक अईया, तुम हो दीन दयाल।
केते पतित उधारिया। पल में किये निहाल॥२८॥

"अथ सतगुरु महिमा लिखतं"

साखी—सतगुरु कुं कुरबान जां, चरण कमल धरे आन।
भगल विद्या बाजीगरी, तू हीं खेल करै है॥१॥
कहने के गरीब तबीत कुल आलम के,
मंडल हरियाणे अवतार आन धरैं हैं॥२॥

कहां बुद्धि मेरी मैं सिफत करौं तेरी,
छोटे मुख बड़ी बात मोहिपै न कही जात,
तुमरी तो महिमा शेष नाग करै है॥३॥
आये दिल दानी लयाये परवानी,
छान्या दूध पानी नदी चन्द्रावती नगरी छुड़ानी,
कुदरत अवदाल ख्याल मेला आन भरै है॥४॥
थकत भये चहूं वेद षट शास्त्र न लहै भेद,
तुम्हरी तो महिमा परे सैं परे है॥५॥
थकत भये चहूँ वेद षट शास्त्र न लहे भेद,
तुमरी तो महिमा परै सैं परै है।
दिल्ली मंडल कठन जान, जहाँ नहीं भगति ज्ञान,
पाहन में कमल हरे, सद्गुरु तूं करै है॥६॥
आये वैई बिरज बाला, देखा हम रूप विशाला,
कहां छवि कहुं तेरी प्यारे, मर्द और मेहरी
भगति काज अवतार, आन सतगुरु तू धरै है॥७॥
लालन पति लाल सब हीरण सिर हीर है।
मथुरा मध्य भये कान्ह, अजुध्या में भये राम
चितघन चितानंद अवगति कबीर है॥८॥
दिल्ली अकबरा बाद लाहौर कूं लांघ जात,
गये तुम काबल देस, धारयो है जिंद भेस
रोटी ही की करी साट, दई पातसाही सात
तिमरलंग सीस हाथ, सतगुरु तूं धरै है।
गरकै है जिंद जमाल, नौ सेरवा कीये निहाल।
सुलतानी के फंद काट, गये हैं विलायत छाड़।
मारा है बाण असम्भ, त्यागी संहस सोलाह हुरंभ

चोला खवास का सतगुरु तू धरै है।
कांसी मध्य भये कबीर, तोरे हैं जम जंजीर,
अवगत अवनासी, धनपीरण सिर पीर है।
दादू पर भये दयाल, दिखलाया कुछ अजब ख्याल
मारी मुख पीक पान, खुले जहाँ परम् ध्यान।
दर से है कोटि भान बिन बाती बिन तेल दीपक एक जरै है।
कहा सिफत करूँ तेरी, गये वृंदावन फेरी।
भेटे तोहि धर्मदास काटी है, आन उास, अनहद में कियौ वास
खोटयौं सैं 'खरे आन सतगुरु तूं करै है।
कहां गुण कहुं तेरे कोटि कर्म काटे तैं मेरे
अगम-निगम देखे जोई सतगुरु सा दाता ना कोई।
हरिदास चेरा तेरा चारणा, तुम्हारा वृद्ध उचारणा।
आदि और अंत मध्य तुं ही उद्धार करै है॥१४॥

दोहा— सतगुरु को क्या दीजीए, कुछ नांही मेरा।
हरिदास की बीनती, आजिज जन तेरा॥१५॥

सवैया— ये ही रूप जो रावण मारे,
बांध समुद्र जो लंका ही तोरी।
तैंतीस कोटि की बंधि छुटावन
सुर्पनखा को जो नाक कटयौरी॥१॥
मभीछन नाथ सुनाथ किये हैं,
अमर करी तुम नारि मदोदरी,
कंस कुँ मारि सिंघारि किया है,
ग्वालनियों की जो दही लपोरी॥२॥
सुदामा दालिदर मोछ किये हैं,
द्रोपद सुता के जो चीर करोरी।

नरसिंह रूप धरयौ तुम स्वामी जी,
प्रह्लाद उवारे जरी जब होरी॥३॥
हिरणाकुश उदर विधांस कियो है,
चौर फिराय कै पीठ ठकोरी।
काशी कबीर भगल को जानत,
मोमन के घर धागाई जोरी॥४॥
दोनोई दीन हिवान दीवाने जो,
काजीर पंडित की मति बौरी।
त्रिसंखु कुं त्यार पार कियो तुम,
मघहर मेला जो अजब भरयौ री॥५॥
कलियुग की आदि बारह सदी की अंत है,
खेल खिलारी कुं आन करजौरी।
हरिदास गुलाम, गुलाम गुलाम है,
दीन की बीनती मानियों मोरी॥६॥
दास गरीब तबीब हैं मौले जो,
आन औतार छुड़ानी धरयौ री॥७॥

हरीदास जी की वाणी

सतगुरु के गुण कैसेई जानों,
कह न सकौं हीं कहा बुद्धि मेरी।
मादर-पिदर न जननी जाया,
उपजै न बिनसै परलै न फेरी॥१॥
आदि न अंत न मध्य न कोई,
कौन लखै अब यह गति तेरी।
वेद पुराण कुरान सैं आगैई,
कि बताई करिहै जो काबि बहुतेरी॥२॥

झीन सैं झीन से लखै प्रवीन जो,
सतगुरु पंथ बतावत सेरी।
धार अधे न लंब न कोई,
हिन्दू न तुर्का न मर्द न मिहरी॥३॥
माधूरी मूरति है मन मोहन,
सोलाह ही कला हैं सम्पूर्ण तेरी।
चाल कुलंग विहंगम बीना,
इस रूप के नाल परीति जो मेरी।
हरिदास की दाह मिटै दिल की,
जिब दास गरीब लखैं छवि तेरी॥४॥
दीनदयाल दया के सागर,
आदि अनादि जो कीरति।
भगति के काज औतार धरयौ तुम,
आनि कै मंडल कीन्ही है फेरी॥१॥
अगम अथाह अपार अनूप,
दूजा करै को सर्वर तेरी।
किए अघ पाप सुधाप न आई,
अब भौजल पार उतारौई बेरी॥२॥
औगन हारे में ना गुण कोई,
राखोगे लाज शरण जो मैं तेरी।
लोह कलोह मिल जब पारस कंचन,
जाति जो करत सुमेरी॥३॥
कुब्जा कुलीन का कूब सुधास्यौ,
पार करी तुम मालनि चेरी।
अजामेल भांडी गनिका संग रांडी,

पीवे शराब जो परीत न तेरी॥४॥
पावन अपावन वृद्ध बधावन करिहैं,
फिलाद सुनो पीया मेरी।
तुम बिन एक पलक न जीवां,
पतंग ज्यूं दाह करौं तन ढेरी॥५॥
हरिदास विलाप करै तुम्हरे दर,
दास गरीब लेहो सुध मेरी॥६॥
सूरस भाखन कहा तुझ देऊँ,
दाहक अग्नि जो तेज घमेरी।
चंद चिराग है नूरी जो बंदे ,
घटि है कला कदे होत घनेरी॥१॥
सूभर स्वरूप अनूप व्यापक,
उपमा ते परै है जो उपमा है तेरी
शीत उष्ण इसम सैं न्यारा
ज्ञानर ध्यान सैं परै परैरी॥२॥
सखी कह ने सकौ हौं अकह है
मेरा सांई बांझ कहे मैं नू पीर घनेरी।
ब्रिह भुवगंमडसै धिनराती,
नींद हराम सुगंधी जो तेरी॥३॥
जैसेई जल बिन मीन तलफै,
आंखीं जो लाई रही झड़ मेरी।
बिछड़ गये तुम हे मन मोहन,
सूरत सुभान लखौं कब तेरी॥४॥
हरिदास यह सांच सहे कोई गंजन
पीया प्ररिति लाये तुम तोरी।

दास गरीब तपै तन सीना,
देह दीदार मिटै दाह मेरी॥५॥
सखी विष खायै मरौं पुनि धायै मरौं,
बिरमाई गये मन बातन धोही।
कूकरही पुनि फूंक दई दिखलाइ
कै रूप लियो मन मोही॥१॥
दामनी दंत कुलाहल कण्ठ है,
शीश कटोरी जो गिर्द गतौई
चंद लिलाट पिताम्बर सोहे
नैनों के नाल लियो मन मोही॥२॥
नंक नगीना दिपै हेम सीना
मूंछ मुलायम मौले जो ये ही।
तालू कपोल कहूँ, छवि तेरी,
कहते हैं देह जो है तु बैदेही॥३॥
हंस की चाल निहाल करै,
ब्रह्मण्ड के त्यारन सद्गुरु ये ही।
देख दीदार रमे अद्य मेरे,
आतर देख ज्यूं रैन गये ही॥४॥
सब दुःख भंजन सभा के जो
मंडन कहां गये मेरे प्राणा स्नेही
हरिदास वियोग सा रोग नहीं कोई
काल बिना जो काल है ये ही
सास उसास बगै नीर दीर्गन
दास गरीब तजौं तन देही॥५॥

लाख कहो कोई एक कहो,
ना दिल में कुछ इह दिल मेरे।
बिरह की काती बगै दिन राती,
भूली सखी क्या अग्नि बखेरे॥१॥
बिरह की बेदन कहा तूं जानै,
चाटत रेही जो खांड कुं गेरे।
परीति की रीति छिपै न छिपाई,
मौन रहूं जो बहु दुःख मेरे॥२॥
वेद पुराण सबै पढ़ देखेई,
जंत्र मंत्र मालाई फेरे।
तीरथ व्रत किये बौह भांति,
एक नहीं कुछ काम॥३॥
मेले मुलक सभै फिर देखेई,
देवल, धामोहि माथाई फोरे।
शेष महेश गणेसर सेवा,
बनाये कै पूजन दौरे।
जात जनाजा सभै रंक राजा,
लाइ परीति उसै मति तोरे।
अरस चिराग बलै बिन बाती,
कोटि तिमर मिटि जात अंधेरे॥५॥
आदिरु अंत करौं मधि सेवा,
मादर पिदर जो हैं तू मेरे।
हरिदास रहे चरणौ चित चेरा,
दीन दयाल भरोसे तेरे।

और सभै संत हैं सिर ऊपर
दास गरीब बसै उर मेरे।
तू जो कहै मेरे बाग बगीचे,
बांई हवेली जो पौखरे मोहिं
ईह कुल इह कुल इह कुल मेरा,
पुत्र कलतर जो लड़के हैं जोई॥१॥
ना कोई तेरा ना तूं किसी दा,
आय बस्यौ दिन चार अनोई,
देख बिचार नहीं कोई नाल,
जो आगे गया अन पीछई होई॥२॥
यह जग पुपनाई रैन का जानौ,
धुंध के बादल बूंद नहोई।
भरमत भूल करौ कुछ सूल जो,
साँच मति मान खिलाफ है सोई॥३॥
पिण्ड ब्रह्मण्ड कुछ थिर न रहेगा,
छार मिलै सभै ईह तन देही।
बिसर गया कुल केवल कूं जो,
सिंह कूं भूलकै भेड़ क्यों होई॥४॥
गुरु प्रताप लखी यह बात जो
जीवन त्याग तूं हि आत्म सोई।
हरिदास यह हार परयौ तुम्हरे दर,
जो भावै अब किजेई सोई॥
दास गरीब मिले दिल मालिक,
नैनों के मंझ बसै निरमोही॥५॥

अपार-अपार-अपार-अपार है।
रक्त न पीत न स्याह न धौला।
तोल न मोल अछेद अभेद है,
अजब मुलायम है तुंहि मौला॥१॥
कच्छ मच्छ कूरंभ न सेष है,
धरण आकाश नहीं धौल बैला।
पाँच न तत्त नहीं गुण तीन हैं,
न कोई गुरु नहीं कोई चेला॥२॥
सात समुद्र पाट नहीं जहाँ,
न कोई तीरथ बरत न मेला।
कागज कलम नहीं जहाँ स्याही,
न कोई जीतन हार न चतेला॥३॥
आवन खाख न बाद न आतस,
पिण्ड ब्रह्मण्ड नहीं कुछ खेला॥४॥
काज़ी न पंड नहीं सिर डंड है,
जीव न जूनि नहीं पंथ गैला।
ब्रह्मा न वेद नहीं जहाँ वाणी,
बिसन विशाल न शंकर ज्ञानी।
कार्तग स्याम गणेश नहीं जहाँ,
सावित्री नहीं लक्ष्मी ही रार्नी॥५॥
गण गंधर्व न गौरि दिवानी,
सनक सनंदन न परवानी।
चंद न सूर नहीं जहाँ तारा,
सोलाह कला नहीं बारई बानी॥६॥

तेतीस कोटि न संहस अठासी,
सुर नर मुनिजन नारद ध्यानी।
सोम समुद्र जला बिंब की न्याई,
पूर रहया जल थल परवानी॥७॥
संख कलप अलफ तु आगै,
पल पल परलोई कोटि बिहांदी
दास गरीब परे सैं परे तूं,
कहां कहूँ कुछ कहिए न जांदी॥८॥
जुगन जुगन का दास तुम्हारा है,
आदि अनादि भक्ति धौक मांगी,
हरिदास अतीम की बीनतीं मानियौं,
मैं हौं गुलाम माता मेरी बांदी।
दिल के स्नेही दर्द येही,
बिछड़ गये वै लाल वे।
अंग भंग तन भई पीली,
कुछ नहीं हाल हवाल वे।
ग्यासी लगी मेरे महरम दी,
अंत रही सर भाल वे।
आजिज करौ मैं बीनती,
तुम सुनौ दीन दयाल बे।
दुनियां दीवानी गर्ज दी,
मेरा मरज बूझै कौन वे,
देखे बिना उस पीव के,
पल नहीं लगते नैन बे।

सुन्दर बदन दल कदल लोचन,
मेटि दुःख सुख दैन वे।
चंदा कमोदनि प्रीति यौं,
जल बिछड़ मरता मीन वे।
चातृग दुःख है स्वांति बिन,
चकबी बिछौड़े रैन वे।
दिल के स्नेही दर्द वे ही,
बिछुड़ता एक लाल वे।
हरिदास बिरह पी बिन,
दुःख पावतै दो नैन बे।

॥ काशीदास सिद्ध॥

एक काशीदास नाम के महात्मा थे जिन्होंने अपने आपको लोगों में सिद्ध प्रगट कर रखा था। वह कहा करते थे कि हमारे में बहुत सिद्धियाँ हैं। इस ढोंग से उसने बहुत से सेवक एवम् शिष्य बनाये हुए थे। देश-देशान्तर में वह घूमते थे॥ उसने ऐसा ढोंग रचा था कि उस ढोंग के द्वारा अनेक लोग उसके इस मायाजाल में फँस जाते थे। वह ढोंग क्या था कि काली मिर्च और नमक दोनों को बारीक पीसकर अपनी जीह्वा को खूब लगा लेते थे और मुख के आगे एक पीतल का बर्त्तन बाँध लिया करते। जिससे कि उस नमक-मिर्च के कारण उसके मुख में से लार (पानी) टपक कर उस पात्र में पड़ती रहती थीं, जो कोई पूछे कि यह बर्तन आपने मुख पै क्यों बांधा है तो वह कहा करते कि मेरे दसवें द्वार से अमृत झरता है। वह अमृत इस बर्तन में आता रहता है। जितनी भी मुख में से लार गिरती थीं इसको वह अपने शिष्यों को पिलाया करता था। और कहा करता था कि यह वह अमृत है जो अनेक साधन करने से योगियों को भी प्राप्त नहीं होता। वैसे ही मूढ़ उसके शिष्य थे जैसा कि गुरु। उसके शिष्य भी लोगों के आगे काशीदास के इस प्रकार अमृत झरने की प्रशंसा करके भोले-भाले

व्यक्तियों को फँसा लिया करते थे। उसने शिष्यों को खूब पट्टी पढ़ा रखी थी कि वह लोगों के आगे इसकी प्रशंसा किया करें। जहाँ कोई अज्ञानी जीव फँस जाता है वह उसी बात की एवम् उसी गुरु की पुष्टि करने लगता है। चाहे वह सत्य मार्ग पर चलता हो या असत्य पर। इस बात का विचार तो कोई बुद्धिमान् ही करता है। जिसके विचाररूपी नेत्र होगें वह ऐसे मिथ्याचार एवम् पाखण्ड के पीछे नहीं लगते परन्तु कलयुग का कुछ ऐसा ही प्रभाव है कि झूठ के पीछे जनता अधिक लगती है। आम लोग तो जिस महात्मा के पास बहुत से लोग आते-जाते हों या अधिक प्रशंसा करते हों इसी को सबसे बड़ा सिद्ध मान लेते हैं। जो सत्य वक्ता एवम् सत्य मार्ग पर चलाने वाले महापुरुष होते हैं वह अपनी प्रशंसा के लिये या अपने पीछे लोगों को लगाने के लिये किसी शिष्य को अपने आगे ऐजेन्ट नहीं बना कर रखते। ऐजेन्ट तो वही बनाते हैं जिनके अन्दर असलियत नहीं होती। ढोंग द्वारा ही लोगों से पूजा करवानी होती है। जैसे आजकल अनेक ऐसी घटनाएँ होती हैं। ऐसे अनेक व्यक्ति देखे जाते हैं। जो लोगों को अन्धेरे में डालते हैं। जो असली महापुरुष हैं वह किसी प्रकार का ढोंग नहीं रचते और लोग बड़ाई की इच्छा नहीं करते न उनको अधिक सती सेवक बनाने की इच्छा होती है। असली महापुरुषों के लक्षण श्री गरीबाचार्य जी ने अपनी अमृतमयी वाणी राग-बिलावल में इस प्रकार कहे हैं। यथा—

सोई साध अगाध है, आपा न सराहै।
पर निन्दा नहीं सँचरै, चुगली नहीं चाहै।।टेक॥
काम, क्रोध, तृष्णा नहीं, आसा नहीं राखै।
साँचे सैं परचा भया, जब कूड़ न भाखै॥१॥
एकै नजर निरंजना, सब ही घट देखै।
ऊच नीच अन्तर नहीं, सब एकै पेखै॥२॥
सोई साध शिरोमणि, जप तप उपकारी।
भूले कुँ उपदेश दे, दुर्लभ संसारी॥३॥
अक्ल यकीन पाठाये दे, भूले कुँ चेतैं।

सो साधू संसार में, हम बिरले भेटैं॥४॥
सूतक खौवें सत् कहैं, साचे सैं लावैं।
सो साधू सन्सार में, हम बिरले पावैं॥५॥
निरख-निरख पग धरत हैं, जीव हिंसा नाहीं।
चौरासी तारण तरण कूँ, आये जग माहीं॥६॥
इस सौदे कुँ ऊतरें, सौदागर सोई।
भरैं जहाज उतार दें, भवसागर लोई॥७॥
भेख धरें भागे फिरैं, बहुसाखी सीखैं।
जाने नहीं विवेक कूँ, खर के ज्यूँ रीकैं॥८॥
अरवाह मुकामा दरस है, जो अरस रहन्ता।
उन मुन में तारी लगी, जहाँ अजप जपन्ता॥९॥
सुन्न महल स्थान है, जहाँ अस्थिर डेरा।
दास गरीब सुभान है, सत् साहिब मेरा॥१०॥

इस प्रकार श्री आचार्य ने उन महापुरुषों का वर्णन किया है। जिन्होंने केवल परोपकार करना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझा है। और भूले हुये जीवों को उपदेश देकर जो सत्यमार्ग में लगाते हैं। आठ नम्बर की पंक्ति में उन ढौंगियों का वर्णन किया है जो भेष को धारण करके कुछ साखियाँ एवम् श्लोक कंठस्थ करके लोगों को ठगने के लिये भागे-भागे फिरते हैं। सत्य-असत्य का विचार तो उनको किंचित् मात्र भी नहीं है। उनके लिये महाराज जी ने गधे की उपाधि दी है कि जैसे गधा जोर से रेंगता हुआ भागता है। वैसे ही वह विचारहीन वेषधारी हैं। इसी प्रकार वह बनावटी सिद्ध काशीदास था। जब उसने श्री महाराज जी का नाम सुना तो वह इनको जीतने की इच्छा से श्री छुड़ानी धाम में आया। वहाँ बहुत बड़ी जमात के सहित वह महाराज जी के पास पहुँचा। श्री जगद्गुरुजी ने काशीदास को आते ही उसके ढोंग का भंडा-फोड़ इस साखी द्वारा कर दिया।

साखी- गरीब काशी दास कसो इस तन को, ज्यूं श्रवै अमी शराब।

बेदाना फल दूर है, नून मिर्च नहीं लाभ॥

हे, काशीदास इस ढोंग का परित्याग करके सत्य साधन (योग की खेचरी मुद्रा) करो। जिसे अमृत रूपी शराब कहिए। असली अमृत तत्त्व टपकने लगे (प्राप्त हो)। वह बिना दाने का एवं बिना गुठली का फल कहिए--आत्म तत्त्व तो दूर-से-दूर है। इस ढोंग द्वारा जो आप जिह्वा को नमक और मिर्च लगाकर प्राप्त बताते हैं, प्राप्त नहीं हो सकता। असली तत्त्व एवं आत्म साक्षात्कार तो साधन द्वारा ही हो सकता है। इसलिए आप साधन करो जिससे आपको उस अक्षय अमृत की प्राप्ति हो। यह अपने मुख की लार पिलाकर आप इन अपने सब सेवकों को और अपने जीव आत्मा को नरक कुण्डों में गिराओगे इसलिए इस ढोंग का परित्याग कर दो। जब काशीदास ने आपके इस प्रकार के वचन सुने और विचारा कि यह तो अन्तर्यामी कोई महान् योगी पुरुष हैं। जिन्होंने मेरे सम्पूर्ण ढोंग का भंडा-फोड़ कर दिया है। तब काशीदास आपके चरणों में पड़कर अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगा। और वह बर्त्तन जिसको वह हर समय मुख के आगे बाँधे रहता था खोलकर फेंक दिया और सद्गुरु जी से उच्च-कोटि के उपदेश को प्राप्त करके वह असली अमृततत्त्व की प्राप्ति के लिए साधन करने में लग गया। ऐसे-ऐसे अनेक ढोंगी पुरुषों को आपने सही मार्ग पर चलाया है। इसीलिए आपने अपनी वाणी के अन्दर अनेक प्रकरणों में बारम्बार बाह्य कुप्रथाओं का खुलें शब्दों में खंडन किया है। जो कि केवल रिवाज मात्र ही प्रतीत होती थीं। जिनमें असलियत का लेश भी नहीं है। अनभिज्ञ पुरुष जिसको आपके रहस्य को अच्छी प्रकार समझने का ज्ञान नहीं है, वह आपके ग्रंथ साहिब में पढ़कर यह कहने लगता है कि महाराज जी ने तो खंडन बहुत किया है। जो विद्वान् एवं बाणी के रहस्य को समझने वाले हैं। वह इस प्रकार नहीं कहते। वह तो आपके एक-एक शब्द को अमूल्य समझते हैं। क्योंकि असली साधन करने वाले महापुरुषों की आपने बहुत प्रशंसा की है और ढोंग की निन्दा की है। इस प्रकार के प्रकरण वेदों, पुराणों और शास्त्रों में भी अनेक जगह मिलते हैं। जहाँ कि आत्म ज्ञान की प्रशंसा है और कर्म उपासना की निन्दा की गई है। जहाँ केवल उपासना की प्रशंसा है। वहाँ कर्मों की निन्दा की गई है।

और भी अनेक शब्द स्तुति-निन्दा वाचक सभी आचार्यों ने कहे हैं। सभी आचार्य देश काल के अनुसार जीवों को सही मार्ग पर लाने के लिए स्तुति-निन्दा वाचक शब्दों का प्रयोग किया ही करते हैं। क्योंकि रोचक, भयानक और यथार्थ तीन प्रकार के शब्द सभी ग्रंथों में होते हैं। रोचक शब्दों द्वारा जीवों की प्रवृत्ति कराई जाती है। जैसे कि तीर्थों की महिमा, मूर्त्तिपूजा का महत्त्व यह रोचक शब्द कहे जाते हैं। भयानक शब्द जीवों को पाप कर्म की ओर से हटाने के लिए होते हैं। जैसे पुराणों में अनेक पापों का फल अनेक नरकों में भुगताया जाता है। यथार्थ शब्द उन जिज्ञासुओं के लिये कहे जाते हैं। जो आत्म-साक्षात्कार के अधिकारी हों। आत्म-ज्ञान के उपदेश के समय सम्पूर्ण (यज्ञ, तीर्थयात्रा, मूर्त्ति-पूजा) कर्म उपासनाओं का खंडन किया जाता है।

इसीलिए आपने खंडन के अनेक प्रकरण रखे हैं। क्योंकि जिस काल में आपने तेजोमय शरीर धारण किया था उस समय लोगों में केवल ढोंग मात्र ही रह गया था। एवम् रिवाज-मात्र ही धर्म आदि थे। इन केवल रिवाज मात्रों का आपने खंडन करके यथार्थ मार्ग का दिग्दर्शन जनता को करवाया। उस आपके सत्य उपदेश द्वारा बहुत लोगों ने कुरीतियों का परित्याग करके आपका अनुसरण किया।

॥ निर्गुण ब्रह्म विचार॥

एक समय धारीराम जी ने (जो कि महाराज जी के कुठारी तथा भंडारी थे, इनको अन्नपूर्णा सिद्ध थीं। इनके हाथों में इतनी शक्ति थी कि दो मूर्ति के भोजन से हजारों मूर्तियों का पेट भर देते थे।) एक भरी सभा में श्री सद्गुरु जी से प्रार्थना की कि सतगुरु देव जी हम सभी जिज्ञासु आपके चरणों में रहकर प्रति दिन ज्ञान गंगा में गोते लगाते रहते हैं। तब भी उपदेश सुनने के लिए मेरी जिज्ञासा बढ़ती ही जा रही है। सो मेरी प्रार्थना है कि आप कृपा करके मुझे निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दें। जिससे आपके मुखारविन्द से ब्रह्म उपदेश सुनकर मैं परमतृप्ति, (सुखनिधि) मुक्ति रूप आत्मनिष्ठा को प्राप्त कर सकूँ क्योंकि कर्म उपासना से तो मन का मल दोष ही दूर होता है और उपासना से चंचलता ही दूर होती है। अज्ञान की

निवृत्ति नहीं होती तथा संसार ज्यों का त्यों बना ही रहता है। जैसे—

दोहा- कर्म उपासन के करे, मिटे नहीं संसार।
चित्त चपलता जात है, सो हम लई निहार॥

(स्वामी ब्रह्मानन्दी जी)

अतः परमशक्ति के साधनभूत ब्रह्म उपदेश ही मुझे दें।

शिष्य की जिज्ञासा से युक्त एवं विनीत प्रार्थना सुनकर श्री सतगुरुदेव जी महाराज ने ब्रह्म उपदेश करने में साखी उच्चारण करके ब्रह्म उपदेश देना आरम्भ किया।

साखी- गरीब निर्गुण सरगुण एक है, दूजा भर्म विकार।
निर्गुण साहिब आप है, सरगुण संत विचार॥
गरीब निर्गुण सर्गुण सब कला, बहुरंगी बरियाम।
पिंड ब्रह्मंड पूरण पुरुष, अवगत रमता राम॥

श्री सद्गुरुदेव इस विषय को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि—

अवर्ण वर्ण तास के नाहीं विचरत है निर्दावै।
बिनहीं चरणों चलै चिदानन्द, बिन मुख बैन सुनावै॥
गरीब दास यह अकथ कहानी ज्यौं गूँगा गुड़ खावै॥

॥ निर्गुण ब्रह्म॥

सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में वास्तविक दृष्टि से विचार करने पर सगुण ब्रह्म की सत्ता निर्गुण ब्रह्म से अतिरिक्त नहीं ठहरती है, क्योंकि सगुण ब्रह्म को उपाधिविशिष्ट होने के नाते निर्गुण ब्रह्म से अतिरिक्त माना गया है वास्तव में सगुणब्रह्म निर्गुणब्रह्म से अतिरिक्त अलग नहीं है। उपाधि भेद युक्त ही दोनों में भेद भास रहा है। जैसे घट से सम्बद्ध आकाश (घटाकाश) महाकाश से भिन्न (अलग) नहीं है और न उसकी सत्ता ही महाकाश से अतिरिक्त है।

निर्गुणब्रह्म की सत्ता व्यापक अर्थात् सर्वत्र है और सगुण ब्रह्म की

सत्ता व्याप्य है। अर्थात् उससे कम देश में है। जैसे समुद्र के जल की सत्ता नदी-तालाब आदि के जल की अपेक्षा व्यापक है क्योंकि समुद्र का जल अपरिमित माप से बाहर है अर्थात् उसका कोई पारावार नहीं है और नदी आदि का जल परिमित (सीमा वाला) है। इसी प्रकार सगुण ब्रह्म की अपेक्षा निर्गुण ब्रह्म की सत्ता व्यापक है तथा अपरिछिन्न (बहुत) है। भगवान कृष्ण ने भी गीता में कहा है कि—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन !
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मेरे एक अंश ही में छिपा हुआ है, अर्थात् मैं ही स्वयं इस जगत् को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ।

अरध रूम पर सकल पसारा, ऐसा पूरण ब्रह्म हमारा।

(वाणी)

"पादोऽस्य विश्वाभूतानि" "सहस्रशीर्षा पुरुषः"

"सहस्रशीर्ष देवम्"

इत्यादि श्रुतियों से भी यही बात सिद्ध हो रही है कि जगत् की अपेक्षा ब्रह्म की सत्ता अधिक व्यापक है और सगुण ब्रह्म की अपेक्षा निर्गुण ब्रह्म की सत्ता व्यापक, अपरिमित एवं अथाह है।

इतना होने पर भी इन दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है, क्योंकि यह जो ऊपर भेद बतलाया गया है वह सब एकमात्र उपाधिकृत ही है, कारण कि सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म ये दोनों नाम भी तो मायाकल्पित ही हैं। जब तक माया का प्रभाव बना रहता है तभी तक यह व्यवहार होता है कि ब्रह्म निर्गुण है या सगुण परन्तु ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान होते ही सभी भेद समाप्त हो जाते हैं क्योंकि आचार्य देव कहते हैं कि—

निर्गुण सर्गुण दो धारा है, आदि राम तो न्यारा है।
निर्गुन सरगुन माया सन्तों, निर्गुन सरगुन माया।

ताते सतगुरु भेद लखाया॥टेक॥

निर्गुण कहूँ तो संसा व्यापै, सरगुण कहूं तो नेशा।
शब्द अतीत अमर अनरागी, समझौ शब्द संदेशा॥
निर्गुण सरगुण है दो धारा, इनमें बह्या सो बूडया।
दहने निर्गुण बावें सरगुण, दोहुँ कै मध हम ढूंड्या॥

दुष्यन्त एक व्यक्ति था—उसकी एक सोने की अंगूठी पानी के अन्दर गिर गयी, पानी गहरा था वह तैरना जानता था, उसने डुबकी लगाई उसको पानी में से अंगूठी और साथ-साथ एक हीरा भी मिल गया। वह दुष्यन्त अभी तक पानी में ही है तथा उसका सिर भी पानी में ही है। तब उस समय उसको हर्ष होने पर भी वह चिल्ला नहीं सकता है और कुछ कह भी नहीं सकता है। यदि बोलने का कुछ प्रयत्न करता भी है तो तुरन्त उसके मुँह में पानी भर जायेगा, जब तक वह पानी में है तब तक अपना अनुभव तथा हर्ष इन दोनों को शब्द द्वारा प्रगट नहीं कर सकता है, ऊपर ही आकर केवल वह बोल सकता है। इसी प्रकार जब तक हम माया के चक्कर में अथवा फेर में फँसे हुये हैं तभी तक ब्रह्म ऐसा है वैसा है अर्थात् निर्गुण है या सगुण है इस प्रकार कह सकते हैं। लेकिन स्वयं उसके अन्दर डुबकी लगायेंगे तो फिर बोलने का अवसर ही नहीं रह जाता है। श्रुति भी कहती है कि—

"यत्तददृश्यमग्राह्यमगोत्रमचक्षुः" इत्यादि।

अर्थात् वह ब्रह्म दृश्य नहीं, ग्राह्य नहीं, उसे इन्द्रियाँ भी नहीं, चक्षु भी नहीं, इत्यादिरूप से सबका ही निषेध किया गया है। तो फिर वहाँ वाणी कैसे जा सकती है। श्री कबीर साहिब जी स्वयं कहते हैं कि—उस निर्गुण ब्रह्म के तो

"रंग नहीं रूप नहीं नहीं वर्षा छाया।
निर्गुण निराकार तू चीर घुमाया॥"

श्री गरीबाचार्य जी बार-बार इसी वार्ता को कहते हैं कि—

ताता न सीरा न मीठा न खारी।

हिंदू न तुरका न पुरुषो न नारी॥

श्रुति भी कहती है–

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते"॥१॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥२॥

इस सभी श्रुतियों का अभिप्राय यही है कि जो स्वयं मन के द्वारा मनन अर्थात् चिन्तन के योग्य नहीं है बल्कि जिस ब्रह्म के द्वारा मन ही स्वयं सांसारिक वस्तुओं का विचार कर सकता है, वही निर्गुण ब्रह्म है अर्थात् उसी को मन आदि विषयों का अथवा मन के द्वारा प्रकाशित होने वाले विषयों का प्रकाशक समझो और यह जो ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय इन तीनों के भेद वाला, तथा वाणी आदि इन्द्रियों का विषय होने वाला जो उपास्य ब्रह्म है वह वास्तविक ब्रह्म नहीं है अर्थात् वह निर्गुण ब्रह्म नहीं है॥१॥

और जो ब्रह्म चक्षु के द्वारा नहीं देखा जा सकता है बल्कि चक्षु ही जिसके द्वारा अपने विषयों को देख पाते हैं उसी को तुम निर्गुण ब्रह्म जानो। और यह उपास्य जो ब्रह्म है वह वास्तव में ब्रह्म नहीं है।

इस प्रकार इन सब श्रुतियों का यही कहना है कि उस निर्गुण ब्रह्म को न तो चक्षु आदि इन्द्रियाँ ही देख सकती हैं और न मन ही उसके विषय में विचार-विमर्श कर सकता है, कारण कि वह निर्गुण ब्रह्म न तो रूप-रंग वाला है और न उसके अन्दर प्रमाण-प्रमाता-प्रमेय इस त्रिपुटी का ही भान होने वाला है। आचार्य श्री कहते हैं कि–

राम कैसा है राम जैसे कूँ तैसा है,

राम रंगीला है राम रक्त न पीला है।

ऐसी परिस्थिति में यहाँ पर यह शंका उत्पन्न होती है कि जब श्रुतियाँ बराबर प्रत्येक स्थल पर ब्रह्म का विसद रूप से वर्णन करती हुई आ रहीं हैं तब यह कैसे कहा जा सकता है कि श्रुति भी उसका वर्णन नहीं कर

सकतीं।

इसका उत्तर यही दिया गया कि किसी भी वस्तु का वर्णन सर्वत्र दो प्रकार से हुआ करता है, एक विधि-मुख से दूसरा निषेध-मुख से। देवदत्त बनारस गया हुआ है वह देवदत्त के बनारस जाने का वर्णन विधि-मुख से है और देवदत्त बनारस नहीं गया है ऐसी बात नहीं है अर्थात् बनारस गया है–यह देवदत्त के बनारस जाने का निषेधमुख से वर्णन है।

प्रकृति में श्रुति उस निर्गुणब्रह्म का निरूपण निषेधमुख से ही करती है न कि विधिमुख से। इसी बात को दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं। एक बहुत बड़े अच्छे खानदन के ब्राह्मण की लड़की थी। उसका विवाह हो चुका था। उसके कुछ दिनों बाद वह लड़की अपने पिता के घर गयी, साथ में उसके पतिदेव भी थे, दीपावली का त्योहार था। प्रायः ऐसा देखने में आता है कि जब कोई भी लड़की अपने पतिदेव के घर से अपने पिता के घर आती है उस समय गाँव की सहेलियाँ लड़की से मिलने-जुलने आया करतीं हैं। सहेलियाँ उसके आगमन को सुनकर झटपट वहाँ जमा हो गयीं और पूछने लगीं कि तुम्हारा पति कौन है उस समय उसने कोई भी जवाब नहीं दिया।

तब दूसरी सहेली कहती है क्या वे काली टोपी वाले तुम्हारे पति हैं उसने उत्तर दिया कि नहीं।

फिर तीसरी सहेली ने पूछा क्या वह मूँछों वाले है? उत्तर दिया कि नहीं।

फिर चौथी सहेली ने पूछा क्या सूट पैण्ट वाले हैं? उसने उत्तर दिया कि नहीं।

सबके बाद जब ठीक उसके पतिदेव की तरफ अंगुली करके पूछा कि क्या ये तुम्हारे पति हैं?

उसने तब कोई भी उत्तर नहीं दिया और बल्कि अपनी मुंडी (सिर) नीचे को झुका ली।

इसी प्रकार ब्रह्म के विषय में भी श्रुति ने कहा है–

अथाह नेति नेति।

और फिर स्वीकारोक्ति में श्रुति का वचन है–

सर्वं खल्विदं ब्रह्म

स्वामी ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि इसी के अनुसार श्री सतगुरु जी ने उसी सभा में विज्ञान स्तोत्र की रचना की है जैसे–

दोहा- विज्ञान स्तोत्र तब कियो तिस ही सभा मंझार।
निषेध कियो संसार को गिन-गिन श्रुति अनुसार॥

अर्थात्–सब श्रुतियों का प्रमाण देकर श्री महाराज जी ने धारी राम को समझाया। उसी विज्ञान स्तोत्र को यहाँ लिखते हैं।

॥ विज्ञान स्तोत्र॥

ॐ सब्दो स्वरूपी अनादो अगाधो

चलेवान[१] बाजी[२] जो उपज्या[३] पसारा।
निहचल निराकार निर्गुन अपारा॥१॥
उदासी अकासी[४] निवासी अलंकार[५] आया।
रूपो न रेखो न धूपो न छाया॥२॥
थानो[६] न मानो[७] न ज्ञानो न ध्यानो।
लिखता न बकता न रखता न वेदो पुरानो॥३॥
तालो[८] न ख्यालो[९] न मालो[१०] न मेला।

१. नाश होने वाला।
२. संसार।
३. उत्पन्न हुआ।
४. आकाश की भाँति सर्वत्र व्यापक।
५. सुशोभित।
६. स्थान (जगह)।
७. सत्कार (अभिमान)।
८. मृदङ्ग की ताल।
९. राग-विशेष (ध्यान)।
१०. सामग्री।

उपजै न बिनसै न गुरुवा न चेला॥४॥
काया न छाया न माया न मूलं।
साखा न बिरछो न पत्रो न फूलं॥५॥
बिरधो न बाला[११] विशाला[१२] न पीतं।
निहचल[१३] निराकार रहता प्रीतं॥६॥
कर्मों न भरमों न संका न डरनी[१४]।
लेखा अलेखा न करनी न भरनी॥७॥
जीवो न सीवो[१५] न कालो न जालो।
जौरा[१६] न जूनी न जम का न सालो[१७]॥८॥
देवी न दुर्गा न भैरों न भूता।
मसानी[१८] भवानी प्रानी न दूता[१९]॥९॥
धामो[२०] न द्वारा[२१] भंडारा पसारा न जाती।
देवा ने सेवा न पूजा न पाती[२२]॥१०॥
सेसो महेसो गनेसो न गौरा।
हंसा न बंसा न कमला[२३] न भौरा[२४]॥११॥

११. बालक।
१२. बड़ा।
१३. स्थिर क्रियारहित।
१४. भय।
१५. कल्याण (परमात्मा)।
१६. मृत्यु।
१७. दुख कष्ट।
१८. श्मशान में रहने वाली देवी।
१९. यमदूत (धूर्त पुरुष)।
२०. स्थान (बद्रीनारायण आदि चार धाम)।
२१. वैष्णव संप्रदाय के ५२ द्वारे।
२२. पूंजाम तुलसी आदि पत्र।
२३. कमल एक फूल जो तालाब में होता है।
२४. भँवर।

ब्रह्मा न वेदो न विष्णों न बानी।
निर्गुन निरालंभ[२५] रहता विनानी[२६]॥१२॥
कच्छो न मच्छो न धौलो न धरनी।
स्वर्गो न मिरतो पतालो न बरनी[२७]॥१३॥
नादो न बिंदो न पौनो न पानी।
अचल तत्त रहता निरालंभ जानी॥१४॥
कर्मों न धरमों न पापो न पुंनं।
सुंनं[२८] न बस्ती न बस्ती न सुंनं॥१५॥
माला सुहंगम[२९] बिहंगम[३०] अपारी[३१]।
अचल तत्त[३२] थीरं[३३] जो हलका न भारी॥१६॥
नादू[३४] न तूरा[३५] मुरली न संखा।
अभै[३६] तत्त अगहै[३७] अजब[३८] देश बंका[३९]॥१७॥
खाटा न मीठा न फीका न खारी।
हिंदु न तुरका न पुरुषो न नारी॥१८॥

---

२५. आश्रय से रहित।
२६. संसार को बनाने वाला (परमात्मा)।
२७. वर्णन-कथन।
२८. उजाड़-जंगल।
२९. सोहं (हंस-मंत्र)।
३०. पक्षी (या पक्षी जैसी चाल)।
३१. जिसका पार न पाया जा सके।
३२. तत्त्व (सार)।
३३. स्थिर।
३४. शंख (शंख की तरह बजाने का बाजा)।
३५. तुरी (योगियों के पास बजाने का वाद्य)।
३६. अभय (भय से रहित)।
३७. जो पकड़ाया न जा सके।
३८. अलौकिक।
३९. विचित्र।

खावै न पीवै न सोवै न जागै।
निरंतर निरासा[४०] अचल तत्त रागै[४१]॥१९॥
मौनी न वक्ता न कथता न ज्ञानं।
जापो न थापो[४२] न धरता न ध्यानं॥२०॥
लेवै न देवै न खेवै[४३] न खेवा[४४]।
हारै न जीतै निराकार देवा॥२१॥
सेली[४५] न सींगी न मुंद्रा न कानं।
करुवा[४६] न फरुवा[४७] न भेषो न बानं[४८]॥२२॥
ऐसा तत्त झीना[४९] पहुप[५०] गंध गलता[५१]।
ऊठै न बैठै नहीं पंथ चलता॥२३॥
कुरानो पुरानो नहीं साख[५२] चरचा।
मारै न त्यारै[५३] नहीं प्रान परचा[५४]॥२४॥
स्वांतो[५५] न सीपो[५६] न हंसा न मोती।

---

४०. आशा से रहित।
४१. प्रेम।
४२. स्थापित।
४३. नामरूपी नौका में बैठाकर संसार से पार करना।
४४. नौका चलाने वाला (गुरु, परमात्मा)।
४५. सेली सिंगी नाथ संप्रदाय के चिह्न हैं जो गले में पहने जाते हैं।
४६. मिट्टी का बर्तन।
४७. धूनी की राख निकालने की फावड़ी।
४८. पहरावा (भगवें कपड़े आदि)।
४९. बारीक सूक्ष्म।
५०. पुष्प।
५१. व्यापक (लोन)।
५२. साखी।
५३. उधार करना।
५४. परिचय (जानकारी)।
५५. स्वाती नक्षण की बूंद।
५६. सीपी (समुद्र में एक सीप होती है। स्वाती नक्षत्र में वर्षा की बूंद पड़ने से उसमें मोती उत्पन्न होता है)।

अगमनूर अगहै सु झलकंत[५७] जोती॥२५॥
निराकार निर्गुन निरंतर निराला[५८]।
नहीं सुंन[५९] सकती नहीं प्रेम पयाला॥२६॥
सकल संग रहता सकल सैं नियारा।
नहीं आदि अंतो अनूपो[६०] अपारा॥२७॥
आवै न जावै न ध्यावै न कोहं[६१]।
ऐसा तत्त चीन्हों[६२] निरालंभ सोहं॥२८॥
गलत[६३] नूर[६४] गैबी[६५] असंख कोटि किरनं।
नाचै न काछै[६६] नहीं भेख बरनं[६७]॥२९॥
थीरो[६८] गंभीरो न इच्छा अचाही[६९]।
माता न पित्रो न बंधु न भाई॥३०॥
गावै न ध्यावै नहीं सो जमाती[७०]।
मेला न चेला नहीं संग साथी॥३१॥

---

५७. प्रकाशमान।
५८. अलौकिक।
५९. आकाश की तरह व्यापक शक्ति।
६०. उपमा से रहित।
६१. मैं कौन हूँ, कोई।
६२. जानो-पहिचानों।
६३. व्यापक।
६४. प्रकाश।
६५. अलौकिक, गुप्त।
६६. स्वरूप धारण करना।
६७. रंग।
६८. स्थिर।
६९. इच्छा, चाह रहित।
७०. समूह का स्वामी, मण्डलेश्वर।

निरसंध[७१] नीका सकल है अबाजी[७२]।
रहै ब्रह्म बीना[७३] बिलोमान[७४] बाजी॥३२॥
बाजी भंडारा पसारा न रहसी।
अनराग[७५] मेला महल[७६] भेद लहसी[७७]॥३३॥
महल भेद पाया चिताया[७८] अपारा।
परम सुंन मेला जु सत लोक म्हारा[७९]॥३४॥
सतलोक चलिये बिरह[८०] अग्नि जलिये जलै सो निमाना[८१]।
जैसे नून पानी मिल्या यौं बिनानी परमधाम जान्या॥३५॥
परमधाम पाया समाया सलेसं[८२]।
गुलजार[८३] गैबी सु निहतत्त[८४] नेसं[८५]॥३६॥
आसा न वासा[८६] निरासा[८७] निहकामी[८८]

---

७१. सन्धि से रहित, (जहाँ दो वस्तु मिलती है उसको सन्धि कहते हैं परमात्मा सर्वत्र व्यापक होने से सन्धि रहित है)।
७२. संसार से रहित (शब्द रहित)।
७३. स्थिर, चतुर, परमात्मा।
७४. नाश होने वाला।
७५. राग से, प्रेम से रहित।
७६. स्थान बैकुण्ठ (परमात्मा)।
७७. प्राप्त करेगा।
७८. सावधान किया, उपदेश दिया।
७९. हमारा, अपना।
८०. वियोग, प्रेम।
८१. मान रहित, लीन।
८२. समर्थ, ईश्वर।
८३. शोभा।
८४. पाँच तत्वों से रहित।
८५. लीन, नाशवान।
८६. वासना।
८७. आशारहित।
८८. कामना से रहित।

अगम[८९] सैं अगम है जु सतलोक धामी[९०]॥३७॥

निरसिंध नूरं जहूरं[९१] मिलाया।

जहाँ का तहाँ है जु खोया न पाया॥३८॥

सप्त[९२] अंडतोरी अछर[९३] धाम डोरी मकर[९४] तार झीना।

बोले न डोलै[९५] अलल[९६] पंख हेला ऐसा तत्तचीन्हा॥३९॥

खाखी[९७] न नूरी[९८] न सुरता[९९] निरता[१००]।

अधर[१०१] नाच नाचै बिना बांस बरता[१०२]॥४०॥

---

८९. परे से परे, जिसमें हर किसी का गमन न हो सके।

९०. निवासी, प्रमात्मा, स्थान वाला।

९१. प्रत्यक्ष।

९२. सातों लोकों तक। हितासबोध वाले सप्त अण्डे वाली ऊँटों की कतार।

९३. अक्षय, नाशरहित।

९४. मकड़ी एक कीड़ा, जो मच्छरो को पकड़ने के लिए जाला बनाती है।

९५. हिले।

९६. अलल पक्षी आकाश-मण्डल (ऊपर की वायु) में हीं रहता है। जब वह अंडा देती है तो वह अंडा पृथ्वी पर आते ही फूट जाता है परमात्मा का कुछ ऐसा नियम है कि वह कदली बन में ही गिरता है जब बच्चा अंडे से बाहर निकलता है तो उसको उसके माता-पिता की खींच होती है वह अपने मन में सोचता है कि यह मेरा देश नहीं है मेरा देश तो ऊपर है। उस कशिश के कारण वह अपने माता-पिता से मिल जाता है। ऐसा सुना जाता है कि वह जाते समय पांच हाथियों तक उठा कर ले जाता है। यथा–

दोहा- अलल पंख को चार गज, गज को मण नर सेर।

चींटी किनका देत है, या में नाहिं फेर॥

इस अलल पक्षी के विषय में सन्त वाणियों के अन्दर वर्णन आता है अन्य ग्रन्थों में नहीं।

९७. मलिन।

९८. शुद्ध प्रकाश।

९९. सुरति, सुरति वाला।

१००. सुरति-ध्यान तथा निरति-सूक्ष्म ध्यान।

१०१. पृथ्वी के आश्रय से रहित।

१०२. नटों के नाच का साधन रस्सा।

गुदरी[१०३] न धागा विहागा[१०४] न खंथा[१०५]।

माँगै न साँगै[१०६] नहीं भेष पंथा॥४१॥

खंथ्या[१०७] न संथ्या[१०८] न सांचै[१०९] न बांचै[११०] जुरहता निरासा।

रमता[१११] न भमता[११२] न हरषो[११३] उदासा[११४]॥४२॥

अगम रास[११५] रासी[११६] बिलासी[११७] अपारी[११८]।

धोती न पोथी[११९] नहीं सो अचारी[१२०]॥४३॥

अचारी बिचारी[१२१] भंडारी न महता[१२२]।

डेरा[१२३] न भेरा[१२४] सकल सुधि लहता[१२५]॥४४॥

---

१०३. गोदड़ी।

१०४. ओढ़ना, धागा।

१०५. गुदड़ी (कन्था)।

१०६. लज्जा करना।

१०७. गुदड़ी।

१०८. पाठ।

१०९. संग्रह, इकट्ठा करना।

११०. पढ़ना।

१११. रमा हुआ, व्यापक।

११२. भ्रमण, घूमना।

११३. प्रसन्नता।

११४. शोक, उदासी।

११५. लीला।

११६. लीला करने वाला।

११७. भोगी।

११८. पार से रहित।

११९. पुस्तक।

१२०. आचारवान।

१२१. विचारवान।

१२२. महान।

१२३. स्थान।

१२४. इकट्ठा।

१२५. प्राप्त करता।

नहीं मिरगछाला गलै नादमाला जो धूमि[१२६] न धामा[१२७]।
जाचै[१२८] न द्वारा अखारा[१२९] भंडारा न सामा[१३०]॥४५॥
नहीं गोत नाती अजाती[१३१] अनाथा[१३२]।
पढ़ावै गुनावै[१३३] समानै[१३४] समाता॥४६॥
गलतान[१३५] गैबी गलत है सृष्टि में सकल सिंध[१३६] थीरं।
वंदी छोड़ जान्या पिछान्या जु अदली[१३७] कबीरं॥४७॥
नैनों[१३८] न बैनों[१३९] न सैनों[१४०] न सीखा[१४१]।
नजर[१४२] में अजर[१४३] है जो गुरु भेद दीख्या॥४८॥
दीख्या दिखाया सकल में समाया[१४४] जो गुरु भेद महली[१४५]।

---

१२६. धूम मचाने वाला।
१२७. हंगामा-हल्ला।
१२८. निरीक्षण करना।
१२९. साधुओं का अखाड़ा।
१३०. सामान।
१३१. जाति से रहित।
१३२. जिसका कोई नाथ नहीं, सबका स्वामी।
१३३. विचार करवाना।
१३४. सम।
१३५. लीन।
१३६. सन्धि।
१३७. न्याय-करता ईश्वर।
१३८. नेत्र।
१३९. वचन।
१४०. संकेत।
१४१. शिक्षा।
१४२. दृष्टि।
१४३. एक रस।
१४४. व्यापक।
१४५. ईश्वर।

मिलेपाक[१४६] दरिया अटल[१४७] पीव[१४८] बरिया[१४९] सकल रूह[१५०] गहली[१५१]

दोहा- बिनानी विज्ञान स्तोत्र, नेस[१५२] निरंतर थीर।
अवगति महल अगाध[१५३] है, जहां तख्त[१५४] खवास[१५५] कबीर॥
सोहं हंसा[१५६] हेर[१५७] ले, सुरति[१५८] समागम[१५९] कीन।
दास गरीब महल मिले, अनरागी ल्यौलीन॥५१॥

ठीक इसी तरह श्रुतियाँ भी इस दृश्य जगत् का निषेध करती हुयीं जब ब्रह्म का वर्णन करने के लिये उठतीं हैं तब इसी लड़की के समान, अथवा नववधू के समान मौन धारण कर लेतीं हैं, अर्थात् श्रुतियाँ निर्गुण ब्रह्म का निषेधमुख से ही वर्णन करतीं हैं, न कि विधिमुख से। निर्गुण ब्रह्म सर्वदा भेदशून्य है और निर्गुणब्रह्म सर्वथा विकार (दोष) रहित है, तथा अपने में स्वयं अपने भेद से, अपने में अपने सदृश व्यक्ति के भेद से एवं अपने में अपने से अतिरिक्त व्यक्ति के भेद से भी सर्वथा शून्य है इसीलिये उसी त्रिविधि भेद शून्य माना गया है। अर्थात् हम देखते हैं कि यह द्वैत जगत् हमेशा तीन प्रकार के भेद भाव से भरा हुआ प्रतीत होता है। जिस प्रकार वृक्ष के अन्दर स्वगत (वृक्ष में होने वाली शाखा आदि का) भेद है और वृक्ष में अपने सजातीय (सदृश जो दूसरा वृक्ष है) का भेद भी है तथा

---

१४६. पवित्र।
१४७. एक रस।
१४८. स्वामी।
१४९. बरलिया।
१५०. जीवात्मा।
१५१. झूठी।
१५२. लीन।
१५३. बेथाह।
१५४. गद्दी।
१५५. सेवक।
१५६. हे जीव।
१५७. देख।
१५८. ध्यान।
१५९. मेल।

वृक्ष से विजातीय जो घट पट आदि हैं उनका भेद भी वृक्ष में मौजूद है। इस प्रकार इस द्वैत जगत् के सभी पदार्थ भेदभाव से भरे हुए हैं। परन्तु निर्गुण ब्रह्म को ऐसा नहीं कहा जा सकता है, कारण कि निर्गुण ब्रह्म वृक्ष के समान शाखा-डालियों वाला नहीं है। अथवा मनुष्य के समान हाथ-पैर वाला नहीं, आँख तथा कान वाला भी नहीं, रसना एवं त्वचा वाला भी नहीं, सर्वथा ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से शून्य है। कहा भी है—

रचयसि जगदेव हस्तहीनो भ्रमसि जवेन समन्ततोऽस्तपादः।
श्वसनमपि शृणोषिकर्णशून्यो लवमपि पश्यसि दूरतो विचक्षुः॥१॥
रसयसि रसनां विना रसांस्त्वं स्पृशसि चराचरमत्वगप्यजस्रम्।
परिमलमपिजिघ्रसीशध्विघ्रस्तदिह तुलांप्रतिपद्यते न तेऽन्यः॥२॥

अर्थात् तुम बिना हाथों के ही इस चराचर जगत् की रचना करते हो और बिना पैरों के ही तुम इस संसार के चारों तरफ बड़े वेग से भ्रमण करते हो। बिना कानों के तुम शब्द सुनते रहते हो, और आँखों से रहित होकर तुम अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु को भी दूर से ही देख लेते हो, इसीलिये हे निर्गुण ब्रह्म? तुम "स्वगतभेदशून्य" कहलाते हो?

इसी प्रकार रसना (जिह्वा के अग्रभाग में रहने वाली इन्द्रिय) के बिना ही तुम समस्त रसों का आस्वादन (स्वाद) लेते रहते हो, और बिना त्वचा इन्द्रिय के ही तुम इस चराचर जगत् का स्पर्श करते हो, और बिना ही घ्राण (नाक के अगले भाग में रहने वाली) इन्द्रिय के बिना ही हे ईश! (हे निर्गुण ब्रह्म) तुम पुष्पों की गन्ध को भी सूँघते रहते हो। इसलिये निर्गुण ब्रह्म! तुम्हारी समानता कौन करता है अर्थात् तुम्हारा सजातीय (समान) कौन दूसरा है॥२॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इसी बात को बतलाया है कि—

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना।
कर बिन करम करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
विनु वाणी वक्ता बड़ जोगी॥

तन विनु परस नयन विनु देखा।
ग्रहहि घ्रान बिनु वास अशेषा॥
असि सब भाति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाहिं नहिं बरनी॥

इसके अतिरिक्त उपनिषदों ने भी इसी ब्रह्म का वर्णन इसी रूप में किया है।

अपाणिपादो जवनो गृहीतः, पश्यत्यचक्षुः स।शृणोत्यकर्णः।
गरीब ऐसा कादर देखिया, पीठ पेट नहिं द्वार।
नगरी बस्ती मठ नहीं, नहीं उहाँ घर बार॥
गरीब सुंन वस्ती से रहत है, देखी सिन्ध निहार।
ग्यान ध्यान की गम नहीं, ना वहाँ जीत न हार॥
गरीब गलताना गैबीगलत, रिमझिम रिमझिम होइ।
दसों दिशा दरहाल है, निर्गुण अविचल सोई॥
गरीब अखै अभै सुंन मंडली, गण गन्धर्व नहीं ठाम।
निज निर्वाणी निर्मला, पूरण रमता राम॥
गरीब सदा संजीवन अमर पद, नेस निरंतर माहिं।
बाहर भीतर ब्रह्म है, जहाँ तहाँ सब ठाहिं॥
गरीब नूरमहल बिन नीम है, पैड़ी नहीं मुंडेर।
ड्योड़ी पड़दा ना वहाँ, बिन पग चढ़े सुमेर॥
मुख बिन नाद करौं बिन पकरै, अधर अनाहद छाजै।
सुर बिन बीन सरोतर बानी, बिन दम मुरली बाजै॥
नापैद बजावे किस मन आवै, अलख विहंगम बाना।
नल की नाल फिरै जग सारा, हम बाजीगर जाना॥
रसन बिहूना राग उठावै, स्रवन कुँ सब सूझै।
चिस्में जाय करैं बतलावन, सुरति मारफत बूझे॥

बिन दम राग विहाग बिनानी, मगज निरन्तर गावा।
जन दास गरीब कहे रे साधो, सतगुरु भेव लखावा॥

इस प्रकार उस निर्गुण ब्रह्म में स्वगत का होना सर्वथा असंभव है। और सजातीय भेद भी उसमें नहीं हो सकता है, कारण कि सजातीय भेद-सजातीय में ही हुआ करता है। जैसे दो सजातीय (समान) वृक्षों में उसका भेद उसमें और उसका भेद उसमें मौजूद है, परन्तु निर्गुण ब्रह्म के सजातीय ही कोई दूसरा (निर्गुण ही) नहीं है। तब फिर कैसे निर्गुण ब्रह्म में सजातीय भेद बन सकता है। श्रुति भी कहती है और गरीबाचार्य स्वयं ही कहते हैं–

गरीब बाहर भीतर एक है, सकल ठौर सब ठाम।
उनमुनि के घर दर्श है, नहीं ग्राम नहीं नाम॥१॥
गरीब पारस पद प्रवान है, अडोल अबोल अछेद।
निर्बाणी निर्बन्ध है, कोई जन जाने भेद॥२॥

"एकमेवाद्वितीयं नेह ना नास्ति किञ्चन"

यह श्रुति स्वयं ही उसे एक और अद्वितीय बतलाकर उसके नानात्व का निषेध कर रही है।

इसी प्रकार उसमें विजातीय भेद संभावित नहीं हो सकता है क्योंकि एक ब्रह्म के अलावा और कोई दूसरी चीज ही नहीं है जिसे ब्रह्म से विजातीय कहा जाय। जिस प्रकार वृक्ष और पत्थर आदि में जो भेद है वही विजातीय भेद माना गया है निर्गुण ब्रह्म केअन्दर न देशकृत न कालकृत न वस्तुकृत किसी भी प्रकार का भेद नहीं है क्योंकि–वह निर्गुण ब्रह्म देश-काल और घर पर आदि समस्त वस्तुरूप है अर्थात् संसार के किसी भी पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। कारण कि–

"सर्व खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन"

यह श्रुति स्वयं ही संसार के सभी पदार्थों को ब्रह्मरूपता का व्याख्यान कर रही है।

॥ निर्गुण ब्रह्म ही सबका अधिष्ठान है॥

और वह निर्गुण ब्रह्म हस्त-पादादि अवैबों से रहित होने पर भी सबका आधार है। जिस प्रकार रज्जु (रस्सी) के अन्दर भासमान सर्प का आधार रस्सी ही है, शुक्ति (सीपी) के अन्दर भासमान रजत (चाँदी) का आधार सीपी ही है, स्थाणु के अन्दर भासमान पुरुष का आधार भूत अधिष्ठान स्वयं स्थाणु है, उसी प्रकार इन आँखों के सामने दीखने वाले जगत् का भी आधार यह निर्गुण ब्रह्म ही है। और इसी निर्गुण ब्रह्म में उसका लय भी होता है, इसलिये इस चराचरात्मक जगत् का लयस्थान भी यही है।

जैसे पृथ्वी का लय जल में और जल का लय तेज में, तेज का लय वायु में, और आकास में आकास का लय माया में माया का लय उसी निर्गुण ब्रह्म में है।

योगी लोग जिस समय योगाभ्यास के द्वारा संप्रज्ञात समाधि में पहिले पहुँच जाते हैं और उसके बाद फिर वे असंप्रज्ञात समाधि में पहुँचते हैं उस समय जिस तत्व का वे अनुभव कर लेते हैं वही निर्गुण ब्रह्म है। कारण कि योगी लोग जिस समय असंप्रज्ञात समाधि के अन्दर पहुँच जाते हैं उस समय उन्हें ध्याता-ध्यान-ध्येय, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, प्रमाता-प्रमाण-प्रमेय का कोई भी ज्ञान नहीं रह जाता है, इन सबका लय भी उसी तत्त्व में हो जाता है, वही तत्व निर्गुण ब्रह्म है। वहाँ उस निर्गुण ब्रह्म तत्त्व के रूप में एक मात्र वह योगी ही रह जाता है। इसीलिये असंप्रज्ञात योगी की समाधि का जो तत्त्व साक्षात्कार है वही तत्त्व निर्गुण ब्रह्म माना गया है।

इसी प्रकार भक्त लोग भी जब अपराभक्ति से उठकर पराभक्ति में पहुँचते हैं उस समय का उस भक्ति में जो तत्त्व साक्षात्कार है वह निर्गुणब्रह्म का ही साक्षात्कार है, और वही निर्गुण ब्रह्म इस चराचर जगत का आधार है तथा व्यापक है, कारण कि १४ भवन तथा ७ स्वर्ग-पाताल इनको एक ब्रह्मांड कहते हैं और इस प्रकार के अनन्त ब्रह्मांड जिसके एक अंश में समा जाते हैं इसी से इसकी व्यापकता कितनी है यह अंदाजा अथवा कल्पना करने मात्र के बाहर है। श्री आचार्य जी कहते हैं कि–

साखी- गरीब मन बुद्धि सेती अगम है, सुरति निरति नहीं जाय।
पिंड ब्रह्मण्ड सैं न्यार है, सो पद द्यौं लखाय॥

इसीलिये श्रुति भगवती भी कहती है कि–

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन"

अर्थात् यह निर्गुण ब्रह्म आत्मा का प्रवचन करने से विषय-वासनाओं में लिप्त हुई बुद्धि से गम्य नहीं, अबाङ्मनसगोचरः वाणी से तथा मन से परे वह ब्रह्म है। इसका निश्चय नहीं कर सकते हैं कि यह इस प्रकार का है अथवा इस प्रकार का इत्यादि।

एक समय की बात है कि कबीर जी घूमने जा रहे थे, रास्ते में दादू पिंजारी का मकान पड़ता था। उन्होंने (कबीर) उनको पुकारा तो दूसरे आदमी ने कबीर जी से कहा कि वे भगवान् के पैर दबा रहे हैं। यह सुनकर कबीर जी को बड़ा ही गुस्सा आया, और कहा कि–

उस पारब्रह्म निर्गुण को आप देख नहीं सकते कि यह ऐसा है कि वैसा। आप उसकी सेवा भी नहीं कर सकते हैं अथवा उसका इस रूप से भी निश्चय नहीं कर सकते हैं कि वह इस स्वरूप वाला है अथवा उस स्वरूप वाला इत्यादि।

एक राजा था–उस राजा के घर बहुत दिन के बाद लड़का पैदा हुआ – परन्तु उसी दिन उसकी वृद्धा माता भी मर गयी, ये दोनों विरोधी कार्य राजा के यहाँ एक ही काल में उपस्थित हो गये। कई लोग राजा के यहाँ पुत्रोत्सव के निमित्त प्रसन्नता दिखलाने के लिये हँसते-हँसते गये तब राजा ने इन्हें देखा और उसको बड़ा क्रोध आया। राजा ने कहा कि क्या मेरी माता के मर जाने से आप लोगों को बड़ा आनन्द हुआ? राजा ने पुलिस को आज्ञा दी कि इन सबको कारागार (जेल) में डाल दो, राजा के इतना ही कहते वे लोग जेल में बन्द हो गये। राजा ने सोचा कि देखो ये लोग कितने बदमाश हैं इन्हें मेरी माता के मर जाने का लेशमात्र भी दुःख नहीं हुआ। लोगों ने सोचा कि राजा को पुत्र होने का अधिक आनन्द नहीं हुआ जितना दुःख इन्हें अपनी वृद्धा माता के मरने का हुआ। इसके बाद और भी बहुत से लोग इनसे मिलने के लिये रोते-रोते दरबार में पहुँचें इन्होंने सीधा हुक्म

दिया कि इन्हें जेल में बन्द कर दो–मुझे पुत्र प्राप्त हुआ इनसे यह देखा नहीं गया, वे भी बन्द हो गये। (अन्त में) आखिर में एक अत्यन्त बुद्धिमान् तथा अनुभव शील वृद्धा (बुढ़िया) वहाँ दरबार में पहुँची, पहुँचने पर न वह हँसी और न रोई, चुपचाप राजा के पास जाकर खड़ी हो गयी। राजा ने उससे पूछा कि तू क्या कहना चाहती है। बुढ़िया ने तुरन्त उत्तर दिया कि-महाराज ! मैं तो माता के मरने का दुःख भी बखान नहीं कर सकती, और पुत्र होने का आनन्द भी नहीं कह सकती, इतना सुनते ही राजा प्रसन्न हो गया और कहा कि हे बुढ़िया माता! तुम जो चाहो वह माँगो। बुढ़िया ने कहा कि सब से पहिले इन सब बन्दियों को छोड़ दीजिये जो अभी बन्द हुए हैं। महाराज जी तो इस वार्ता को पहिले भी कह आये हैं–

साखी- गरीब निरगुण कहूँ तो गुण किनकीने, सरगुण कहूँ तो हानं।
निरगुण सरगुण दोहूँ से न्यारा, अविगति पद निर्वानं॥

कहने का अभिप्राय यही है कि–निर्गुण ब्रह्म को न तो आप किन्हीं शब्दों से कह ही सकते हैं, और न निषेध ही उसका कर सकते हैं। क्योंकि यदि उस ब्रह्म को निर्गुण कहा जायेगा तो किसी की अपेक्षा ही उसका वर्णन करना होगा, अर्थात् ब्रह्म उसकी अपेक्षा ऐसा है–और उसकी अपेक्षा ऐसा है इत्यादि रूप से सापेक्ष ही वर्णन करना होगा। परन्तु उसके सापेक्ष कोई है ही नहीं। क्योंकि जो वर्णन करने वाला है वह भी तो ब्रह्म ही है।

और यदि उस ब्रह्म को निषेधरूप से कहा जाय कि वह है ही नहीं तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि वह अपने अनुभव का विषय है अर्थात् स्वानुभववेद्य है, इसलिये सर्वथा उसका अपलाप भी नहीं किया जा सकता है। यदि इस प्रकार वस्तुस्थिति का अपलाप शुरू हो जायेगा तो अग्नि गरम होते हुए भी कहने मात्र से शीतल ही क्यों न हो जाय, कारण कि अनुभव तो कोई चीज ही नहीं रही।

कबीर साहब ने स्वयं इस विषय में अपनी सम्मति दी है।

एक कहे तो है नहीं, दूई कहें तो गार।
जैसा है तैसा रहे कहें कबीर विचार॥

इसका अभिप्राय यही है कि हम ब्रह्म का वर्णन ऐसा है अथवा वैसा है इत्यादि रूप से नहीं कर सकते हैं। इस विषय में ज्ञानेश्वर जी ने भी कहा है–

'तेथ ब्रह्म आत्मा ईषु, यया बोला मोड़े पैरसू।

न बोलणाया ही पैसू, आहे जेथ॥

अर्थात् उस निर्गुण ब्रह्म को तो न ब्रह्म ही कह सकते हैं और न ईश्वर न आत्मा। इन नामों का तो वहाँ कोई जाने का साधन ही नहीं है। उस निर्गुण ब्रह्म के विषय में तो कुछ नहीं बोलना ही श्रेयस्कर होगा। संत तुकाराम जी भी इस विषय में ऐसा मार्ग दर्शाते हैं–

'सहज भी आंघका गा, निज निराकार पन्थे।

वृत्ति है निवृत्ति झाली, मन न दिसे ते थे॥

इस निराकार पन्थ में जाने के बाद वृत्ति-निवृत्तिरूप हो जाती है। मन का मन-पना समाप्त हो जाता है। "मैं-मैं" तथा "मेरा-मेरा" यह भान तो उसी जगह उसी क्षण समाप्त हो जाता है, यह भी नहीं मालूम कि वह कहाँ चला जाता है और यह दृश्यमान चराचर जगत् भी अदृश्य एवं खतम हो जाता है। इसमें–"वृत्ति है निवृत्ति झाली"

यह वाक्य बड़े ही महत्त्व का है, इसी में वेदान्त का असली सिद्धान्त भरा हुआ है। वह यह है कि ब्रह्म साक्षात्कार काल में अखंड ब्रह्माकाराकारित अन्तःकरण की वृत्ति की विषयता ब्रह्म में मानते हैं लेकिन फल (प्रत्यक्ष) विषयता नहीं। जैसे कहा भी है–

फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निवारितम्।

ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता॥

अर्थात् शास्त्रकारों में फल व्याप्ति अर्थात् फल विषयता का निषेध कर दिया है, परन्तु ब्रह्म ने ब्रह्म के अज्ञान को दूर करने के लिये अर्थात् ब्रह्म का जो हम लोगों को ज्ञान नहीं हो पाता है अर्थात् ब्रह्म जो जीव का स्वरूप है उस ब्रह्मरूप अपने स्वरूप को जो जीव अज्ञानवश नहीं पहिचान पाता है उस अज्ञान की निवृत्ति के लिये वृत्त्यिाप्ति अर्थात् वृत्ति-विषयता

का स्वीकार ब्रह्म में वेदान्ती लोगों ने किया है। क्योंकि जब तक अखण्डब्रह्म के आकार वाली अन्तःकरण की वृत्ति नहीं हो जाती है तब तक अज्ञान दूर नहीं हो सकता है। अज्ञान के दूर होने के बाद ही यह भान होता है कि ब्रह्म ही इस चराचर जगत् का आधार है, उसी की एकमात्र सत्ता है, उसी की सत्ता, से सब सत्तावाले हैं केवल उसी की स्वतंत्र सत्ता है, और सब पदार्थों की सत्ता उसी की सत्ता के अधीन है अतः वही सबका आधार रूप अधिष्ठान है।

॥ वृत्तिव्याप्ति-फलव्याप्ति का विवेचन॥

अब हम वृत्तिव्याप्यत्व-वृत्तिव्याप्ति अर्थात् वृत्ति-विषयता, एवं फल-व्याप्यत्व-फलव्याप्ति अर्थात् फलविषयता क्या चीज है इसका विवेचन आचार्य महाराज के उपदेश के आधार पर करते हैं।

वृत्तिव्याप्ति की आवश्यकता यह है कि जिस समय अन्तःकरण चक्षु-आदि इन्द्रियों के द्वारा घट-पट आदि विषय देश में जाता है उस समय वह अन्तःकरण ठीक विषय के आकार वाला हो जाता है जिस से कि घट को आवरण अर्थात् घट से सम्बद्ध चैतन्य के ऊपर जो आवरण है–उसकी निवृत्ति हो जाती है और आवरण के दूर होते ही उस वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य तुरन्त ही घट को विषय कर लेता है और "अयं घटः" अर्थात् यह घट है ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

अब यहाँ पर शंका होती है कि चैतन्य जब कि स्वयं प्रकाश वस्तु है तब फिर घट से सम्बद्ध चैतन्य में आवरण कैसे आया।

इस शंका का उत्तर यही दिया गया कि घटावच्छिन्न (घट से सम्बद्ध) जो चैतन्य है वह एक सामान्य चैतन्य होने के नाते आवरण का विरोधी नहीं है इसलिये घटावच्छिन्न चैतन्य के ऊपर आवरण रह सकता है उस आवरण को दूर करने के लिये वृत्ति आवश्यक है। जैसे- सूर्य का प्रकाश यद्यपि बाहर बहुत है परन्तु फिर भी अन्धेरी कोठरी में रखे हुए घट-पट आदि विषयों का प्रकाश स्पष्ट रूप से नहीं कर पाता है, क्योंकि कोठरी के अन्दर वाला प्रकाश अन्धकार रूपी आवरण से युक्त है, कारण कि

कोठरी के अन्दर सूर्य का साधारण ही प्रकाश है विशेष नहीं, जो कि तम का विरोधी हो सके वैसा नहीं। घट को प्रकाशित करने के लिये आप एक शीशे को सूर्य के प्रकाश में रखकर उस सूर्य की किरणों को दर्पण द्वारा घट पर डालिये तो आप को उससे घट का ज्ञान हो जायेगा अर्थात् वह घट प्रकाशित हो जायेगा।

ठीक इसी तरह वृत्ति आवरण का भंग करके, और अपने में (वृत्ति में) प्रतिबिम्बित हुए चैतन्य का विषय घट-पट आदि को करके तब उन घट-पट आदि का ज्ञान कराती है। अर्थात् वह वृत्ति घट-पट आदि विषयों का इसी तरह प्रकाश करती है।

लेकिन ब्रह्म में केवल वृत्ति-व्याप्ति (वृत्तिविषयता) है फल-विषयता उसमें नहीं है, क्योंकि ब्रह्म स्वयं प्रकाश स्वरूप है इसलिये उसको प्रकाशित करने के लिये वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य की अपेक्षा नहीं है।

जैसे घट के नीचे एक दीपक जलता है, वैसे स्वभावतः वहाँ अन्धकार है, घट को दीपक के ऊपर से हटाइये तो वहाँ दीपक का ज्ञान स्वयं ही हो जायेगा, उस दीपक के प्रकाश अथवा ज्ञान के लिये किसी दूसरे प्रकाश अथवा दीपक की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह जल रहा है इस नाते स्वयं प्रकाश है। ठीक इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म दीपक स्थानीय है और घट आवरण स्थानीय है।

यहाँ पर भी यह शंका होती है कि ब्रह्म जब कि इतना बड़ा और व्यापक है तब उसे कौन ढक सकता है, क्योंकि उसे ढकने के लिये आवरण करने वाली वस्तु का परिमाण अधिक होना चाहिये?

इसका उत्तर यही दिया गया कि यह कोई नियम नहीं है कि ढकने वाली वस्तु का परिमाण अधिक होना ही चाहिये, क्योंकि साढ़े छः हजार योजन परिमाण वाले सूर्य को एक छोटा-सा मेघों का टुकड़ा ढक लेता है। और उसके हटते ही फिर सूर्य का प्रकाश हो जाता है। श्री सद्गुरुदेव जी महाराज कहते हैं कि—

ज्यूँ सूरज के आगे बदरा ऐसे कर्म छया रे।

कहा भी है—

"अल्पोऽपिमेघोऽनेकयोजनायतमादित्यमण्डलमवलोकयितृनयन-पथपिधाकतया यथाऽऽच्छादयतीव तथाऽज्ञानं परिच्छिन्नमप्यसंसारिण मवलोकयितृबुद्धिपिधायकतयाऽऽच्छादयतीव तादृशं सामर्थ्यम्।"

अर्थात् एक छोटा-सा मेघ का टुकड़ा जैसे साढ़े छः हजार योजनों के अन्दर फैले हुये सूर्य को दर्शक लोगों के नयनमार्ग के समान ढक लेता है उसी प्रकार छोटा-सा अज्ञान भी उस व्यापक परिमाण वाले ब्रह्म को आच्छादित कर लेता है इसी को आवरणशक्ति कहते हैं।

॥ निर्गुण ब्रह्म अविषय तथा वर्णनातीत है॥

वह निर्गुण ब्रह्म न तो वृत्ति का विषय है और न मन आदि का, वह तो सर्वथा अविषय ही है। एक समय की कथा है कि—भगवान् सूर्य दीपावली त्योहार के अवसर पर अपने श्वसुर गृह अर्थात् ससुराल में पहुँचे। वहाँ खूब लड्डू-जलेबी-श्रीखंड-पेड़े और मिठाई खाई। जिस के खाने से सूर्य भगवान् का पेट ही खराब हो गया, वे देवताओं के वैद्यराज अश्विनीकुमार के यहाँ पहुँचे, और अपने रोग का इतिहास वर्णन उनके सामने किया। वैद्यराज अश्विनीकुमार ने कहा कि यह तुम्हारा रोग बहुत ही भयंकर है इसके लिये दवाई भी बहुत ही बड़ी चाहिये, और सब औषधियाँ तो मेरे पास हैं परन्तु उनमें मिलाने के लिये पाव भर अन्धकार और चाहिये। तुम पाव भर अन्धकार ले आओ मैं तुम्हारे लिये औषधि बनाकर तैयार कर देता हूँ। सूर्य वहाँ से चलकर एक मृत्युलोक के आदमी से मिले। और उससे कहा कि भाई! मुझे पाव भर अन्धकार चाहिये, वह कहाँ मिलता है। जरा बताओ तो सही। उसने उत्तर दिया कि बम्बई को जो रेलगाड़ी जाती है रास्ते में एक बड़ी गुफा पड़ती है वहाँ बहुत ही ज्यादा अन्धकार है उस जगह तुम्हें अन्धकार ही अन्धकार मिलेगा, चाहे जितना भी ले लेना। ऐसा विचार करने के बाद दोनों गाड़ी में सवार हो लिये, और गाड़ी जब उस गुफा में पहुँची तो वहाँ एकमात्र प्रकाश ही प्रकाश मिला, अन्धेरे का तो नाम निशान भी नहीं था। इसी प्रकार और भी बहुत सी जगह खोजा, परन्तु कहीं भी अन्धकार उन्हें न मिला। दोनों बेचारे लौट आये और थक गये।

इसका अभिप्राय इतना ही है कि जिस प्रकार सूर्य के पास अन्धकार ठहर नहीं सकता उसी प्रकार उस निर्गुण ब्रह्म के पास पहुँचते ही वहाँ इन्द्रियां, इन्द्रियों के विषय एवं जीव, और जगत् कुछ भी नहीं रह जाता है, तब फिर इनका विषय कैसे हो सकता है। इसलिये उस निर्गुण ब्रह्म का ऐसा है, वैसा है, इत्यादि रूप से वर्णन नहीं कर सकते हैं क्योंकि वह किसी का विषय है ही नहीं। जगद्‌गुरु जी स्वयं कहते हैं–

गरीब कहा कहूँ कुछ अकह है, ना कछु कहने जोग।

सन्त ज्ञानेश्वर जी भी कहते हैं–

"सकल ना निष्कल"

अर्थात् वह कला-सहित भी नहीं और कला-विहीन भी नहीं है। वह क्रियारहित भी नहीं क्रियाशील भी नहीं, कृश भी नहीं स्थूल भी नहीं, कारण कि वह निर्गुण है। वह साभास भी नहीं-निराभास भी नहीं, वह प्रकाश भी नहीं-अप्रकाश भी नहीं, अल्प भी नहीं-अनल्प (बहुत) भी नहीं, क्योंकि वह रूपरहित है। वह खाली भी नहीं-वह भरा हुआ भी नहीं, वह किसी का साथी भी नहीं, और वह बिना साथी भी नहीं, मूर्त भी नहीं, तथा अमूर्त भी नहीं क्योंकि वहाँ तो सर्व-शून्यता है। वहाँ आनन्द भी नहीं, निरानन्द भी नहीं, एक भी नहीं अनेक भी नहीं, मुक्त भी नहीं, बद्ध भी नहीं, क्योंकि वह अपने आप ही है अर्थात् सब उसका ही स्वरूप है।

साखी- गरीब बंध्या मुक्ता है नही, हाजर नाजर देख।
समरथ ऐसे जानिये, एक अनेकं पेख॥

औधु[१] जोगी[२] एक अकेला, जाके तीरथब्रत न मेला॥टेक॥
सिंगीनाद बभूत[३] न बटुआ, आसन अस[४] तल नाहिं।
जोगन जुगति न ग्यान न ध्यानं, रहे अर सके[५] माहिं॥१॥

---

१. साधु।
२. परमात्मा।
३. धूनी तापने वाले साधुओं के पास एक बटुवे में भस्म (राख) का गोला सा होता है।
४. आश्रम मकान।
५. आकश की नाई व्यापक।

चूप न मौन हरष नहिं हाँसी, ना गावै ना रोवै।
खाये न पीवै मरै न जीवै, ना जागे ना सोवै॥२॥
पांव चले न जल में बूड़े, सीत[६] घाम[७] से न्यारा।
बीन बजावै बरवै गावै, है सो यार हमारा॥३॥
जा के भग न लिंग नाद[८] नहीं विंदं,[९] ना पुरुषा ना नारि।
सूद्र वैश्य न हिन्दू तुरका, ना दीखै ब्रह्मचारि॥४॥

"तुझे नामगा मौनराशि"

तेरा नाम तो मौन स्वरूप ही है, अर्थात् निर्गुण ब्रह्म वर्णन करने योग्य नहीं है, बल्कि स्वानुभववेद्य ही है। शेषनाग ने इस पारब्रह्म परमेश्वर का जिस समय वर्णन करने के लिये ज्योंही अपनी जिह्वा को उठाया त्यों ही उनकी जिह्वा सहस्र भागों में बट गयी, इस प्रकार की पौराणिक कथा प्रसिद्ध है। इससे यही निष्कर्ष निकला कि वह ब्रह्म एकमात्र स्वानुभवगम्य है और किसी भी प्रकार गम्य नहीं हो सकता है। कहा भी है–

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्‌मो न विजानीमो, यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥३॥ (केनोपनिषत्)

अर्थात् उस निर्गुण ब्रह्म तक न चक्षु ही पहुँच पाता है और न वाणी ही, तथा न मन ही। अतः किस प्रकार शिष्य को उस निर्गुण ब्रह्म का उपदेश करना चाहिये यह हम नहीं जानते हैं। हम उसके विषय में इतना ही कह सकते हैं कि वह जाने हुये से भी परे है और न जाने हुये से परे है

---

६. ठण्डक-शीतल।
७. गर्मी।
८. स्त्री की रज, शिष्य परम्परा।
९. पुरुष का वीर्य-सन्तान।
वह इतना भी नहीं उतना भी नहीं, बनाया हुवा भी नहीं स्वयं सिद्ध भी नहीं, बोलने वाला भी नहीं मौनी भी नहीं, कारण कि वह अलक्ष्य है। वह न तो सृष्टि रचता है और न संहार करता है, क्योंकि वह निष्क्रिय है मार्ग मौन का ही ठीक है। सन्तों का कहना है।

अर्थात् दोनों से भिन्न है ऐसा हमने महापुरुषों से सुना है जिन महापुरुषों ने हमारे प्रति उसके विषय में व्याख्यान किया है।

अब शंका उत्पन्न होती है कि "तत्त्वमसि" अर्थात् वह ब्रह्म तू ही है, यह उपदेश कैसे बन सकता है, और "अयमात्मा ब्रह्म" यह आत्मा ब्रह्म है, "अहं ब्रह्मास्मि" अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ इत्यादिवाक्य भी अनर्थक ही ठहर जायेंगे कारण कि ब्रह्म तो नित्य एवं बोधस्वरूप है अर्थात् प्रकाश-स्वरूप है, तथा सर्वथा निरपेक्ष है।

इसका उत्तर यही दिया कि नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप आत्मा के स्वरूप के ऊपर होने वाले अध्यारोपों की निवृत्ति के लिये ही इन समस्त महावाक्यस्वरूप वाणियों तथा श्रुतियों का उपदेश है, अर्थात् उस नित्य आत्मा के स्वरूप को जो शरीर आदि के अनित्य धर्मों का आरोप करके उसे ढक दिया जाता है उस आवरण रूप उस ढक्कन को दूर करने के लिए ही ये सब उपदेश हैं। इसलिये वे सब उपदेश सार्थक ही हैं व्यर्थ नहीं हैं।

फिर शंका उत्पन्न होती है कि वह उपदेश तात्त्विक है या आतात्त्विक? यदि तात्त्विक है तो द्वैतापत्ति, और अद्वैतरूप सिद्धान्त भङ्ग प्रयुक्त अपसिद्धान्त की आपत्ति हो जायेगी। और उसको यदि आतात्त्विक कहा जाय तो उससे आत्मा के ऊपर लगाये गये आरोपों की निवृत्ति किस प्रकार हो सकेगी?

इसका उत्तर एक कहानी के दृष्टान्त के आधार पर यह दिया गया कि-एक राजा को एक स्वप्न दिखाई दिया कि मानो वह शिकार खेलने कहीं जंगल में गया। राजा एक हरिण के पीछे जो उसे मारने के लिऐ दौड़ा तो सब सेना उसकी कहीं पीछे ही रह गयी, अन्धेरा हो गया, राजा रास्ता भूल गया। जंगल में कोई भी आदमी दिखाई नहीं दे रहा है। जंगल का भयंकर रास्ता काटते काटते उसका घोड़ा भी मर गया। कपड़े भी फट गये, भूख भी जोरों से लग गयी आखिर में वह बेचारा उस बियाबान जंगल में भटकता हुआ रास्ता ढूँढता हुआ किसी प्रकार स्वप्न में ही एक गाँव में पहुँचा तो वहाँ किसी गरीब ब्राह्मण के घर में जाकर कहा कि मुझे एक

आधी रोटी खाने को दो भूख बहुत जोरों से लगी हुई है, उस धर्मात्मा महात्मा पुरुष ने जली हुई खिचड़ी उसे खिलाई। वह उसी को खाकर अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न हो गया। इतने में उसकी निद्रा टूटी, और देखता क्या है कि सब पहरेदार सिपाही सन्तरी आदि मेरे पास खड़े हुये हैं, मौजूदावस्था में अपनी आपस में बातचीतें कर रहे हैं। राजा सबको देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ा और सोचने लगा कि यह कैसी विचित्र घटना स्वपन में घटी। इससे हमारा तात्पर्य इतने से ही है कि– उस राजा की स्वप्नावस्था की भूख जैसे जली हुयी खिचड़ी ने ही समाप्त कर दी न कि दरबार में पड़े हुवे पकवानों ने। इसलिये स्वाप्निक भूख को स्वाप्निक रोटियों ने ही जैसे खत्म कर दिया न कि व्यावहारिक किसी वस्तु ने।

इसी प्रकार जीवों के अन्दर का अध्यारोप गुरु के लौकिक सदुपदेश से ही शान्त होता है, अन्यथा नहीं, अतः सद्गुरु जी का यह आत्मा के विषय में सदुपदेश व्यर्थ नहीं है।

परन्तु उस निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार में इनका अर्थात् शास्त्रोपदेश आदि का कोई भी महत्त्व नहीं है, क्योंकि वहाँ सभी के सम्बन्ध का विच्छेद हो जाता है इसलिये वहाँ न कोई प्रपंच सम्बन्धी ही व्यापार है–न माया का ही किसी प्रकार व्यापार हो पाता है, न शास्त्र एवं शास्त्रोपदेश का ही व्यवहार होता है अतः निर्गुण ब्रह्म अनुभवैकवेद्य है न कि वाह्य-साधनों द्वारा। वह निर्गुण ब्रह्म अचल है, व्यापक है, आदि अन्त से रहित है, नित्य है, शुद्ध है, बुद्ध है, मुक्त-स्वभाव है, आनन्दघन है, इस प्रकार का उसका स्वरूप एकमात्र अपने अनुभव के आधार पर ही जाना जा सकता है। सद्गुरु जी महाराज ने कहा है कि–

जल बूड़े नहीं अग्नि जराई, जाकी पूजा कर रे भाई।
खडग बान शस्त्र नहि बेधं, जाकुं कैसे पावें वेदं॥
बेद पुराणो लिख्या न जाई, पंडित कहो कहाँ गुण गाई।
पिंड ब्रह्मण्ड दोहुँ से न्यारा, हद बेहद से अगम अपारा॥

इतना ही नहीं, श्री आचार्य देव ने कहा है कि इस निर्गुण ब्रह्म का शस्त्रों के द्वारा छेदन भी नहीं हो सकता है अथवा अग्नि के द्वारा इसे

जलाया भी नहीं जा सकता है, एवं जल इसको गीला नहीं कर सकता है, वायु इसका किसी भी प्रकार सोषण नहीं कर सकता है, यह सर्वथा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है, नित्य है, सर्वव्यापक है, अचल है, हमेशा स्थिर रहने वाला और सनातन है, अव्यक्त (इन्द्रियों का विषय न होने वाला) है, अचिन्त्य है अर्थात् मन का भी विषय न होने वाला है। इसी बात को भगवान् ने गीता में भी कहा है–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
नचैनं क्लेदयन्तयापो न शोषयति मारुतः॥२३-अ. २-
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥२४-अ. २-
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥२५-अ. २-

जिस प्रकार स्वप्न में जो कोई भी वस्तु दिखाई देती है वह एकमात्र स्वप्न में ही सत्य मानी गयी है, जागने के बाद उन स्वाप्निक पदार्थो अथवा वस्तुओं की कोई भी सत्ता नहीं रह जाती है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के प्रतिबिम्ब अथवा परछाई के ऊपर किये हुए आघात-व्याघात से शरीर में किसी प्रकार की चोट अथवा घाव नहीं लगता है। अथवा जिस प्रकार घड़े के अन्दर मौजूद जल में भासमान होने वाले प्रतिबिम्ब का जल के गिरा देने से विनाश हो जाने पर भी बिम्ब का नाश नहीं हो पाता है। जिस प्रकार घट से सम्बद्ध आकाश घट के विनाश हो जाने पर अपने वास्तविक स्वरूप महाकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार शरीर के विनष्ट हो जाने पर भी आत्मा का अथवा आत्मा के स्वरूप का विनाश नहीं होने पाता है। उसमें तो सिर्फ शरीर आदि के अनित्य अथवा विनाशी धर्मो का आरोप मात्र होता है। शरीर को ही आत्मा समझने वाले लोग इस आत्मा को मारने वाला तथा मरने वाला समझते हैं- परन्तु वास्तविक दृष्टि से विचार करने पर तो यही निष्कर्ष निकलता है कि न यह मारने वाला है और न मरने वाला ही है, न माता के गर्भ में आने वाला है, इसी बात को भगवान् ने गीता में भी दर्शाया है–

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ श्लो.१९-अ. २-
न जायते म्रियते वा कदाचित्।
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः॥
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥ अ. २-
अजोनित्यः शाश्रतोऽयं पुराणो वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ! कं घातयति हन्ति कर्म॥२१-अ. ३-

और इस आत्मा को जो मारने तथा मरने वाला समझता है वह मूर्ख है आत्मा (ब्रह्म) न किसी को मारता है न किसी से मारा ही जाता है॥१९॥

तथा यह आत्मा न जन्म ही लेता है, न मरता है, न एक बार उत्पन्न होकर फिर बार-बार उत्पन्न होता है। कारण कि वह ब्रह्मरूप आत्मा अजर-अमर है नित्य है, शरीर के नष्ट अथवा भस्मीभूत हो जाने पर भी यह सर्वथा अविनाशी है॥२०॥

और हे अर्जुन! जो इस आत्मा को अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय समझता है वह किसको मरवायेगा और किसको मारेगा तथा किस से मरेगा॥२१॥

वही निर्गुण ब्रह्म जल में स्थल में सभी जगह ठोसरूप से भरा हुआ है, कहीं भी कोई भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ वह न हो, वह सर्वत्र व्याप्त है। आचार्य श्री कहते हैं कि–

गरीब जल थल साक्षी एक है डूंगर डहर दयाल।
दसों दिसा कुं दर्शनं, ना कहीं जौरा काल॥

श्रुति भी वही कहती है–

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"

यह सब दृश्यमान चराचर जगत् ब्रह्मरूप ही तो है। कारण कि वह निर्गुण ब्रह्म सूक्ष्म से सूक्ष्म है, अणु से अणु है, महान् से महान् है, अतीन्द्रिय से अतीन्द्रिय है। कहा भी है–

'सूक्ष्म से सूक्ष्म सहीपूर्ण पद प्रचंड (गरीबदास जी)

"अणोरणीयान् महतो महीयान्" इत्यादि (श्रुति)

अर्थात् वह निर्गुण ब्रह्म अणु से भी अणु है और महान् से भी महान् है इसका मतलब यह है कि अणु-सूक्ष्म-अतीन्द्रिय महान् सभी पदार्थ उसी निर्गुण ब्रह्म में अध्यस्त हैं, उन सबका आधारभूत अधिष्ठान वही निर्गुण ब्रह्म है। यहाँ पर यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि जो निर्गुण ब्रह्म न प्रत्यक्ष प्रमाण से वेद्य है, न अनुमान प्रमाण से वेद्य है, और न वह श्रुतिरूप शब्द प्रमाण से वेद्य है, न तर्क और युक्ति से वेद्य है। एक मात्र अपने अनुभव से ही वह वेद्य है, जिसको वह अनुभव नहीं हुआ उस व्यक्ति के लिए निर्गुण ब्रह्म का होना न होने के बराबर ही तो है। दूसरी बात यह भी है कि किसी व्यक्ति को निर्गुण ब्रह्म अनुभव हुआ है यह कहना भी तो बड़ा ही कठिन है। कौन कहेगा कि मैं निर्गुण ब्रह्म हूँ अथवा मैं निर्गुण ब्रह्म को जानता हूँ।

इसका उत्तर यही है कि रूप-रस वाले पदार्थ ही प्रत्यक्ष प्रमाण से जाने जाते हैं। परोक्ष वस्तु का ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है। और शब्द प्रमाण से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के पदार्थों का ज्ञान होता है। निर्गुण ब्रह्म रूप-रसादि से शून्य होने के कारण प्रत्यक्ष प्रमाण से वेद्य नहीं हैं ऐसा लोग कहते हैं, परन्तु अखण्डब्रह्मा काराकारित वृत्ति रूप प्रमाण का विषय होने से उसे प्रत्यक्ष प्रमाण से वेद्य मानते हैं। और श्रुतिरूप शब्द प्रमाण से भी वृत्ति द्वारा वह गम्य है। "यत्साक्षात् अपरोक्षं ब्रह्म" यह श्रुति रूप प्रमाण भी उस ब्रह्म की अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) रूपता का प्रतिपादन करता है तब फिर कैसे उसकी सत्ता का सर्वथा निषेध किया जा सकता है।

दूसरी बात यह है कि अध्यस्त वस्तु बिना किसी अधिष्ठान (आश्रय) के कैसे रहेगी? जैसे रस्सी के अन्दर अध्यस्तरूप से भासमान होने वाला सर्प बिना रस्सी रूप अधिष्ठान के कैसे जाना जायेगा। यदि वहाँ रस्सी न हो तो सर्प भी न भासे, परन्तु भासता अवश्य है।

इसी प्रकार यह सम्पूर्ण दृश्यमान अध्यस्त जगत् चित्र-विचित्र-विलक्षण नाना प्रकार के सुख-दुखों से भरा हुआ, प्रतिक्षण बदलने वाला है, इसका भी अधिष्ठान किसी तत्त्व को अवश्य ही मानना होगा, सो जो इस दृश्यमान जगत् का अधिष्ठान है वही तो निर्गुण ब्रह्म है। और वही सर्वस्वरूप है। उसका निषेध करने से आप अपना ही निषेध करोगे। जैसे यदि कोई यह कहता है कि- "मम माता वन्ध्या" अर्थात् मेरी माता बंध्या (बाँझ) है तब उससे पूछा जाय कि अरे बेवकूफ यदि वह बन्ध्या होती तो तू पैदा ही कैसे होता?

इसी प्रकार "मम मुखे जिह्वा नास्ति" अर्थात् मेरे मुँह में जिह्वा नहीं है। ऐसी परिस्थिति में "जिह्वा नहीं है" ऐसा कहने वाले व्यक्ति से पूछा जाय कि यदि तुम्हारे मुँह में जिह्वा नहीं है तो तुम कैसे बोल रहे हो कि "मम मुखे जिह्वा नास्ति"।

ऐसे ही यदि आप कहते है कि निर्गुण ब्रह्म कोई चीज नहीं है तो ऐसा कहने वाला व्यक्ति भी तो "मेरे मुँह में जिह्वा नहीं है" अथवा "मेरी माता बन्ध्या है" इस प्रकार कहने वाले व्यक्ति का ही तो अनुसरण कर रहा है, क्योंकि हम "निर्गुण ब्रह्म नहीं है" ऐसा कहने वाले से पूछते हैं कि शरीर भी जड़ है, इन्द्रियाँ भी जड़ हैं, मन भी जड़ है तब फिर यह शब्द व्यवहार रूप व्यापार कैसे और कहाँ से हो रहा है। कारण कि बिना चेतन का सम्बन्ध हुये जड़ वस्तु में लेशमात्र भी किसी प्रकार का व्यापार नहीं हो सकता है। जड़ वस्तु जहाँ रखी हुयी है वहाँ रखी रहेगी, जहाँ पड़ी हुई है वहाँ पड़ी रहेगी, एवं जहाँ खड़ी है वह वहीं खड़ी रहेगी, उसे इंचमात्र भी बिना चेतन के सम्बन्ध के इधर-उधर कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता है, अथवा बिना चेतन का सम्बन्ध हुये वह जड़ वस्तु स्वयं भी इधर-उधर नहीं हो सकती है, वही चेतनतत्त्व निर्गुण ब्रह्म है।

॥ जीव ही निर्गुण ब्रह्म है॥

यदि आप यहाँ यह शंका करें कि शरीर-इन्द्रियाँ आदि जड़ वस्तुओं के अन्दर सामान्यतः क्रिया को उत्पन्न करने वाला अथवा शरीर के अन्दर

क्रियाविशेषरूप चेष्टा को उत्पन्न करने वाला तो जीव ही है, और वह जीव उस निर्गुण ब्रह्म से सर्वथा भिन्न वस्तु है, फिर भी क्या आवश्यकता है उस निर्गुण ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करने की? इसका उत्तर श्री आचार्य जी ने इस प्रकार दिया है–

जीव में ब्रह्म है ब्रह्म में जीव है, जीव और ब्रह्म बिच भेद कालं।

कि वह जीव-जीव रूप से अनित्य है, विनाशी है, नश्वर है, संसारी है, परन्तु वही जीव ब्रह्म रूप से अखण्ड है, एक रस है, शुद्ध है, स्वयं ज्योतिः स्वरूप है। ये ही सब निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप लक्षण कहलाते हैं और ये सब निर्गुण ब्रह्म के लक्षण जीव में चले जाने से जीव को भी निर्गुण ब्रह्म कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। कहा भी है–

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"

अर्थात् इस दृश्यमान जगत् के अन्दर यदि कोई सत्य वस्तु है तो वह निर्गुण ब्रह्म ही है और जीव भी निर्गुण ब्रह्म रूप ही है, वही अद्वितीय है। और वही "एकमेवाद्वितीयम्" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "तत्त्वमसि" "अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियों एवं महावाक्यों से भी प्रतिपादित है।

जीव और ब्रह्म के अभेद को प्रायः अधिकांश दार्शनिक व्यक्तियों ने स्वीकार किया है। उनका कहना है कि जैसे घटाकाश और महाकाश एक हैं, 'घटाकाश' को नैयायिक भाषा में घटावच्छिन्न आकाश, और साधारण भाषा में उसे घटसम्बद्ध आकाश भी कहा है अर्थात् वही महाकाश व्यापक होने के नाते सबसे सम्बद्ध है, और सबसे सम्बद्ध होने के कारण वह घट से भी सम्बद्ध है, पट से भी सम्बद्ध है, मठ से भी सम्बद्ध है, इसलिये वह महाकाश जैसे घटाकाश रूप है वैसे ही पटाकाश-मठाकाश स्वरूप भी तो है। अर्थात् घटाकाश-पटाकाश एवं मठाकाश इत्यादि भी महाकाश से अतिरिक्त नहीं हैं, और न इनकी सत्ता महाकाश की सत्ता से ही कोई अतिरिक्त वस्तु है।

इसी प्रकार वह चेतनतत्त्व आत्मा ही ब्रह्म है वही निर्गुण है वही सगुण है वही जीव है। जीव और ब्रह्म को वेदान्त ने सर्वथा एक माना है,

इनकी एकता का अनुभव केवल वेदान्तियों ने अथवा दार्शनिकों ने ही नहीं किया है अपितु बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं ने भी इन दोनों की एकता स्वीकार की है। जैसे- भगवान् वेदव्यास जी ने, तथा श्री शंकराचार्य जी ने, तथा श्री गुरु नानक देव जी ने, श्री स्वामी विवेकानन्द जी ने, तथा स्वामी रामतीर्थ जी ने, सन्त तुलसीदास जी ने जीव ब्रह्म की एकता को सर्वथा स्वीकार किया है। तुलसीदास जी लिखते है कि–

ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया बस भयउ गोसांई, बंध्यो कीर मरकट की नाईं॥

श्री महाराज जी ने इस वार्ता को बहुत बार कहा है–

गरीब, सकल हमारी आत्मा, जेता उपज्या जीव।
वे मुख सेती भिन्न है, सन्तों परगट पीव॥

भगवान् कृष्ण ने भी गीता में स्पष्ट कहा है कि–

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"

भगवान् स्वयं अर्जुन से कह रहे हैं कि हे अर्जुन! इस शरीर के अन्दर जो यह जीव (जीवात्मा) है वे मेरा ही तो अंश है, और वह मेरा सनातन अंश है। जिस प्रकार विभागरहित हुआ महाकाश घट-पट-मठ इत्यादि में अलग-अलग की तरह मालूम देता है उसी प्रकार समस्त प्राणियों के अन्दर एकीभाव से स्थिर हुआ वह परमात्मा अलग-अलग रूप से भासमान होता रहता है और जब अलग-अलग रूप से भासमान होता है उसी समय वह शरीर आदि के छोटे परिमाण के कारण छोटा सा दिखाई पड़ता है, और छोटा दिखाई देने के कारण ही वह अंश मालूम देता है। जिस प्रकार तीव्र वायु के वेग के कारण तरंगों के आकार में उछलता हुआ समुद्र का जल सीमित अर्थात् समुद्र का थोड़ा सा अंश जान पड़ता है, वास्तव में वह मेरा अंश जीवात्मा मेरे से सर्वथा अभिन्न है अतः जीव और ब्रह्म में अर्थात् मेरे में अभेद वास्तविक है और भेद काल्पनिक है। एकमात्र माया और अविद्यारूप के द्वारा ईश्वर तथा जीव से भेदभाव हो रहा है। ईश्वर की उपाधि माया और जीव की उपाधि अविद्या है।

इस अविद्यारूप उपाधि को ब्रह्मसाक्षात्कार=आत्मज्ञान=परमात्मदर्शन के द्वारा जीव अपने से जब सर्वदा के लिये अलग कर देता है, उस समय यह जीव ईश्वर की मायारूप उपाधि में और इस उपाधि से मुक्त होकर उस परमपिता परमेश्वर में लीन हो जाता है। जिस प्रकार नाले-नालियों का जल नदी में, और नदी का जल समुद्र में लीन हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि नदी समुद्र में चली जाती है तो वह नदी ही नष्ट हो जाती है, इसका मतलब यही है कि वह नदी स्वयं समुद्र बन जाती है। इसी प्रकार यह जीव भी अपने कृत्रिम अर्थात् काल्पनिक एवं मिथ्यारूप को छोड़कर अपने वास्तविक स्वरूप में मिल जाता है अर्थात् नाम-रूपात्मक उपाधि का परित्याग करके अपने स्वयं प्रकाश-विशुद्ध ज्ञान स्वरूप-निर्गुण ब्रह्म-स्वरूप ही हो जाता है।

सन्त ज्ञानेश्वर जी ने इस विषय का बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया है उन्होंने बतलाया है कि जिस समय यह जीवात्मा उस परमतत्त्व निर्गुण ब्रह्म में मिल जाता है अर्थात् लीन हो जाता है तब उसके पहिले ही उसका द्रष्टापन तथा उसकी दृश्यता ये दोनों ही समाप्त हो जाते हैं और बाद में तो केवल अपने अनुभव से ही उस निर्गुणतत्व को जान लिया जाता है। वह तत्त्व ही पारमार्थिक तत्त्व है, और वही निर्गुण ब्रह्म है। सद्गुरु कबीर जी इस विषय में पहले ही कह चुके हैं कि--

तेज की आरती तेज कै आगे, तेज का भोग तेज कुं लागै॥१॥
तेज पखावज तेज बजावै, तेज ही नाचै तेज ही गावै॥२॥
तेज का थाल तेज की बाती, तेज का पुष्प तेज की पाती॥३॥
तेज कै आगै तेज विराजे, तेज कबीरा आरती साजै॥४॥
आपै आरती आपै साजै, आपै कींगर आपै बाजै॥१॥
आपै ताल झांझ झनकारा, आप नचै आप देखन हारा॥२॥
आपै दीपक आपै बाती, आपै पुष्प आप ही पाती॥३॥
कहै कबीर ऐसी आरती गाऊँ, आपा मद्धे आप समाऊँ॥४॥

यह अवस्था बिना प्रकाश के ही प्रकाशमान है, बिना नियन्ता के नियंत्रणशील है, नाद ही नाद का श्रवण करता है, स्वाद ही स्वाद को

चखता है, और आनन्द का उपभोग आनन्द से ही होता है, वह पूर्णता का पूर्ण परिणाम है अर्थात् वहाँ किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं है।

उस निर्गुण परमतत्त्व की प्राप्ति से मानो विश्राम को विश्राम मिल गया, सुख को सुख मिल गया, तेज को तेज मिल गया, अर्थात् तेज को तेज ने ढूँढ लिया, क्षणिकविज्ञान एवं अनित्यविज्ञान नित्यविज्ञान में मिल गया, शून्य महाशून्य में मिल गया।

जिस प्रकार अलंकार के अन्दर सोना छिपा रहता है और छिपने पर भी सोना ही अलङ्कार को धारण करता है, उसी प्रकार इस नामरूपात्मक जगत् के अन्दर अथवा इस दृश्यमान जगत् की जननी जगदम्बा महामाया की ओट में वह परमतत्त्व निर्गुण ब्रह्म छिपा हुआ है और वही छिपे-छिपे इसे धारण भी किये हुये है, अपने अन्दर इसे अध्यस्त किये हुये है, अपनी सत्ता से ही इसकी सत्ता बनाये हुए है।

जिस प्रकार सूर्य को रात्रि तथा दिन का कोई भी पता नही रहता है क्योंकि उसने न रात को देखा न दिन को। उसी प्रकार विश्व जन्मता है या मरता है इन दोनों ही बातों की उसे खबर नहीं, यह तो एकमात्र हम लोगों की कल्पना है। उसको तो इसकी खबर तक भी नहीं है। यह उपदेश श्री सद्गुरु जी ने श्री धारीराम जी को निमित्त बनाकर हम सब के लिये दिया है।

॥ सगुणब्रह्म की सर्वस्वरूपता ॥

आचार्य श्री सद्गुरु जी महाराज ने निर्गुणब्रह्म की उपासना के ऊपर अधिक जोर दिया है इसलिये हमने उनके उपदेशानुसार ही सर्वप्रथम निर्गुणब्रह्म का विवेचन किया है। अब उसके पश्चात् हम सगुणब्रह्म का विवेचन कर रहे हैं।

एक बार वि. सं. १८०६ चैत्र शुक्ला पञ्चमी के दिन श्री गरीबदासाचार्य्य जी महाराज अपने शिष्यों तथा सेवकों को उपदेश दे रहे थे उस समय एक शिष्य (प्रेमदास जी) ने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना पूर्वक पूछा--

प्रश्न--जब आप बता रहे हो कि परमात्मा सब स्थानों में व्यापक है तो फिर सगुण की क्या आवश्यकता है। मेरी इस शंका की निवृत्ति आप कृपा

करके अवश्य करो। यह सुन कर सद्गुरु जी ने इस प्रकार कहा।

उत्तर- **गरीब धरिया से भी काम है, प्रह्लाद भक्त कुं बूझ।**
नरसिंघ उतरे आन कर, किन्हें न समझी गूझ॥

श्री आचार्य जी ने कहा कि धरिया (सगुण ब्रह्म) तथा अवतार की भी आवश्यकता हर समय रहती है उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह ईश्वर सदा ही अपनी माया का आश्रय लेकर अनेक रूपों में आते ही रहते हैं। जैसे कि प्रह्लाद की रक्षा के लिये नरसिंह (आधा शरीर शेर का और आधा मनुष्य का) शरीर धारण करके आये उनकी इस गुप्त लीला को उस समय किसी ने भी नहीं समझा इत्यादि अनेक रूपों में परमात्मा आते हैं अपने भक्तों की रक्षा के लिये जब जैसे रूप की आवश्यकता पड़ती है तब उसी रूप को धारण करते हैं जैसे कि कच्छ, मच्छ इत्यादि परमात्मा के अनन्तों अवतार हैं–

गरीब अनन्त कोटि अवतार हैं, नौचितवै बुद्धि नाश।
खालक खेलै खलक में, छः रितु बारह मास॥

सद्गुरु जी ने कहा कि ईश्वर के अवतारों की तो कोई गिनती ही नहीं हो सकती जो केवल नौ अवतार ही मानते हैं उनकी बुद्धि विचार से रहित है। रामायण में भी इस बात का प्रमाण मिलता है। यथा–

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।
अनुभव गम्य भजहिं जेहिं सन्ता॥
नाना भांति राम अवतारा।
रामायण सत कोटि अपारा॥

अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि वह ईश्वर निर्गुण निराकार होते हुए भी अपने भक्तों की रक्षा करने के लिये हर समय आवश्यकता के अनुसार आते ही रहते हैं क्योंकि भक्त के लिये तो वही सब कुछ हैं। उपरोक्त विषय के अनुसार आगे प्रकरण में स्पष्ट किया जाता है।

हम इस बात को पहिले ही बतला चुके हैं कि निर्गुण और सगुण ब्रह्म में कोई विशेष भेद नहीं है, और न इन दोनों की स्वतन्त्र सत्ता ही है।

किन्तु यदि विचार किया जाय तो भेद अवश्य है परन्तु वह भेद उपाधिकृत होने के नाते काल्पनिक है वास्तविक नहीं है, और अभेद पारमार्थिक है।

निर्गुण ब्रह्म जैसे ज्ञानियों के लिये श्रेष्ठ है वैसे ही सगुण ब्रह्म भक्तों के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है। जिस प्रकार अपने घर में अपने माता-पिता भाई-बहिन इनका सम्बन्ध अपने साथ है उसी प्रकार भक्तों का वही सगुण ब्रह्म माता है, वही पिता है, वही भाई और वहीं बहिन है, वहो चाचा हैं, वही गुरु हैं, वही सब कुछ है। सन्त तुकाराम जी कहते हैं–

कृष्ण माझी माता कृष्ण माझा पिता।
बहिन बन्धु चुलता कृष्ण माझा॥
कृष्ण माझा गुरु कृष्ण माझा तारा।
उत्तरी पैल पारु कृष्ण माझाा॥

अर्थात् कृष्ण ही मेरी माता और कृष्ण ही मेरा पिता है, और कृष्ण ही बहिन तथा बन्धु है, कृष्ण ही मेरा गुरु है और कृष्ण मेरे को तारने वाला है।

इस प्रकार भगवान् राम-कृष्ण, श्री गरीबदास जी, कबीर साहब जी, नानकदेव जी, इत्यादि अवतारी पुरुष सभी सगुण ब्रह्म ही तो हैं। और वही सगुण ब्रह्म भक्तों का मन-धन-प्राण-तारने वाले मारने वाले, साथी-लंगोटिया यार और जो कुछ है सब वही है-वही है सगुण ब्रह्म।

उस सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद नहीं है। यह हम पहिले कह आये हैं। जिस प्रकार गरमियों के दिनों मे एक जंगली आदमी ने घी खरीद लिया, और उस घी को लेकर वह आदमी जंगल में चला गया, ठंडी में वह घी सबका सब जम गया, वह रोने लगा कि मेरे पैसे तो वैसे ही फोकट में चले गये। जब मैंने इस घी को खरीदा था उस समय तो यह घी तो पतला था अच्छा था अब तो यह बिल्कुल बिगड़ गया, खराब हो गया जम गया इत्यादि रूप से कह करके पश्चात्ताप् करने लग गया। जोर से चिल्लाने लग गया। इतने ही में एक नागरिक वहाँ आ पहुँचा, और उसकी बातें सुनकर उसने उसके घी को ठीक कर दिया,

अर्थात् जैसा गरमियों मे था वैसा ही आग जलाकर कर दिया। तब जंगली उस आदमी से कहने लगा, कि मैं तो व्यर्थ ही रो रहा था यह तो वही घी है, इसमें तो लेशमात्र भी खराबी नहीं थी। अर्थात् जिस प्रकार पतले घी में सुन्दर गन्ध और चिकनापन रहता है उसी प्रकार वे ही सब बातें तो इसमें भी हैं। हाँ आकार-प्रकार में केवल भेद था और किसी भी प्रकार का भेद न था और वह आकार-प्रकार का भेद कोई भेद नहीं माना गया है।

उसी प्रकार सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में कोई भी भेद नहीं है। सन्त लोगों ने इस बात को खुलेआम चेतावनी करके कहा है कि–

गरीब निर्गुण सरगुण एक है, दूजा भर्म विकार।
निर्गुण साहिब आप हैं सरगुण संत विचार॥
सर्गुण निर्गुण नाहीं भेद रे।
दोही टिपरी एक चीनाद॥

अर्थात् जैसे खेलते समय दो डंडों से एक ही आवाज निकलती है। एवं जिस प्रकार दोनों ओठों से एक ही शब्द निकलता है, दोनों कानों से एक समय एक ही प्रकार का शब्द सुनाई पड़ता है, तथा दोनों आँखों से एक ही नजर उत्पन्न होती है, दोनों हाथों से ताली बजाने पर एक ही आवाज निकलती है, बैलगाड़ी के दोनों पट्टियों से एक ही बैलगाड़ी चलती है, पति और पत्नी इन दोनों का एक ही दाम्पत्य होता है, दो अंगुलियों की चुटकी बजाने से एक ही आवाज होती है। अर्थात् इन दोनों में भेद नहीं है, अर्थात् जो भी भेद है वह एक मात्र उपाधिक भेद है न कि वास्तविक।

॥ सगुण निर्गुण में भेद कल्पित॥

यहाँ पर यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि यदि इन दोनों में किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं है तो इन दोनों में भेदात्मक रूप व्यवहार क्यों होता है?

इसका उत्तर यही दिया गया कि यह जो भेद व्यवहार दोनों में देखने में आता है वह एकमात्र उपाधिकृत एवं कल्पित है वास्तविक नहीं है। एक

आदमी ऋषीकेश गया वहाँ गंगा-स्नान आदि करके, उसने गंगा का जल एक शीशी में भर के अपने गाँव के लिये प्रस्थान कर दिया। गाँव में जब वह पहुँचा तो लोग जमा हो गये। उसने वह तीर्थ का जल सब को देना प्रारम्भ किया, वहाँ एक आदमी उसे ऐसा मिला जिसने ऋषीकेश की गंगा देखी थी। तब वह व्यक्ति कहने लगा कि यह गंगा जल तो हो ही नहीं सकता है, क्योंकि इसके किनारे पर चीड़ के पेड़ नहीं, तथा किनारा नहीं, वृक्षों की छाया नहीं है, तथा फूलपत्ती भी नहीं पड़ी है, इसके अतिरिक्त स्वर्गाश्रम के पास ऋषीकेश में गंगा जी में नौका चलती हैं वे भी तो नहीं दिखाई पड़ती हैं। तब उसने उसको उत्तर दिया कि जल तो वही है किन्तु उसमें कुछ पहले जल के उपाधि कृत धर्म नहीं हैं इसीलिये यह कुछ भिन्न सा प्रतीत हो रहा है। जल वास्तव में यह भी वही है क्योंकि इसके न तो वर्तमान में कीटाणु हैं और न आगे हो सकते हैं क्योंकि इसमें आप कीटाणुओं को अभी भी यदि डाल दें वे तुरन्त मर जायेंगे। यही विशुद्ध गंगा जल की पहिचान होती है। इतने ही में एक आदमी ने उसमें कहीं से एक कीटाणु (कीड़ा) लाकर छोड़ दिया, वह छोड़ते ही मर गया। इस दृष्टान्त के आधार पर यह समझा दिया गया कि यह जल भी गंगा जल ही है। इसी प्रकार यहाँ प्रकरण में सगुण और निर्गुणब्रह्म दोनों एक ही हैं। केवल कुछ उपाधिकृत धर्मों के भेद से भेदाभास प्रतीत हो रहा है। जैसे सगुणब्रह्म के अन्दर निराकारता-निर्विकारता-नित्यता आदि धर्म नहीं हैं परन्तु फिर भी सर्वज्ञता-सर्वव्यापकता-आदि दोनों के समान धर्म भी तो हैं, इसके अतिरिक्त सगुण और निर्गुण ये दोनों ही में स्वरूप लक्षण का समन्वय (एकता) भी तो हो रहा है इससे साफ सिद्ध है कि इन दोनों में जो भेद मालूम पड़ता है वह सिर्फ उपाधिभेद प्रयुक्त ही भेद है अतः वह भेद सर्वथा मिथ्या है।

॥ भक्त और भगवान् का प्रेमालाप॥

अब प्रश्न देवभक्तों का है–यह झगड़ा बहुत ही आनन्द का है। भक्त लोग कहते हैं कि हमने तुझको (सगुण ब्रह्म को) सगुण ब्रह्म सिद्ध कर दिया।

भगवान् ने कहा कि यह बात बिल्कुल झूठ है कि आप भक्त लोगों ने मुझे भगवान् सिद्ध कर दिया है, बल्कि मैंने ही तुम लोगों को भक्त सिद्ध कर दिया है। कारण कि 'भक्त' साकांक्ष शब्द है, अर्थात् 'भक्त' इस शब्द के सुनते ही यह आकांक्षा हो जाती है कि किसका भक्त है।

इसका एकमात्र यही उत्तर होता है कि--भगवान् का भक्त। इस प्रकार आकांक्षा के बल पर भगवान् से भक्तों की ही सिद्धि होती है।

इस पर भक्तों ने कहा कि अच्छा यह बतलाओ यदि हम लोग न होते तो तुम्हें भगवान् ही कौन कहता?

भगवान् ने कहा अरे भक्तो! यदि मैं न होता तो तुम्हें भक्त ही कौन कहता? क्योंकि मैं तो पहिले ही कह चुका हूँ भक्त शब्द साकांक्ष है।

भक्तों को गुस्सा आया और कहा कि देखिये भगवन्! आपका तो वास्तविक स्वरूप निर्गुण-निराकार-निर्विकार इत्यादि है, परन्तु जिस प्रकार ठंड विशेष पड़ने से जल जम जाता है और उसके जम जाने से उसका दूसरा ही स्वरूप हो जाता है उसी प्रकार वह निर्गुण ब्रह्म हमारी अटूट भक्ति से सगुण ब्रह्म बन गया और वही सगुण ब्रह्म आप हैं। सन्त तुकाराम जी भी कहते हैं--

अरूप होते ते रूपासी आले-ते नाम रूपासी पावले रे॥

अर्थात् जो निर्गुण ब्रह्म से शून्य था, निराकार और निर्विकार था, वही रूप को आकार को विकार को प्राप्त होकर सगुण बन गया।

इसलिये हे भगवन्! हमने ही तुम्हें भगवान् सिद्ध किया है।

भगवान् ने कहा अच्छा हे भक्तो! यह तो बतलाओ कि तुमने उपासना करके जो मुझे सिद्ध किया है तो क्या निर्गुण स्वरूप वाले मुझ ब्रह्म को सिद्ध किया है? अथवा गुण और आकार वाले सगुण-स्वरूप मुझ ब्रह्म को सिद्ध किया है?

यदि कहो कि तुमने आकार-विकार से सर्वथा शून्य मुझ निर्गुण ब्रह्म की उपासना करके मुझे सिद्ध किया है--तो यह तुम्हारा कहना बिल्कुल झूठा है। क्योंकि निर्गुण की तो तुम उपासना ही नहीं कर सकते और मुझे पूरा विश्वास है कि आप लोग निर्गुण ब्रह्म को पसन्द भी नहीं करते हो।

और यदि यह कहो कि रूप और आकार-विकार वाले मुझ सगुण ब्रह्म की उपासना करके तुमने मुझे सिद्ध किया है, तब तो कोई बात ही नहीं, क्योंकि मैं ही सर्वप्रथम आप लोगों की उपासना का आधार बना।

इसके बाद भक्तों ने कहा कि भगवन्! आप जरा यह तो बतलाओ कि जब आपने यह सिद्ध कर दिया कि हम लोगों ने सर्वप्रथम सगुण की उपासना करके आपकी सिद्धि की तो आप यह बतलावें कि हमारी उपासना के पहिले आप सगुण थे अथवा निर्गुण। निर्गुण तो कह नहीं सकते कारण कि हम भक्तों को आप निर्गुण ब्रह्म पसन्द ही नहीं हैं यह हम पहिले ही कह चुके हैं।

और यदि कहो कि हम भक्तों की उपासना के पहिले सगुण थे तो यह भी नहीं कह सकते, कारण कि जो भी कार्य हुआ करता है वह कारण के बिना नहीं होता है, सो आप पहिले यह बतलावें कि किस कारण सगुण थे। मानना होगा कि भक्तों के अदृष्ट वश, अथवा भक्तों की करुणा भरी पुकार वश, अथवा उनकी आर्त्तनाद एवं जिज्ञासा वश ही आपने अपना सगुण रूप धारण किया, तब तो इससे हम भक्तों की ही विजय हुई, अर्थात् हम भक्त लोग ही आपको सिद्ध करने वाले है, अर्थात् हमारे द्वारा ही आपकी सिद्धि हुई यह मानना होगा। अब तो भगवान् चुप हो गये और भक्त भी चुप हो गये, क्योंकि उनसे भी भगवान् ने कहा था कि तुम मेरे निर्गुण रूप की उपासना नहीं कर सकते हो। आखिर में दोनों ने निश्चय किया कि बीजाङ्कुर न्याय से अर्थात् बीज पहिले या अङ्कुर पहिले यह निश्चय जैसे नहीं हो सकता है उसी प्रकार भक्त पहिले या भगवान् पहिले यह निश्चय नहीं हो सकता है, कहना होगा कि दोनों ही अनादि हैं। आचार्य श्री कहते है कि--

बीज में वृक्ष है वृक्ष में बीज है,
बीजं और वृक्ष का कह्या ब्याना।

॥ सगुण ब्रह्म की आवश्यकता॥

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप जब कि निर्गुण-निराकार और निर्विकार ही है तब फिर क्या आवश्यकता हुई उसे

अपने गुण-आकार एवं विकारवाले सगुणस्वरूप को धारण करने की? भगवान् ने स्वयं कहा है कि–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

जब-जब धर्म की तरफ से लोगों को ग्लानि और अधर्म में प्रवृत्ति होती है उस समय मैं साधु महात्मा लोगों की रक्षा करने के लिये और पापी लागों का विनाश करने के लिये तथा धर्म की स्थापना के लिये प्रत्येक युग में स्वयं अवतरित होता हूँ यही मेरा सगुण स्वरूप है।

यहाँ पर भी शंका होती है कि अवतरित होना ही तो जन्म लेना कहलाता है। तो क्या वह हमारे समान ही कर्मानुसार जन्म धारण करता है अथवा माया के वशीभूत होकर वह जन्म लेता है?

इसका उत्तर यही दिया गया कि वह माया के वशीभूत होकर अथवा कर्मों के वशीभूत होकर जन्म नहीं लेता है क्योंकि कर्मों से वह स्वयं ही बहुत दूर है कारण कि वह निष्क्रिय है और माया तो स्वयं ही उनके वश में है।

"प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः"

भगवान् ने स्वयं ही कहा है कि मैं अपनी शक्तिस्वरूपिणी माया (प्रकृति) को अपने कब्जे में रख कर ही बारम्बार जन्म लेता हूँ। और मेरा कोई अदृष्ट नहीं तथा कर्म नहीं- मैं तो भक्तों के अदृष्ट और कर्मों के अनुसार ही जन्म लेता हूँ। इसका यह मतलब नहीं है कि भगवान् भक्त-प्राणियों के कर्म अथवा कर्मजन्य अदृष्ट के वशीभूत हैं या उनके सर्वथा अधीन एवं बन्धन में हैं।

बल्कि भगवान् का यह स्वरूप ही बतलाया है कि जो आत्मरूप चेतन तत्त्व इन संसार के प्राणियों की उत्पत्ति का तथा विनाश का एवं उनकी गति और अगति का विद्या और अविद्या का इन सबका ध्यान

रखता है वही तो भगवान् है। कहा भी है–

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्।

वेत्ति विद्याञ्चाविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

सन्त ज्ञानेश्वर जी ने अपनी वाणी में यही भाव दर्शाया है–

ऐसा यश श्री औदार्य ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य।

तैसा ही गुण वर्य सती जेथ हणोनि ते भगवन्त॥

अर्थात् जिसे यश-श्री-औदार्य-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य, ये छः गुण जिसके अन्दर रहते हैं यही सगुण ब्रह्म भगवान् है।

और वह भगवान् कर्तुं-अकर्तुं-अन्यथा कर्तुं सर्वथा समर्थ है। यद्यपि हम इस सगुण ब्रह्म का निरूपण सर्वांश में नहीं कर सकते हैं। क्योंकि वह बड़ा ही चमत्कारी है फिर भी यथाशक्ति श्री सद्गुरु जी महाराज के मुखारविन्द से परम्परा से जैसा सुना है वैसा कुछ वर्णन हम करते हैं। श्री सद्गुरु जी महाराज इस पद को बहुत कहा करते थे कि–

दुर्योधन के मेवे त्यागे साग विदुर घर खाये।

भीलनी के बेर अधिक महिमा से रुच-रुच भोग लगाये॥

तेरे यहाँ भक्तों में तो कोई भेद भाव है ही नहीं। इसीलिये किसी भक्त की भक्ति के वशी भूत होकर आप उसके यहाँ सब्जी की गड्डियाँ बाँधने लगते हो, गोपियों की बनी बनाई रसोई तथा घी ही चुरा लेते हो, कभी मक्खन ही चुराकर खाना शुरू कर देते हो,

इस प्रकार तुम्हारी लीला अपरम्पार है भगवन्!

इतना ही नहीं तुमने अपनी परम भक्तिन सन्तजनाबाई के साथ जा-जाकर गोबर तक उठाया, उसका ढेर तक लगवाया, इधर गोपियों के मक्खन के भरे हुये घड़ों को मक्खन खा-खाकर तुमने खाली कर दिया, और जिस समय गोपियाँ गोबर इकट्ठा करती थीं उस समय तुम उस इकट्ठे किये हुये गोबर को इधर-उधर कर देते थे, उन्हें परेशान करते थे, और इधर अपनी परम भक्तिन सन्तजनाबाई के यहां सुबह ही चार बजे जाकर आटा पीस आते थे। कभी-कभी उसके साथ चक्की पीसते समय गाना

भी गाते थे, और गोपियों के साथ ठीक इसके विपरीत ही करते थे कि वे जिस समय चक्की पीसती थीं तो उनकी चक्की के ऊपर खड़े होकर चक्की को ही बन्द कर देते थे।

इधर गोरा कुम्हार के यहाँ तो तुम घड़े बनवाते थे, और गोपिकाओं के सिर के ऊपर रखे हुये मक्खन के भरे हुये घड़ों को मक्खन खाकर खाली करके फोड़ देते थे, यह तुम्हारी लीला ही विलक्षण थी भगवन्!

जैसे श्री महाराज जी ने कहा भी है–

मुकुट मुरारी[1] की मुरली नै मोहीरी।।टेक।।
कहै कुछ और करै कुछ औरै। बातन[2] धोही[3] री।।१।।
माखन-माखन खात कन्हैया। रह गई छोई[4] री।।२।।
बिछर जात तब ढूँढत डोलू[5]। गहबर[6] रोई री।।३।।
अंझू[7] नीर झरै[8] निश[9] बासर[10]। अंगिया[11] धोई[12] री।।४।।
दास गरीब पलक[13] कै[14] अंदर[15]। है निरमोही री।।५।।
मुरली धर[16] आवत है री मुरली धर।।टेक।।

---

१. मूर राक्षस को मारने वाले श्री कृष्ण भगवान्।
२. बातचीत में।
३. धोखेबाज।
४. लस्सी, फोकट।
५. घूंमू।
६. बहुत घना वन।
७. आँसू।
८. गिरै।
९. रात।
१०. दिन।
११. स्त्रियों के पहनने का वस्त्र जो कि स्त्रियाँ अपने स्तनों की रक्षा के लिए पहनती है।
१२. गीली हो गई।
१३. नेत्र का पलक।
१४. के।
१५. अन्दर-भीतर, बीच।
१६. मुरली को धारण करने वाला।

प्रघट[17] नाम सभा में लेवै। मेरे कुलकूँ लजावत[18] है री।।१।।
मुरली बजावै शब्द सुनावै, कछु अटपटी[19] बानी गावत है री।।२।।
हम दधि[20] बेचन जात नगर में, मेरी मुटकी[21] फोर गिरावत है री।।३।।
अजामेल गनिका से त्यारे, भीलनी के झूठे फल खावत है री।।४।।
सुदामा दालिद्र[22] मोच[23] किये हैं, अन्न धन चाह[24] मिटावतहैरी।।५।।
दुशासन से पच-पच हारे, द्रौपदी चीर बढ़ावत है री।।६।।
देवल फेरया गऊ जिवाई, नामा की छांन छिवावत[25] है री।।७।।
धंना भगत कुं कांकर बोई, जाका खेत निपावत[26] है री।।८।।
केशो नाम कबीर कै आये नौलख, बोडी[27] ढुरावत[28] है री।।९।।
विप्र हैरांन[29] किये रैदासा, कनक जनेऊ दिखावत है री।।१०।।
दास गरीब औह अबल[30] बली है, ग्वालनियौं की दही गिरावत हैरी।

सन्त एकनाथ महाराज के यहाँ १२ वर्ष तक काबड़ से तुमने पानी भरा, कहीं-कहीं तो अपनी पूजा स्वयं आप ही कर लेते हो, कहीं पर तो गणेश जी के मोदकों के ऊपर ही हाथ मार लेते हो, यशोदा माता ने जब कहा कि तूने मिट्टी खाई है जरा मुँह तो खोलो, तब मुँह की मिट्टी तो न

---

१७. प्रगट प्रत्यक्ष।
१८. लज्जित करता है।
१९. कपट छल से मुक्त मोहित करने वाली वाणी।
२०. (दधि) दही।
२१. मटकी, हण्डिया।
२२. निर्धनता।
२३. दूर।
२४. इच्छा।
२५. बनाता है।
२६. उपजाना।
२७. बोरी।
२८. पहुँचाना या गेरना।
२९. परेशान।
३०. निर्बल वा बढ़िया।

जाने कहाँ गायब कर दी बल्कि मुँह के अन्दर ही उस विश्वरूप के दर्शन करा दिये जिस तरह अर्जुन को कराये थे।

विदुर काका ने जब तुम्हें निमंत्रण दिया कि आज हमारे घर आप अवश्य ही पधारना, उधर उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से भी कह दिया था कि आज अपने घर आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आने वाले है, तुम ऐसे समय में उनके घर पहुँचे जिस समय उनकी धर्मपत्नी स्नान कर रही थी उसी समय उसने उठकर दरवाजा खोला, और बिछे हुये आसन पर न बैठाकर नीचे ही बैठा दिये। इसके बाद विदुर की घरवाली ने जिस समय छीलकर केला देना शुरू किया उस समय छिलका भगवान् को दे रही थी अन्दर का भाग बाहर फेंक रही थी, और ये महाराज भी छिल्का बड़े ही प्रेम से खा रहे थे, ऐसा मालूम पड़ रहा था कि मानों इनके सामने बड़ा ही सुन्दर पकवान रखा हुआ है जिसे ये बड़े ही चाव के साथ खा रहे हैं। दोनों ही मानो उस समय अपने को भूले हुये थे। इतने ही में काका विदुर आये, और इस विपरीत क्रम को देखकर विदुर जी ने केले के अन्दर का भाग भगवान् को देना शुरू किया और छिल्के को फेंकना शुरू कर दिया। भगवान् ने जब केले के अन्दर वाला भाग खाया तो भगवान् बोले अब तो इसके अन्दर कुछ भी रस नहीं आ रहा है।

इसका अभिप्राय यही है कि भगवान् केवल भक्तों के भाव के भूखे हैं वे केले के अथवा सन्तरे के भूखे नहीं हैं और भगवान् भूल भी नहीं करते हैं किन्तु भक्त के प्रेमाभक्ति को देखकर उस प्रेम में बहुत अधिक विह्वल हो जाते हैं। इसलिये भगवान् भक्ति का ही उपदेश देते हैं—

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।"

अर्थात् हे अर्जुन! तुम अपना मन मेरे में लगा दो, और यदि यह कार्य तुम्हारे लिये कठिन मालूम पड़े तो तुम मेरी भक्ति ही किया करो, और यदि यह कठिन मालूम दे तो मेरे लिये यज्ञ ही कर दिया करो, और यज्ञ भी रुपये पैसे से साध्य होने के नाते यदि कठिन मालूम दे तो तुम मुझे नमस्कार मात्र ही कर दिया करो।

हमारे महाराज के अन्दर सब गुण ही गुण भरे हुये हैं, इसीलिये वे सगुण हैं, अपने भक्तों के ऊपर दया करने के कारण वे दयालु हैं, और भक्तों के ऊपर वात्सल्य (प्रेम) होने के नाते वे भक्तवत्सल हैं। दीन अवस्था को प्राप्त हुई जो द्रौपदी है आप उस दीना के नाथ—दीनानाथ हैं और आप अपने भक्तों का आनन्द वर्धन करने के नाते आनन्दवर्धन हैं। योगी एवं भक्त लोग आपके अन्दर रमण करते हैं इसलिये आप ही राम हैं। कभी-कभी परशु (फरसे) से दुष्टदल के दलनरूप रमण से आप ही परशुराम हैं। हे भगवन्! हम आपके कहाँ तक गुणानुवाद करें जिनका उद्धार अथवा पावन करने वाला कोई भी नहीं है उन पतितों के पावन पतितपावन भी तो आप ही हैं। जैसे कि इस विषय में स्वयं आपकी सम्मति भी है—

जुगन-जुगन हम कहते आए। भौसागर से जीव छुड़ाए॥
तेतीस कोटि की बन्ध छोड़ई बन्दी छोड़ दयाल।

श्री कृष्ण भगवान् भी कहते है—

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधु रेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अर्थात् भक्ति—भजन अथवा भाव के कारण जो लोग मेरी शरण में आ जाते हैं वे किसी जाति-वर्ण अथवा आश्रम के क्यों न हों, अथवा कितने ही आचार-विचार से गिरे हुवे क्यों न हों, अथवा कितना ही अत्याचारी-दुराचारी-पापाचारी एवं व्याभिचारी क्यों न हो, यदि वह अपने जीवन को भक्ति मार्ग में लगा देता है तो उसे सर्वश्रेष्ठ ही जानो। जिस प्रकार सबसे बड़ी बाढ़ में डूबे हुये व्यक्ति बिना मरे हुये ही निकल आते हैं अर्थात् इस प्रकार के जीते हुये जो व्यक्ति किनारे पर पहुँच जाते हैं उनका डूबना व्यर्थ ही सा हो जाता है। उसी प्रकार सब कुछ नीच कर्म करते हुवे भी यदि वह आखिर में भी पश्चात्ताप रूप तालाब में स्नान करके, अथवा प्रायश्चित रूपी गंगाजल को अपने ऊपर छिड़कने मात्र से पवित्र अन्तःकरण वाला होकर के यदि वह भक्ति मार्ग के द्वारा मेरी शरण में आ जाता है तो

वह स्वयं भक्ति से—अपने पहिले किये हुये बुरे कर्मों को समाप्त कर दुष्कृति होता हुआ भी सुकृती बन जाता है। दुराचारी होता हुआ भी सदाचारी बन जाता है। इससे उसकी ही एकमात्र नहीं अपितु वंश-परंपरामात्र विशुद्ध हो जाती है। एवं कुलीनता सदाचारिता जन्म-जन्मान्तरीण सफलता की प्राप्ति हो जाती है। यह लोकोत्तर एवं अद्‌भुत-विलक्षण ही प्रभाव तथा महत्त्व इस भगवद्भक्ति तथा सगुण ब्रह्म की उपासना का देखने में आता है।

इसी प्रकार जिस समय गजेन्द्र ने करुणा पूर्ण पुकार लगायी तो उस पुकार को सुनते ही आप अकेले ही चक्र सुदर्शन लेकर दौड़े, और गजेन्द्र को उस आपत्ति से मुक्त किया।

जिस समय पांडव वनवास में थे उस समय एक बार ८८ हजार ऋषि लोग आये। जिनमें प्रधान थे दुर्वासा जी, उनके प्रधान दुर्वासा ने कहा कि हम भोजन करेंगे। भोजन में ये ये चीजें दो—जैसे कि महाराज जी भी कहते हैं—

खान पान कछु करो विचारा। छप्पन भोग पाक हो त्यारा॥
आज के बोए धान मंगाओ। मानसरोवर का जल ल्याओ॥
आज के बोए आम अंगूरा। काम धेन का दूध कपूरा॥
यौह भोजन संजम विधि कीजै। जब दुर्वासा देवा रीजै॥

रात्रि का समय था उसमें भी वे लोग दो दिन के भूखे, पाण्डव लोग इस प्रकार की ऋषियों की परिस्थिति को देखकर घबरा गये, द्रौपदी ने देखा परिस्थिति बहुत ही विषम है तो तुरन्त सगुण ब्रह्म भगवान् कृष्ण की पुकार की।

अनहोनी होनी सब होई। पार ब्रह्म हैं पूर्ण सोई॥
द्रोपदी कल्पकरी मनमाहीं। याहगति अचरज पूर्ण सांई॥
दूर देश द्वारका के वासी। कैसे पहुँचेंगे अविनाशी॥
मोरे शब्दं के प्रवीना। द्रोपदी अर्ज करै आधीना॥
मोरी विपत्ति निवारो स्वामी, द्रोपदी अरज करै घणनामी॥

पुकारने के साथ ही आ गये। और द्रौपदी से वह सब कथा सुन कर किसी पात्र में लगा हुआ कुछ अन्न का अंश खाकर वहीं अर्थात् जहाँ वे लोग स्नान कर रहे थे उन लोगों का पेट इस प्रकार भर दिया गया कि उन्हें बिल्कुल भी भूख नहीं रह गयी थी जिससे कि फिर वे आकर भोजन कर सकें। भगवान् ने देखा कि अब यद्यपि वे आयेगें नहीं परन्तु फिर भी अपना पूर्ण उत्तरदायित्व समाप्त करने के लिये भीम को उन्हें बुलाने के लिये भेजा और कहा कि उन्हें शीघ्र ही बुलाकर लाओ। भीम वहाँ पर गया और उन लोगों से कहा कि हे ऋषि लोगो! भोजन तैयार है चलो। ऋषि लोग बोले क्या वहाँ वह संसार रूपी सिनेमा का संचालन करने वाला मैनेजर कृष्ण आ गया है? भीम ने उत्तर दिया कि वे तो वहीं हैं। ऋषियों ने सोचा कि अब यहीं से निकल चलो—क्योंकि अब भूख तो रही ही नहीं चलकर क्या करेंगे? कारण कि कृष्ण के सामने हमारी दाल भी गलनी नहीं है, ऐसा आपस में विचार-विमर्श कर वहाँ से लौट गये, और वहाँ आये ही नहीं। इस प्रकार इन सगुण ब्रह्म महाराज कृष्ण ने अपने भक्तों की इज्जत की रक्षा हमेशा समय-समय पर की।

इन्हीं तुम्हारे लोकत्तर गुणों को देखकर लोग तुम्हें सगुण कहते हैं, और ब्रह्म तो तुम स्वयं ही हो, इस प्रकार तुम सगुण ब्रह्म कहलाते हो।

॥कलियुग का श्री सद्‌गुरु जी के पास आना॥

एक समय आप बैठे हुए अपने प्रेमी सेवकों को सदुपदेश दे रहे थे और प्रेमी-जन आपके अमृतमय उपदेश का पान कर रहे थे। उसी समय एक पुरुष भयंकर रूप धारी काले रंग के वस्त्र पहने हुए, नीली घोड़ी पर चढ़कर श्री छुड़ानी धाम में आया। घोड़ी से उतर कर आपके समीप आ गया और आकर नमस्कार किया तब सद्‌गुरु जी ने कहा आइये राजन् बैठिये। तब लोगों ने जाना कि यह दुजाने या झज्जर का नवाब होगा। महाराज जी ने उसको आसन दिवाकर बिठाया उसने बैठते ही महाराज जी की ओर संकेत करके कहा कि आपने यह कैसा सिलसिला चलाया है। आप मेरी पूजा को विनष्ट कर रहे हैं। आप मेरे राज्य को खण्डित कर रहे हो यह आपके लिए उचित नहीं है। तब आपने कहा कि हम तो जीवों

को धर्म उपदेश देकर उनको काल के चक्कर से बचाते हैं। इसीलिए हमने यह शरीर धारण किया है और अवश्य ही काल के फन्दे से जीवों को छुड़ायेंगे। हमारा मुख्य उद्देश्य यही है और कलियुग को समझाया कि तू भी धर्म के कार्य में विघ्न न डाला कर। ऐसी सृष्टि बहुत है जो कि दिन-रात पाप कर्म में लगी रहती है। वह सब आप (कलियुग) यमराज के फन्दे में ही पड़ेगी। इस प्रकार कलियुग के साथ आपने काफी देर तक वार्ता की। वार्ता के पश्चातृ कलियुग नमस्कार कर उठ गया। उसके चले जाने के पश्चात् पास में बैठे हुए सेवकों ने पूछा कि महाराज जी यह कौन था और किसलिए आया था। तब सद्गुरु जी ने कहा कि यह तो कलियुग था। इसको दुःख चिन्ता हो गई कि कहीं सारी सृष्टि धर्मात्मा न बन जाये। जिससे कि मेरा राज्य ही चौपट हो जाये। हमने उसको समझा दिया है कि हमको तो अपने हंसों का उद्धार करना है जो हमारे से बिछुड़े हुए हैं। उनको हम किसी प्रकार भी नहीं छोड़ेंगे। अवश्य उद्धार करेंगे और जो भी हमारी शरण में आयेगा उसे तो हमने अवश्य ही पार करना है यह तो हमारी प्रतिज्ञा है, हम आये ही इसीलिए हैं और हमारा काम ही क्या है?

॥ कुआँ और बाग॥

आपने अपने करकमलों द्वारा वि. सं. १८१७ में पूर्णिमा के दिन "धौला कुआँ" नामक कुआँ की खुदाई प्रारम्भ की। जिसको कुछ दिनों में पूरी तरह तैयार कर दिया गया। इस कुआँ का पानी बहुत अच्छा निकला था। इस कुआँ के जल में काशी जी के "मृत्युञ्जयकूप" की तरह यह एक विशेषता थी कि पेट की बीमारी वाला कोई भी जल पी लेता था वह ठीक हो जाता था। ऐसा किसी एक महात्मा के मुख से सुना है। ऐसा भी सुनने में आया है कि जब-जब अकाल पड़ जाता था तो आस-पास के सभी लोग इसी कुआँ के जल से खेती करते थे। क्योंकि इसके जल से खेती अकाल पड़ने पर भी अच्छी होती थी। इस समय भी यह कुआँ भण्डार के पिछली ओर (आधा भण्डार में एवं आधा बाहर की ओर) है। इस समय इसका पानी खारा हो गया है।

आपने अपने कर कमलों से एक बड़ बेरियों का बगीचा भी लगवाया था। पहले भी यहाँ बगीचा था किन्तु वह अतिजीर्ण हो गया था। अतः आपने फिर से उस बगीचा को लगाकर उसका जीर्णो उद्धार किया। इसी बगीचा में एक जाँड़ का वृक्ष था जिसके नीचे बैठकर आप सभा लगाया करते थे एवं अपनी अमृतमयी वाणी का उपदेश भी देते थे। वह स्थान अब भी आपकी कोठी स्वामी दयाल दास उत्तर दिशा के द्वार के सामने है। किन्तु अब तो बगीचे की जगह में उनके वंशज गृहस्थी लोगों ने मकान बना लिए हैं। बगीचे और ४८ बीघे यह जमीन झज्झर के नवाब नूरहसन खान ने दी थी। क्योंकि वह नाम उपदेशी था। आपने उपदेश दिया आपके उपदेश से ही वह समदृष्टि हो गया था। वह हिन्दू-मुसलमान को एक समझने लगा था। यह बाग वाली भूमि जण्ड साहिब वाणी रचना स्थानी राय बहादुर चौधरी धासीराम के सुपुत्र चौधरी सुरिन्दर तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमति फूलकली ने जण्ड साहिब वाली भूमि दान कर दी जो संस्था के अधिकार में है।

॥ अकाल की निवृत्ति॥

विक्रमी सम्वत् १८२० में सम्पूर्ण देश के अन्दर वर्षा न होने के कारण भीष्ण (बहुत भारी) अकाल पड़ा था। जिसके कारण पशु व मनुष्य भूखे मरने लगे थे। लोग अपने घर बार को त्याग कर गंगा व यमुना जी के किनारों पर चले गये थे और घास-पत्तियाँ खाकर गुजारा करते थे जो अमीरों के लड़के अच्छे-अच्छे पदार्थों को भी प्रसन्न होकर नहीं खाया करते थे वह एक-एक रोटी के लिये भटकने लगे। यहाँ तक कि जिन खड़बाथू आदिक को गधे भी नहीं खाते थे उस को मनुष्यों ने खाकर अपनी क्षुधा का निवारण किया। जगद्गुरु श्री गरीबाचार्य जी अपनी वाणी में इस प्रकार कहते हैं—

गरीब खर पवांड़ नहीं खात हैं, मनुषों खाया तोड़।
सांगरु टीटर झाजरु, लीन्हें वृक्ष झिरोड़॥

पंवाड़ एक प्रकार की बूटी है और जिसको कोई भी पशु-प्राणी नहीं खाता उनको मनुष्यों ने खाया। करीर के टीट (डेले) और खुराक साग-पत्तियाँ

जो कि किसी भी काम में नहीं आती, झोंजरु[1] भी वृक्षों के पत्तों तक को नहीं छोड़ा गया। उनको भी काट-काट कर खा गये। बहुत भारी हाहाकार मच गया। तब कुछ समझदार लोग दूसरे लोगों को कहते कि भाई! धैर्य रखो! अब परमात्मा हमारी अवश्य सुधि लेगा। कुछ लोग इस भयंकर दुःख से डरे हुए कहते थे कि कहीं इससे अधिक और कोई विपत्ति परमात्मा हमारे ऊपर न डाल दें और कोई कहते कि परमात्मा तो किसी को दुःख नहीं देता। यह दुःख तो हमारे ही कर्मों का फल है। सुख-दुःख जीव के पुण्य और पाप के अनुसार ही मिलता है। इस प्रकार परस्पर बातें करते और कहते कि जब तक वर्षा नहीं होती तब तक यह दुःख नहीं टल सकता। तब कई एक पुरुषों ने कहा कि एक महापुरुष छुड़ानी में सुने जाते हैं कि वह अनेक परिचय (चमत्कार) दिखाते हैं। उनके जो शिष्य सेवक हैं वे भी शक्तिशाली देखे जाते हैं। उनके सेवकों को साथ लेकर श्री छुड़ानी में चलें और जाकर उनको अपना दुःख सुनायें और उनके दर्शन करें। महापुरुषों का मिलना सुखदायक ही होता है। यह सुनकर कुछ नास्तिक लोग कहते कि वहाँ क्या धरा है परन्तु जिनको विश्वास था वह कहते थे कि हम तो अवश्य जायेंगे और उनके दर्शन करेंगे। ऐसा कहते हुए उनके (महाराज) सेवकों को साथ लेकर अनेक ग्रामों से लोग श्री छुड़ानी धाम को चल पड़े। कुछ महात्माओं को भी साथ लिया और श्री छुड़ानी धाम में पहुँच गये। जो-जो लोग वहाँ पहुँचते थे उन सब के मन में विश्वास होने लगता था कि अब तो वर्षा अवश्य ही होगी। इस प्रकार चिन्तन करते हुए सद्गुरु के दरबार में हज़ारों की संख्या में लोग पहुँच गये। जोर-जोर से सत्य-साहिब की ध्वनि करने लगे। महाराज जी ने इतनी बड़ी भीड़ को देखकर कहा कि-(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

दोहा- **महापुरुष बोले तभी, देख जनन की भीर।**
किस कारण आवन बनों कहो सकल धर धीर॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

---

१. जाँटी की फलियाँ।

महाराज जी ने पूछा कि आप इतनी संख्या में इकट्ठे होकर किस लिये आये हो और इतने अधीर क्यों हो रहे हो यह सुनते ही सब लोगों ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि अब हमारा कार्य सफल हो गया। सद्गुरु जी के आगे अपना दुःख सुनाने के लिये संकेत द्वारा एक दूसरे को कहने लगे कि अपना दुःख बताओ। तब सद्गुरु जी के सेवकों में जो चतुर थे उन्होंने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा कि भगवन् आप सब अन्दर बाहर की जानने वाले हैं। कहने के लिये दुःख तो बहुत हैं परन्तु बुद्धि थोड़ी है किस प्रकार कहा जाये। जिस सेवक पर आपकी कृपा हो जाये वह कुछ कह सकता है। जिस पर आपकी कृपा नहीं वह बुद्धिमान् होता हुआ भी कुछ नहीं कह सकता।

सवैया- **सेवक भाखत है मुख से, प्रभु भीर बनी हमको अतिभारी।**
नहीं है तिनके कछु भी घर में मर जात भये पशु बा नर नारी॥
के चित धावत जावत हैं तज के घर को घर राग निवारी।
के चित भाखत धीर धरो अरु के चित्त सेवक देत पुकारी॥१॥
के चित भाखत हैं हम को तुमरेः गुरुदेव सुने बलधारी।
जो वर्षा अब पावत हैं हम होवत हैं तुमरे संग मंझारी॥
भो भगवन् करो वर्षा अरु राख लियो अब लाज हमारी।
सेवक दीन पुकारत हैं प्रभु आज सुनो तुम बाज़[1] हमारी॥२॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

इस प्रकार आपके कुछ सेवकों ने अपना दुःख वर्णन किया और कुछ सन्तों से कहा कि स्वामी जी आप भी हमारी ओर से महाराज जी से प्रार्थना कर दो जिससे कि वर्षा हो जाये। तब सन्तों ने भी महाराज से प्रार्थना की कि गुरुदेव जी अन्न के बिना बहुत दुःखी हैं। इनके दुःख को आप ही दूर कर सकते हैं। आपका नाम सुनकर यह बेचारे दुःखी प्राणी दूर-दूर से आपकी शरण में आये हैं। अब यह और कहाँ जायेंगे और कौन इनके दुःख को सुनेगा तब आपने कहा कि जिस समय शंकर की वीसी

---

१. अबाज-पुकार

आती है उस समय अकाल से पीड़ित होकर प्रजा काल मुख में जाती है। यह प्राचीन ऋषि-मुनियों के वाक्य मिथ्या नहीं हो सकते। बीसी का अर्थ यह है कि बीस वर्ष (संवत्सरों) तक तो ब्रह्मा की बीसी होती है। उस समय सृष्टि अधिक बढ़ती है और जब विष्णु की बीसी होती है उन बीस वर्षों में प्रजा में सब पदार्थों की उपलब्धि बिना कष्ट के होती है क्योंकि विष्णु जी प्रजा के पालन करने वाले कहे जाते हैं प्रजा में धन धान्य बहुत होता है। बीस साल तक शिव जी की बीसी रहती है। शंकर का काम है प्रजा का संहार करना। तो अब शिव की बीसी है। इसलिये प्रजा को दुःख और नाश का अनुभव करना पड़ रहा है। ब्रह्मानन्द जी कहते है—

चौपाई- ब्रह्मा रचे विष्णु प्रति पालत,

शिव छिन में तिनको फिर घालत।

या विधि तीन देव जग जे हैं,

सब रचना के मालक ते हैं॥

अब वर्षा शिव के बस होई,

शिव बिन और करे नहीं कोई।

शिव समाधी अब बैठे लगाये,

तिनको कौन जगावे जाये॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

आपने कहा कि अब तो श्री शंकर जी की आज्ञा बिना दूसरा कोई वर्षा नहीं कर सकता क्योंकि उन्होंने मेघों के स्वामी इन्द्र को आदेश दे दिया है कि हमारी आज्ञा के बिना वर्षा नहीं करना। अब बीस साल तक हमारी इच्छानुसार ही कार्य करना होगा। अब उनकी आज्ञा का उल्लंघन कौन करे? अब शंकर समाधी लगाकर बैठ गए हैं। उनको समाधि से कौन जगावे। इसलिए अब वर्षा का होना कठिन है। यह सुनकर आपके एक शिष्य ने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की प्रभु यह तो आपने आश्चर्यमय वार्ता कही कि वर्षा शंकर जी के अधीन है और शंकर जी अखण्ड समाधि लगाकर बैठ गए और उनको समाधि से कोई जगा नहीं सकता। जिस समय उन वैरागी महात्माओं ने भैरों को बुलाया था तब आपने उस भैरों

को शिव स्वरूप होकर यहाँ से भगा दिया और अटकली दास रघुबरदास आदि सब महात्माओं को उसी शिव रूप में दर्शन दिए उस समय हमने भी आपको शिव रूप में ही देखा था। अब आप शिव जी को जगाने की बातें कहने लगे। आप ही तो शिव व विष्णु अनेक रूप धारण करते हो। आप से भिन्न और शिव को हम नहीं जानते। हमारे लिए तो आप सर्वरूप हो। हमने आपको अनेक बार अनेक रूपों में देखा है फिर आप हमें क्यों भुलाते हो? यह सुनकर आपने प्रसन्न होकर कहा—

हम वर्षा वर्षावते, हमहिं वर्षण हार।

हमहिं सोवत जागते, हमहिं जगावन वार।

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

दोहा- सन्त और सेवक सभी, बोले वचन विचार।

भगवन् तुम बिन है नहीं, जगन जगावन हार॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

इस प्रकार सेवकों ने व सन्तों ने अनेक प्रकार से प्रार्थना की कि प्रभु यह सब अनाथ प्राणी आपकी शरण हैं। आप इनके दुःख को शीघ्र दूर करो। शिव को जगाने में आपके लिए कोई कठिनाई नहीं है। यदि आप ऐसा ही मानते हैं कि वर्षा शंकर के ही हाथ में है तो भी उनको आप ही जगा सकते हैं। तब आपने दयालु होकर कहा कि सब लोग अपने-अपने मन में धैर्य धारण करो। हम अभी कामारि (कामदेव को नष्ट करने वाले) शंकर को जगाते हैं। ऐसे कहकर पहले आपने शिव स्तोत्र की रचना की। जो इस प्रकार से आरम्भ होता है—

॥शिव स्तोत्र॥

महादेव देवं कैलास वासी।

जटा जूट[१] गंगा चरण[२] कोट काशी॥१॥

---

१. जटाधारी तथा जटा में गंगा को धारण करने वाले शंकर।

२. करोड़ों ही काशी आपके चरणों में है।

वृषभ[३] बैल वाहनं[४] सकल शाह साहनं[५]।
उनमनि[६] अमोघं[७] उमा[८] संगपत्नी शंभुराज[९] जोगं॥२॥
अहो[१०] आदि माया[११] सुदेवी भवानी[१२]।
पुत्रश्याम कार्तिक[१३] गणेशो[१४] अमानी[१५]॥३॥
कल्प[१६] संख बीते उमा गौरी माई।
बाबू[१७] महादेव निरालंभ[१८] ध्याई॥४॥

---

३. बैल (नन्दीगण)।
४. सवारी।
५. राजाओं के भी राजा।
६. अवस्था का नाम है, जिसमें शरीर की सुध नहीं रहती।
७. अचूक एक रस।
८. पार्वती जी।
९. वेदान्त सहजीवास्था।
१०. आश्चर्य।
११. जो सृष्टि की रचना करती है उसे आदि माया कहते हैं।
१२. पार्वती।
१३. स्वामी कार्तिकेय जी।
१४. गणेश जी।
१५. मान से रहित।
१६. १५ दिन का एक पक्ष। दो पक्षों का एक मास, पितृ नामक देवों का शुक्ल पक्ष का दिन, कृष्ण पक्ष की रात होती है। दो मास का एक ऋतु। तीन ऋतुओं का एक अयन। दो अयन का एक वर्ष। सौ वर्षों की मनुष्य की आयु है। छः मास का देवों का दिन छः मास की एक रात्री। नरो के एक वर्ष का देवों का दिन रात होता है। ३६० दिन का एक वर्ष होता है। देवों की २००० वर्षो की चौकड़ी होती है। चार युगों को मिलाकर एक चौकड़ी होती है। देवों की १००० चौकड़ी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। उतनी ही रात होती है। ब्रह्मा के एक दिन को कल्प कहते हैं। ३६० दिन का ब्रह्मा का वर्ष होता है। ब्रह्मा के ५० वर्ष को परार्ध कहते हैं। दो परार्धो की ब्रह्मा की आयु है। ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु को महाकल्प कहते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में (कल्प में) १४ मनु ७२ चौकड़ी कुल वर्ष की गणना होती है। इस समय १ परार्ध बीत चुका है। दूसरा परार्ध आरंभ है। यह ब्रह्मा का दिन दूसरे परार्ध का है। इसे बराह कल्प कहते हैं। इसी कल्प में विष्णु जी सुकररूप को धारण कर आए थे। इस समय सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। जो विवस्वान् नाम का है।
१७. पिता।
१८. निराश्रय।

निरालंभ जोगी अहो नाथ[१९] नाथा।
आदि अनादिं[२०] तुहीं पिदर[२१] माता॥५॥
कैलाश वासी महादेव देवं।
मनोकामना सिद्ध शिवनाथ सेवं[२२]॥६॥
मौले[२३] मगन शंभू निर्वाण[२४] रूपं।
बजर काछ[२५] कोपीन सत्य स्वरूपं॥७॥
इन्द्री दमन दूत[२६] पैमाल[२७] कीना।
अमर शंभु जोगी अकल पद अकीना[२८]॥८॥
घोरं[२९] अघोरं[३०] पचीसों[३१] सकेला[३२]।
अहो शंभु जोगी सुनिर्गुण[३३] नवेला[३४]॥९॥
महाकाल[३५] कालं दयालं दयालं।
तुहीं धर्म धीरं सुनजरी[३६] निहालं॥१०॥

---

१९. स्वामियों के भी स्वामी।
२०. आदि रहित।
२१. पिता।
२२. सेवा।
२३. परमात्मा, मस्त।
२४. मोक्ष।
२५. इन्द्रियों का दमन।
२६. कामदेव।
२७. नाश।
२८. यकीन, प्रतीत, विश्वास।
२९. मलिन।
३०. शुद्ध तथा शंकर के शुद्ध और मलिन दो प्रकार के मंत्र व गण है।
३१. पच्चीस मुख्या गणादि।
३२. इकट्ठा किया।
३३. हीन गुणों से रहित।
३४. नया, सुन्दर।
३५. काल के भी काल।
३६. दृष्टिमात्र से ही कृतार्थ करने वाले।

कंवल कंठ[३७] नीलं अहो गरुड़[३८] गामी।
गले रुंड[३९] माला परमसुंन[४०] धामी[४१]॥११॥
घटा घोर[४२] श्यामं तुंही भूर[४३] भद्रं।
अहो शम्भु नाथा उठावै उपदरं॥१२॥
सुरताल[४४] ख्यालं मस्त दर दिवालं[४५] गुञ्जार भौरा।
उमा संग साजै दस्त सीस चौरा[४६]॥१३॥
बाजंत कानून[४७] सहनाई[४८] भेरी[४९]।
नाचै दिवंगना[५०] हुरंभा[५१] सुचेरी[५२]॥१४॥
बाजंत बीना मधुर ताल शंखा।
जोगी महादेव शिवनाथ बंका॥१५॥
मुरली मुक्ति रूप गरजंत सिंधं[५३]।

---

३७. समुद्र मंथन के समय जो जहर निकला था वह शंकर जी को पिलाया गया इसी से इनका कण्ठ नीला हो गया और इनका नाम नीलकण्ठ पड़ गया।
३८. गरुड़ की तरह तेज चलने वाले तथा विष्णु रूप भी शंकर जी ही हैं इसलिये भी गरुड़ की सवारी करने वाले हैं।
३९. मनुष्यों के सिरों (खोपड़ियों) की माला पहनते हैं।
४०. सन्तमत में सात शून्य मानी हैं उनमें सातवीं शून्य को मोक्ष पद माना गया है वही परम शून्य कही जाती है।
४१. धाम का स्वामी, धाम में रहने वाला।
४२. घटाओं की गरजना तथा घटाओं द्वारा अन्धेरा।
४३. शुद्ध, कल्याण करता।
४४. बाजों के सुर-ताल और राग के ख्याल होते हैं।
४५. देवालय मन्दिर, दिवार।
४६. श्री पारवती जी हाथ में चमर लेकर शंकर जी के सिर पर ढूराती हैं।
४७. एक प्रकार का बाजा।
४८. बजाने का बाजा।
४९. बाजा विशेष।
५०. देवताओं के आंगन में नाचने वाली।
५१. उर्वशी–देवताओं की अपसरा।
५२. श्रेष्ठ दासी।
५३. समुद्र।

परमहंस[५४] ध्यानं हंसै मंद मंदं॥१६॥
बीना ताल बाजै मुकुटचन्द्र साजै नंदीसुर[५५] पलाना[५६]।
सूरज कला कोटि त्रिसूल बाना[५७]॥१७॥
झंमकै बैरागर[५८] उजागर[५९] अमोलं[६०]।
अजब[६१] राग रागं सुहोते किलोलं[६२]॥१८॥
हीरे हिरंबर[६३] कनी द्वार लालं।
पदम पौरि[६४] पारस रचे मठ[६५] कमालं[६६]॥१९॥
झंमकंत मंदरं कला कोटि चन्द्रं कलवृछ[६७] कामा[६८]।
परानन्दनी[६९] द्वार पूर्ण सहनाना[७०]॥२०॥
गुलावास[७१] चन्दन कमल संख फूले।
वर्ण[७२] अवर्ण[७३] समाधान[७४] झूले॥२१॥

---

५४. परमात्मा।
५५. नंदीश्वर, नन्दीगण, नादिया बैल जिसके ऊपर भगवान् शंकर सवारी करते हैं।
५६. तैयार किया।
५७. भेष।
५८. हीरे सूत्र।
५९. प्रकाशवान, प्रसिद्ध।
६०. जिसका कोई भी मूल्य न किया जा सके।
६१. आश्चर्य रूप।
६२. खेल, लीला, तथा हँसी आदि।
६३. सुन्दर शुद्ध।
६४. ड्योढ़ी, मकान के अन्दर प्रवेश के पहले जी (छाया) हुआ दर्वाजा।
६५. मकान।
६६. अनूप, बढ़िया।
६७. कल्पवृक्ष (जो देवलोक नंदन वन में है)।
६८. कामनाओं को पूर्ण करने वाला।
६९. कामधेनु गऊ (जो देवताओं की है)।
७०. स्वरूप, चिन्ह।
७१. फूलों की बासना।
७२. रंग।
७३. रंग से रहित।
७४. समाहित चित्त, विक्षेप से रहित।

पानं अपानं उद्यानं व्यानं समानं[७५] समाई।
जीती धनंजय[७६] सुदेवदत्त वाई॥२२॥
आसा न तृष्णा न ममता न माया।
निरालंभ जोगी कल्प[७७] कीन्ह काया॥२३॥
मदन[७८] कामजारे सकल दूत[७९] मारे सु जोगी[८०] बियोगी[८१]।
आदि अनादं महादेव संयोगी[८२]॥२४॥
पदम[८३] कोटि झलकैं सु नौनिधि[८४] निवासा।
निरालंभ जोगी सु अठसिद्धि[८५] विलासा॥२५॥
अनन्त कोटि गण संग भूतान[८६] भूतं।
कमन्द[८७] संख साजैं जु सैना संजूतं[८८]॥२६॥
अहो ब्रह्मज्ञानी अमानी अनादं।
कटै कोटि कुस्मल[८९] जपैं संत साधं॥२७॥

---

७५. पाँच प्राण वायु (जो शरीर में हैं)।
७६. शरीर में ही पाँच उपवायु कहे जाते हैं, (इन दशों का विचार सागर में अच्छी प्रकार से वर्णन है वहाँ देख लें)।
७७. शरीर को वृद्ध से तरुण बनाना।
७८. कामदेव।
७९. काम क्रोध आदि पाँचों ही।
८०. योगी-अष्टांग योग के ज्ञाता।
८१. वियोग करने वाले।
८२. मेल करने वाले।
८३. तेज का समूह।
८४. नौ प्रकार की निधियाँ।
८५. आठ प्रकार की सिद्धियाँ- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व।
८६. साथ में भूत और प्रेत।
८७. बिना सिर के शरीर।
८८. सहित, संयुक्त।
८९. कल्मश-पाप।

तुंहीं ब्रह्मा विष्णु तुंहीं मारकंडे।
तुंहीं नाथ नारद तुंहीं हैं अखंडे[९०]॥२८॥
तुंहीं आदि माया तुंहीं जोग जुगता।
तुंहीं शम्भु जोगी तुंहीं विष्णु भक्ता॥२९॥
तुंहीं डाल मूलं समाधान सारं।
कल्प कोटि परलो गई है अपारं॥३०॥
खप्पर खीर[९१] मुद्रा अमीपान[९२] पानं[९३]।
चावै धतूरा जु शम्भु दिवानं[९४]॥३१॥
गले नाग बाधं[९५] अमोघं अरागं[९६] अधरधार[९७] धारं।
अहो शम्भु जोगी मुक्ति के द्वारं॥३२॥
अहो मौन मौनी तुंहीं ब्रह्म वक्ता।
तुंहीं जाप थापं[९८] तुंहीं रूप लखता[९९]॥३३॥
चिस्मतीन[१००] साजं[१०१] निरालंभराजं अगम धाम सारं।
ऐसे शंभू जोगी अभै पद उचारं॥३४॥
अहो ब्रह्मबीना[१०२] अभै तत्त चीन्हा निरालंभ सोई।

---

९०. एकरस, जो खण्डित न हो। संयुक्त, संहित।
९१. दूध।
९२. अमृत पीना।
९३. पीना।
९४. दिवाना मस्त।
९५. शेर के चमड़े का वस्त्र (बाघम्बर)।
९६. राग रहित।
९७. स्वयं आश्रय रहित और सबका आश्रय।
९८. स्थापना।
९९. जानता।
१००. तीन ब्रह्मवेता नेत्र।
१०१. सज रहे हैं।
१०२. ब्रह्मरूप।

महादेव देवं अजूनी[१०३] अभेवं[१०४] सुमुद्रा समोई॥३५॥

दोहा- शंख कल्प जुग-जुग अटल अजर अमर शिव शंभ[१०५]।
गरीब दास गलतान है अवगति पद आरम्भ॥३६॥

ॐ ॐ ॐ ॐ त्रिमाल[१०६] मूलं निर्वाण सोइ।
अहो मूल माया मनो काम करणी।
कला शंख साजैं सुवर्णो अवर्णी॥३७॥
भगल ख्याल साजं रचे लोक माया।
परमानन्द ध्यानं तुंहीं देव राया॥३८॥

अर्थात् अकार, उकार, मकार त्रिवर्णात्मक स्वरूप वाला वह परम परमेश्वर शुद्ध ब्रह्म है। वह ही कल्याण स्वरूप है, उसी को निर्वाण कहते हैं। निर्वाण का अर्थ ही तीन वाण बन्धन या तीन प्रकार के आध्यात्मिक, आधि भौतिक तथा आधिदैविक दुःखों से रहित वह परम शुद्ध ॐ पद का वाच्य परमेश्वर ही है। गीता में श्रीकृष्ण जी कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

अर्थात्—ओम्, इस एक अक्षर नाश रहित ब्रह्म का वाचक जो परम शुद्ध नाम है। सो इस नाश रहित ब्रह्म के वाचक ओम् का जाप करते हुए जो परमशुद्ध सदा आनन्द स्वरूप अर्थात् नित्यानन्द, प्रकाशात्मा और शरणागत भगत का कल्याण करने वाले परम परमेश्वर का चिन्तन करते हुए शरीर का त्याग करते हैं वे परम पद को प्राप्त करते हैं। जैसे ॐकार का ब्रह्मस्वरूप से वर्णन करने के लिये श्रुति भी प्रमाण हैं—

ऋग्वेदो गार्हपत्यश्च, पृथिवी ब्रह्म एव च।
अकारस्य शरीरं तु, व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः॥१॥

---

१०३. योनि से रहित।
१०४. भेद रहित।
१०५. शम्भू-शंकर।
१०६. त्रिमाल-तीन, माल-वर्णमाला, तीन वर्ण अकार, उकार, मकार है, मूल-आदी स्वरूप जिसका, वह त्रिमाल मूल कहलाता है।

यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च, दक्षिणाग्निस्तथैव च।
विष्णुश्च भगवान्देवः उकारः परिकीर्तितः॥२॥

ओम् शब्द में तीन वर्ण हैं। उनमें प्रथम अकार वर्ण में गार्हपत्य अग्नि, पृथिवी तथा ब्रह्मा ये तीन आ जाते हैं अर्थात् इन तीनों के मिलने से अकार का शरीर बनता है। ऐसा ब्रह्म वादियों का सिद्धान्त है॥१॥

और उकार वर्ण के शरीर में—यजुर्वेद, अन्तरिक्षलोक, दक्षिणाग्नि तथा देवता विष्णु भगवान् हैं। अर्थात् इनके मिलने से उकार का शरीर बना है॥२॥

सामवेदस्तथा द्यौर्वा, हवनीयस्तथैव च।
ईश्वरः परमो देवो, मकारः परिकीर्तितः॥३॥

मकार का शरीर सामवेद, द्युलोक, हवनीय अग्नि, ईश्वर देवता के मिलने से बना है।

इस प्रकार से यह सिद्ध हुआ कि ओम् ही सर्व सृष्टि का कर्त्ता धरता हरता है। यह मृत्यु लोक, अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक, और सभी देवता आदि का स्वरूप है। यही सर्वत्र व्यापक है। त्रिगुणात्मक होने से यही मायारूप है। क्योंकि माया ही सृष्टि की रचना करती है। इसलिए ओम् के तीन पाद मायात्मक हैं चतुर्थ पाद शुद्ध ब्रह्म है। अतएव श्रीसद्गुरु जी ने विज्ञान स्तोत्र में कहा है—

ॐ शब्दो स्वरूपी अनादो अगाधो

ॐ शब्द स्वरूपी है, अनादि है, व्यापक है। अन्त रहित है और इसके आगे महाराज जी ने फिर कहा है—

ॐ सोहं मन्त्रसारं। सुरति निरति से करे उचारं॥
ॐ सोहं मन्त्र जपिए। जोग जुगत यहे धुनि तपिए॥
राम नाम जपकर स्थिर होई। ॐ सोहं मन्त्र दोई॥

महाराज जी कहते हैं कि सर्व स्रष्टा ॐ ही है सोहं भी बन जाता है और सोहं में स-ओ-ह-म यह चार अक्षर हैं इनमें से स ह का लोप होकर केवल ओं ही रह जाता है। अर्थात् यह दोनों ही एक रूप हैं इनमें कोई

अन्तर नहीं है। इसलिये ॐ का जाप अथवा ध्यान करने से कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। उपनिषदों में इस एक अक्षर को ही शुद्ध ब्रह्म बताया है और सद्गुरु जी ने भी शब्द स्वरूप कहा है इस शब्द को ही शुद्ध ब्रह्म माना है इसमें किञ्चित् भी संशय नहीं है। इसके जाप से अर्थ धर्म काम मोक्ष की प्राप्ति होती है कहा भी है कि–

ॐकार विन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥

नित्य प्रति इस बिन्दु वाले ॐ का ध्यान करने से मन की कामना भी पूरी होती हैं और मोक्ष भी मिलता है। क्योंकि यह माया और ब्रह्म दोनों ही रूप हैं। इसलिये सद्गुरु जी ने इसको 'निर्वाण रूपं' ओंम को माया स्वरूप माना है तथा "मनो काम करनी" कहा है और रंग रूप वाली एवं रंग रूप से रहित भी कहा है भगल ताल ख्यालं तुंहीं देव राया" इत्यादि शब्द माया के ही वाचक हैं। यही ॐकार रूप ब्रह्म है इसीलिये सद्गुरु जी ने अपनी वाणी में ॐ सोहम् का उपदेश दिया है और इसमें सर्व जीव मात्र का अधिकार बताया है। यदि सर्व का अधिकार न हो तो महाराज जी निषेध करते परन्तु उन्होंने तो सर्व साधारण को अधिक इन ही मन्त्रों का उपदेश दिया और हमारे संप्रदाय में परम्परा से इन्हीं मन्त्रों का उपदेश दिया जाता था। अब तो इस परम्परा को परित्याग करके मन माना उपदेश चल पड़ा तथा त्रिमाल से शंकर जी की बाह्य तीन मालाओं का भी अर्थ लिया जा सकता है। (१) मुण्डमाला, (२) रुद्राक्षमाला, (३) सर्पमाला।

सवैया- जोगी शंभू महादेव को याद करि,
रिद्धि सिद्धि भंडारे में मुक्ता[१०७]।
काली[१०८] घट जोड़कर आए हैं शंभू जी,
नीर निर्वाणी जो बरषे अनजुखता[१०९]॥१॥

१०७. अटूट जो कम न हो तथा मुक्ति देने वाले।
१०८. बादलों की घटा।
१०९. माप तौल से रहित-बहुत।

हीरे और लालन के दौन[११०] दरियाई दत्त[१११],
हारी अररीनी[११२] पर ऐसेई हकता।
शंभू से जोगी अनुरागी बियोगी[११३] हैं,
ज्ञानी ब्रह्मज्ञानी से पूरणपद धुकता[११४]॥२॥
गौरज गणेशा उपदेशा अनुरागी रंग,
अमलों में झुकता[११५]।
मनसा के दाता विधाता हैं जोगी,
शंभू पारख हंस लखता॥३॥
दत्त से दयालं निधि नजर है निहालं,
ज्ञानी बहु बकता।
कहते हैं गरीबदास पौहंचे हैं शंभू पास,
वर्षा ब्रह्मलोक[११६] सागर[११७] मान्या है नुकता[११८]॥४॥

इस प्रकार स्तोत्र के बाद फिर आपने शिव आरती रची और कुछ ज्ञान सागर नाम के सवैयों की रचना की। तब शिव जी प्रसन्न होकर समाधी से उठे। और आपकी बात को श्री शंकर जी ने स्वीकार करके मेघों के राजा इन्द्र को वर्षा की तुरन्त आज्ञा कर दी। कुछ ही क्षणों के पश्चात् घनघोर बादल छा गए और गर्जना होने लगी।

गरीब, याह बीसे की बात है, लग्या इकीसा ऐन।
साड़ महींना शुभ घड़ी, सातें आठें चैन॥

११०. ढ़ाक के पत्तों के बने हुए कटोरी जैसे (दौने)।
१११. देना।
११२. खाली।
११३. वैराग्यवान्।
११४. नमस्कार किया जाता है तथा प्राप्त किया जाता है।
११५. झुलाना।
११६. कैलाश से वर्षा की आज्ञा।
११७. संसार तथा मृत्यु लोक के लिये वर्षा।
११८. संकेत-प्रार्थना कहना, थोड़ा सा।

इस दिन विक्रमी सम्वत् १८२१ आषाढ़ मास तिथि सप्तमी व्यतीत होकर दिन के चतुर्थ पहर में (सायं ४ बजे) के समय अष्टमी तिथि का प्रवेश हो गया था उसी समय शुभ मुहुर्त में मोर पायल पाकर नाचने लगे और वर्षा आरम्भ हो गई। सब लोग देख रहे हैं और कितनों को तो आपने पहले ही भेज दिया जो समीप के ग्रामों के थे। उनसे कह दिया था कि तुम्हारे गाँव में पहुँचने से पहले ही वर्षा आरम्भ हो जायगी। आप भी जिस स्थान पर बैठे थे वहाँ से उठने नहीं पाये थे जब कि वर्षा होने लगी। उस समय जो बून्दें आप के वस्त्रों पर पड़ी उन बून्दों से जिन आपके वस्त्रों पर धब्बे पड़े थे वह वस्त्र अभी तक श्री छुड़ानी में सुरक्षित रखे हुए हैं। मेले के समय आपके प्रेमी सेवकों को उन वस्त्रों के दर्शन कराये जाते हैं। वर्षा हुई देखकर सब लोगों के हृदय में प्रसन्नता छा गई और परस्पर कहने लगे कि सद्‌गुरु जी के घर में किसी वस्तु की कमी नहीं है। और कहने लगे कि–

साखी- सतगुरु के दरबार में, कमी काहे की हंस।
दासगरीब जन दरद बंध, जिस भेटे सतगुरु बंस॥

सोरठा- सब जन कहें पुकार, वर्षा परती हेर के।
हम ने लिया निहार, यह परमेश्वर आप हैं॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि प्रभु आप परम दयालु हैं, आपने हमारे ऊपर अपार कृपा की है। हमारे को आपने प्राणदान दिया है। हम क्षुधारूपी ताप से तप रहे थे। आपने हमें सुखरूपी बागीचे में बैठा दिया। हमें तो पीने के लिए भी पानी नहीं मिलता था। अब तो खेत भी पानी से भर रहे हैं। आपने हमारे सब पाप दूर कर दिये और हमने आपको पहचान लिया है कि आप ही पारब्रह्म परमेश्वर हमारा कल्याण करने आये हैं। जो हम चाहते थे आपने हमें वैसा ही फल दे दिया। जितने लोग दूर-दूर से यहाँ आये थे उन सब ने आप से आग्रह करके गुरुमन्त्र ग्रहण किया। जो कुछ पास में था वह महाराज के आगे रख दिया। महाराज ने उनको कहा कि हमें आपकी किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। तब

सब लोगों ने कहा कि भगवन् आपको हम क्या दे सकते हैं। हमारे पास तो है ही कुछ नहीं। हम तो आपके उपकार के बदले में कुछ दे ही नहीं सकते और भगवन्! अब आगे के लिये हमारा क्या कर्त्तव्य है वह बताने की कृपा कीजिये। जैसे आप कहेंगे हम उसी के अनुसार करेंगे। आपकी आज्ञा का उल्लंघन हमारे द्वारा कभी न होगा। तब आपने कहा कि हर समय परमात्मा को याद रखो। कभी मत भूलो और काम क्रोध आदि सबके शत्रु हैं। इनको कभी भी अपने निकट मत आने दो। चोरी जारी, अभक्ष पदार्थ माँस, शराब तथा तम्बाकू आदि का कभी भी सेवन नहीं करना चाहिये और सन्तों की संगत एवं सेवा करके अपने जन्म को सफल बनाओ। महात्माओं की सेवा में भोग तथा मोक्ष सभी पदार्थ मिलते हैं। धन, धान्य आदिक पदार्थ सन्तों के संग व सेवा से प्राप्त होते हैं। दान से मनुष्य शरीर मिलता है।

श्लोक- ब्रह्मविद्यद्‌गृहे भुङ्क्ते, तत्र भुङ्क्ते स्वयं हरिः।
हरिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते, तत्र भुङ्क्ते जगत्त्रयम्॥

सवैया- जा घर भोजन सन्त करैं, तब ता घर पावत आप मुरारी।
जा घर भोजन ईश कियो तब ता घर में सुख होवत भारी॥
जो नर चाहत है सुख को शुभ सन्तन सेव करे मनधारी।
साच कहें बरनन्द सुना बिन सन्तन मोक्ष न होत तुम्हारी॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

जिन घरों में आत्मनिष्ठ महापुरुष भोजन करते हैं वहाँ स्वयं परमात्मा ही भोजन करता है। परमात्मा के भोजन कर लेने से सम्पूर्ण विश्व को भोजन कराने का पुण्य प्राप्त होता है और उन्हीं घरों में सुख की उपलब्धि होती है। जिस व्यक्ति को सुख की इच्छा हो वह महात्माओं की सेवा करे। ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि यह सत्य बात है कि सन्तों की संगत तथा सेवा के बिना जीव जन्म मरण से नहीं छूट सकता। इस प्रकार सन्तों की सेवा करके जन्म-मरण रूप दुःख को दूर करो जो मनुष्य सद्‌गुरु की शरण में आ जाता है वह इस संसार-सागर से अनायास ही पार हो जाता है। जो पुरुष नाम रूपी नौका में बैठ जायेगा। वह तो संसार समुद्र से पार हो ही

जायेगा। यदि इस लोक के या परलोक के पदार्थों की इच्छा हो तो भी महात्माओं की सेवा करनी चाहिए। सन्त जो चाहें सो कर सकते हैं।

सवैया- **सन्तन को सत संग बड़ो,**
मिल सन्तन को भव सिन्धु तरो रे।
जो सत संगत नाहिं बने,
हरिनाम ररो अरु दान करो रे॥
जो तुम ते कछु नाहिं बने,
तब ना सिर पापन पोट धरो रे।
साँच कहे बरनन्द सुनो,
इस जीवन ते मर जान खरो रे॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

इस प्रकार सब लोगों को उपदेश देकर शान्त किया और कहा कि अब वर्षा पड़ गई है सब अपने-अपने घर को जाओ। हर समय परमात्मा का चिन्तन करो और सद्‌गुरु को याद रखो। सद्‌गुरु जी की आज्ञा मान कर सत्य साहिब बुलाकर दण्डवत् प्रणाम करके जय-जयकार की ध्वनि करते हुए सब अपने-अपने घर की ओर चल पड़े। उसके बाद में महात्माओं ने महाराज की स्तुति की।

निराच छन्द- तूंही अधार विश्व को,
तूंही सूपालना करें।
तूंही रचें परपंच को,
तूंही परपंच को हरें॥
जले थले पाताल में,
जहाँ तहाँ सू देख हीं।
बिना भगवन् आपके,
नहीं आधार पेख हीं॥

(ब्रह्मनन्द जी)

॥ मथुरा की यात्रा॥

दोहा- **सन्तन के मन में फुरी, एक बात इक काल।**
रामत कीजै बृज की, लै सतगुरु को नाल॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सतगुरु जी के शिष्यों के मन में एक समय यह इच्छा हुई कि महाराज जी को साथ लेकर बृज भूमि की यात्रा करनी चाहिए। क्योंकि वहाँ पर साक्षात् सद्‌गुरु जी ने ही कृष्ण रूप धारण करके अनेक बाल लीलाएँ की हैं। वह अत्यन्त उत्तम तीर्थ भूमि है। उसके दर्शन तो अवश्य ही जाकर करने चाहिएँ।

सब सन्तों ने मिलकर प्रार्थना की कि भगवन्! ब्रज की यात्रा करने की हमारे मन में इच्छा हुई है। कृपा करके आप साथ चलें तो हमारी यह इच्छा पूर्ण हो सकती है और इस प्रकार कहने लगे।

सवैया- **जा मथुरा हरि खेलत थे, अरु जा बन में हरि धेनु चराई।**
जा जमुना तट केलि करी, अरु जा घर में हरि माखन खाई॥
ता मथुरा प्रभु आप चलो, सब सन्तन की सुजमात बनाई।
सो मथुरा हम देखन को, चाहत हाँ सब देहो दिखाई॥

(ब्रह्मानन्द जी)

इस प्रकार सन्तों ने महाराज जी से प्रार्थना की प्रभो, जिस बृज भूमि के अन्दर इतने तीर्थ हैं। उसे तो आप कृपा करके अवश्य ही दिखाओ। हमारी बड़ी इच्छा है। तो महाराज जी ने कहा–

दोहा- **महापुरुष मुख से भनो, सुनो हमारी बात।**
गवन तजो दिन रैन को, भजन करो दिन रात॥
भला होत है भजन से, गवन दुःख को हेत।
समय बीततो जात है, चेंत सको तो चेत॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

महाराज जी ने कहा कि हमारी बात ध्यान से सुनो। घूमना फिरना सन्तों के लिए दुख का ही हेतु है। क्योंकि यात्रा में कलेश ही होता है। यात्रा करना तो उन व्यक्तियों के लिए है जो कि बाह्य मुख हैं। भजन की अपेक्षा तीर्थ यात्रा का फल बहुत कम है। आपने अपनी अनुभव वाणी से यह साखी कही–

साखी- गरीब या दिल अन्दर दाग हैं, धोये सैं नहीं जाये।
सतगुरु सिकलीगर मिलै, फिरै मुसकला माये॥

अर्थात्–इस मन के अन्दर पाप रूपी अनेक दाग (धब्बे) लगे हुए हैं। वह शरीर के धोने से दूर नहीं हो सकते जैसे सिगलीगर लोहे के दोषों को दूर करने के लिए बार-बार अग्नि में तपा कर उसे पीटता है, अनेक ताव देने के पश्चात् वह लोह शुद्ध होकर बहुमूल्य से बिकता है इसी प्रकार सद्गुरु जी भी सिगलीगर की तराह शिष्य रूपी लोहे को ब्रह्म विद्यारूपी अग्नि में तपाकर अनहद (हद से बाहर) एवं सर्वत्र व्यापक जो परमात्मा है वह ही ऐ हरन (जिसके ऊपर रख के लोहा पीटा जाता है) उसमें रखकर ऊपर से ज्ञान रूपी हथौड़े द्वारा सद्गुरु पीटते हैं। एवं इस जीव के जीव भाव को दूर करते हैं फिर जैसे सिगलीगर लोहे को एवं उस शुद्ध लोहे की बनी हुई तलवार को सान (लोहा साफ करने का यंत्र) पर चढ़ाकर उसे चमकाता है। इसी प्रकार सद्गुरु जी भी शिष्य को अभ्यास द्वारा उज्जवल करते हैं। तीर्थों में नहाने से मन के दोष दूर नहीं होंगे।

साखी- गरीब जुगन जुगन के दाग हैं, मन के मैल मसंड।
न्हाये से नहीं जात हैं, अठसठ तीर्थ डंड॥

अर्थात्–इस मन के अन्दर अनेक जुग-जुगान्तरों के दाग लगे हुए हैं एवं मलिनता आई हुई है। मन के अन्दर अति मैल लगा हुआ है। जो तीर्थों में नहाने मात्र से दूर नहीं होता। एक तीर्थ क्या चाहे आप पृथ्वीभर के अठसठ (६८) तीर्थ कर लें यदि परमात्मा का भजन नहीं किया तो तीर्थों में घूमना भी दण्ड ही भोगना है। "अठसठ तीरथ संत चरण रज इसलिये उस आत्मरूप तीर्थ में स्नान करो जिसमें एक बार नहा लेने पर फिर कहीं बाह्य

तीर्थों में भटकना नहीं पड़े। साधुओं के लिए तो अपने आत्मा को जानना ही मुख्य तीर्थ हैं। बाह्य तीर्थ तो चंचल वृत्ति वाले अज्ञानी जीवों के लिए कथन किये गये हैं। क्योंकि उनका मन अति चंचल होने के कारण ईश्वर भजन में तो लगता नहीं है। इसीलिए उनको तीर्थ यात्रा करने का विधान है। जिससे कि तीर्थों में भ्रमण करते करते उनका मन थकावट को प्राप्त होकर इधर-उधर से हट कर आत्मा की ओर लग जाये। सब तीर्थों का एवं यज्ञ-दान आदि का भी यही मुख्य फल है कि जीव अपने स्वरूप को जान ले। जिस प्रकार महाराज जी ने यह अपनी वाणी से कथन किया है उसी प्रकार वेद भी इसी मत की पुष्ट करते हैं।

आत्मतीर्थ समुत्सृजय बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत्।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते॥

(श्री जवालदर्शनोपनिषद अ. ४.५०)

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव वसते यो नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा॥

(स्कंद. खण्ड १ अयोध्याम. अ. १०/५६)

अर्थात्–श्री जवाल दर्शनोपनिषद् में कहा है कि सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मतीर्थ का परित्याग करके जो पुरुष मृत्तिका पाषाण एवं जल रूप बाहर के तीर्थों में भ्रमण करता फिरता है वह पुरुष तो ऐसा माना जाता है जैसे कोई अपने हाथ में प्राप्त हुए महान रतन (जोकि बहुमूल्य हो) को त्याग के तुच्छ काँच के टुकड़ों को खोजता फिरे ऐसे व्यक्ति को कौन भला कहेगा।

स्कन्द पुराण के अयोध्या माहात्म्य में कहा है कि इन्द्रिय समूह (समुदाय) को जीतने वाला पुरुष जिस किसी भी स्थान में वास करता है। उसके लिए उसी स्थान में महान् पुण्यकारी कुरुक्षेत्र तीर्थ तथा नैमिषारण्य और पुष्कर आदि सर्व तीर्थ प्राप्त हो जाते हैं। एक क्षण मात्र भी एकाग्र चित होकर आत्म विचार करने से पुरुष को सर्व तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है।

उत्तमा तत्त्वचिन्तैव मध्यमं शस्त्रचिन्तनम्।

अधमा मन्त्रचिन्ता च तीर्थभ्रान्त्यधमाधमः॥

(मैत्रेय्युपनिषद अ. २ मन्त्र २)

अर्थात्–उत्तम पुरुषों के लिए आत्म चिंतन करना ही उत्तम है। शास्त्रों का विचार मध्यम है। परमात्मा के नाम को छोड़कर अन्य मन्त्रों का जाप करना अधम है और तीर्थों में भ्रमण करना तो अधम से भी अधम है। इसीलिए महाराज जी ने अपनी अमृतमयी वाणी में तीर्थों का निषेध किया है नास्तिकता को लेकर निषेध नहीं किया। तत्पश्चात् महाराज जी ने शिष्यों से कहा कि "परमात्मा का चिंतन करो जिससे चित्त शान्त हो। समय हाथ से निकला हुआ फिर नहीं आयेगा। मनुष्य की आयु दिन प्रतिदिन कोरे घड़े की तरह व्यतीत होती जाती है। उसे सँभालना चाहिए। तब शिष्यों ने नम्रता पूर्वक कहा कि प्रभो आपकी कृपा से हमारा मन आपके चरणों में हर समय लगा रहता है। चलने फिरने में भी वह हमारा मन आपके चरण कमलों से इस प्रकार अलग नहीं होता जैसे भँवरा कमल से अलग नहीं होता। सद्गुरु जी ने नाम अभ्यास का उपदेश देते हुए कहा कि सुरति शब्द अभ्यास अजपा जाप करने को जोर दे कर कहा–

दोहा- हरि सों हेत हमेश है, कृपा आपकी नाल।

हरिजन सदा सुअचल हैं, चले न लागे हाल॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द)

अर्थात्–हमारा हमेशा ही ध्यान आत्मा के चिन्तन में लगा रहता है। यह सब आपकी ही कृपा है परमात्मा के जो उपासक हैं उनके मन हमेशा के लिये अचल हो जाते हैं। चलने फिरने पर भी किसी प्रकार डोल नहीं सकते और तीर्थ व्रत और दान जो भी साधन हैं यह सब जीवों के हित के लिये विधान किये गये हैं और आपने भी अपने मुखार्विंद से इस प्रकार कथन किया है।

काफिर तीर्थ व्रत उठावें, सतवादी जन निश्चय लावें।

जो पापी पुरुष हैं केवल नास्तिक हैं वह तीर्थों को नहीं मानते हैं और

आस्तिक जो सत्यवक्ता पुरुष हैं वह साधारण जीवों के कल्याण के लिये तीर्थ व्रतादि में विश्वास रखते हैं।

साखी- गरीब अठसठ तीर्थ जाइए, मेले बड़ा मिलाप।

पत्थर पानी पूजते, कोई साध सन्त मिल जात॥

तीर्थों में व धार्मिक मेलों में (उत्सवों में) जाकर तीर्थों में नहाने व मूर्तियों की पूजा करते समय किसी न किसी ब्रह्म-ज्ञानी महापुरुषों के दर्शन हो जायेंगे। जिनके दर्शन से अनेक जन्मों के पाप निवृत्त होकर उस आत्मसुख की उपलब्धि (प्राप्ति) होती है जिसको प्राप्त कर लेने से किसी दूसरी वस्तु प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं रह जाती। इसलिए हमारा मन मथुरापुरी के दर्शन करने के लिये उत्सुक है और सन्तों के लिए देश देशान्तरों में घूमना लाभदायक और अच्छा भी है इससे मार्ग के अनेक लोगों को सतसंग का लाभ भी प्राप्त हो जाता है। फिर आप मथुरा क्यों नहीं चलते। हमारी तो यही इच्छा बनी हुई है कि किस दिन मथुरापुरी के दर्शन करें। बृजदेश की यात्रा के लिए सभी सन्त मन में इच्छा लिये हुये हैं। इसीलिये बारम्बार आपके चरणों में प्रार्थना करते हैं।

महाराज जी ने देखा कि इनकी मथुरा जाने के लिये बहुत रुचि है। अतः इनको मथुरापुरी की यात्रा करवानी ही चाहिये। यह विचार कर आपने सर्व शिष्य समुदाय से कहा कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो सब तैयार हो जाओ। हम भी तैयार हैं। ऐसा कह कर महाराज जी ने कहा कि रथवाहे (रथ हाँकने वाले) से कहो कि रथ लाये। रथवाहे ने तुरन्त रथ तैयार कर दिया और सब सन्तों ने भी तैयारी कर ली। सबने अपना-अपना आसन व जल-पात्र साथ ले लिया। और गोमुखी (एक प्रकार का सन्तों के बजाने का बाजा) तुरही रण सिंघा आदि लेकर महाराज जी के साथ बजाते हुए चल पड़े। धीरे-धीरे मार्ग में चलते जाते हैं और सद्गुरु का यश भी गाते जाते हैं। रास्ते के ग्रामों में जो सेवक मिलते जाते हैं वह भी आपके दर्शन करके बड़े प्रसन्न होते हैं। आपको अपने-अपने घरों में ले जाकर अपने भाइयों से सराहना करते हैं कि आज हमारा जन्म सफल हो गया जो कि सद्गुरु बन्दी छोड़ जी के दर्शन प्राप्त हो गये।

आपको सत्कार पूर्वक भोजन करवाते हैं। वे सेवक अपने मन में अपने आपको अति भाग्यशाली समझते हैं। कि आज हमारे पूर्व जन्म के कौन से पुण्य उदय हुए जो सन्तों के सहित सतगुरु जी के दर्शन हो गये। आपने अपनी वाणी में कहा भी है, कि–

कोई बड़भागिया साधु जन सेवन करे,
संत मिजमान जिस द्वार जावें।
तिहुँ लोक के जीव तिस चरण गह उधरे,
धर्मराय की बन्ध क्षण में छुटावें॥

आप कहते हैं कि कोई भाग्यशाली पुरुष ही साधुओं का सेवन एवं सन्तों की सेवा तथा संग करता है। और भाग्यशाली (भाग्यबान) के ही द्वार पर महात्मा जाते हैं। उनके चरणों के स्पर्श एवं उनके सतसंग से सम्पूर्ण एवं तीनों लोकों के जीव उन महापुरुषों के सत्संग से इस संसार-सागर से पार हो जाते हैं। और जो जीव धर्मराज के बन्धन में भी हों उनको भी महापुरुष छुड़ा देते हैं। तथा महात्माओं का संग करने से धर्मराज के बन्धन में ये जीव नहीं जाते। इस प्रकार रास्ते में अनेक ग्रामवासी लोगों को आपके सत्संग से सुख होता था। जब आप किसी ग्राम के समीप जाते थे, तो ग्रामवासी सब नर-नारी आपके दर्शनों के लिए आते थे और परस्पर कहते थे, कि यह वही महापुरुष हैं जिन्होंने अकाल से पीड़ित जीवों को जल बरसा कर सुखी किया है। इन्हीं की कृपा से वर्षा हुई है। आपके चरित्रों को सुनकर तथा आपकी सुन्दर मनमोहक मूर्त्ति को देखकर लोग मग्न हो जाते थे। इस प्रकार कितने ही दिन मार्ग में व्यतीत करते हुए आप मथुरापुरी में पहुँच गये। सब सन्त सद्गुरु की जै-जैकार करते थे और रणसिंघे आदि बाजों की ध्वनि भी करते थे। एक वैष्णव के स्थान को देखकर उसमें आपने अपने आसन लगा लिए। महात्मा जन जमुना जी में स्नानादि करने चले गये। उसके महन्त ठाकुरों के पुजारी थे। जब महात्मा स्नान आदि करके आ गये और आकर महाराज जी की वाणी का पाठ करने लगे। इतने सुरीले और उच्च स्वर में वाणी के शब्दों को गाया कि दूर-दूर से लोग आकर्षित होकर आने लगे। हजारों ही लोग

एकत्रित हो गये और वाणी सुनने लगे। उस समय कोई तो इन महात्माओं की सेवा में लग गये। कोई दर्शन करके ही प्रसन्न हो रहे हैं। कोई कहता है, कि यह महात्मा तो साक्षात् परमेश्वर रूप ही हैं। फूल-फल एवं नाना प्रकार के पदार्थ आपको भेंट करने लगे। तब बैरागियों ने विचारा यह कौन परपंची हमारे मकान में आ गया है। इसमें साधुओं वाले तो कोई चिन्ह नहीं हैं। न तो इनके मस्तक पर तिलक ही है, न कण्ठी जनेऊ है, यह महात्मा कैसे हैं। बीच में कोई दूसरा कहने लगा, कि इनको मार पीटकर यहाँ से भगा दें। तब एक साधू (छुड़ानी के समीप ग्राम खेड़के वैष्णव मठ का महन्त था) महन्त आशानन्द जी ने कहा कि मेरी बात सुनो इनके साथ किसी प्रकार का विवाद या झगड़ा मत करो यह तो साक्षात् कृष्ण स्वरूप ही हैं। एक समय हम छुड़ानी में (जहाँ इनका स्थान है) गये थे। वहाँ पर इनके साथ बहुत वार्ता हुई थी। आखिर हार करके ही आये थे। एक तो अटकलीदास थे और रघुबरदास थे यह भी सब इनके सामने हारकर मन में बड़े उदास हुए थे। यह बात साधु की सब ने सुन भी ली परन्तु जिनके हृदय में ईर्ष्या होती है उनको उस समय विचार नहीं होता कहने लगे कि हम इनकी शक्ति देखेंगे और कोई शक्ति न हुई तो इनको पीट-पीटकर यहाँ से निकाल देंगे। ऐसा कहते हुए सतगुरु जी के समीप गये जाकर कहा कि हमारी बात का उत्तर दो। और कोई परिचय (शक्ति) भी दिखाओ। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यहाँ से अभी भाग जाओ। सद्गुरु जी ने कहा, कि पूछो तुम क्या पूछते हो। तब उन्होंने इस प्रकार पूछना आरम्भ किया।

अनकट छन्द- कौन देश से तुम चल आये, कौन देश को जाना।
कौन देश में रमत करत हो, कौन देश में ठाना॥१॥
उत्तर- स्व स्वरूप से हम चल आये, स्व स्वरूप में जाना।
स्व स्वरूप में रमत करत हैं, स्व स्वरूप में ठाना॥२॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

तब उन महात्माओं ने कहा कि यह कैसे। अपने सरूप से ही आये हैं और उसी में जाना है उसी में घूमा करते हो वही आपका निवास स्थान

है यह कैसे हो सकता है, कि जहाँ से आये वहाँ ही जाना। यह बात हमारी समझ में नहीं आई। तब महाराज जी ने इस प्रकार कहा।

जल ही से ज्यों उठें तरङ्गा, जल ही में तिस जाना।
जल ही में सो रमत करत हैं, जल ही में है ठाना॥३॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

जैसे जल में वायु के वेग से लहर उत्पन्न होती है और उसी में वह लीन हो जाती है और जल में ही वह घूमा करती है और वहीं उनका ठिकाना है। यह सुनकर उन महात्माओं ने पूछा, कि आप किस ठाकुर की पूजा करते हो और किस तीर्थ को मुख्य मानते हो और किस रहनी में रहते हो क्या कर्त्तव्य करते हो। इसके उत्तर में आपने यह एकता उपजन का प्रकरण जो कि आपकी वाणी ग्रन्थ साहिब में है, कहा—

अवधू हम तो परपट्टन के बासी।
तीर्थ जाहिं न देवल पूजें, न वृन्दावन काशी॥१॥
ऐसा दर्पण मँझ हमारे, हम दर्पण के माहीं।
ऐनक दरिया चिशमे जोये, नूर निरन्तर झांहीं॥२॥
रहनी रहे सो रोगी होई, करनी करै सो कामी।
रहनी करनी से हम न्यारे, न सेवक न स्वामी॥३॥
इन्द्री कसता सोई कसाई, जग में बहे सो बौरा।
ऐसा खेल बिहंगम हमरा, जीतो जम किंकर जौरा॥४॥
ठाकुर तो हम ठोक जराये, हर की हाट उठाई।
राम रहीम मजूरी करिहैं, उस दरगह में भाई॥५॥
शेष, महेश, गणेश्वर पूजैं, पत्थर पानी ध्यावैं।
रामचन्द्र दशरथ के पूता, सो कर्ता ठहरावैं॥६॥
एक न कर्ता दोए न कर्ता नौ ठहराये भाई।
दसवाँ भी द्वन्द में मिल्सी "सत कबीर" दुहाई॥७॥

इस प्रकार आपने अद्वैत सिद्धान्त का कथन किया। इस गूढ रहस्य

को समझने में द्वैत वादी समर्थ नहीं हो सकते। इस प्रकार के आपके उत्तर सुनकर वह महात्मा मौन से होकर रह गये और कुछ कहने लगे, कि हमें कोई सिद्धि दिखाओ और अपने मन में यह कल्पना कर ली कि यदि यह सर्वज्ञ है तो हमारे मन की बात को जानकर हमें कृष्ण-रूप होकर दर्शन दें। महाराज जी तो सबके अन्तर की जानने वाले थे। आपने उसके मन की बात को जानकर उसी समय कृष्ण रूप धारण कर लिया। यह देखकर दर्शन करने वाले लोग दंग रह गये और परस्पर कहने लगे कि यह तो साक्षात् श्रीकृष्ण चन्द्र ही हमें दर्शन देने के लिए यहाँ पर आये हैं। हमारी ही बुद्धि में भ्रम हो रहा है जिससे हम इनके साथ विवाद करते हैं। यह तो हमारी बड़ी भारी भूल थी। आपके कृष्ण रूप में दर्शन करके उस महन्त आशानन्द के गुरु भाई महन्त ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। तब उनके जो शिष्य थे जिनको महाराज जी कृष्ण रूप से नहीं दीखे उन्होंने कहा गुरुजी, आप तो हमारे गुरु हैं। आपने इतने बड़े महापुरुष होकर इनको दण्डवत् क्यों की। तब उसने कहा कि तुम्हारे भाग्य को क्या हो गया तुम्हारे नेत्र नहीं हैं क्या? यह तो साक्षात् कृष्ण भगवान बैठे हैं तुम दर्शन क्यों नहीं करते और जल्दी भाग कर जाओ बड़े महन्त जी को बुला लाओ वह भी भगवान कृष्ण के दर्शन कर लें। तब एक महात्मा दौड़कर गया और महन्त जी को बुला लाया भगवान् कृष्ण के दर्शन की इच्छा से महन्त जी बहुत जल्दी आये। आते ही देखा कि साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्द कन्द विराजमान हैं। महन्त ने दूर से ही आपको कृष्ण रूप में देखकर दण्डवत् प्रणाम किया। महन्त के दर्शन करने के पश्चात् आपने तुरन्त ही अपने स्वरूप को बदल दिया। पहले वाला अपना वही मनुष्यों जैसा स्वरूप कर लिया। तब महन्त ने कहा कि हमने निश्चय करके जान लिया है कि, यही पारब्रह्म परमेश्वर हैं और यह हमें दर्शन देने के लिए आये हैं। इनकी महिमा का पार कौन पा सकता है। ऐसे कहकर महन्त ने आपके पास पहुँच कर जै गोपाल बुलाई। आपने भी आगे से जै गोपाल कह दिया और सद्गुरु जी ने एक शिष्य को संकेत किया तब वह तुरन्त महन्त जी के बैठने के लिए आसन ले आया। और महन्त जी प्रसन्नता के सहित उस आसन पर बैठ गये। बैठ कर नम्रता!पूर्वक महाराज जी से यह

वचन कहे कि, "भगवन्, आप ही गिरधारी एवं गोपाल कृष्ण हो। आपके अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं। आपका कौन पार पा सकता है। कुछ नाम आप हमें एक स्तोत्र रूप में सुनाओ। तब आपने इस स्तोत्र की रचना की–

"कृष्ण स्तोत्रम्"

हरि, हरि, हरि, हरि पार ब्रह्म परमेश्वरं पुरुषोत्तमम्।
परमानन्दं आनन्दकन्दम् यशोदानन्दम्॥१॥
श्री गोबिन्दम् दीनानाथम् दुखभंजनम्।
भक्तवत्सलं जगवन्दनम् जगजीवनम्॥२॥
जगन्नाथं काटन दुःख द्वन्द फन्दनम्।
करुणामयी कमलनयनं कृपासिन्धम्॥३॥
सर्वचेतनम् पूर्ण करतारम् किशोरम्।
गुणनिधानम् गोकुल चन्दम्॥४॥
मधसूदनम् मदन मोहनं मुरलीधर सर्व सोहनम्।
मेघश्यामम् मूर्त्ति मनभावनम् माधोमुकुन्दम् रामरूपम्॥५॥
राधावरम् गोवर्धनम् कर पर धरम्।
रङ्गनाथम् ऋषिकेशम् गुण गावत भयो आनन्दं॥६॥
जन गरीब जस सुन-सुन लाग रही अन्तर धुन।
वासुदेव बनमाली ब्रजपति प्रभु दीनबन्धू॥७॥

यह स्तोत्र आपने उन बृजवासी महात्माओं को तुरन्त रचकर सुनाया। यह सुनकर उन महन्त जी ने इस स्तोत्र को तुरन्त लिख लिया।

दोहा- **सुनकर सन्तन ने लिखा, सो वाणी में जान।**
या परचे के बीच में, मानो सो प्रमाण॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

तत्पश्चात् महन्त जी ने अपने भंडारी को बुलाकर खाद्य सामग्री के लिये कहा और सब सामान आने पर महाराज जी से कहा कि प्रभो, यह

सब सामान ले लो यदि आप आज्ञा करें तो हमारा भंडारी ही भोजन तैयार कर दे। यह आपकी इच्छा पर ही निर्भर है। आपके साधू बनाना चाहें तो आप उनसे बनवा ले। तब महाराज जी ने कहा आप सामान रख दीजिए। हमारे पास भंडारी हैं। वह स्वयं बना लेंगे। और अपने भंडारी को आपने आज्ञा दी कि जल्दी भोजन तैयार करो और सबको जिमा (खिला) दो। और कहा, कि आज यहाँ से चलेंगे देरी मत करो। जिसने कुछ यहाँ पर देखना हो कहीं स्नान करना हो सो कर लो और देख लो और चलने की तैयारी करो। महाराज जी के आदेशानुसार सबने यमुना जी में स्नान करके भोजन किया। भोजन के पश्चात् चलने की तैयारी कर दी। तब महन्त जी ने कहा, "कि अब आप सम्पूर्ण ब्रज की यात्रा करो हम आपके साथ अपना साधू देते हैं। जो रास्ते का एवं ब्रज के तीर्थों का जानकार है। आपने उत्तर दिया कि हमें आपका साधू साथ ले जाने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हमारे साथ बहुत साधू हैं। और इनमें कई एक ऐसे हैं जो ब्रज क्षेत्र के जानकार हैं। यह कहकर चलने के लिए आप खड़े हो गये। तब महन्त जी ने हाथ जोड़कर कहा कि भगवन् हमारे ऊपर कृपा दृष्टि रखना और हमारे इन साधुओं के अपराध पर ध्यान नहीं देना। जै गोपाल शब्द कहकर महन्त जी भी आपके साथ से अपने मकान की ओर लौट गये। आपने महावन, गोकुल जी, रमनरेती, बलदाऊ जी, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना, नन्दगाँव आदि सम्पूर्ण ब्रज यात्रा की। यह होरी के दिन थे। जहाँ तहाँ सब नर-नारियों को होरी खेलते हुए देखा।

सवैया- **लोग गुलाल उड़ावत हैं अस, पावत रंग मचावत छोरी।**
नाचत कूदत गावत हैं, मग जावत हैं निज नार मरोरी॥१॥
देखत ना लघू दीर्घ को, मन भावत बात सुनी बतकोरी।
साँच कहें बरनन्द सुनो, बृजलोक मचावत या विध होरी॥२॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

लोग परस्पर गुलाल व रंग छिड़कते हैं और बड़ा शोर मचाते हैं। गाते हैं और नाचते हैं। कोई मार्ग में मस्त होकर अपनी ग्रीवा (गरदन) को टेढ़ी करके चलते हैं। छोटे बड़े की कोई लज्जा नहीं मानता। अपने मन को जो

भाया वही शब्द कह दिया। बृज के लोगों की यह रीति है, कि वह प्रेम में भी गाली देकर ही बोलते हैं। ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि इस प्रकार ब्रजवासी होरी खेलते हैं। यह सब देख सुनकर सन्तों ने महाराज जी से पूछा कि हम भी परस्पर होरी खेल लें। तब महाराज जी ने कहा सन्तों की यह होरी नहीं है। सन्तों की होरी तो इस प्रकार है–

रागहोरी- मन राजा खेलन चल्या रंग होरी हो।

त्रिबैंनी[१] के तीर राम रंग होरी हो॥१॥
पाँच सखी[२] नित संग है रंग होरी हो।
बरषै केसर नीर राम रंग होरी हो॥२॥
इला[३] पिंगुला मध है रंग होरी हो।
बीच सुषमना[४] घाट राम रंग होरी हो॥३॥
ब्रह्मादिक[५] जहाँ खेल हीं रंग होरी हो।
सनकादिक[६] जोहैं[७] बाट[८] राम रंग होरी हो॥४॥
शेष सहंस[९] मुख गावहीं रंग होरी हो।
नारद पूरैं नाद राम रंग होरी हो॥५॥
हाथ अबीर[१०] गुलाल है रंग होरी हो।
खेलत हैं सब साध राम रंग होरी हो॥६॥
इन्द्र कुबेर वरुण[११] हैं रंग होरी हो।

---

१. त्रिकुटि।
२. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र, कान, नाक, रसना, त्वचा।
३. नाक का बायाँ स्वर इला और दाहिना पिंगुला है।
४. दोनों के बीच शुषमना नाड़ी है।
५. ब्रह्मा, विष्णु, शंकर।
६. सनक, सनन्दन सनातन, संतकुमार।
७. देखें।
८. मार्ग।
९. हजार।
१०. गुलाल जैसा लाल रंग जो होरी खेलते समय गेरा जाता है।
११. जलों का देवता।

धर्मराय ध्यान धरंत राम रंग होरी हो॥७॥
चित्र गुप्त चितवन करैं रंग होरी हो।
कोई न पावै अंत राम रंग होरी हो॥८॥
ध्रुव प्रह्लाद जहाँ खेल हीं रंग होरी हो।
नारद का उपदेश राम रंग होरी हो॥९॥
हाथ पिचकारी प्रेम की रंग होरी हो।
खेलत रहैं हमेश राम रंग होरी हो॥१०॥
आदि अंत आगै रहै रंग होरी हो।
छुछिम[१२] रूप अनूप[१३] राम रंग होरी हो॥११॥
दास गरीब गलतान हैं रंग होरी हो।
पाया सत सरूप राम रंग होरी हो॥१२॥
भरथर गोपी चन्द विनोद[१४], खेल्या चाहैं[१५] तो काया सोध[१६]।
जहाँ पीपा धना धरत ध्यान, नानक नामा पद समान[१७]॥१॥
जनक विदेही शुकदे संगी, अनंत संत जहाँ रंगे रंगी।
दादू दावा[१८] किया दूर, गगन गण्डल में बाजैं तूर[१९]॥२॥
उड़त अबीर[२०] गुलाल लाल, जहाँ शंख झालरि[२१] बाजैं टाल।
केसर की पिचकारी पाक,[२२] पारब्रह्म जहाँ बैठ्या ताख[२३]॥३॥

---

१२. सूक्ष्म अति छोटा।
१३. उपमा से रहित–परे जिसकी उपमा न की जा सके।
१४. आनन्द।
१५. इच्छा हो तो।
१६. सप्सा अभ्यास द्वारा शुद्ध कर।
१७. एक जैसा, एक रस।
१८. मान अधिकार।
१९. बाजी विशेष अनकुत।
२०. जो लाल रंग होली में खेला जाता है।
२१. झांझ आरती के समय बजाया जाता है अनमद।
२२. पवित्र।
२३. झरोखा।

बाजैं झालरि अधकी झांझि, दोफारै[२४] निसवासर[२५] सांझ[२६]।
दासगरीब निजपद जुहार, जिस तखत कबीरा चौरा ढ़ार[२७]॥४॥

(बाणी)

सवैया

सन्त गुलाल विचार करैं, मन राम रते न मिचावत छोरी।
नाचत कूदन चाव छुटो, जब भाव जुटो शुभ सन्तन ओरी॥
देखत ना लघू दीर्घ को, समरूप पिखैं मन में सब तोरी।
साँच कहें बरनन्द सुनो, शुभ सन्त मचावत या बिध होरी॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सतगुरु जी ने कहा कि सन्तों की यह होरी है कि सत्य असत्य का विचार ही गुलाल है उसे उड़ाओ। मन को परमात्मा में लीन करना ही शोर मचाना है। जब हमारे भाव महापुरुषों की संगत एवम् उनके वचनों में जुड़ जायेंगे तब यह बाहरी नाचना कूदना सब दूर छूट जायेगा। जैसे यह ब्रजवासी छोटे-बड़े को नहीं देखते सबके साथ एक सा ही व्यवहार कर रहे हैं। ऐसे ही सन्त भी चिऊँटी (कीड़ी) से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सबको एक रूप से देखते हैं। ब्रह्मानन्द जी कहते हैं कि यह तो सत्य ही है कि महापुरुष इस प्रकार की शुद्ध होरी ही खेलते हैं और उसी समय श्री आचार्य देव जी ने सन्तों को राग होरी, राग बसन्त और राग धमार आदि सुनाये थे। वह रचना आपके ग्रन्थ साहिब में इन्हीं नामों से विख्यात है। उनमें से दो शब्द ही दिये हैं। जिस पाठक को अधिक जानने की इच्छा हो वह ग्रन्थ साहिब में देख ले। यहाँ पर तो स्थान के अभाव से नहीं लिखे हैं।

इस प्रकार ब्रज की सैर करते हुए आप ने यह कार्य अपने शिष्यों की इच्छा पूरी करने के लिए ही किया था।

---

२४. मध्याह्न-काल (१२ बजे दिन में)
२५. दिन रात्रि।
२६. सायंकाल।
२७. चँमर हिलाना।

दोहा- सैल करी सब बृज की, फिर आये निज देश।
आन छुड़ानी ग्राम में, कीन्हों जब प्रवेश॥
लै रणसिंहा हाथ में, तुरी बजावैं सन्त।
डम-डम सुथरी बाज हैं, देखें लोग अनन्त॥
महापुरुष तब बाग में, बैठे सहज सुभाय।
बैठे सन्त समीप में, शोभा कही न जाय॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

इस प्रकार ब्रज यात्रा समाप्त करके आप सन्तों के सहित श्री छुड़ानी धाम में पहुँच गये। जब आप छुड़ानी में पहुँचे तो लोगों ने आपका खूब सत्कार किया और महान उत्सव मनाया।

दोहा- बृज सैर जिस विध करी, सो मैं करी बखान।
ब्रह्मानन्द अब कहत हैं, आगे और बयान॥

॥ श्री छुड़ानीधाम में संतों को श्री गंगाजी का स्नान॥

सवैया- एक समय सब सन्तन के मन, गंग सिधावन की रुचि होई।
आपस में मिल भाखत हैं, प्रभु पास करो चल के अरजोई॥
भाखनगे जब जावन की, तब जावन की हमरी विधि होई।
या विध आपस में मिलके, प्रभु पास भने तब जाकर सोई॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

एक समय में सब शिष्यों के हृदय में गंगा जी का स्नान करने के लिए तीव्र इच्छा हो आई। परस्पर मिलकर कहने लगे, कि अब की बार तो गंगा जी का स्नान करने के लिये चलना चाहिये। तब दूसरे ने कहा कि यदि गंगा स्नान की तुम्हारी रुचि है तो सब मिलकर महाराज जी से प्रार्थना करो वह आज्ञा देंगे तभी गंगा स्नान की विधि बन सकती है। यदि वह आज्ञा न देंगे तो फिर कैसे जाया जा सकता है। तब एक और शिष्य ने कहा कि यदि महाराज जी प्रसन्न हो जायें तो वह तो यहीं पर गंगास्नान करवा देंगे। इस प्रकार से विचार करके सब मिलकर महाराज के पास गये

और अपनी प्रार्थना महाराज जी के आगे इस प्रकार करने लगे–

सवैया- पापन को क्षण बीच हरे, अरु पुन्नन को उपजावन हारी।
गंग सुनी इस लोक विषे, हम जावन की मनमें तब धारी॥
न्हावन को चित चाहत है, प्रभु आप भनो जब तास मंझारी।
बात सुनी जब सन्तन की, तत्काल मुखों तब बात उचारी॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सर्व सन्त इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, कि भगवन् हमने सुना है कि इस लोक में, गंगा जी सबसे उत्तम तीर्थ है और गंगा जी ही कलियुग में पापों को नाश करने वाली हैं।

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरति
मुच्यते सर्ब पापेभ्यो, विष्णु लोकं स गच्छति।

हे गंगे - हे गंगे जो व्यक्ति इस प्रकार कहते हुये गंगा जी से सौ योजन (आठ सौ किलो मीटर) दूरी पर गंगा जी नाम लेकर जो अस्नान करता है उसके सब पाप नाश होकर विष्णु लोक को प्राप्त हो जाता है) उसमें स्नान करने से पाप नाश होकर पुण्यों की उत्पत्ति होती है। इसलिए हम सब महात्माओं की गंगा जी में स्नान करने की अति तीव्र इच्छा है। यदि आप आज्ञा दें तो हम गंगा स्नान कर आवें। आपकी आज्ञा के बिना हम कोई कार्य नहीं कर सकते। यह सुनकर आपने तुरन्त इस प्रकार उत्तर दिया कि यद्यपि गंगा तीर्थ सबसे उत्तम है और पापों का नाश करने में समर्थ है। तथापि उससे भी उत्तम एक और तीर्थ है सुनो! हम बताते हैं। उसी में स्नान नित्यप्रति (हर समय) करना चाहिए। सत्य बोलना भी तप और तीर्थ है। जीवों पर दया करनी, इन्द्रियों का निग्रह (वश में) करना मन को बस करना इन तीर्थों में नित्यप्रति स्नान करने से जन्म मरण एवम् मृत्यु का चक्कर मिट जाता है। अपने निज स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए इन तीर्थो से प्रेम करो। यह सबसे अधिक सुखदाई तीर्थ हैं मन के अन्दर के पाप जल स्नान से दूर नहीं होंगे। जैसे मदिरा (शराब) के घड़े को सौ बार धो देने से भी वह शुद्ध नहीं हो सकता। जो शुद्ध चित्त सन्त (ज्ञानी) पुरुष हैं वह तीर्थ रूप ही होते हैं। उनके उपदेश रूपी जल में स्नान

करने वाला पुरुष तुरन्त शुद्ध हो जाता हैं इस प्रकार के आपके वचनों को सन्तों ने ध्यान पूर्वक सुन लिया और दोनों हाथ जोड़कर कहा कि जो आपने उपदेश दिया है यह सर्व सम्मत है। इसमें किंचित् भी संशय नहीं है। यद्यपि ज़ो आपने उपदेश दिया वह सत्य है तथापि जो साधारण धर्म (तीर्थयात्रा, यज्ञ, दान, सन्ध्या, उपासना) हैं वह सबके लिए करने योग्य हैं और सबको करने चाहिएँ। साधारण धर्मों में ही गंगा जी भी आ जातीं हैं। जो शास्त्र कहता है वह हमको करना ही चाहिए। इस प्रकार इस विषय पर कई दिन तक महाराज जी ने उपदेश किया। जिससे कि जनता को बहुत लाभ हुआ। तब सद्गुरु जी ने महात्माओं को आज्ञा दे दी कि जाओ गंगा स्नान करो। तब महात्मा कहने लगे कि भगवन् अब तो समय बहुत कम है केवल तीन ही दिन बाकी रह गये हैं। (यह समय कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के स्नान का था जिसको सब प्रान्तों में साल भर के बाद एक विशेष स्नान के लिए पर्व माना जाता है) इसलिये कृपा करके आप हमें यहीं पर गंगा स्नान करवाने की कृपा करो। आप में बहुत भारी सामर्थ्य है जो हमने जहाँ तहाँ देखी है। आप जो भी चाहो सोई कर सकते हो! इस प्रकार सन्तों की प्रार्थना को सुनकर और उनकी गंगा स्नान में दृढ़ रुचि जानकर कहा कि चलो चन्द्रावती के किनारे चलकर वहीं तुम्हें गंगा का स्नान करवायेंगे। कार्तिक पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल के समय गंगा स्नान करने के लिये सन्तों और सेवकों के सहित महाराज जी ने ढाब (चन्द्रावति नदी) की ओर चलने के लिए संकेत किया।

दोहा- चालो करो न ढील को, न्हावो तिस में जाय।
तुमरी प्रीति हेर के, गंग बगेगी आय॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सवैया- बात सुनी जब सन्तन ने, मिल उठ खड़े फड़ हाथ कठारी।
सन्त जमात सुहावत है, प्रभु आप चले तब साथ अगारी॥
जाय खड़े तट ढाव जभी, प्रभु भाखत हैं अब लेहो निहारी।
भाखत भूमी दरार फटी, चल जावत है छिन में जल भारी॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

इस प्रकार सम्पूर्ण सन्त समाज और सेवक समाज को साथ लेकर आप जब गंगा स्नान के निमित्त ढाब (कच्चे तालाब यहाँ बरसाती नदी चन्द्रावती) की ओर चले तब कुछ सन्तों के मन में सन्देह हुआ और कुछ सेवकों के मन में भी संशय हुआ कि हम उस सूखी (नदी) ढाब में जिसमें कि पानी की बूँद भी दिखाई नहीं पड़ती--स्नान कैसे करेंगे। तब महाराज जी ने कहा कि यदि तुम्हारा गंगा जी में दृढ़ प्रेम और विश्वास है तो तुम्हारे प्रेम को देखकर वह (गंगाजी) स्वयं प्रकट होंगी। ऐसा दृढ़ विश्वास करके वे सब उस ढाब के तट पर जा पहुँचे। वहाँ जाकर महाराज जी ने गंगा जी का आह्वान किया। आह्वान करते ही तत्क्षण पृथ्वी में दरार फटी और गंगा जी की निर्मल धारा फूट चली। धारा को देखते ही सन्तों और सेवकों के मन में आश्चर्य होने लगा। परस्पर कहने लगे कि देखो, यह सूखी जगह थी जहाँ कि अब गंगा जल की बड़े वेग के साथ धारा बहने लगी है और हम अभी तो सूखी ज़मीन देख रहे थे। इन सद्गुरु एवं पारब्रह्म परमेश्वर की कृपा से गंगा जी की धारा बहने लग गई। तब दूसरे किसी एक महापुरुष ने कहा कि जब एक साधारण व्यक्ति तप के प्रभाव से जिस स्थान पर रहता है उसको तीर्थमय बना देता है एवं वहाँ पर ही सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करवा सकता है तब इन साक्षात् परमेश्वर के लिए यह क्या कोई बड़ी बात है। इनके तो इशारे से ही सब कार्य पूर्ण हो सकते हैं। अनसूया अत्रि ऋषि की पत्नी ने अपने तपोबल से चित्रकूट (अनसूया आश्रम) में प्रयागराज से गंगा जी की धारा लाकर बहाई है जो आज भी चित्रकूट से कुछ आगे अनसूया नाम के आश्रम से प्रसिद्ध है और भी अनेक ऋषियों एवं मुनियों के उदाहरण मिलते हैं। इसलिए जब तप के बल से गंगा जी की धारा तपस्वी लोग जहाँ चाहे वहाँ ले जा सकते हैं तो इन सन्त रूपधारी पारब्रह्म के लिए कौन सी आश्चर्य की वार्ता है। उधर महाराज जी ने भी कहा कि देख लो गंगा जी की धारा बहने लगी है। अब आप लोग स्नान करें। गंगा जी की प्रबल धारा को देखकर ग्रामवासी एवं सम्पूर्ण सन्त समाज और सेवकों के मन में शान्ति का प्रवाह बहने लगा और श्रद्धापूर्वक गंगा जी में स्नान करते हैं। पश्चात महाराज जी को स्नान

करवाते है फिर कोई तो वाणी का पाठ करते हैं। कोई स्वास सुरति की माला फेरते है, कोई ध्यान में मग्न हैं और महाराज जी ने स्वयं गंगा जी की स्तुति में इस प्रकार के शब्द कहे हैं जो यहाँ संकेत मात्र दिये जाते हैं।

सुसम वेद साखा अनन्त कोटि धारा।
नमो मात गंगे जटा दर फुहारा॥
नमो मात गंगी अभंगी त्रंगी।
छुटे संख धारा अपारा विनंगी॥

(सद्गुरु श्री गरीब दास)

महाराज जी कहते है कि हे गंगा माता आपको नमस्कार। तेरा प्रवाह अखण्ड है। तुम्हारी धारा अविरत है। और आप तीन रूप होकर बह रही हो। एक तो आपकी धारा आकाश गंगा के नाम से प्रसिद्ध है। जो कि स्वर्गादिक लोकों में बहती है। दूसरा आपका प्रवाह इस मृत्यु-मण्डल में बह रहा है, जिसको लोग भागीरथी के नाम से पुकारते हैं। तीसरी धारा पाताल लोक में प्रवाहित होती है जो कि पाताल गंगा के नाम से प्रसिद्ध है। वैसे तो आपकी अनन्त धारा हैं जो शंकर की जटाओं में बहती हैं। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने गंगा जी का स्तोत्र इस प्रकार बनाया है—

"भुजंग प्रयात छन्द"

नमोमातगंगे, नमोमातगंगे, नमोमातगंगे, नमोमातगंगे।।टेक॥
बगे जास धारा तीन लोक माहीं,
किये पान जाके घने दुःख जाहीं।
सभी लोग सेवें तुझे शुद्ध अङ्गे। नमो.॥१॥
तुही देव देवी भवानी सयानी,
तुहीं पूजीनीये तुहीं लोकमानी।
त्रिशूली महादेव धरे शीश अङ्गे। नमो.॥२॥
अति घोर पापम् तुंही नाशकारी,
कलु सिन्धु डूबे जु ताको उभारी।

मारि बाज एकै मिले अङ्ग अङ्गे। नमो.॥३॥

यदा गंग नीरम् पड़े रुण्ड मांही,

सभी पाप भीति तुरन्त नाश जांहीं।

ऐसो ते प्रभावम् सुनाहीं प्रसंगे। नमो.॥४॥

तुंहीं आदि माया तुंहीं वाक रानी,

तुंहीं हैं गणेशी, महेशी पुरानी।

जिते देव देवी, तिते तोही अङ्गे। नमो.॥५॥

तुंहीं शम्भु शेषम् गणेशम् दिनेशं,

तुंहीं ईश इन्द्रं पुरिन्द्रं धनेशं।

तुहीं ज्योत ज्योति सभी तोहि अंगे। नमो.॥६॥

तुंहीं मोक्ष दाती स्वयं मोक्ष रूपम्,

घना नाम भाँति अनादि अनूपम्।

हने औघ पापम् त्रितापम् असंगे। नमों.॥७॥

मनोकाम वाणी यदा शुद्ध चीतम्,

पढ़े जो प्रभाते यही गंग गीतम्।

तिसे रोग शोकम् करो देवि भङ्गे। नमो.॥८॥

ब्रह्मानन्द भाखे सुसन्तन आगे,

छुडानी गंग काये होप्ती पाप भांगे

गरीबदास सद्गुरु महिमा अभंगे। नमो.॥९॥

सर्व सन्तों ने इस प्रकार गंगा जी की स्तुति करके एवं स्नान ध्यान आदि करके महाराज जी की भी अनेक प्रकार से स्तुति की। तत्पश्चात् सबने महाराज जी को दण्डवत प्रणाम किया। तब आपने सबको आज्ञा दी कि अब देरी मत लगाओ। अपने-अपने पात्र गंगाजल से भर लो क्योंकि गंगाजल को फिर यहाँ प्राप्त नहीं कर पाओगे। यह गंगा जी तो फिर अपनी धारा में मिल जायेंगी। यह बात सुनकर सबने अपना-अपना पात्र जल से

भर लिया और कहा कि भगवन् अब आप आगे चलिये। हम सबने गंगा जल भर लिया है। तब महाराज जी ने गंगा जी से इस प्रकार कहा कि—

दोहा- देवी दया करके करो, गवन, भवन निज आज।

छिन, छिन होय घट छिन में गई, सतगुरु की सुन बाज॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सतगुरु जी के इस वचन के सुनते ही कुछ ही क्षणों में सबके देखते-देखते गङ्गा जी अर्न्तध्यान हो गईं और गङ्गा जी का प्रखर प्रवाह उसकी निर्मल धारा देखते ही देखते उस सूखे तालाब के रूप में दिखाई पड़ी जिसके चारों ओर पानी की बूँद तक नहीं रही।

सवैया- सन्त निहारत हैं सब ही, तब बीच दरार न पावत गंगा।

सोचत हैं सब आपस में इत दीखत था अबही जल चंगा॥

गंग गई प्रभु भाखन ते, इम भाखत आवत हैं प्रभु संगा।

फेर अलावत आपस में, कथनो इनको कित होवत भंगा॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

इस प्रकार सन्तों ने गङ्गा जी का अकस्मात् लुप्त हो जाना देखकर आश्चर्य प्रकट किया। परस्पर कहने लगे कि अभी तो गङ्गा जी का बहुत बड़ा प्रवाह बह रहा था और अभी देखते-देखते ही लुप्त हो गया। तब दूसरे महापुरुषों ने कहा कि गङ्गा जी सद्गुरु के कहने से लुप्त हुई हैं। उनके वचन को कौन मिटा सकता है। महापुरुषों के मुख से निकला वचन सर्वदा अमिट होता ही है।

दोहा- पत्थर रेख समान है, बचन भनै मुखजौन।

होवत हैं मिटते नहीं, तिन्हें मिटावै कौन॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

महापुरुषों के वचन अमिट होते हैं जैसे पत्थर पर खिंची हुई रेखा नहीं मिटती उसी प्रकार महापुरुष भी जो वचन कहते हैं वे भी अमिट एवं सत्य ही होते हैं। उन्हें कोई मिटा नहीं सकता।

दोहा- गंगा परिचै जो दियो, सो मैं दियो सुनाये।
सिद्ध परिचै अब कहत हूँ, सुनो सन्त मन लाये॥
(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

॥ सिद्धवार्ता॥

एक समय एक सिद्ध ने (अघौरी) जो कि अनेक सिद्धियों के बल पर जगह-जगह पर विवाद करता था, उसने महाराज श्री गरीबाचार्य का नाम सुना और मन में विचार किया कि आज तक पृथ्वी तल पर कोई ऐसा सिद्ध नहीं देखा जो मेरे सामने टिक सके। अब इनको भी चल कर देखें कि ये कैसे सिद्ध हैं और इनसे जीतने की मन में प्रबल इच्छा हो उठी। रक्तनेत्र और शरीर में भस्म लगाये हुए और सिर पर जटाओं का मुकुट बाँधे हुए, एक हाथ में मनुष्य की खोपड़ी का प्याला और एक हाथ में दण्ड लिये हुए, शरीर पर मृगछाला पहने हुए प्रसन्न मुख होकर मार्ग में अभिमान से भरकर श्री छुड़ानी धाम के समीप पहुँचे और यत्किंचित हठयोग की युक्ति भी जानता था तथा आसन की विधि भी अच्छी तरह जानता था। एक बिल वृक्ष का सूखा फल जिसको कि बीच में से खाली करके उसमें रसायन (पारा-भस्म) भर रखी थी और उस बिल को सिर के बीच जटाओं में रखा हुआ था और वह सिद्ध ऋषि सिद्धि को ही मोक्ष मानता था। आत्मसुख का तो उसे किंचित् भी ज्ञान नहीं था। ऋद्धि[1] सिद्धियाँ ही आत्मसुख की प्राप्ति में प्रतिबन्ध (रुकावट) करने वाली हैं। आत्मसुख से जिज्ञासु को बहुत दूर कर देती हैं। इसीलिए आत्मवेत्ता पुरुष ऋद्धि सिद्धियों को तुच्छ समझ कर त्याग देते हैं। वह सिद्ध ऋद्धि सिद्धियों के अभिमान द्वारा तपा हुआ मस्त हाथी की तरह झूलता हुआ श्री छुड़ानी धाम पहुँच गया। जिस स्थान पर श्री आचार्य देव बैठे थे वहीं पर वह आ गया। आगे श्री आचार्य के सन्मुख सन्तों और सेवकों की विशाल सभा जमी हुई थी और सद्गुरु उनको अपनी अमृतमयी वाणी का उपदेश दे रहे थे। इस विशाल सभा को देखकर सिद्ध के मन में कुछ भय हुआ और मुख से

---
१. ऋद्धयाः।

हर-हर शब्द उच्चारण करके सभा के समीप आकर खड़ा हो गया। तब सब सन्तों ने सत्य साहिब कहा। सिद्ध ने खड़े-खड़े सुन लिया परन्तु कुछ उत्तर न दिया और महाराज ने सुमधुर वचनों द्वारा कहा–आओ दीनदयाल पधारिये। जब सिद्ध ने महाराज के कोमल तथा मधुर वचन सुने तो उसको थोड़ी-सी शांति हुई और महाराज ने अपने शिष्य को आसन के लिए संकेत किया तो शिष्य ने तत्काल सिद्ध के लिए आसन दिया और सिद्ध जी उस पर बैठ गये। बैठते ही उनका महाराज जी के दर्शन से कुछ अभिमान क्षीण हुआ और सिद्ध जी बैठकर अच्छी तरह नेत्र खोलकर महाराज जी की ओर देखने लगे।

दोहा- सभा बीच सिद्ध बैठ के, देखत नयन उघार।
महापुरुष के बदन की, शोभा को नहीं पार॥
(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सद्गुरु जी के शरीर की प्रभा को देखकर सिद्ध जी दंग रह गये। क्योंकि उनके शरीर की सुन्दरता का कोई पार नहीं पा सकता था। नील कमल के समान आपके नेत्रों की शोभा थी, उन कमलरूपी नेत्रों पर सिद्ध का मन रूपी भंवर मंडराने लगा। आपका मस्तक बहुत विशाल था और चन्द्रमा के समान आपके मुख की शोभा थी और आपकी चिबुक (ठोडी) सूर्य की तरह चमक रही थी और दोनों ही अधर (होंट) अति लालिमा लिए हुए शोभा दे रहे थे और आपकी विशाल भुजाएँ हाथी के सूण्ड की भाँति विशाल थीं। जिनका प्रमाण आपके पहने हुए वस्त्रों से मिलता है (जो कि अब भी छुड़ानी धाम में सुरक्षित रखे हुए हैं।) और आपकी कटि (कमर) शेर की तरह थी और आपका शुक्ल श्वेत परिधान दर्शकों के मन को मोहित करने वाला था। एवं जो आपके दर्शन करता वह मानो मोहित हो जाता था। उस विशाल सभा में आप ऐसे प्रतीत होते थे कि जैसे दूसरों के मन को मोहित करने वाली ही आपने अपनी मूर्ति धारण की है। आपकी इस मोहिनी छवि को देखकर सिद्ध अपने मन में सुख का अनुभव करने लगा। परन्तु मुख से नहीं कहता। सिद्ध के नेत्र महाराज जी की इस छवि को ऐसे नहीं तजते जैसे भँवरा कमलों को नहीं त्यागता। और सिद्ध जी अपने नेत्रों को हटाना चाहते हैं परन्तु वह नेत्र ऐसे नहीं हटते जैसे

अड़ियल हाथी अपने मार्ग से हटाया हुआ नहीं हटता। जब यत्न करके किसी प्रकार सिद्ध ने अपने नेत्रों को रोककर सन्त समाज की ओर देखा सब सन्तों के मस्तक जगमगाते हुए प्रतीत हुए और लाल नेत्र, सबके प्रसन्न बदन (मुख) देखे और हर श्वास में हंस और प्रणव (ओम्) मन्त्र का जाप करते थे एक भी श्वास खाली नहीं जाता था और योग मुक्ति को भी सब सन्त अच्छी तरह जानते थे और योग के आसनों को भी भली प्रकार से जानने वाले थे। शान्ति और दान्ति (इन्द्रिय दमन) आदि से लेकर अनेक गुणों के सहित सन्तों को सिद्ध ने भली प्रकार से देखा। उस समाज में बैठे हुए सन्तों के गुणों की महिमा, का सिद्ध पार नहीं पा सका और अपने गुणों को उन सन्तों के सामने तुच्छ समझा। यद्यपि अपने गुणों को अति न्यून जाना तथापि उन सन्तों के सद्गुणों का वर्णन करना सिद्ध ने अपनी न्यूनता समझी। इसमें देहाभिमान ही मुख्य कारण है क्योंकि अभिमान के कारण ही जीव अपने दोष को गुण रूप करके जानता है और दूसरे के गुण को दोष रूप समझता है। तत्पश्चात् सिद्ध की प्रश्न करने की इच्छा हुई परन्तु प्रश्न करने में संकोच को प्राप्त हुआ। सिद्ध के मन के संकल्प और विकल्पों को महाराज जी ने जान लिया और उससे कहा कि सिद्ध जी आप के मन में जो शंका हो, सो पूछो आप किसी प्रकार भी संकोच न करो। जो आप अपने मन में प्रश्न सोच रहे हैं उसे कहो—संकोच वश होकर उसे दबाओ मत। शंका रूपी कीचड़ मन में रहने से मन मलिन होता है।

जब महाराज जी के ऐसे वचन सिद्ध ने सुने तो बोला कि जो यह नरकपाल (मनुष्य की खोपड़ी) का खपर हमारे हाथ में है इसको जल से भर दो क्योंकि मुझे अति प्यास लगी हुई है। इसलिये मेरा यह खप्पर भरकर मेरी प्यास को दूर करो। जब तक यह भरेगा नहीं तब तक मेरी प्यास दूर नहीं हो सकती। मेरा यह कपाल खाली न रह जाये। जल पीकर ही जो बात पूछने योग्य होगी पूछूँगा। जब महाराज ने सिद्ध के यह वचन सुने तब अपने मुख्य शिष्य धारीराम को बुलाया। और महाराज जी की आज्ञा सुनते ही धारीराम जी दोनों हाथ जोड़ कर उपस्थित हुए और कहा कि भगवन्! आपका दास आपकी सेवा में हाजिर है।

तब महाराज जी ने कहा कि यह हमारा लोटा जो जल से भरा हुआ है लेकर उस सिद्ध के हाथ में जो कपाल है उसको भर दो जिससे इसकी प्यास निवृत्त हो जाये। धारीराम जी भी एक शक्तिशाली पुरुष थे, महाराज की आज्ञा को उसी समय समझ गये और महाराज के चरणों में नमस्कार करके वह लोटा जो जल से भरा हुआ था हाथ में उठा लिया। महाराज की मूर्ति को हृदय में धारण करके सिद्ध को कहा "आओ सिद्ध जी जल पीओ" यह शब्द सुनकर सिद्ध ने अपना वह मनुष्य की खोपड़ी का प्याला धारीराम के आगे कर दिया और कहा कि इसको भर दो। धारीराम जी ने लोटे की धार उस प्याले में छोड़ी, सिद्ध ने अपनी सिद्धि लगाई जिससे कि प्याला न भर सके। उधर धारीराम के हस्तगत लोटे का जल भी समाप्त नहीं होता। इसी प्रकार काफी समय लग गया। न खप्पर भरता है और न लोटा खाली होता है। जब उसका खप्पर भरने लगा तो सिद्ध ने तुरन्त वह प्याला मुख को लगा कर पानी पीना आरंभ किया। ज्यों-ज्यों सिद्ध जी पानी पीते हैं त्यों-त्यों खप्पर भरता जाता है। जब सिद्ध जी ऊपर लोटे की ओर देखते हैं तो लोटे से जल की अखंड धारा पड़ रही है। जब जल पीते-पीते सिद्ध का पेट भर गया तब उसने खप्पर उल्टा कर दिया और ऊपर को नेत्र उधाड़ कर लोटे की ओर देखा वह लोटा तो जल से ज्यों का त्यों भरा ही है। किंचित् भी खाली नहीं हुआ। तब सिद्ध मुख से कुछ नहीं बोला और अपने मन में विचार करता है कि हम तो इनको जीतने के लिए आये थे परन्तु यहाँ तो हमारी ही हार होती जा रही है।

धारीराम ने कहा कि सिद्ध जी पानी और पीयो जितना भी पीना हो। यदि और पानी पीने की सामर्थ्य नहीं तो अपने आसन पर बैठ जाईये। यदि कुछ देखने की इच्छा हो तो अपने मुख से कहो हम आपको वही दिखायेंगे। जितने भी इस सभा में महात्मा बैठे हैं सब शक्तिशाली एवं सामर्थ्यवान् हैं जिससे आप कुछ पूछो वही उत्तर देगा। जिसकी कुछ शक्ति देखना चाहो वही दिखायेगा। सब सन्तों पर इन महापुरुष (सद्गुरु जी) की कृपा है। जब सिद्ध ने धारीराम के इस प्रकार के वचन सुने तो वह सिद्ध अपने आसन पर जा बैठा और धारीराम जी ने महाराज जी के चरणों में सिर झुकाकर वह जल का लोटा रख दिया। सब सन्तों ने देखा कि उस

लोटे में से एक बूँद भी जल की कमी नहीं हुई। सब सन्तों ने महाराज की शक्ति को (सामर्थ्य) जानकर जय-जयकार शब्द उच्चारण किया और सिद्ध ने भी मन में यही विचार किया कि इनके अन्दर बहुत भारी सामर्थ्य है। मैं देश-देशान्तरों में घूमा हूँ पर इनके समान शक्तिवान् कोई सिद्ध नहीं मिला और मुख से कहने लगा मेरा यह कपाल आज तक किसी से नहीं भरा यह तो एक आपकी ही शक्ति है कि आपने भर दिया और अपने पात्र को जरा भी खाली नहीं होने दिया। आपमें भारी सामर्थ है सो हमने अपने नेत्रों से देखी। इस प्रकार कहकर सिद्ध प्रश्न करने के लिये मन में विचार करने लगा। फिर सोचता है कि ऐसा तो कोई भी प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर यह महापुरुष न दे सकें। इस प्रकार सिद्ध अपने मन को बार-बार समझाता है। अनेक बार समझाने पर भी सिद्ध का अभिमान बारम्बार प्रश्न की ओर उसके मन को ले जाता। अभिमान में आकर सिद्ध ने सोचा कि हमारे समान संसार में दूसरा सिद्ध नहीं है। हम इनसे अनेक प्रश्न पूछेंगे जिनका यह अन्त नहीं पा सकेंगे। इस प्रकार विचार करके वह सिद्ध अभिमान के सहित प्रश्न करने लगा। अनन्तों ही प्रश्न सिद्ध ने किये। महाराज जी ने उन सब प्रश्नों का सहज में ही उत्तर दे दिया।

दोहा- उड़गण सम सब प्रश्न हैं, उत्तर भानु समान।
भानु उदय के होत ही, उड़गण दुरत है हान॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सिद्ध के प्रश्न नक्षत्रों (तारों) के समान थे और महाराज जी के उत्तर सूर्य के समान थे जैसे रात्रि के समय अनन्तों तारे आकाश में जगमगाते हैं। किन्तु सूर्य के उदय होने से सब तारे लुप्त हो जाते हैं बस इसी प्रकार महाराज के उत्तर सिद्ध के प्रश्नों के लिये थे।

दोहा- अहिगण सम सब प्रश्न हैं, उत्तर गरुड़ समान।
प्रश्न लक्ष सम जानिये, उत्तर वान पहचान॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सिद्ध ने जो-जो प्रश्न किये इन सबके उत्तर महाराज जी ने दिये सो बाणी के "ज्ञान तिलक नामक प्रकरण" में एक-एक प्रश्न का उत्तर आपने

दिया है जो काफी लम्बा प्रकरण है उसमें से एक दो पद यहाँ लिखे जा रहे हैं। अधिक लिखने से ग्रन्थ का विस्तार हो जायेगा। केवल प्रमाण मात्र दिखाया जाता है। यथा–

प्रश्न- स्वामी कौन तुम्हारा पिता बोलिये, कौन तुम्हारी माई।
कौन तुम्हारी जाति बोलिये, कौन तुम्हारी दाई॥

उत्तर- औधु पद हमारा पिता बोलिये, मूला हमरी माई।
सुंन हमारी जाति बोलिये, दीन हमारी दाई॥

(आचार्य श्री की वाणी)

इस प्रकार के सैकड़ों ही सिद्ध ने प्रश्न किये हैं और महाराज जी ने उनके उत्तर दिये हैं जिस पाठक को सम्पूर्ण प्रश्नोत्तर जानने की इच्छा हो वह श्री ग्रन्थ साहब में या "रत्न सागर" में या "ज्ञान तिलक" को पढ़कर जान ले। यहाँ तो प्रमाणमात्र ही दिया गया है।

जब सिद्ध ने इस प्रकार के अलौकिक एवं आत्म-ज्ञान विषयक उत्तर सुने तो उस के मन में महाराज के प्रति अति श्रद्धा उत्पन्न हुई और श्रद्धा युक्त होकर अपनी श्रद्धा को जताने के लिये आपसे इस प्रकार कहने लगा कि हे भगवन् मैं आपका दास हूँ—शंकाओं द्वारा मैं आप का पार नहीं पा सका। मेरा जो पर्वतों के समान अभिमान था वह आपके वचन रूपी वज्र से चूर्ण हो गया। अब हम ऐसे सुखी हो गये जैसे किसी पुरुष के सिर पर से बोझा उतरने से वह सुखी होता है। सिद्ध के मन में अति प्रसन्नता हुई, विषादरूपी ताप दूर होकर मन में शान्ति की प्राप्ति हुई और महाराज जी की मूर्ति को जहाँ-तहाँ देखने लगा। जिधर देखता है उधर गोसांई साहिब जी ही दिखाई देते हैं। गौर स्वरूप, बड़े सुन्दर लाल नेत्र, हाथी के सूण्ड की तरह भुजाएँ, विशाल छाती, केहरी (शेर) के समान कटि (कमर), कमल के समान मुख, दमकते हुए विशाल मस्तक में तीन रेखायें शोभायमान हो रही हैं और जैसे महाराज जी की मूर्ति सिद्ध ने चारों ओर विशाल देखी थी वैसी ही अपने हृदय कमल में भी दिखाई दी।

यह चमत्कार देखकर सिद्ध मन में बारम्बार पछताता है और दुःख को प्राप्त होता है। इतना होने पर भी सिद्ध का धन से राग दूर न हुआ।

अपने मन में विचारता है कि यह रसायन का बिल इन महापुरुषों को भेंट कर दूँ। फिर सोचता है कि यह रसायन तो मैंने बहुत कष्ट से तैयार की है यदि इनको दे दूँगा तो मुझे फिर कहाँ से प्राप्त होगी। अस्तु बार-बार विचार करने के बाद सिद्ध ने अपनी श्रद्धा को प्रकट करने के लिए वह रसायन का भरा हुआ बिल सिर की जटाओं में से निकाल कर महाराज जी के आगे धर दिया और कहने लगा कि भगवन्! इसमें रसायन भरी हुई है जिसके द्वारा स्वर्ण (सोना) बनाया जा सकता है। इसमें वह अमूल्य वस्तु है जो कि थोड़ी सी ही बहुत सा सोना बना देती है। स्वर्ण बनाने की विधि इस प्रकार है कि ५२ तोला तांबा लेकर उसे पिघला लो, जब वह ढलकर पानी के समान हो जाये तो उसमें इसमें से एक रत्ती रसायन डाल दो बस गिरते ही वह तांबा स्वर्ण हो जायेगा। कोई उसे नहीं पहचान सकता है कि वह स्वर्ण तांबे का है। इस प्रकार स्वर्ण बनाकर आप अपने सन्तों को मन चाहे भण्डारे करो। यह करने से आपको अपने व्यवहार में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। क्योंकि आपके पास नित्यप्रति हज़ारों ही व्यक्ति भोजन करते हैं इससे आपको सब प्रकार की सुविधा हो जायेगी। यह सुनकर सद्गुरु जी ने तत्काल उत्तर दिया कि सिद्ध जी आप इतनी कल्पना क्यों करते हैं जो भी आपने कल्पना की वह हमने सब जान ली। यह रसायन हमारे काम की नहीं। हमारे सब कार्यों को वह विश्वम्भर पूर्ण करता है। परमात्मा का नामरूपी रसायन सब काम करती है। इस राख (रसायन) से कोई सफलता नहीं मिल सकती। जिसके पास परमात्मा के नामरूपी रसायन है उसकी तो माया स्वयं दासी बन जाती है। उसके लिये और भस्मादिक रसायन की आवश्यकता नहीं रहती।

दोहा- बाँधव मीत सपूत जो, गज अर सैन अपार।
यह सब किंचित न करे, जो न हरि सौं प्यार॥
लंका सर्व स्वर्ण की, रावण के अनुसार।
तिन कछु कार्य न सार्यो, बिना राम के प्यार॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

कवित्त- ब्रह्म कुल के मझार, भ्यो रावण निहार,
धनकुबेर समान कुंभकरण बीर पायो है।
इन्द्रजीत पूत भारी गृह सिन्धु के मझारी,
बीस भुज दस शीश तन में सुहायो है॥
राक्षसों का ईश होई, काम चर आप सोई,
पुष्प विमान देव इनमें चलायो है।
ब्रह्मानन्द ने निहारी, देव गति अति भारी,
इतने समाज में न काज कोई आयो है॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

अब आप (सिद्ध जी) विचार कीजिए कि इतना साजो सामान होते हुए भी परमात्मा से विमुख होने के कारण किसी ने किंचित् मात्र भी रावण की सहायता न की। इसलिए यह आपकी रसायन हमारे काम की नहीं है।

दोहा- याते हमरे काज न, जो रसायन विल बीच।
दीजो किसी कंगाल को, धरो जटा के बीच॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

इस कारण से आपकी रसायन हमें नहीं चाहिए। आप किसी दीन दुखी को यह रसायन देना। हमें इसकी इच्छा नहीं है और रसायन से किसी इच्छावान् की तो तृप्ति भी नहीं हो सकती क्योंकि जिस व्यक्ति के हृदय में अतिशय तृष्णा है उसे चाहे सम्पूर्ण पृथ्वी का धन एवं सुमेरु पर्वत (जो सम्पूर्ण स्वर्णमय है) भी दे दिया जाये तो भी उसकी इच्छा शान्त नहीं हो सकती। तो उस धन या स्वर्ण से क्या लाभ जो एक इच्छावान् की इच्छा को पूर्ण नहीं करती। जो व्यक्ति इच्छा से रहित है उसके लिए स्वर्ण भी मृत्तिका के समान है। दोनों प्रकार से आपकी रसायन का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है और जिस पुरुष की इच्छा नहीं भरती वही परम कंगाल कहा जाता है। श्री भरतरी हरी जी ने कहा कि जाके त्रिष्णा उखसी वही परम कंगल। जिसकी सब इच्छाएँ निवृत्त हो गईं, मन सन्तुष्ट हो गया वही

शहनशाह है। उसकी दृष्टि में कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है। वह यथालाभ में सन्तुष्ट है एवं उसे प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ प्राप्त हो जाता है वह उसी में सन्तोष कर लेता है।

साखी- गरीब सन्तोष स्वर्ग पाताल सब, और कहां मृत लोक।

फिर पीछे कुं क्या रह्या, जब आया सन्तोष॥

पाताल से लेकर ब्रह्म लोक पर्यन्त जितने भी पदार्थ हैं, सन्तोषी पुरुष की दृष्टि में वह कुछ महत्त्व नहीं रखते। इसलिए जिसको चाह नहीं वही सुखी है। जिसके हृदय में चाहरूपी पिशाचन बैठी है उसे दिन-रात में क्षण भर भी सुख की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए हे सिद्ध जी आप भी अपनी इच्छा की निवृत्ति करो जिससे आपको सुख हो। हमें आपके रसायन की आवश्यकता नहीं है। जब सिद्ध ने आपके इस प्रकार के वचन सुने तो फिर बोला कि भगवन्! आपके वचन सत्य हैं। इसमें किंचित् भी संशय नहीं है। फिर भी यह रसायन आपको लेनी ही चाहिए। क्योंकि ऐसी रसायन सुगमता से प्राप्त नहीं हो सकती हमने तो इसको अति कष्ट से प्राप्त किया है और इस रसायन को हम प्रकट भी नहीं करते। आपके प्रति हमारी अत्यन्त श्रद्धा हुई है। इसलिए आपके आगे रसायन को चढ़ा रहे हैं। ऐसा समय बार-बार प्राप्त नहीं होता कि जो कोई आपको रसायन लाकर के भेंट कर (चढ़ा) देगा। अब तक कोई भी मेरे जैसा श्रद्धालु नहीं मिला होगा जिसने आपको रसायन की भेंट की हो और न आगे मिलेगा। इसलिए इस रसायन को आप अवश्य ले लें और अपने कार्य में लाएँ। यद्यपि आपको इसकी इच्छा नहीं है तथापि यह तो अनेक कष्टों से भी प्राप्त नहीं हो सकती। अपने लिये या परोपकार के लिए आप इसे अवश्य ग्रहण करें। तब महाराज जी ने कहा कि–

दोहा- निज हित पर हित कारणे, हमे चाह कुछ नाहिं।

जो राग है तुमरे सदा, धरो सु निज सिर माहिं॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

हमारे मन में किसी प्रकार की भी इच्छा नहीं है। यदि हमें इच्छा हो तो हम बिना ही रसायन के स्वर्ण बना सकते हैं। तब सिद्ध ने कहा कि बिना

रसायन के स्वर्ण किसी प्रकार भी नहीं बन सकता। तब आपने सिद्ध का अभिमान दूर करने के लिए अपने मन में सोचा कि बिना प्रत्यक्ष प्रमाण के सिद्ध नहीं मानेगा। यह विचार कर आपने दस-बीस पत्थर की कंकड़ी मँगवाई और सिद्ध से कहा कि देखो यह क्या है सिद्ध ने कहा कि यह तो पत्थर के कंकड़ हैं। आपने उसी क्षण उन पत्थर की कंकड़ों को स्वर्ण के रूप में बदल दिया। स्वर्ण की डलियाँ सिद्ध के आगे रख दी कि लो उठा लो और कहा कि बिना ही रसायन के और बिना किसी धातु के कंकरों को स्वर्ण बना दिया। आपके सामने पड़ा है आप उठा लीजिये। इसमें लेशमात्र भी शंका मत करिये आप ही के सामने सब कुछ बनाया गया है। समर्थ पुरुष के लिए संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है, सन्त में ऐसी शक्ति है कि जो चाहे सो कर दे और आपने अपनी बानी का यह पद कहा कि–

पारस की खान तो मूतर की धार में,

कहाँ मोती हीरा लाल है रे।

(सद्गुरु गरीब दास जी)

समर्थ के लिए भारी से भारी तथा गुप्त से गुप्त वस्तु भी दुर्लभ नहीं है। अति विशाल द्रोणागिरी पर्वत हनुमान जी ने एक गेंद की नांईं उठा लिया था। इस प्रकार शक्तिशाली पुरुषों के लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है। जो पुरुष निश्चयवान् है उसके लिए भी कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। कांचीनी नाम की गुजरी जो नित्य प्रति किशती द्वारा गोकुल से मथुरा दूध बेचने जाया करती थी एक दिन वह पंडित जी की कथा में बैठ गई। उस दिन पंडित जी यह प्रकरण सुना रहे थे कि–भगवान् के नाम रूपी नौका इस संसाररूपी समुद्र से जीव को पार कर देती है। बस इतनी-सी बात सुनकर साधारण-सी प्रकृति वाली गुजरी ने यह निश्चय कर लिया कि जब परमात्मा का नाम संसार सागर से पार करने में समर्थ है तो क्या उस नाम के द्वारा इस छोटी सी नदी (यमुना) से मैं पार नहीं हो सकूँगी? अवश्य ही हो सकूँगी। यह दृढ़ निश्चय करके वह जमुना जी के ऊपर ऐसे चलने लगी की जैसे सूखी धरती पर साधारण व्यक्ति चलता है। बिना

किसी प्रकार की रुकावट के वह देवी जमुना जी को पार करके चली गई। उसका वस्त्र आदि कुछ भी नहीं भीगा। यथा "पल्लू न भीज्या जो उतरी अमान"।

साखी- गरीब निश्चय ऊपर गूजरी, बिन ही बेड़े पार।
पंडित के दिल दुई थी, गरुआ रह गये वार॥

यह फल दृढ़ विश्वास का तो है। जिसका निश्चय पक्का है उसके लिए कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। जिस पुरुष के विद्या कण्ठस्थ है उसके लिए देश-विदेश सब एक हैं। जो पुरुष प्रिय वचन बोलता है उससे सब मनुष्य प्रीत करते हैं। इत्यादिक दृष्टान्त हैं सामर्थ्यवान् पुरुष जो चाहे कर सकते हैं।

दोहा- कंकर बनी स्वर्ण की, पड़ी सभा के माँहिं।
चकित चित्त सबके भये, पुन पुन हेरत तांहिं॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

उन सम्पूर्ण सभा के लोगों का मन आश्चर्य चकित हो गया जब उन्होंने देखा कि कंकरों का स्वर्ण बन गया है। उन कंकरों का अच्छी प्रकार से बार-बार निरीक्षण करते हैं और स्वयं से ही प्रश्न करते हैं कि क्या वास्तव में ही यह असली स्वर्ण है? इस प्रकार जब सिद्ध ने आपको पूर्ण रूप से समर्थ देखा तो आपकी स्तुति दोनों हाथ जोड़कर करने लगे। महाराज जी ने भी उसी क्षण शिव स्वरूप धारण कर लिया। तब सिद्ध ने कहा कि हे भगवन् मैं आपका दास हूँ मैं आपकी सामर्थ्य को जान गया। आप तो साक्षात् शिव स्वरूप ही हो। सम्पूर्ण जीवों को सुख देने वाले हो। मुझ जैसे सिद्धों का अभिमान चूर करने वाले हो। आप को बुद्धिमान् पुरुष ही पहचान सकते हैं। जिस प्रकार प्रसव पीड़ा को बन्ध्या स्त्री नहीं जान सकती उसका अनुभव तो प्रसूता स्त्री ही कर सकती है अब तक मेरा भी जो भेद-भाव था जो शंका थी अब उसका समाधान हो गया है। इच्छा रूपी पिशाच का सर्वनाश हो गया है। शान्ति रूप स्त्री का हृदय रूपी घर में वास हो गया है। अब तो यह रसायन मेरे किसी भी काम का नहीं है। लेशमात्र की इच्छा भी अब मुझे नहीं रही है। क्योंकि आपकी असीम कृपा

से मेरी सभी इच्छाओं का दमन हो गया है। अब आप जैसी आज्ञा दें मैं वैसा ही करूँ। तब यह सुनकर महाराज जी ने भी अच्छी प्रकार जानकर कहा यदि आपकी कोई इच्छा नहीं है। यह रसायन तो हमारे भी किसी काम का नहीं है। हम भी इसे अपने पास नहीं रखेंगे। पास में रखी माया से पुरुष का मन मोहित हो जाता है। इसीलिए आपने अपनी वाणी में इस प्रकार कहा है—

गरीब बगती में स्नान कर, आगे से नहीं रोक।
चलती कुँ तो चलन दे, निस्तर जावें लोक॥
गरीब बगती परबी नहाइये, आगे से नहीं हेर।
चलती को तो चलन दे, चढ़ जायेगी मुंडेर॥

जैसे चलती हुई नदी में स्नानादि सब क्रियायें करने से अपने को भी और दूसरों को भी सुख मिलता है। परन्तु यदि उसी नदी को यानी उसके प्रवाह को रोक दिया जाये तो किनारे पर स्थित वृक्ष मकान आदि के शिखर तक पहुँचकर उनको साफ कर देती है इसी प्रकार धन का संग्रह भी मनुष्य की बुद्धि को मोहित करके विमूढ़ कर देता है। इसीलिये आपने माया के अंग में अनेक साखियों द्वारा जिज्ञासुओं को यही सदुपदेश दिया कि धन का संग्रह मत करो। जो अपने से गरीब दुःखी एवं अपने से अभ्यागत साधु ब्राह्मण हैं उनको देते रहें। जिससे अपना कार्य भी चलता रहे और दूसरों को भी सहायता मिलती रहे और उनका जीवकोपार्जन भी होता रहे। इस प्रकार की आपकी अनेक साखियाँ हैं। उनमें से केवल दो ही यहाँ पर लिखी गई हैं। अधिक देखना हो तो महाराज की वाणी के माया के अंग में देख लें। तब सिद्ध ने कहा कि यह रसायन और यह कञ्चन जहाँ रखने लायक हैं वही पर आप रखो। आपने उसी क्षण शिष्यों को आदेश दिया कि यह रसायन का बिल्ल और यह स्वर्ण की कंकरें गंगा जी को चढ़ा दो। जब हमने यहाँ पर गंगा जी को बुलाया था तब उनको कुछ भेंट में नहीं दिया था। तब शिष्यों ने आपकी आज्ञानुसार उस कञ्चन और रसायन को उसी स्थान पर पहुँचा दिया जहाँ से गंगा जी की धारा स्फुटित हुई थी। आकर महाराज जी से कह दिया कि गुरुदेव हम

गंगा जी की भेंट चढ़ा आये हैं। यह सुनकर उस सिद्ध के मन में यह सन्देह हुआ कि यहाँ पर गंगा जी कहाँ? वह तो यहाँ से बड़ी दूर पर है। उस सिद्ध के संशय निवारण के लिये सद्गुरु जी ने फिर कहा कि सिद्ध जी महाराज यदि आपको अपनी रसायन के प्रति मोह उत्पन्न होकर उसकी इच्छा फिर हुई है तो आपको वह रसायन फिर मिल सकती है और सिद्ध जी को कहा कि जाओ इनके साथ वहाँ चले जाओ जिस स्थान पर गंगा जी बहती हैं परन्तु अपना ही बिल उठाना और नहीं। तब सिद्ध ने सोचा कि वह रसायन तो मिट्टी में मिल गई होगी। परन्तु देखें तो सही इनकी गंगा जी कहाँ पर है। जब सन्तों के समेत सिद्ध जी उस स्थान पर पहुँचे तो पृथ्वी की दरारों के बीच गंगा जी बहती दिखाई दीं और रसायन के भरे हुये अनेकों बिल उसी स्थान पर रखे हैं यह देखकर सिद्ध जी अपने मन में अति लज्जित हुये और मन में एक प्रकार की ग्लानि-सी हुई। वहाँ से दौड़े और श्री आचार्य जी के चरणों में गिर पड़े। महाराज जी की बार-बार परीक्षा लेने से सिद्ध जी उनकी उदारता पर नतमस्तक हो गये। उनके चमत्कारों से उनकी अलौकिक शक्तियों से सिद्ध जी विभिन्न प्रकार की कल्पनाओं में डूबने लगे। सोचते हैं क्या मैं पागल हो गया हूँ या मैं इस संसार में अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करने पर भी इतना माया से लिप्त हो गया हूँ अथवा मेरे ऊपर किसी का जादू चल रहा है जो मैं गुरुदेव की इतनी लीलायें इतनी शक्तियाँ देखकर भी बार-बार शंका कर बैठता हूँ। इसमें महाराज जी के लिये तो कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

दोहा- या में कुछ अचरज नहीं, जो नर होत उदार।
राजादिक सब सम्पदा, देत पलक में डार॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

जब सिद्ध को गुरुदेव ने चकित-भ्रमित-सा देखा तो उन्होंने अपना शिवरूप धारण कर लिया। उनका यह विकराल रूप देखकर सिद्ध जी ने अपने नेत्र बन्द कर लिये और अपने हृदय में उनकी मूर्त्ति धारण करके मुख से हर-हर का जाप करने लगा। कुछ समय पश्चात् सिद्ध ने नेत्र खोले और महाराज का स्वाभाविक रूप देखकर अपने मन को शान्त

किया। सिद्ध के मन में अब चलने की इच्छा उत्पन्न हुई। अतः चलते समय उसने भरी सभा में इस प्रकार उच्चारण किया कि–"जो व्यक्ति इन साधारण मनुष्य शरीर धारी सद्गुरुदेव को नर-शरीर में समझेगा वह स्वयं ही मृत्यु के मुख में जायेगा। ये तो साक्षात् महादेव ही हैं। इनको शंकर ही मानो। यह तो साक्षात् पारब्रह्म परमेश्वर हैं। शंकारूपी कीचड़ श्रद्धारूपी जल के बिना दूर नहीं हो सकता। हरि से विमुख होने पर जो फल मिलता है वही फल इन परमेश्वर स्वरूप सद्गुरु जी से विमुख होने पर प्राप्त होता है। इस प्रकार कहकर जब सिद्ध चलने की इच्छा करता है परन्तु उनका मन उन्हें जाने से रोकता है। इस प्रकार सिद्ध के मन में विचारों की उथल-पुथल होने लगी, एक प्रकार का विचारों में द्वन्द्व-सा मच गया। सद्गुरुदेव जी ने (जो, विचारों के द्वन्द्व को समझ गये) सिद्ध से कहा कि "सिद्ध जी यदि आपकी जाने की इच्छा है तो चले जाइये" कारण कि जिसका मिलन होता है उसका बिछुड़न अवश्य ही होता है। जिसका आना होता है उसका जाना भी अवश्यमेव ही है। इसमें संशय करना व्यर्थ ही है। शरीर मात्र न किसी के एक साथ आते हैं और न एक साथ जाते हैं। अब आप अपने मन में संकल्प कर लीजिये कि हम आपसे कभी भी दूर नहीं हैं। सिद्ध जी ने महाराज जी की बात मन में निश्चयपूर्वक धारण कर ली और महाराज जी से आज्ञा माँगी। आशीर्वाद ग्रहण कर सिद्ध प्रसन्न मुद्रा में प्रेमाकुल हो प्रस्थान करने लगे।

दोहा- प्रीत दुराई न दुरे, यत्न करो मन कोय।
लैन दैन अरु बैन कर, प्रकट होवत सोय॥
जैसे दीपक न दुरै, भोडल ओट मंझार।
तैसे सिद्ध की प्रीति को, कौन छुपावन हार॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

सच्चा और हार्दिक प्रेम प्रयत्न करने पर भी छुप नहीं सकता। उसका कुछ न कुछ भाव अवश्य ही प्रकट हो जाता है। किसी वस्तु के लेने में अथवा देने में और मुख से किसी बात के कहने आदि में वह प्रकट हो ही जाता है। जिस प्रकार शीशे की और अभरक में करने से भी दीपक का

प्रकाश आ ही जाता है उसी प्रकार सिद्ध का हार्दिक प्रेम महाराज जी के प्रति प्रकट हो गया और उसी प्रेम के वशीभूत हो चलते समय मुख से इस प्रकार के उद्गार निकले। सिद्ध महाराज जी ने चलते समय गुरुदेव को दण्डवत प्रणाम किया और समग्र सन्त समाज को सत् साहिब बुलाई। प्रत्युत्तर में सम्पूर्ण समाज ने सत् साहिब का उच्चारण किया। यह उच्चारण सुनकर सिद्ध बाबा ने विदा ली। विदाई के समय सिद्ध जी ने सद्गुरु जी को एक मृगछाला भेंट में दी और प्रेमपुलकित हो वह महाराज जी की शिवरूपधारी मूर्ति को अपने हृदय में धारण करके प्रस्थान कर गये। थोड़ी दूर जाकर सिद्ध अपनी सिद्धि के द्वारा अदृश्य हो गया। पीछे जितना सन्त समाज था वह सद्गुरु जी को शंकर स्वरूप में देखकर आश्चर्यमय हो गया और हर-हर-हर का शब्द उच्चारण करने लगे। ज्यों-ज्यों महाराज जी की सामर्थ देखते थे त्यों-त्यों गुरु चरणों में प्रीति बढ़ती जाती थी। आपके अद्भुत शक्तिशाली चमत्कारों से भला कौन ऐसा होगा जो कि प्रभावित न हुआ हो।

॥ श्री ठंडीराम को नम्बरदारी॥

श्री गरीबाचार्य जी की छोटी बहिन साहबकौर का विवाह (रोहतक के दिल्ली जाने वाली सड़क पर नांगलोई के पास) मुण्डका ग्राम में हुआ था। इनके पिता के पास जमीन बहुत थी। इसलिये साहबकौर को कुछ जमीन रहने के लिये छुड़ानी में ही दे दी, जिससे वह वहीं पर रहने लगी। साहबकौर का पुत्र ठण्डीराम एक दिन बहुत उपद्रव कर रहा था। महाराज जी ने उसके मुख पर एक चपेट लगा दी। तब वह रोता-चिल्लाता अपनी माता साहबकौर के पास गया। और कहा कि श्री महाराज जी ने मेरे को बहुत मारा, तब साहबकौर अपने पुत्र के दुःख से दुःखी होकर तथा लड़के को साथ लेकर श्रीमहाराज जी को उपालम्भ (उलाहना) देने गई और कहा कि आपने ठण्डीराम को क्यों मारा, तब श्री महाराज जी ने कहा कि मैंने इसको मारा नहीं है अपितु इसे नम्बरदारी प्रदान की है और यह नम्बरदारी जब तक यह रहेगा तब तक इसके पास में रहेगी और इसके बाद फिर पहले वाले स्थान में चली जायेगी। यह सुनकर साहबकौर बहुत खुश हुई

और ठण्डीराम को अपने साथ लेकर अपने घर चली गई। जब ठण्डीराम जी जवान हुए तो नम्बरदारी इनको मिल गई। इन्होंने जीवन भर नम्बरदारी की और इनके देहान्त के बाद नम्बरदारी जिनके पास ठण्डीराम जी से पहले थी-उनके पास में ही चली गई। यद्यपि नम्बरदारी श्री ठण्डीराम जी को मिलने का कोई कारण नहीं था। तो भी श्री जगद्गुरु जी के आशीर्वाद से ही (जो उन्होंने ठण्डीराम को उसके बाल्यकाल में चपेट के रूप में दी थी) उसे नम्बरदारी मिली।

॥ भैंस की चोरी ॥

आपके पास एक बड़ी सुन्दर भैंस, बहुत दूध देने वाली थी। उसको छारा ग्राम के किसी चोर ने चुरा लिया। प्रातः काल होते ही देखा कि भैंस तो नहीं है कहाँ गई। माता-पिता ने कहा कि भैंस को तो कोई चोर ले गया। तब आपने कहा कोई बात नहीं अच्छा है वह भी कुछ दिन दूध पी लेगा तो क्या हर्ज है। माता-पिता ने भैंस ढूँढने के लिये कई बार कहा कि भैंस का पता लगवाओ। तब आपने कहा चिन्ता न करो भैंस यहीं कहीं होगी आ जायेगी। आपकी भैंस आपको मिल जायेगी। आप कोई चिन्ता न करें। एक दिन व्यतीत हो गया भैंस की कोई खोज नहीं की। तब माता जी ने कहा कि, कम से कम भैंस का पता तो लगवाना चाहिए कि कहाँ गई है। जब इन लोगों को आपने भैंस के बिना अत्यन्त दुखी देखा। तब कहा कि चिन्ता मत करो सुबह तुम्हारी भैंस मँगवा देंगे कोई चिन्ता की बात नहीं। प्रातः आपने तुर्तीरामजी को कहा कि वह भैंस छारा गाँव से बाहर 'कहला जोहड़' (इस जोहड़ में अब भी स्नान करने से सटका एवं पीलिया रोग दूर हो जाता है) पर बँधी हुई है। उसे देख आओ जिससे इनको विश्वास हो जाये कि भैंस सुरक्षित है और चोर से कुछ कहना नहीं। वह स्वयं लाकर भैंस को दे जायेंगे। तुर्तीराम जी घोड़ी पर बैठकर वहाँ गये। जाकर देखा कि भैंस वहाँ पर बँधी हुई है। यह देखकर तुर्तीराम जी उल्टे छुड़ानी लौट आये और आकर सबसे बता दिया कि हमारी भैंस छारे के कहला जोहड़ पर बँधी हुई है। (यह जोहड़ छारे से मातनगाम को जाने वाले रास्ते पर है) उधर वह जो भैंस को चुरा कर ले

गया था उनके घर में बहुत उपद्रव होने लगे। काफी नुकसान भी हो गया। तब उन्होंने सोच लिया कि यह छुड़ानी वालों की भैंस चुराने का फल मिल रहा है। यदि यह भैंस हमने लौटा कर छुड़ानी में न पहुँचाई तो हमारा सर्वस्व नाश हो जायेगा। यह विचार कर तीसरे दिन भैंस को लेकर वह चोर सद्गुरुजी के पास उपस्थित हो गया तब महाराज जी ने कहा कि तुम इसको लौटा क्यों लाये कुछ दिन दूध तो पी लेते। तुम लोगों का तो परिश्रम भी पूरा नहीं हुआ। तब उस चोर ने सद्गुरु जी के चरणों में पड़कर क्षमा माँगी। महाराज जी तो दयालुता के घर हैं। उनको तुरंत क्षमा कर दिया। वे भैंस को यहाँ छोड़कर चले गये।

॥ छारा ग्राम वालों की जीत॥

छारा गाँव श्री छुड़ानी धाम से पश्चिम की ओर तीन मील की दूरी पर झज्जर से साँपला सोनीपत जाने वाली सड़क पर स्थित है। छारा असौदा आदि ग्राम दलालों के हैं और भापड़ौदा आदि पन्द्रह ग्राम राठी के बोले जाते हैं। यह एक दूसरे के इलाकों में धाड़ (लूट) डाला करते थे। राठी वाले हमेशा ही दलालों को दवा लेते थे। तब एक बार इन दोनों गुटों का मुकाबला हुआ। जब दलाल पक्ष हारने लगा तब उन्होंने परस्पर विचार किया कि महाराज श्री गरीबाचार्य की सहायता से ही हम जीत सकेंगे और किसी भी प्रकार से जीत नहीं हो सकती। तब उन्होंने मुख्य-मुख्य लोगों की एक पंचायत बनाकर महाराज जी के पास भेजी, उस पंचायत ने आकर महाराज जी से अपनी हार का सम्पूर्ण विवरण सुनाया और कहा कि आप ही हमारी रक्षा करें। तब आपने उनको अति दीन जानकर तुरतीराम से कहा कि तुम इनके साथ जाकर इनकी सहायता करो। तुरतीराम जी महाराज की आज्ञा को सुनते ही घोड़ी पर चढ़ कर उनके साथ चले गये। जब उनका परस्पर मुकाबला होने लगा तो उन्हें (राठी वालों को) यही प्रतीत होता था कि जैसे उनके सामने सरकारी सेनाएँ अस्त्र-शस्त्र लिये मारने को खड़ी हों। तब वे डर कर पीछे हट गए और परस्पर कहने लगे कि यह सेनाएँ कहाँ से आ गईं तब उनको किसी ने बताया कि यहाँ पर छुड़ानी वाले आये हुए हैं। तब तो राठी वालों ने

निश्चय कर लिया कि यह उन्हीं महा-पुरुषों की शक्ति है उनके सामने हम कभी भी जीत नहीं सकते। यह विचार करके वे भी आकर तुरतीराम के चरणों में पड़े और कहने लगे कि भगवन् हम आपके सामने तो किसी प्रकार लड़ने को खड़े हो ही नहीं सकते। इस प्रकार से अनेक प्रार्थना करके उन्होंने क्षमा माँगी। तब श्रीतुरतीरामम जी ने अनेक सद्उपदेश दोनों पक्षों को दिये। कहा कि तुम दोनों ही परस्पर मिल कर रहो। एक दूसरे पर कोई भी चढ़ाई मत करो। इस तरह उनको समझा-बुझाकर भेज दिया और लड़ाई से हटा दिया। तभी से आपकी शक्तियों से प्रभावित हुए छारा गाँव के सेवक अपनी परम्परा के अनुसार श्री छुड़ानी धाम की मान्यता करते हैं और हर मेले पर आते हैं।

॥ श्री मस्तनाथ जी का श्री छुड़ानी धाम में आना॥

सिद्ध मस्तनाथ जी अस्तल बोहर रहते थे मठ के संस्थापक थे। यह अस्तल इन्होंने ही स्थापित किया था। यह स्थान रोहतक से लगभग सात किलो मीटर दूर दिल्ली को जानेवाली सड़क पर है और यह बहुत बड़ा स्थान है इन्हें बहुत सिद्धियाँ थी (और यह मस्तनाथ जी) सिद्धियों में दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे उस समय इनके सामने और कोई नहीं अड़ सकता था। नाथ सम्प्रदाय में इनको उच्च कोटि के महापुरुष माना जाता था और भी ऐसे ही सुने जाते हैं। उस समय जगद्गुरु श्री गरीबाचार्य जी की ख्याति (मशहूरी) बहुत हो रही थी। मस्तनाथ जी के पास भी सभी लोग जाकर श्री गरीबदास जी की प्रत्येक दिन बड़ाई किया करते थे। जब महाराज जी की बड़ाई सुनते-सुनते बहुत दिन हो गये तब नाथ जी ने अपने मन में विचार किया कि इस बात की छुड़ानी में चलकर उनकी परीक्षा लें कि वह ठीक ही सिद्ध महापुरुष हैं या ढौंग रच रखा है। यह बात कोई आश्चर्य की नहीं है। प्राचीन काल में ऋषि महर्षि भी अपनी सिद्धियों द्वारा लड़ते रहे। यह कार्य तो देवताओं में भी होते रहते हैं तथा यह सिद्ध पुरुष परस्पर सिद्धियाँ दिखा के एक दूसरे को प्रगट करते हैं। उसी समय लोगों को पता चलता है कि किस-किस महापुरुष में कितनी सामर्थ्य है। जिसको देखकर लोग प्रभावित होते हैं और अपने कल्याण

के लिए उनके पास जाते हैं। इस प्रकार का विचार करके सिद्ध श्री मस्तनाथ जी श्री छुड़ानी धाम में पहुँचे। जब नाथ जी महाराज जी के समीप आये तो उन्होंने एक मुगदर (पथर की नड़ जिसे लोग उठाकर वर्जिश करते थे) जो वहाँ ही पढ़ा था एक हाथ से उठा कर आकश में फेंक दिया।

वह मुगदर इतना ऊँचा चला गया कि किसी की भी दृष्टि में नहीं आता था और नाथ जी ने महाराज जी से इस प्रकार कहा कि लोगों के गुरु बने बैठे हो और अपना भेष चलाते हो यह सब काम बिना किसी सिद्धि के करने का किसी को भी अधिकार नहीं है। अगर कोई सिद्धी हो तो इस मुगदर को उतार कर दिखाओ तब महाराज जी ने अपने पास बैठे हुए तुरतीराम जी को कहा कि यह जो नाथ जी ने ऊपर मुगदर फेंका है उसे उतार दो। तुरतीराम जी ने वहीं पर बैठे हुए ऊपर मुगदर की ओर अपने हाथ को इतना बढ़ाया और पकड़कर मुगदर को उतार लिया। यह देखकर नाथ जी ने एकदम क्रोध में कहा कि मैं तुम्हारे इस ग्राम को फूँकता हूँ उन्होंने अपनी सिद्धि से ग्राम में अग्नी लगानी चाही तब सद्‌गुरु जी ने कहा कि नाथ जी हमारे इस ग्राम को क्या फूकोगे पहले अपने अस्तल बोहर की रक्षा कीजिये। जब नाथ जी ने अपनी सिद्धि द्वारा अपने स्थान को अग्नि द्वारा जलते हुए देखा और उसको बुझाने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाई। परन्तु कोई भी सिद्धि सफल न हो सकी अग्नि बढ़ती ही गई यदि यह अग्नि न रुकी तो थोड़े ही समय में मठ को भस्म कर देगी। यह विचार करके मस्तनाथ जी ने सतगुरु जी से प्रार्थना की कि मैं आपकी सिद्धि देखने के लिए ही आया था सो देख ली अब आप कृपा करके इस अग्नि को शांत करें नहीं तो वह सम्पूर्ण मठ जलकर भस्म हो जायेगा उसको जलाने से आपको कोई लाभ नहीं होगा तथा उसमें कितने अभ्यागत साधु निवास करते हैं। महाराज जी, जलदी ही कृपा करके उस अग्नि को शान्त कीजिये। जब नाथ जी ने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की तो सद्‌गुरु जी ने अग्नि को उस मकान से हटा कर पास में ही जो पानी का तालाब था उसमें लगा दी जिससे वह सम्पूर्ण जल सूख गया और अग्नि शांत हो गई। सुना जाता है कि अब तक भी उसमें पानी नहीं

रहता। कितनी ही वर्षा पड़े तब भी उसमें पानी नहीं रहता सूख जाता है। उसके विषय में जब नाथों से पूछते हैं तो उनका उत्तर है कि किसी सिद्ध का शाप है। इसीलिए इसमें पानी नहीं रहता है।

॥ एक साधुदास महात्मा के संकल्प की पूर्त्ति॥

उड़ीसा प्रान्त में एक चमोली नामक ग्राम था। वहाँ पर गरीब दास जी महाराज के शिष्य रहते थे वह इसी ग्राम से कुछ दूर बाहर रहकर अपना सम्पूर्ण समय भजन पाठ में व्यतीत किया करते थे और इस ग्राम में से भिक्षा का भोजन ले जाकर खाते थे। किसी समय दैव योग से कोई ऐसी अघटित घटना घटी, कि उस देश में महामारी एवं प्लेग की बीमारी फैल गई। इतना ही नहीं पशुओं तक में भी यह ऐसी बीमारी फैली कि गाँवों के गाँव सफा होने लगे। किसी-किसी गाँव में तो एक व्यक्ति भी नहीं बच पाता था। इस दैवी प्रकोप से इस छोटे से ग्राम के सम्पूर्ण प्राणी और बहुत से पशु रात्रि भर में मर गये। कोई-कोई ही बचा। जब दोपहर की भिक्षा का समय हुआ तब महात्मा जी उसी प्रकार गये जैसे पहले जाते थे। गाँव में गये तो देखते हैं कि गाँव में सुनसान पड़ा है। जिस घर में जाते हैं वहाँ मुर्दे (शव) ही मुर्दे पड़े हैं। सम्पूर्ण गाँव में घूमे कोई व्यक्ति जीवित न पाया। क्योंकि जो कुछ बचे भी थे वह भी डर के मारे भाग गये कि कहीं हम भी न मारे जायें, यह आश्चर्यजनक घटना देखकर महात्मा जी आवाक् रह गये। उन्होंने उसी समय सद्‌गुरु श्री गरीबाचार्य जी का स्मरण किया। उसी क्षण महाराज जी, आकाशमण्डल से एक दिव्य प्रकाशमय शरीर को धारण करके उतरे। उस समय सम्पूर्ण आकाश ऐसे जगमगाने लगा मानो करोड़ों सूर्य उदय हुए हों। कुछ ही क्षणों के बीच में श्री आचार्य जी प्रगट हो गये। उन साधू दास महात्माओं ने दण्डवत् प्रणाम किया। तब महाराज जी ने कहा कि हमें किस लिये याद किया है बताओ आपके ऊपर क्या आपत्ति है। यह सुनकर महात्मा जी ने कहा कि हे तरन-तारन सब दुःख निवारण सद्‌गुरु देव जी महाराज मैं बहुत दिनों से इस ग्राम में ही रहकर अपने शरीर का पोषण करता रहा हूँ। अब अचानक किसी दैव योग से इन सभी लोगों के एक साथ शरीरान्त हो गये हैं। मैं तो अन्न जल

तभी करूँगा जब यहाँ सभी लोग जीवित हो जायेंगे। क्योंकि मैंने इनका अन्न बहुत दिन खाया है अब तो इनका उद्धार करना ही है। इसीलिए आपको स्मरण किया है। आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करके इन सबको जीवन दान दीजिए। यह सुनकर जगद् गुरु श्री गरीबाचार्य जी ने कहा कि तुम जिसको जीवित करना चाहो। उसके साथ अपने चरण का स्पर्श करते जाओ। जिसको भी तुम अपना चरणस्पर्श करोगे वही उठ बैठेगा। इतना कहकर महाराज जी अन्तर्ध्यान हो गये। तब उस महात्मा जी ने एक ओर से सब को पैर का स्पर्श करना आरम्भ कर दिया एवं सम्पूर्ण ग्राम वासियों को जीवित कर दिया। पशुओं तक को भी अपने चरणों का स्पर्श करके जीवनदान दिया। यह अलौकिक घटना घटी। इस घटना से सम्पूर्ण ग्राम एवम् इस प्रान्त के लोग बहुत प्रभावित हुये। यह महात्मा श्री गरीबदास आचार्य के शिष्य थे। आपके अनेक शिष्यों और परशिष्यों ने भी परिचय दिखाये हैं इस सम्प्रदाय में महान् उच्चकोटि के महापुरुष हुये हैं और उन्होंने चमत्कारिक, अनेक परिचय भी दिये हैं।

॥ शिवदत्त नाम का ब्राह्मण ॥

विक्रम सम्वत् १८२० आश्विन मास में ये पण्डित जी वाराणसी से काश्मीर अमरनाथ जी की यात्रा करने गये थे लौटते समय देहली आये तो इनको महाराज श्री गरीबाचार्य के सम्बन्ध में पता चला कि एक योगी महापुरुष छुड़ानी ग्राम में रहते हैं और भी महाराज के सम्बन्ध में उनकी अनेक चमत्कारी घटनायें सुनने में आईं। तब इन्होंने विचार किया कि मैं यात्रा तो कर ही रहा हूँ यात्रा का मुख्य लक्ष्य भी यही है कि किसी ज्ञानी महात्मा का दर्शन मिले। धर्म शास्त्र में कहा भी है कि :-

साधूनां दर्शन पुण्यं तीर्थभूता हि साधव ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥

अर्थ—महात्माओं के दर्शन से पुण्य की प्राप्ति होती है क्योंकि वे पुण्यरूप होते हैं और तीर्थरूप भी होते हैं। तथा तीर्थ का फल तो कालान्तर में होता है परन्तु महात्माओं के दर्शन से शीघ्र ही फल प्राप्त होता है। यह विचार करके पण्डित जी श्री छुड़ानी धाम को चल पड़े,

रास्ते में इनके पेट में दर्द होने लगा धीरे-धीरे दर्द इतना बढ़ गया कि इनका चलना भी मुश्किल हो गया। तब इन्होंने अपने मन में यह संकल्प किया कि यदि वे महापुरुष सिद्ध योगी हैं तो मेरे दर्द को दूर कर दें। इस प्रकार का विचार करते ही इनके पेट का दर्द धीरे-धीरे शान्त होने लगा और वे चलते-चलते जब छुड़ानी धाम के समीप पहुँचे तो इनको रास्ते में कई सज्जन पुरुषों द्वारा महाराज जी की शक्तियों की प्रशंसा सुनने में आई। यह श्रवण कर इनकी और भी श्रद्धा महाराज जी के प्रति बढ़ी। अब धीरे-धीरे छुड़ानी धाम में पहुँच गये और श्री आचार्य जी के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम कर समीप ही में बैठ गये। तब श्री जगद्गुरु जी ने सहसा पण्डित जी से पूछा कि अब तो आप के पेट में दर्द नहीं हो रहा है और अमरनाथ जी गये थे तो क्या वहाँ पर आपको भगवान् भूतभावन शंकर जी के दर्शन मिले? यदि अमरनाथ में जाकर के भी आपको शंकर जी के दर्शन न मिले तो फिर कहाँ मिलेंगे क्योंकि वहाँ तो शंकर जी सदा ही विराजमान रहते हैं परन्तु इनके दर्शन तो शुद्ध अन्तःकरण वाले व्यक्तियों को ही होते हैं। यह सब वार्ता सुनकर पण्डित जी ने अपने मन में विचारा कि यह महापुरुष तो साक्षात् भगवान का रूप ही प्रतीत होते हैं। कुछ दिन तक पंडित जी ने यहाँ रह कर महाराज जी का सतसंग सुना। अधिकतर निर्गुण ब्रह्म का विवेचन ही महाराज जी किया करते थे।

यह सुनकर एक दिन पण्डित जी ने पूछा कि महाराज जी आप यज्ञ तीर्थ दान कर्मादि का उपदेश नहीं देते क्या इनका कुछ फल नहीं है? इन कर्मों के करने से कुछ फल मिलता है या नहीं, इस सम्बन्ध में आप अपना विचार कृपाकर प्रगट करें। यह सुनकर महाराज जी ने कहा कि क्यों नहीं ऐसा तो कोई कर्म नहीं है जिसका कुछ फल न होता हो। जप-दानादियों का तो बहुत फल है यदि सकाम भाव से किये जायें तो स्वार्गादि की प्राप्ति होती है और यदि निष्काम भाव से किये जायें तो अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान के हेतु हैं। देव लोक आदि की प्राप्ति भी तो। पुण्य कर्मों द्वारा ही होती है यथा :-

गरीब इन्दर भये हैं धर्म से, जग है आदि जुगादि ॥१॥

यज्ञादि कर्मों का विधान अनादि काल से ही वेदों तथा महापुरुषों द्वारा किया गया है, इसलिये जो कुछ भी फल किसी को प्राप्त होता है वह अपने किये हुये कर्म के अनुसार ही होता है इसलिये यज्ञ आदि तो अवश्य ही करना चाहिए जैसे कि :-

गरीब देना जग में खूब है, दान ज्ञान प्रवेश ।
ब्रह्मा कुँ तो जग रचि, बतलाई है शेश ॥२॥
गरीब दान ज्ञान ब्रह्मा दिया, सकल सृष्टि के मांहिं ।
सूम[१] डूम[२] माँगत फिरैं, जिन कुछु दीन्हा नांहिं ॥ ३ ॥
गरीब दान ज्ञान प्रणाम कर, होम[३] जो हरि के हेत ।
जग पँचमी तुझ कहूँ, ध्यान कमल सुर सेत[४] ॥४॥
गरीब धरम करम जग कीजिये, कूवे वार्यें[५] तलाव ।
इच्छा अस्तल[६] स्वर्ग सुर[७], सब पृथ्वी का राव[८] ॥ ५॥
गरीब भूख्याँ[९] भोजन देत हैं, कर्म जग जौनार[१०] ।
सो गज [११] फीलों[१२] चढ़त हैं, पालक [१३] कन्ध कहार ॥ ६॥
गरीब कूवे बोयँ तलावड़ी[१४], बाग बगीचे फूल ।
इन्दर लोक गण कीजिये, परी हिंदोलों[१५] झूल ॥ ७॥

---

१. कृपण, कंजूस।
२. मरासी, भाटों की तरह स्तुति करने वाला।
३. हवन।
४. श्वेत, शुद्ध।
५. बावड़ी जो कि कूयें की तरह बनी होती है और सीढ़ियाँ भी रहती हैं।
६. स्थान, मठ, आश्रम।
७. देवता।
८. राजा।
९. भूखों को।
१०. भण्डारा।
११. हाथियों।
१२. हाथियों।
१३. पालकी।
१४. छोटा तलाव।
१५. झूलों तथा जिसके ऊपर बैठकर झूला जाता है।

इस प्रकार महाराज जी ने पण्डित जी के प्रति सकाम कर्म का वर्णन किया कि सकाम कर्म करने से इस लोक के व स्वर्ग लोक के सभी सुख प्राप्त होते हैं।

यदि स्वार्थ से रहित होकर कर्म किये जायें तो इससे सभी सुख भी प्राप्त हो जाते हैं और अन्तःकरण भी शुद्ध हो जाता है।

गरीब यती सती इन्द्री दमन, बिन इच्छा बाटँत।
कामधेनु कल्प वृक्ष पद, तास बार दूझन्त ॥८॥
गरीब स्वर्ग नन्दनी दर बंधै, बिन इच्छा जौनार ।
गण गन्धर्व और मुनिजन, तीन लोक अधिकार ॥ ९॥

महाराज जी ने कहा कि साधुओं एवं पतिव्रता तथा सतियों एवं जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में किया है उनके लिये बिना किसी स्वार्थ के जो दान देता है उसके कामधेनु गऊ और कल्प वृक्ष हर समय द्वार पर खड़े रहते हैं एवं प्राप्त होते हैं। जो बिना स्वार्थ के दूसरों को भोजन आदि देता है इस निःस्वार्थ पुण्य के प्रभाव से वह इन्द्रादि पद को प्राप्त करता है एवं सम्पूर्ण देवताओं के ऊपर उसका अधिकार हो जाता है।

"निष्काम कर्म"

गरीब राम नाम मुख सैं कहै, कर सैं देवै दान ।
वाका फल बांचे नहीं, ताके उर में ज्ञान ॥१०॥
गरीब बिन ही इच्छा देत है, साहिब सन्तो नाल ।
वाका फल बाँचे नहीं, कम्पै जौरा काल ॥११॥
गरीब बिन ही इच्छा देत है, सो दान कहावै।
फल बाँचे नहीं तास का, अमरापुर जावै ॥१२॥
दान पुण्य की करै न आशा ।
जो अरपै सो पुरुष निवासा ॥
तीरथ वरत दान पुन कीजे।

चरण कमल कुँ संकल्प दीजै॥
यह तो परा भक्ति वैरागा।
गुण इन्द्री मन मनसा त्यागा॥
तन मन धन संकलप कर देही।
सो साधू है परम सनेही॥
संकल्प किया संख गुण होई।
अकल अखण्ड बीज है सोई॥

इस प्रकार से सद्गुरु जी ने निष्काम कर्मो का वर्णन किया इच्छा से रहित होकर दान यज्ञादि करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण शुद्ध हो जाने पर ही आत्मज्ञान होता है। आत्मसाक्षात्कार होना ही अमरापुर जाना है यही पद नाश से रहित है तथा ज्ञान हो जाने पर ही जीव जन्म मरण के चक्र से छूट कर अपने निज स्वरूप में मिल सकता है। यही निष्काम कर्म का फल है। निष्काम कर्म ही जीव को जहाँ से बिछुड़ता है वहाँ मिलाने में सहायक है इसलिये कर्मों के फल की इच्छा का परित्याग करके कर्म करना चाहिए। यह समान रूप से कर्मों के विषय में वर्णन किया गया है। विशेष वर्णन आगे हम शास्त्र और सद्गुरुजी के मत के अनुसार करते हैं। सम्पूर्ण कर्मों में मनुष्य का ही अधिकार है और मनुष्य ही कर्म सम्पादन कर सकता है।

॥ कर्मोपदेश तथा कर्म-मीमांसा ॥

संसार के समस्त प्राणियों के अन्दर मनुष्य ही को श्रेष्ठ माना है। हो सकता है कि मनुष्य अपने मनुष्यत्व (मनुष्यपना) व्यक्तित्व एवं महत्त्व को उतना ऊँचा अथवा गौरवपूर्ण भले ही न समझ पाता हो परन्तु उस परम पिता परमेश्वर ने अचिन्त्य एवं अनिर्वचनीय प्रकृति ने इस दृश्य जगत् के अन्दर समस्त प्राणियों से सर्वोच्चतम स्थान का प्रदान इसी मनुष्य जाति को किया है। मनुष्य जातीय (जाति के) लोगों के अन्दर यह स्वाभाविक प्रवृत्ति देखने में आती है कि वह ऊँचा उठने की चेष्टा हमेशा करता रहता है और इसके लिये उसे अपनी प्रगति (तेजी) बढ़ाने के

कारणीभूत (लायक) क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत (बहुत लम्बा चौड़ा) भी है। संसार के समस्त (सारे) इतिहासों के दृष्टिकोण के आधार पर उपनिषद्-धर्मशास्त्र-दर्शन अथवा वेद-वेदांग एवं पुराणों के द्वारा किसी भी क्षेत्र में आज तक बड़ी से बड़ी उन्नति के लिये जो मार्ग निकाला गया है वह एकमात्र मनुष्य जाति के लिये। कारण कि मनुष्य के अन्दर ईश्वर ने ऐसी शक्ति प्रदान (भरी) की है जिससे मनुष्य अपनी अपनी उन्नति के क्षेत्र में क्रमशः आगे बढ़ सकता है। यहाँ तक कि मनुष्य ने ही ऋषि-महर्षियों के स्थान को प्राप्त किया है और मनुष्य ने ही मुनि तथा तपस्वियों एवं तत्त्वज्ञानियों के पद को पाया है, इसी ने बड़े-बड़े राक्षसों और देवताओं के स्थानों को संभाला है, आखिर में इन्द्रत्व (इन्द्रपना) और ब्रह्मत्व (ब्रह्मपना) भी तो इन्हीं ने प्राप्त किया है। और धर्मशास्त्र-पुराण-इतिहास आदि शास्त्रों के एवं बड़े से बड़े विज्ञानों के, परमाणुओं एवं हाइड्रोजनों के आविष्कर्ता (प्रगट करने वाले) भी तो मनुष्य ही हैं। गंभीरता-विवेकिता-विचारशीलता-अनुसंधान (विचार) दक्षता एवं व्यवहार-प्रवीणता (चतुरता) अर्थनीति निपुणता (लायकपना) युद्ध-कुशलता, कार्यान्तदर्शिता आदि गुणगणविशिष्ट (गुण समूह के सहित) भी तो मनुष्य ही है। बल-बुद्धि-स्फूर्ति-प्रतिभा (शोभा) स्मृति-प्रत्यभिज्ञा (बुद्धि) धारणा एवं सत्यप्रतिज्ञता, सहनशीलता, दूरदर्शिता आदि गुण भी तो मनुष्य ही के हैं।

परन्तु अत्यन्त ही आश्चर्य एवं खेद की बात है कि मनुष्य एकमात्र अपनी थोड़ी सी भूल के कारण अपने को कितनी तुच्छ एवं दीन-हीन अवस्था को पहुँचा देता है कि जिसके कारण इसे बहुत सी कठिन से कठिन परिस्थितियों, दुर्गम मार्गो, दुःसाध्य यातनाओं तथा बड़े से बड़े अनर्थों का सामना करना पड़ जाता है। इतना ही नहीं कभी-कभी उस कीचड़ के मार्ग में ऐसी बुरी तरह फँस जाता है कि उससे इसका निकलना एवं उद्धार होना ही कठिन हो जाता है। किसी प्रकार निकलने एवं उद्धार हो जाने पर भी अत्यन्त अपमान तथा कष्ट सहन करना पड़ता है। स्वरूपच्युति (गिरना) उठानी पड़ती है, दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं, यातनाएँ भी सहन करनी पड़ती हैं।

एक विद्वान् अथवा तपस्वी का बालक यदि अपनी परिस्थिति को भूल जाने के कारण परमुख निरीक्षण करता है, अर्थात् दूसरे के मुँह की तरफ को ताकता है, दर दर की ठोकरें खाता है, धनी-मानी लोगों के घर जाकर उन्हें बाबू जी बाबू जी करता है, अथवा अपनी हीन-दीन अवस्था का प्रदर्शन उनके सामने जाकर करता है, अपनी दुर्बलताओं दुर्भावनाओं एवं दुर्वासनाओं की समष्टिभूत सृष्टि की रचना करता है तो क्या यही उसका स्वरूप और व्यक्तित्व है?

दूसरी बात यह है कि मनुष्य अपने महत्त्व एवं व्यक्तित्व के समक्ष (सामने) अपने व्यर्थाभिमान के कारण दूसरे मनुष्य को मनुष्य ही नहीं समझता है, और समझता भी है तो तृण के समान ही समझता है। इस प्रकार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का चोषण-शोषण तिरस्करण-अवहेलना नितान्त निरविच्छिन्नरूप से करता रहता है, अथवा उसके लिये कुछ कुचक्र चलाता रहता है।

इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारे जन्म-जन्मान्त्र के कर्म अत्यन्त खराब एवं भ्रष्ट हो चुके हैं कि जिससे हमारे मन के व्यापार एवं संस्कार एकदम बदल चुके हैं, भोगों की कामनाएँ बढ़ चुकी हैं, भजनानन्द राम व सद्गुरु जी के पदारविन्द की उपासनाएँ समाप्त हो चुकी हैं, अपितु प्रभु के चरणारविन्दों में संशय-भावनाएँ जागृत होने लगी हैं, जगन्नियन्ता परमपिता परमेश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास की स्फुरणाएँ विलीन हो चुकी हैं तब फिर शोषण और चोषण क्यों न हो?

कर्मों की खराबी से ही सब कुछ खराबियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और उनकी सभी अच्छाई से सर्वत्र अच्छाई का ही वातावरण दृष्टिगोचर होने लगता है। भगवान् के चरणारविन्द में प्रेमातिशय होने लगता है, तमोव्याप्त बुद्धि का अन्धकार समाप्त होकर सत्त्वोद्रेक (प्रकाश) होने लगता है, मुखमण्डल की छवि-छटा आनन्दायिनी एवं आनन्दमय प्रतीत होने लगती है।

इससे अब यह स्पष्ट है कि कर्म दो प्रकार के हैं अच्छे और बुरे अच्छे प्रकार के कर्मों से अच्छी गति और बुरे कर्मों से बुरी गति होती है। शास्त्रनिषिद्ध कर्मों को बुरे कर्म कहा गया है और शास्त्रविहित कर्मों को

सत्कर्म कहा गया है। अग्निहोत्रादि शास्त्रविहित कर्म सत्कर्म कहलाते हैं। इन शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान भी आत्मज्ञान के अनधिकारी व्यक्तियों के लिये ही है। अर्थात् जो लोग पुत्र की इच्छा, धन की इच्छा, स्त्री की इच्छा, इन तीन प्रकार की इच्छाओं का परित्याग नहीं कर सकते हैं वे आत्मज्ञान के अधिकारी भी नहीं हैं अज्ञान के कारण इधर-उधर भटकने वाले जो अज्ञानी लोग आत्मा के स्वरूप को पहिचानने में अर्थात् आत्मा का ज्ञान संपादन करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाते हैं उन्हीं लोगों के लिये—शास्त्रों में कर्मानुष्ठान का विधान किया गया है।

शास्त्रों का कहना है कि नित्य-नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करते हुए ही आप लोग सौ १०० वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा करो। इस प्रकार कर्मानुष्ठान संपादन द्वारा यदि तुम अपने जीवन को व्यतीत करना चाहोगे तो यह निश्चित है कि तुम्हे अशुभकर्म कभी भी व्याप्त नहीं कर सकते हैं। कहा भी है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ मंत्र २ ईश

भाष्यकार ने इस विषय को और स्पष्ट कर दिया है कि—

"एवम् एवम् प्रकारेण त्वयि जिजीविषति नरे नरमात्र-त्वाभिमानिनि इत एतस्मादग्निहोत्रादीनि कर्माणि कुर्वतो वर्तमानात् प्रकारात् अन्यथा प्रकारान्तरं नास्ति येन प्रकारेण अशुभं कर्म न लिप्यते, कर्मणा न लिप्स्यसे इत्यर्थः। अतः शास्त्रविहितानि कर्माणि अग्निहोत्रादीनि कुर्वन्नेव जिजीविषति"।

अर्थ—इस प्रकार सौ वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा वाले मनुष्यत्व मात्र का अभिमान रखने वाले तुमको अग्निहोत्र आदि कर्म करने के अतिरिक्त दूसरा रास्ता ही नहीं है जिससे कि अशुभ कर्म व्याप्त न कर सके। अतः शास्त्रविहित कर्म जो अग्निहोत्र आदि हैं उन्हें करते हुये ही अपना जीवन यापन करना चाहिये।

इन्हीं कर्मों के शृंखलारूपी बन्धन से ग्रस्त हुआ यह जीव नाना प्रकार की योनियों में भ्रमण करता रहता है, जिसके कारण इसे नाना प्रकार के

कष्ट सुख-दुःखरूप फल का भाजन भी बनना पड़ता है। यही जीव के जन्म का कारण, मरण का कारण, और माता के गर्भ में रहने का प्रधान कारण है। यही जीव के चौरासी लाख योनियों में होने वाले भ्रमण का कारण है। यही जीव की भुक्ति और मुक्ति का भी प्रधान कारण है। अधिक इसके विषय में क्या कहा जाय यही सांख्यमतानुसार जीव स्थानीय पुरुष के संसारित्व का कारण है, और यही परम्परया वेदान्तब्रह्म के संसारित्व का प्रयोजक है।

यह मानवयोनि ही अन्य सम्पूर्ण योनियों का कारण है, क्योंकि इसी योनि में किये हुए कर्मों के आधार पर यह जीव अन्यान्य (और और) योनि में जाता है। पशु-पक्षी योनियों से लेकर देव योनि पर्यन्त समस्त योनियाँ भोग के लिए हैं न कि कर्म करने के लिये। यदि पशु लात से अथवा सींग से किसी को ताड़न भी कर देता है अथवा किसी व्यक्ति को जान से भी समाप्त कर देता है तो वह उसके दण्ड का भागी नहीं होता है।

सकाम और निष्काम भेद से कर्म दो प्रकार के माने गये हैं। जो कर्म किसी फलविशेष की कामना से किये जाते हैं वे सकाम कर्म कहलाते हैं। इन्हीं को काम्य कर्म भी कहते हैं।

और जो कर्म फल विशेष की इच्छा न रखते हुए केवल कर्त्तव्य बुद्धि से किये जाते हैं उन्हें निष्काम कर्म कहते हैं यही कर्म जीव को जन्म-मरण-जननीजठरे शयन रूपी बन्धन से छुटकारा दिलाता है।

और यह सकाम कर्म भी दो प्रकार का होता है—विहित कर्म और निषिद्ध कर्म। शास्त्रों ने कामनापूर्वक जिन कर्मों के विधान के लिए आज्ञा दी है वे सकाम विहित कर्म कहलाते हैं। और जिन कर्मों का निषेध किया गया है वे सकाम निषिद्ध कर्म कहलाते है। जैसे—

साखी- सकल बियापी रम रह्या, मुरगी बकरी माहिं।
गरीब दास गलगऊ कै कर्द दीजिये नाहिं॥

"न कलञ्जं भक्षयेत्" इससे कलञ्जभक्षण सकामनिषिद्धकर्म बतलाया गया है। कलञ्ज नाम है—विषाक्तबाण के द्वारा मारे गये मृग अथवा पक्षी के मांस का अथवा शुष्कमांस का नाम है।

विषाक्तेनैव वाणेन हतौ यौ मृगपक्षिणौ।
तयोर्मांसं कलञ्जं स्यात् शुष्कमांसमथापि वा॥

शास्त्र के द्वारा दोनों का निषेध बतलाया गया है जैसा कि अभी पूर्व में बतलाया गया है। इन शास्त्रनिषिद्ध कर्मों के करने से जीव को एकमात्र दुःख का ही भागी बनना पड़ता है। नीचे से नीचे की योनियों में जीव को जाना पड़ता है, नाना प्रकार के कष्टों का अनुभव करना पड़ता है, अनेक प्रकार की झगड़े-झंझट बाजियाँ, परेशानियाँ आदि इन निषिद्ध कर्मों के करने से उठानी पड़ती हैं। इसीलिए सद्गुरु जी तथा शास्त्र ने इन कर्मों का निषेध किया है, इसीलिए इन्हें हेय (त्याग करना) बतलाया है।

और सकाम विहित कर्म वे कहलाते हैं जिनका कि महाराज जी ने और शास्त्रों ने विधान किया है। जैसे—

गरीब एक जग है धर्म की, दूजी जग है ध्यान।
तीजी जग है हवन की, चौथी जग प्रणाम॥

यज्ञ-यागादि, हवनकर्मादि, सन्ध्या-वन्दन आदि ये सब शास्त्रविहित कर्म कहलाते हैं। इन कर्मों के करने से हमेशा मनुष्य का कल्याण ही होता है। यदि कुछ काल के लिए भी स्वीकार कर लिया जाय कि इन शास्त्रविहित कर्मों के करने से किसी प्रकार का कल्याण नहीं होता है तो फिर भी यह तो अवश्य ही मानना होगा कि उनके करने से किसी प्रकार का अकल्याण तो नहीं होता है। जैसे—

गरीब कर्म धर्म जग कीजिये, बाग बगीचे रौंस।
इन्द्र लोक गण कीजिये, तुझ मेवा की हौंस॥

"स्वर्गकामो यजेत" यह विधि रूप वेद भी स्वर्ग की कामना वाले पुरुष के लिए यग का विधान करता है, अर्थात् स्वर्ग को चाहने वाला यज्ञ-यागादि करे।

अब यहाँ पर यदि विचार किया जाय और शास्त्र यदि सत्य हैं तो इन यज्ञ-यागादि कर्मों को यदि हम स्वर्ग प्राप्ति की कामना से करते हैं तब तो स्वर्ग प्राप्ति एवं उसका उपभोग अवश्य ही होता है और स्वर्ग प्राप्ति एवं

उसका उपभोग हो जाने के अनन्तर वे कर्म भी स्वयं क्षीण हो जाते हैं। अगर यह कहा जाए कि स्वर्ग कोई वस्तु नहीं है तब उसकी प्राप्ति भी सर्वथा असंभव ही है, ऐसी परिस्थिति में बुद्धि शुद्धि अन्तःकरण (मन=चित्त) की शुद्धि ही उसका फल मान लिया जायेगा, कारण कि अच्छे कर्म से अच्छा ही फल होगा यह तो निश्चित ही है, और अनुभव में देखने में भी आता है कि यदि हम चोरी आदि बुरा कर्म करते हैं तो उसका हमें बुरा ही फल प्राप्त होता है, हम जेल जाते हैं इत्यादि।

और यदि अच्छा कर्म करते हैं जैसे महात्माओं की सेवा आदि, तो उसका उसके पवित्र आशीर्वाद से अच्छा ही फल होगा। इसी प्रकार सन्ध्या-वन्दन आदि का भी ब्रह्मलोक प्राप्ति होना अच्छा ही फल माना गया है। कहा भी है—

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः।

विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥

अर्थात् जो प्रशंसनीय एवं पवित्रव्रतशाली पुरुष नित्यप्रति सन्ध्यावन्दन आदि सत्कर्म करते हैं वे पाप रहित होकर ब्रह्मलोक को चले जाते हैं।

और विहित कर्म तीन प्रकार के होते हैं। जैसे—नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य। जिनमें नित्य कर्म जो संध्या-वन्दन आदि हैं उनका निरूपण हम अभी ऊपर कर चुके हैं। नित्य कर्मों का अनुष्ठान उनके न करने से होने वाले दोष की निवृत्ति के लिए एकमात्र किया जाता है, अर्थात् नित्यकर्मों के न करने से मनुष्य दोष का भागी बनता है। सन्ध्या-वन्दन आदि शास्त्रीय नित्य कर्म कहलाते हैं। और भी इनके अतिरिक्त नित्य कर्म हैं जो कि 'व्यावहारिक' कहलाते हैं, जैसे—स्नान करना, ध्यान करना, कुल्ला एवं दन्तधावन आदि करना, शौच आदि से निवृत्त होना, शयन एवं व्यायाम आदि का संपादन करना ये सब व्यावहारिक नित्यकर्म माने गये हैं। हम देखते हैं कि इन नित्य कर्मों का संपादन न करने से शरीर आदि में जिस प्रकार रोगादि दोष उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार सन्ध्या-वन्दन आदि शास्त्रीय नित्य कर्मों के न करने से जीवात्मा (मन) के अन्दर पापादि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अतः शरीर आदि में उत्पन्न होने वाले रोग आदि

दोषों की निवृत्ति के लिये जैसे स्नान आदि व्यावहारिक नित्य कर्म आवश्यक हैं, इसी प्रकार सन्ध्या-वन्दन आदि शास्त्रीय नित्य कर्म के न करने से आत्मा (मन) में उत्पन्न होने वाले पाप आदि दोषों की निवृत्ति के लिस सन्ध्या-वन्दन आदि शास्त्रीय नित्य कर्मों का संपादन आवश्यक है।

एवं मन के अन्दर उत्पन्न होने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषों की निवृत्ति के लिए बुद्धि के अन्दर उत्पन्न होने वाले दुर्भावना, दुर्वासना जन्य दूषित संस्कारों के दूरीकरण के लिए वाणी का पाठ शास्त्रों का अध्ययन, वेदाध्ययन, स्वाध्याय, प्रवचन, सत्संग आदि नित्य कर्मों का संपादन भी नितान्त आवश्यक है। इन्हीं मानसिक एवं बौद्ध दोषों के कारण जीव को चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है।

इसी प्रश्न को भक्तराज अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से किया था। जिसका उल्लेख गीता में स्वयं अर्जुन ने किया कि—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।

अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

अर्थ—अर्जुन श्रीकृष्ण महाराज से पूछते हैं कि हे महाराज! जब मनुष्य यह जानता है कि चोरी करना बहुत बुरा काम है, डकैती करना बहुत बुरा काम है, एवं यारी करना भी बहुत ही बुरा काम है, परन्तु फिर भी मनुष्य बुरा काम करने में प्रवृत्त हो जाता है तब यह कहना होगा कि मनुष्य के अन्दर कोई ऐसी शक्ति अवश्य मौजूद है जिस शक्ति से प्रेरित होकर मनुष्य जबर्दस्ती पापकर्म करने में प्रवृत्त हो जाता है, वह शक्ति कौन-सी है?

हम देखते हैं बड़े-बड़े विचारशील, बड़े-बड़े ज्ञानशील, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, आदि की भी समयविशेष को प्राप्त कर स्थिति बिगड़ जाती है जिससे कि वे लोग अपने असली ठीक रास्ते को छोड़कर दूसरे किसी भयंकर खराब रास्ते को पकड़ लेते हैं, जिस खराबी के कारण जन्म-जन्मान्तरों के लिये इस लोक और परलोक के लिए, इस पीढ़ी एवं दूसरी-तीसरी पीढ़ी के लिये अपने जीवन को नष्ट-भ्रष्ट एवं चौपट बना देते हैं, इसका क्या कारण है?

भगवान् ने अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर दिया कि–

काम एषः क्रोध एषः रजोगुणसमुद्भवः।

महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्॥ ३७॥

भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन के ऐसा पूछने पर उत्तर दिया कि हे अर्जुन! रजोगुण से उत्पन्न होने वाले ये काम और क्रोध ही शरीररूपी मन्दिर के अन्दर निवास करने वाले आत्मा के शत्रु हैं, ये ही दो राक्षस हैं, ये दोनों ही राक्षस आत्मा के प्रधानमंत्री मन को अपने चंगुल में फँसा कर उसे कुमार्गगामी बना देते हैं। मंत्री के कुमार्गगामी हो जाने से उसके मालिक जीवात्मा का कुमार्गगामी हो जाना तो फिर निश्चित ही है। क्योंकि जीवात्मा को रास्ता दिखाने वाला एवं उसे रास्ता बतलाने वाला अथवा जीवात्मा को रास्ते से ले चलने वाला तो उसका प्रधानमंत्री मन ही है। इसलिये यह दोनों काम और क्रोध तमोगुण के अत्यन्त प्रेमी होने के नाते मोहजालरूपी फाँसे के द्वारा उस आत्मा के प्रधानमंत्री मन को तथा मन के द्वारा उसके मालिक आत्मा को गन्तव्य अथवा कर्त्तव्यमार्ग से गिरा देते हैं। इसलिये सद्गुरु जी तथा भगवान् ने काम-क्रोध इन दोनों को 'महाअशन' अर्थात् सबसे बड़ा भुक्खड़ अर्थात् कभी भी भोगों से तृप्त अथवा सन्तुष्ट न होने वाला, एवं 'महापाप्मा' अर्थात् सबसे बड़ा पापी बतलाया है। अर्जुन से भगवान् ने कहा कि इन दोनों को ही तूं उस चेतन जीवतत्त्व का अथवा उसके जीवन का शत्रु-जान। इस विषय में सतगुरु जी भी कहते हैं यथा-

काम क्रोध लोभ शत्रु है तुम्हारे।

हर्ष सोग राग दोष पकडक्यों न मारे॥

ये काम और क्रोध दोनों परस्पर में सहोदर भाई हैं अत्यन्त प्रेमी हैं, और भ्रान्ति नाम वाली इनकी छोटी बहिन है, इस भ्रान्ति की सेवा करने वाली सेविका तृष्णा है, यह चेतन उस जीवतत्त्व को आशा के फाँस में फँसाये रहती है। मोह क्रोध का पुत्र है और अहङ्कार इन दोनों का चाचा है, इन्हीं के बल पर ये दोनों काम और क्रोध इस चराचर विश्व को बराबर अपनी इच्छानुसार नचाते रहते हैं। इन्हीं ने पतिव्रता उस शान्तिदेवी के

पातिव्रत्य को लुटवाया, इन्हीं ने अपनी जननी जगदम्बा महामाया के बल को प्राप्तकर साधुजनों के साधुत्व को नष्ट करवाया, इन्हीं ने विवेक और वैराग्य को उल्टा रास्ता दिखलाया, इन्हीं ने विश्वास एवं सन्तोष के जंगल को जला डाला, इन्हीं ने आनन्दवन को उजाड़ डाला, ज्ञान-विज्ञान के वृक्ष को जड़ के सहित उखाड़ डाला, धर्म और धैर्य का तो इन्होंने गला ही घोट डाला। इसलिये हे अर्जुन! ये दोनों बड़े ही भयङ्कर हैं, ये दोनों ही मनुष्य को अथवा चेतन उस जीवतत्व को पापाचार में दुराचार अथवा व्याभिचार में प्रवृत्त करने वाले हैं, अतः इन्हें तू परमशत्रु जान।

"कर्म साल कर्मों की बाजी, भूल रहे हैं पण्डित काजी"

इन्हीं के कारण कर्मनिष्ठ व्यक्ति चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ घूमता-फिरता रहता है, चिन्ता पिशाचिनी दर-दर घुमाती रहती है, पल-पल पर सताती रहती है, क्षणमात्र भी विश्राम नहीं करने देती है, रात-दिन परेशान करती रहती है।

इसलिये चिन्ता पिशाचिनी से, दर-दर की ठोकरें खाने से विश्राम न लेने से प्रयुक्त होने वाली परेशानी से अपने बचाव के लिये नित्यकर्मों का संपादन करते रहना प्ररम आवश्यक है। इस विषय में तो सद्गुरु जी बहुत बार कह चुके हैं जैसे कि–

काम क्रोध मद लोभ लटि[१६] छूट रहे विकराल[१७]।

क्रोध कसाई[१८] उर बसै, कुशब्द छुरा घर घाल[१९]॥

हर्ष सोग है स्वान[२०] गति, संसा सर्प शरीर।

राग दोष बड़ रोग हैं, जमके परे जंजीर॥

आसा तृष्णा नदी में, डूबे तीनों लोक।

---

१६. अग्नि की हर लपट छूट रही है।

१७. भयंकर रूपधारी।

१८. हदय में।

१९. मार–हृदय को काट देना।

२०. कुत्ते की तरह।

मनसा माया बिस्तरी[२१] आत्म-आत्म दोष॥
ममता[२२] सः माया[२३] चिंत्या[२४] सः चेरी[२५]।
भ्रमो[२६] सभारिजा[२७] भुवन सकल फेरी॥
क्रोधी सकूपं कामी सः कलवा[२८]।
लोभी लवारं[२९] टिकतेन तलवा[३०]॥
इच्छा सः असतल[३१] शंका सः सूलं[३२]।
वैराग विचरंत[३३] डालो न मूलं॥
(वाणी)

नैमित्तिककर्म-विवेचन

नैमित्तिककर्म उन्हें कहते हैं जो कर्म किसी निमित्तविशेष को लक्ष्य *मान* करके किये जाते हैं। जैसे–पितृलोगों की प्रसन्नता के निमित्त अर्थात् हमारे पितर लोग किसी भी योनि में रहें, चाहे वे प्रेतयोनि या पिशाचयोनि में रहें, अथवा और किसी मनुष्य या देवयोनि में रहें, कहीं भी रहें वे सर्वथा प्रसन्न रहें इसी निमित्त से किया जाने वाला श्राद्धकर्म नैमित्तिककर्म कहलाता है एवं कोई श्राद्ध ऐसा भी होता है जो कि पितरलोगों को उन-उन योनियों से मुक्त करा देता है, इसलिये बहुत से लोग श्राद्ध का

---

२१. फैली हुई।
२२. मेरापन।
२३. हीं-सो-कही।
२४. चिंता।
२५. दासी।
२६. भ्रांति।
२७. स्त्री।
२८. एक प्रकार का प्रेत।
२९. बदमास।
३०. पैरों के नीचे का भाग।
३१. मकान-स्थान-मठ।
३२. त्रिशूल-दुःख।
३३. घूमना।

पितर-मुक्ति ही फल मानते हैं। पितर-मुक्ति फल मानने वाले लोगों का कहना है कि हमारे पितरलोग जिस किसी भी योनि में हों वहीं से वे मुक्त हो जावें इसी उद्देश्य से श्राद्ध किया जाता है।

परन्तु यह मत इसलिये ठीक नहीं मालूम पड़ता है कि यदि पितरलोग श्राद्ध करने के पहिले ही मुक्त हो गये हों तब वह श्राद्ध करना ही बेकार हो जाता है, कारण कि श्राद्ध का फल तो एकमात्र मुक्ति ही है वह तो प्राप्त ही हो गयी तब फिर श्राद्ध करना सर्वथा निष्फल एवं व्यर्थ है। कोई लोग इसी निमित्त से श्राद्ध करते हैं कि हमारे पितर स्वर्ग में चले जावें, वे इधर-उधर की नाना प्रकार की योनियों में भटकते न फिरें। कुछ लोगों ने श्राद्ध को भी काम्यकर्म माना है, कामना प्रधान होने के नाते एवं किसी व्याधि विशेष को शान्त करने के लिये यदि औषधि सेवन किया जाता है तो वह औषध सेवनरूप कर्म भी नैमित्तिककर्म ही माना गया है कारण कि किसी निमित्त विशेष से होने वाला कर्म ही नैमित्तिक कर्म कहलाता है सो किसी रोग विशेष से पीड़ित हुआ व्यक्ति उसकी शान्ति के निमित्त से ही औषध का सेवन करता है अतः यह भी नैमित्तिक ही कर्म है।

इसी प्रकार नौकरी करना, भोजन करना, अध्ययन संपादन करना, अपने गृहस्थ, जाति एवं कुटुम्ब के व्यक्तियों के लिये उदर पोषण के निमित्त उसके साधन स्वरूप किसी कर्म का अन्वेषण (आरम्भ) करना यह भी नैमित्तिककर्म ही कहलाता है।

अब यहाँ पर यह प्रश्न खड़ा हो सकता है कि इन नैमित्तिककर्मों को करने की आवश्यकता ही क्या है?

इसका उत्तर यही दिया गया कि यदि नैमित्तिककर्मों का संपादन नहीं किया जायंगा तो उन नैमित्तिककर्मों को जिस निमित्त से किया जाता है उस निमित्त की पूर्त्ति कैसे हो पायेगी और निमित्त के पूरा न होने से मनुष्य को बहुत बड़ी-बड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। जैसे उदाहरण के लिये तृप्ति-भोजन आदि को ले लीजिये। तृप्ति के निमित्त भोजन करना होता है, अतः भोजन करना एक नैमित्तिकर्म कहलाता है क्योंकि वह तृप्ति के निमित्त होता है, यदि भोजनरूपकर्म नहीं किया जायेगा तो 'तृप्ति

होना' जो उसका निमित्त है उसकी पूर्ति कैसे हो सकेगी। न होने से बड़े-से-बड़े कष्टों का सामना करना होता है और करने से जीवन आनन्दमय हो जाता है इत्यादि।

इसका सारांश इतना ही है कि नित्य-नैमित्तिक ये दोनों प्रकार के कर्म-दोषों के द्वारा परम्परा या होने वाली जो जीव की परेशानियाँ अथवा कठिनाइयाँ हैं उनको दूर करने के लिये ही हैं। उनका दूरीकरण दोषों को दूर करने पर ही हो सकता है अतः इन नित्य-नैमित्तिक-कर्मों के द्वारा सर्वप्रथम दोनों को दूर कर दिया जायेगा, उसके बाद विघ्नबाधायें तो स्वयं ही दूर हो जायेंगी, अथवा दोषों के द्वारा होने वाली कठिनाइयाँ एवं परेशानियाँ तो रह ही नहीं सकती हैं।

॥ काम्यकर्म॥

किसी कामना विशेष के आधार पर किये जाने वाले कर्म काम्यकर्म कहलाते हैं। जैसे—किसी भी ग्रन्थ के आरंभ में मंगल है, शुभकार्य के लिये यगादि हैं, गार्हस्थ्य जीवन निर्वाह के लिये रुपया-पैसा है। इन काम्यकर्मों के अन्दर अधिकांश वे ही कर्म सम्मिलित हैं जिनका सम्बन्ध सांसारिक भोग एवं ऐश्वर्य आदि से है।

जिस पुरुष को समाप्ति अथवा विघ्नध्वंस की इच्छा हो वह मंगल करे, कारण कि ग्रन्थ के आरंभ में, ग्रन्थ के मध्य और अन्त में समाप्ति अथवा विघ्नध्वंस की कामना से मंगल किया जाता है। जिसमें प्राचीन लोग समाप्ति के प्रति मंगल को कारण मानते हैं और नवीन लोग विघ्नध्वंस के प्रति मंगल को कारण मानते हैं। इस विषय में वे वेद का प्रामाण भी दिखलाते हैं कि—

"समाप्तिकामो मंगलमाचरेत्" (प्राचीन.)

"विघ्नध्वंसकामो मंगलमाचरेत्" (नवीन-)

अर्थात् जो पुरुष अपने द्वारा बनाये जाने वाले ग्रन्थ की समाप्ति चाहता है वह मंगल अवश्य करे यह प्राचीनों का कथन है और नवीनों का कहना है कि ग्रन्थ की समाप्ति भी निर्विघ्न अर्थात् विघ्नध्वंसपूर्वक

ही होनी चाहिये, हमें कादम्बरी ग्रन्थावली समाप्ति अभीष्ट नहीं है, जब कि विघ्नध्वंस पूर्वक ही समाप्ति अपेक्षित है तब तो विघ्नध्वंस ही को मंगल का फल क्यों न मान लिया जाए। इसलिये नवीन लोगों का यही कहना है कि विघ्नध्वंस की कामना से मंगल किया जाता है। अतः मंगल भी काम्यकर्म है।

इसी प्रकार "स्वर्गकामो यजेत" इस विधिरूप वेद ने स्वर्ग की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिये यग की उपयोगिता बतलायी। इस लिये यज्ञ-यागादिकर्म भी स्वर्ग की कामना वाले व्यक्तियों के लिये ही उपयोगी होने के नाते काम्यकर्म सिद्ध हुये अथवा प्रकारान्तर से इन्हें नैमित्तिक कर्म भी कहा जा सकता है, क्योंकि कामना ही तो निमित्त हो रहा है। केवल शब्दावलि का ही अन्तर (फर्क) है अर्थ में कोई अन्तर नहीं है।

जगद्गुरु के रूप में अवतरित होने वाले गरीबों का उद्धार करने वाले एवं गरीबदासीय संप्रदाय को जन्मप्रदान करने वाले सद्गुरु जी महाराज ने अपनी शिष्य परम्परा के द्वारा जिन नित्य-नैमित्तिक अथवा काम्य कर्मों का उपदेश दिया उसके आधार पर हम अपनी तरफ से भी यह कल्पना कर सकते हैं कि पं. नेहरू ने जो यह घोषण की कि "यह युद्ध सार्वजनीन (विश्व) युद्ध है" और उस घोषणा को सुनकर अमेरिका आदि देशों ने जो भारत को सहायता देनी शुरू की। वह सहायता देना रूप जो कर्म है वह भी तो काम्य अथवा नैमित्तिक कर्म ही है। क्योंकि अमेरिका आदि देशों ने जो भारत को सहायता दी है वह भी तो किसी निमित्त-अपनी कामना को दृष्टिकोण में रखकर ही दी है ऐसा जान पड़ता है। चीन के साथ जो युद्ध १९६२ ई. में हुआ उससे तात्पर्य है।

॥ काम्य एवं नैमित्तिक कर्मों के फल का विवेचन॥

हम इस बात को पहिले ही कह आये हैं कि—काम्य एवं नैमित्तिक-कर्मों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इन दोनों प्रकर के कर्मों के दो ही फल माने गये हैं, (१) दृष्ट, (२) अदृष्ट। 'दृष्ट फल' उसे कहते हैं जो सामने ही मौजूद हो, ज्रिसके विषय में किसी प्रकार की कल्पना आदि की आवश्यकता न हो। जैसे—मंगल काम्यकर्म है अथवा मतभेद से नैमित्तिक भी कह सकते

हैं, और उसका फल जो समाप्ति अथवा विघ्नध्वंस है वह हमारे सामने मौजूद है।

यहाँ पर यह शंका हो सकती है कि मंगल ईश्वर नमस्कार रूप है तब फिर उसका स्वर्ग आदि अदृष्ट ही फल क्यों न मान लिया जाय कि ईश्वर को नमस्कार करने से करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग होता है।

इसका समाधान यही किया गया कि "संभवति दृष्टफलकत्वे अदृष्टफलकल्पनाया अन्याय्यत्वात्" अर्थात् किसी भी कर्म का यदि दृष्टफल हो सकता हो तो उसका अदृष्टफल नहीं माना जा सकता है अतः मंगल का जब कि समाप्ति अथवा विघ्नध्वंसरूप दृष्टफल हो सकता है तब फिर क्यों स्वर्ग आदि अदृष्टफल की कल्पना की जाय।

और 'अदृष्टफल' उसे कहते हैं जो कि कारण के क्रियात्मक व्यापार होने के बाद इस वर्तमान शरीर के रहते हुये कोई फल देखने में न आये बल्कि किसी प्रमाण के आधार पर उसकी कल्पना की जावे। जैसे यागरूपकर्म की समाप्ति हो जाने के पश्चात् भी उसका कोई फल देखने में नहीं आता है इसलिये वहाँ "स्वर्गकामो यजेत" इस श्रुतिरूपप्रमाण के आधार पर स्वर्ग रूप फल की कल्पना करते हैं इसलिये स्वर्ग अदृष्टफल है यह सिद्ध हुआ।

और यह दृष्ट अथवा अदृष्टफल सुख रूप भी होता है और दुःख रूप भी, वह धर्म-अधर्म के द्वारा प्राप्त होता है। धर्म से सुख और अधर्म से दुःख। और धर्म तथा अधर्म साक्षात् कर्म से उत्पन्न होते हैं और एक रास्ता फलों के उपभोग का संस्कार भी है। अर्थात् अच्छे और बुरे कर्मों के संपादन से मनुष्य के हृदय में अच्छे बुरे संस्कार इकट्ठे हो जाते हैं जिन संस्कारों से प्रेरित हुआ मनुष्य कर्म-शृङ्खला (जाल) के बन्धन में बहुत काल के लिये फँस जाता है जिससे कि जन्म-जन्मान्तर में भी उससे छुटकारा प्राप्त करना मनुष्य के लिये अत्यन्त ही कठिन हो जाता है।

बुरे कर्मों के संपादन के पश्चात् यदि मनुष्य उनका पश्चात्ताप कर लेता है तो बुरे संस्कार हार्दिक पश्चात्ताप से समाप्त हो जाते हैं और प्रायश्चित्त से बुरे कर्मों का बुरा फल दूर हो जाता है।

॥ कर्मों का त्रैविध्य ॥

सकाम कर्म तीन प्रकार के होते हैं—संचितकर्म-प्रारब्धकर्म-क्रियमाणकर्म। जिनमें संचितकर्म और प्रारब्धकर्म ये दो प्रकार के कर्म भूतकालीन अर्थात् भूतकाल में होने वाले माने गये हैं। 'संचितकर्म' शब्द का अर्थ है संचय-इकट्ठा किया हुआ, अर्थात् रात-दिन हम लोग कर्म करते-कराते आ रहे हैं उनमें से कुछ कर्म संचित अर्थात् इकट्ठे हो जाते हैं। इकट्ठे हुए इन कर्मों के भोग के लिये भी दूसरा ही शरीर धारण करना पड़ता है और इन कर्मों की भोग अथवा तत्त्वज्ञान से समाप्ति हो जाती है। यही कारण है कि योगी अथवा ज्ञानी लोगों के जो संचित कर्म हैं उनके उपभोग के लिये उन्हें शरीरान्तर अथवा दूसरा जन्म नहीं धारण करना पड़ता है वे लोग अपनी-अपनी शक्ति के द्वारा उन्हें समाप्त कर डालते हैं। अर्थात् योगी कायव्यूह के द्वारा उनका उपभोग कर उन्हें समाप्त कर देता है। 'कायव्यूह' इस शबद का अर्थ है 'अनेक शरीर' अर्थात् योगी अपने योगबल के द्वारा एक शरीर के अनेक शरीर बना लेता है, और उन अनेक शरीरों के द्वारा उसी जन्म में वह योगी अपने समस्त संचित कर्मों को उपभोग के द्वारा खत्म कर देता है और ज्ञानी अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा उनकी समाप्ति कर डालता है। श्री आचार्य जी कहते हैं कि—

कोटि मण कष्ट में अगनि चिनघी परै,
सकल होहिं छार जम कटे फासा॥

जैसे कहा भी है—

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन?"

अर्थात् हे अर्जुन! यह ज्ञानरूपी अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर डालती है।

संचित कर्मों के विषय में एक यह भी उल्लेखनीय विषय है कि प्रारब्ध कर्मों के उपभोग के लिये जो शरीर हमें प्राप्त होता है उस शरीर से संचितकर्मों के फलों का उपभोग हम भोग नहीं कर सकते हैं, बल्कि संचितकर्मों के फलों का उपभोग करने के लिये हमें दूसरा शरीर ही धारण करना होता है।

योगी अथवा ज्ञानी लोगों के अन्तःकरण के ऊपर इन कर्मों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है और प्रारब्धकर्म को भोग से क्षय वे लोग कर ही देते है अतः फिर उन्हें दूसरा शरीर अथवा दूसरा जन्म धारण नहीं करना पड़ता है, उन्हें तो एकमात्र शरीर त्याग की ही आवश्यकता रहती है। पातञ्जल योगदर्शन में इस विषय को बड़ा ही स्पष्ट किया है–

"अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः"

॥ प्रारब्ध कर्म॥

जिन कर्मों के प्राणीमात्र का प्रारब्ध बनकर तैयार होता है उन कर्मों को प्रारब्ध कर्म कहते हैं। यह प्रारब्धकर्म तब तक बना रहता है जब तक उसके फल का उपभोग समाप्त नहीं हो जाता है और तब तक ही यह नये-नये शरीरों को भी धारण करता रहता है। महाराज जी कहते हैं कि–

गरीब जैसे हरहट माल में, करुवे लाग्या कर्म।
फेरा स्वर्ग पताल में, ऐसा दानं धर्म॥

गरीब करनी भरनी भुगत कर पैठत है मिरत लोक।

जैसे हरट तथा कूएँ में से पानी निकालने वाले यन्त्र की बाल्टियाँ नीचे से भर कर ऊपर को आती हैं और खाली होकर नीचे चली जाती हैं बस ऐसे ही सकाम कर्मों का हिसाब है, कभी स्वर्ग में, कभी पाताल में और कभी मृत्युलोक में आना-जाना बना ही रहता है।

इसी प्रारब्ध के आधार पर यह जीव चौदह (१४) प्रकार के लोकों में चरण-विचरण करता रहता है। इसी के आधार पर यह जीव चौरासी लाख योनियों में घूमता रहता है। नट के समान अनेक रूप धारण करता है। कभी अपने प्रारब्धकर्मानुसार पशु-पक्षी-कीट-पतंग का रूप धारण करता है तो कभी देवत्व-इन्द्रत्व को प्राप्त करता है। परन्तु देवत्व एवं इन्द्रत्व को प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी देवत्व-इन्द्रत्व की प्राप्ति के कारणीभूत प्रारब्धकर्मों की समाप्ति के बाद वह यहीं मृत्युलोक में आ जाता है। कहा भी है–

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालम्।
क्षीणे पुण्ये मृर्त्यलोकं विशन्ति॥ (गीता)

अर्थात् वे जीव जो स्वर्गलोक में अपने प्रारब्धकर्म का फल भोगने के लिये गये हुए हैं–उस विशाल स्वर्गलोक का फल भोग चुकने के बाद पुण्य के क्षीण (समाप्त) हो जाने पर भी मृत्युलोक में आकर अनेक शरीरों में प्रवेश करते हैं।

इस प्रकार कुम्हार के दण्ड से उत्पन्न होने वाली जो भ्रमि (चक्कर)उस भ्रमि के आधार पर जैसे कुम्हार का चाक बराबर घूमता रहता है। वैसे ही प्रारब्धकर्मों के आधार पर यह जीव कभी चीन में तो कभी जापान में, कभी अमेरिका में तो कभी ब्रिटेन में, कभी फ्रांस में तो कभी रूस में, कभी हिन्दुस्तान में तो कभी पाकिस्तान में, कभी मृत्युलोक में तो कभी देवलोक में, कभी महलोक में तो कभी जनलोक में, इत्यादि रूप से बराबर इधर से उधर घूमता ही तो रहता है।

इन्द्र को एक बार जीव के इसी भ्रमण रूपी व्यापार को देखकर अपने मन में यह शंका उत्पन्न हो गयी कि क्या इस भ्रमण के चक्कर में मैं भी हूँ? अर्थात् मुझे भी इस भ्रमण चक्कर के कारण इस इन्द्रत्व-इन्द्रपद को छोड़कर अन्यत्र (दूसरी जगह) जाना पड़ता है क्या?

अपनी इस शंका को दूर करने के लिये अथवा सुलझाने के लिये इन्द्र लोमश ऋषि के पास पहुँचे। इन्द्र जब लोमश ऋषि के आश्रम में जा रहे थे तो देखते क्या हैं कि लोमश ऋषि एक स्थान पर बैठे हुए चींटिंयों की निकलती हुई एक धारा का निरीक्षण एवं परीक्षण कर रहे हैं। इन्द्र भी पीछे से आकर उन्हीं के पीछे खड़े हो गये, और वे भी उनके इस नाटक को देखने लगे। जिस समय दो चार घंटों के पश्चात् वे चींटियाँ अपने-अपने भट्टों (बिलों) में जाकर घुस गयीं और धारा वहीं समाप्त हो गयी। इसके बाद लोमश ऋषि अपने आश्रम में जाने के लिये जब पीछे को घूमें तो पीछे देखते हैं कि सामने इन्द्र खड़े हुए हैं। इन्द्र ने चरणों में साष्टांग प्रणाम किया, महर्षि लोमश ने उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया और पूछा कि भाई इन्द्र! बोलो तुम कैसे आये। इन्द्र ने कहा कि महाराज! पहिले आप अपने

इस नाटक का वर्णन करो कि आप जो इस चींटियों की धारा को देख रहे थे वह किस दृष्टि से?

महर्षि लोमश ने उत्तर दिया कि मैं इन चींटियों की धारा के अन्दर प्रत्येक चींटी में इस बात का परीक्षण कर रहा था कि इन चींटियों के शरीर के अन्दर क्या कोई ऐसी भी जीवात्मा है जो अपने जीवनकाल में एक बार भी इन्द्रत्व = इन्द्रपद = इन्द्र शरीर को प्राप्त न हुयी हो।

इन्द्र ने पूछा कि महाराज! आपने इस विषय में फिर क्या अनुभव किया कि क्या कोई जीव इनके अन्दर ऐसा मालूम पड़ा कि जो अपने जीवन काल में एक बार भी (इन्द्रपद) को प्राप्त न हुआ हो?

महर्षि लोमश ने इसका उत्तर दिया कि इन चींटियों में सिर्फ दो ही चींटियाँ ऐसी थीं कि जिनके शरीर में मौजूद यह आत्मा सिर्फ दो ही बार इन्द्र पद को प्राप्त कर पाया है और जो चीटियों के शरीर के अन्दर वर्तमान जीवात्मा हैं वे तो अनेकों बार इन्द्रत्व को प्राप्त भी कर चुकीं और उससे वंचित भी हो चुकीं, अब वे इन चीटियों के शरीरों में अपना प्रवेश किये हुए हैं, और अपने किये हुए कर्मों का फल भोग रही हैं।

महर्षि लोमश ने फिर इन्द्र से पूछा कि इन्द्र बतलाओ आगमन कैसे हुआ?

इन्द्र ने उत्तर दिया कि महाराज! मेरे आगमन का साफल्य (सफलता) और मेरे प्रश्न तथा इच्छा का विषय तो समाप्त हो चुका, अर्थात् मैं जो जिज्ञासा आपके समक्ष लेकर आया था वह चींटियों की धारा ने हल कर दिया।

सो इस प्रकार यह जीव अपने प्रारब्धकर्म के आधार पर अवलम्बित (आशंकित) होकर इधर-उधर घूमता रहता है, अनेक प्रकार की योनियों में नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में, वर्ण एवं आश्रमों में, सदाचार तथा दुराचारों में, सद्विचार एवं दुर्विचारों में, इष्टसाधन और अनिष्ट साधन में, सत्प्रवृत्ति तथा असत् प्रवृत्तियों में बराबर इसी प्रकार भटकता फिरता रहता है। इसे कहीं भी किसी प्रकार की आराम एवं विश्राम तो होने ही नहीं पाता है। इस प्रकार कभी अपने कभी दूसरे के प्रपंच में, (जाल)

सांसारिक विषयों में, वासनाओं में, भावनाओं में, राग में, द्वेष में, इष्ट तथा अनिष्ट के संपादन में बराबर अपने व्यापार को करता ही तो रहता है तब फिर इसे आराम-विश्राम मिले कैसे? केवल गुरु शरण में जाने व सुरति शब्द अभ्यास से ही मुक्ति मिलती है।

॥ क्रियमाण कर्म ॥

संचित एवं प्रारब्ध इन दो प्रकार के कर्मों से अतिरिक्त तीसरा क्रियमाण कर्म भी माना गया है। "क्रियमाण" शब्द का अर्थ है कि जो कर्म अभी किया जा रहा है, अर्थात् जिस कर्म का अभी संपादन हो रहा है वही क्रियमाण कर्म कहलाता है। "क्रियमाण" शब्द का यह अर्थ है कि "वर्तमान काल में किये जाने वाले" कर्म की वाचक जो क्रिया "क्रियमाण" का प्रधान कारण यह प्रारब्ध कर्म ही है और क्रियमाण कर्म अर्थात् उसका कार्य है, यह स्पष्ट है।

'क्रियमाण' शब्द का भविष्य = अनागत काल में शीघ्र हीं जिन कर्मों का उपभोग होने जा रहा है, अभी वह उपभोग आरम्भ नहीं हुआ है यह अर्थ भी हो सकता है अतः वे कर्म भी क्रियमाण कर्म कहे जा सकते हैं। परन्तु 'क्रियमणा' शब्द का यह अर्थ यथाश्रुत (असली) अर्थ अर्थात् वास्तविक अर्थ नहीं है अपितु इसे तो लक्षणा के द्वारा ही किसी प्रकार सयुक्त किया जा सकता है। इसका असली अर्थ तो वही है जिसे हम पहिले बतला चुके हैं।

दूसरी बात यह भी है कि "योगाद् रूढ़िर्बलीयसी" अर्थात् यौगिक अर्थ से रुढ़ि अर्थ बलवान् होता है, इस नियमानुसार भी वर्तमान काल वाचक 'शानच्' प्रत्यय घटित 'कृ' धातु से सिद्ध किया "क्रियमाण" शब्द का अर्थ ही उचित प्रतीत होता है।

और यह क्रियमाण कर्म तथा संचित कर्म ये दोनों कर्म आत्मतत्त्व ज्ञान के बाद ही समाप्त हो जाते हैं। इनके उपभोग के बाद फिर दूसरा शरीर धारण नहीं करना पड़ता है। परन्तु प्रारब्ध कर्मों के भोगने के लिए तो तब तक शरीर बराबर धारण करते ही रहना होगा जब तक कि उनकी

समाप्ति न हो जाय, उनकी समाप्ति भोग से ही एकमात्र हो सकती है न कि ज्ञान से।

हमारा तो ऐसा विचार है कि इन किये जाने वाले क्रियमाण कर्मों के इकट्ठे हो जाने से ही संचित कर्मों की उत्पत्ति होती है इस लिये ये क्रियमाण कर्म ही संचित कर्मों के कारण हैं और इन संचित कर्मों से ही प्रारब्ध कर्म उत्पन्न होते हैं। अर्थात् इन संचित कर्मों में से जिन कर्मों का भोग शुरू हो गया है वे ही प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं इसलिए प्रारब्ध कर्म भी इन संचित कर्मों के ही दूसरे रूप हैं। इन प्रारब्ध कर्मों की समाप्ति ज्ञान से नहीं होती है अपितु भोग से ही होती है जैसा कहा है कि–"प्रारब्धकर्मणां भोगेनैव क्षयः" अर्थात् प्रारब्ध कर्मों का भोग से ही विनाश होता है।

और यह जो कहा गया है कि–"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन?" अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है। इससे तो यही अर्थ आ रहा है कि प्रारब्ध कर्मों से अतिरिक्त जो संचित एवं क्रियमाण कर्म हैं उनका ज्ञानाग्नि से विनाश हो जाता है। इसी प्रकार–

"क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे"

अर्थात् उस पारब्रह्म एवं अपारब्रह्म के दर्शन हो जाने पर इस जीव के समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं, सो यहाँ पर भी प्रारब्धकर्म से अतिरिक्त दोनों प्रकार के कर्मों का ही नाश ब्रह्मसाक्षात्कार से बतलाया है।

प्रारब्धकर्म संचितकर्म का दूसरा रूप इसलिये माना गया है कि संचित कर्मों में से जिन कर्मों का भोग शुरू हो गया है वे ही प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं इसलिये अब उन कर्मों की समाप्ति तो भोग से ही एकमात्र हो सकती है, कारण कि जिन कर्मों का भोग शुरू हो गया है उन कर्मों का अन्त तो अब भोग से होना है। जिस प्रकार बन्दूक से गोली निकल चुकी है वह तो अब लौटकर आयेगी नहीं उसकी तो लक्ष्य स्थान पर जाकर ही समाप्ति होनी है।

॥ निष्काम कर्म॥

इस चराचर विश्व के अन्दर निष्काम कर्म की महिमा को शास्त्रों ने वेदों ने ऋषि-महर्षियों ने ही एकमात्र नहीं बल्कि साक्षात् पारब्रह्म रूप श्री

जगद्गुरु गरीबदासाचार्य जी ने भी सर्वोपरि बतलायी है कि

ऊँचे कर्मों कर्म कटाहीं।
सो पंडत तुम जानो नाहीं॥
दान पुंन की करे न आसा।
जो अरपे सो पुरुष निवासा॥

निष्काम कर्मों को ही ऊँचे कर्म कहा गया है, इन्हीं के द्वारा ही सब कर्मों की निवृत्ति होती जाती है। जो कर्म कर्त्तव्य अथवा धर्म समझकर ईश्र को अर्पण की बुद्धि से किया जाता है और किसी भी प्रकार की मन की कामना अथवा भावना का सम्बन्ध जिनसे नहीं देखने में आता है उन्हें निष्काम-कर्म कहते हैं। संसार के सुख और दुःख दोनों ही बन्धन रूप हैं। कारण कि दुःख तो दुःखरूप होने के नाते बन्धन रूप है और संसार का सुख भी सुख का आभासरूप होने के नाते बन्धन रूप है। यह चराचर समस्त विश्व दुःख से अथवा सुखाभास से व्याप्त है। यह संसार अथवा संसार का बन्धन वासनाओं भावनाओं एवं कामनाओं अथवा कर्मों के ऊपर ही अवलम्बित है। इनके उत्पन्न हो जाने पर राग-द्वेष सुतरां स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं। प्रमाद-मोह-आसक्ति-आलस्य स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं। निष्काम कर्म-ज्ञान-भक्ति-उपासना-आराधना आदि स्वयं सब समाप्त हो जाते हैं। वासनाओं एवं भावनाओं के आधार पर ही कर्मवाद की उत्पत्ति होती है और कर्म से फिर संस्कार उत्पन्न होते हैं। यही हमारा संसार है। यह भी बन्धनरूप ही है। जीव को अपने कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुए संस्कारों के आधार पर स्वयं अपने द्वारा किये हुये कर्मों का फल भोगने के लिये बाध्य होना पड़ता है। इनसे अपनी रक्षा के लिये इन्द्रियों का दमन एवं इन्द्रियों के विषयों का दूरीकरण सर्वथा आवश्यक है और इन्द्रियों का दमन तथा उनके विषयों से दूरीकरण (दूर करना) जबर्दस्ती नहीं होना चाहिये बल्कि इन्द्रियों को एवं इन्द्रियों के द्वारा मन तथा आत्मा को विषयों से पूर्ण विचार करके इसके पश्चात् विषयों में मिथ्यात्व बुद्धि उत्पन्न कर वैराग्य की भावना को दृढ़ बना लेना चाहिये, जिस समय सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जावे फिर तुरन्त इन्द्रियों का

दमन तथा इन्द्रियों का विषयों से दूरीकरण एवं स्वयं अपना भी उस विषयस्थान से परिवर्तन आवश्यक है। यही कहा भी है–

"दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्त विषयेभ्यो निवर्त्तनम्"

अर्थात् चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियों की जो सुने जाने योग्य सांसारिक श्रवणात्मविषयों से निवृत्ति हो जाना वही इन्द्रियों का दमन (बस में करना) कहलाता है।

भोगमय जीवन में इन्द्रियों का दमन बिल्कुल नहीं हो पाता है। इन्द्रियों के दमन के लिये तपोमय (तपरूप) जीवन की आवश्यकता होती है। तपोमय जीवन की प्राप्ति निष्काम कर्म से ही हो सकती है। इस जीवन में राग द्वेष की निवृत्ति हो जाती है। तपोमय जीवन वाले साधु महात्मा प्रभृति तपस्वी लोग कितना भी कष्ट क्यों न हो शास्त्रीय कर्तव्यकर्म का पालन एवं निषिद्ध कर्म का परित्याग बराबर करते रहते हैं। इसी निष्काम कर्म मार्ग के आधार पर बीतराग साधु महात्मा लोगों ने बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। सद्गुरु जी स्वयं कह रहे हैं कि–

उस साहिब के हुकम बिना नहीं तरबर पात हलंदा

भगवान् कृष्ण ने भी इस मार्ग का उपदेश करते हुये कहा है कि–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥गीता॥

अर्थात् जिस परमपिता परमेश्वर से संसार के समस्त प्राणियों की अपने-अपने कामों में प्रवृत्ति निवृत्ति होती है, बिना उसकी प्रेरणा के वायु भी किसी एक वृक्ष के पत्ते तक को नहीं हिला सकता है। अग्नि भी एक तिनके तक को नहीं जला सकता है। वरुणदेव भी जिसके आदेश के बिना वर्षा तो बहुत दूर रही एक जल की बिन्दू तक नहीं गिरा सकता है इस प्रकार समस्त प्राणियों के अन्दर उन कार्यों को सम्पन्न करने वाली शक्ति ईश्वर प्रदत्त ही है और जिस जगन्नियन्ता परमपिता परमेश्वर से यह चराचर विश्व व्याप्त है अर्थात् जिसके ज़र्रे-ज़र्रे में कोने-कोने में वह जगन्नियन्ता सर्वशक्तिमान् परमपिता परमेश्वर समाया हुआ है। उस

परमपिता को हमेशा निष्कामकर्मरूपी प्रेम जल से अभिसेंचन करना चाहिये। अर्थात् अपने मन में किसी भी प्रकार की कामना की भावना न रखते हुये सतलोक परमधाम निवासी घट-घट वासी छुड़ानी-बिहारी गरीबदास रूपधारी उस जगत् पिता की पूजा करनी चाहिये, यही वास्तव में उसकी पूजा भी है। जिस प्रकार कोई पतिव्रता स्त्री अपने पतिदेव को ही अपना सर्वस्व समझती है, और उसके आदेशानुसार ही समस्त कर्म करती हुई उससे किसी भी प्रकार की कामना अथवा आज्ञापालन को परमकर्त्तव्य समझती है।

उसी प्रकार अपने इष्टदेव के चरणारविन्दों में अपने हार्दिक अनुराग से रञ्जित हुआ तथा निष्काम भावना से किये जाने वाले कर्मों के करने में संलग्न हुआ साधक पुरुष सबको भगवान् की ही प्रतिकृति अथवा स्वरूप समझता है, अथवा भगवान् को समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान समझता है, समस्तशास्त्रों तथा वेदवेदाङ्गों एवं उपवेदों को अभिधानरूपश्रुतियों की साक्षात् उनकी वाणी समझता है। भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये, साधु महात्माओं के साधुत्व की रक्षा करने के लिये, दुःखीजनों के दुःख को दूर करने के लिये, जिज्ञासु लोगों के परम-कल्याण के लिये, एवं ज्ञानी जनों को स्वरूपता का प्रदर्शन कराने के लिये उस करुणावरुणालय-कल्याणमय-भक्तवत्सल भगवान् श्री आचार्यदेव के अवतरण का जो प्रयोजन समझता है वही साधक अथवा भक्त-पुरुष उस भक्त-कल्पद्रुम अपने इष्टदेव भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है अथवा यों कह दीजिये कि दुष्ट-दुःशासन से दुःशासित भक्तप्रवर द्रौपदी की उस करुणापूर्ण एवं आर्त्त पुकार को सुनकर तुरन्त निराकार रूप में प्रकट होने वाले उन भक्तवत्सल भगवान् की भक्तकामपूरणी पौराणिक लीला का प्रत्यक्षानुभव कर सकता है।

यद्यपि इस निष्कामकर्म को बराबर करते ही रहना यह अत्यन्त ही कठिन हो जाता है परन्तु फिर भी आचार्यप्रवर श्री सद्गुरुजी महाराज का कहना था कि इसके परिणाम को देखो, इसके भविष्य को विचारो, अपने दुःख निवारण के उपयोग में आने वाले नीम की कड़वाहट पर भी जरा ध्यान करो अर्थात् मनुष्य अपने रोग अथवा रोगजन्य दुःख को दूर करने के

लिए क्या नीम के पत्तों का, गिलोयका, चिरायता आदि कड़वी औषधि का सेवन नहीं करता है। एवं सुन्दर नृत्य करने वाले मोर के एकमात्र पैरों को देखकर ही उसकी तरफ से अपने मन में किसी प्रकार का विकार पैदा न करो बल्कि उसके स्वाभाविक सौंदर्य एवं सुन्दर नृत्य पर भी विचार करो। फलोत्पादन के पहिले केले के वृक्ष की व्यर्थता को न विचारो, उससे फल की निराशा की भावना न करो, बल्कि आगे भविष्य में होने वाले उसके मधुर एवं पौष्टिक फलों की तरफ भी कुछ विचार करो।

हो सकता है कामकामी (स्वर्ग की इच्छावाले) पुरुषों के लिये यह कामना अथवा सकामकर्मों का संपादन करना बड़ा ही अच्छा मालूम पड़ता हो। परन्तु श्री आचार्यदेव की अमृतमयी वाणी से तथा शास्त्रीय दृष्टि से तथा पारमार्थिक दृष्टि से एवं गुरु के वचनामृत से यदि हम विचार करते हैं तो हमें महाकवि भारती की यही उक्ति याद आती है कि–

परिणामसुखे गरीयसि व्यथकेऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम्।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः॥

(किरातार्जुन)

इसके पहिले द्रौपदी युधिष्ठिर जी से यह कह चुकी है कि दुर्योधन हम लोगों को इसी प्रकार परेशान करता रहेगा अतः उससे युद्ध करना ही श्रेयस्कर होगा। द्रौपदी की उसी बात का समर्थन युधिष्ठिर जी से भीम कर रहा है कि–मामूली सी भी औषधि शुरू में कड़वी होने पर भी परिणाम (आखिर) में रोग को शान्त करने के कारण जैसे उसका परिणाम सुखमय होता है, इसी प्रकार यह जो द्रौपदी ने बात कही है वह अत्यन्त ही महत्त्वप्रद एवं परिणाम में सुख देने वाली है, हो सकता है इसकी वास्तविकता को जो न जाने उसे शुरू में कुछ कष्ट हो।

इसी निष्कामकर्म के आचरण के आधार पर हम जिस सांसारिक कर्मबन्धन में फँसकर बारम्बार जन्म मृत्यु के चक्र काट रहे हैं, दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं, ऐरे गैरे नत्थू खैरों के सामने अपनी दीन अवस्था का प्रदर्शन कर रहे हैं, इन सब विषयों से हमेशा के लिये छुटकारा पा जायेंगे। अपने लक्ष्यीभूत केन्द्र में पहुँच जायेंगे, अपने असली स्वरूप की पहिचान

कर सकेंगे, अविद्या से उत्पन्न होने वाले समस्त विकारों को दूर कर सकेंगे, कामना एवं सकामकर्म अविद्या है तो कामना का अभाव अथवा निष्कामकर्म विद्या है, अविद्या है तो कामना का अभाव अथवा निष्काम कर्म विद्या है, अविद्या प्रेय है तो विद्या श्रेय है, सकामकर्म मृत्यु का भवन है तो निष्कामकर्म अमृतभवन है, सकामजगत् अन्धकार में है तो निष्कामजगत् प्रकाश में है, एक सत्य है तो दूसरा असत्य है, एक शान्त है तो दूसरा अशान्त है। जैसे कहा भी है–

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्।
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्॥
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे।
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

(गीता)

जिस प्रकार सर्वथा परिपूर्ण एवं अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में समस्त नदियों का जल समा जाता है समुद्र को किसी भी प्रकार चलायमान नहीं कर पाता है उसी प्रकार ये समस्त कामनायें निष्कामकर्म करने वाले पुरुष के अन्दर समा जाती हैं उसे किसी भी प्रकार चलायमान नहीं कर पाती हैं और कामना अर्थात् विषयों के भोगों की इच्छा रखने वाला मनुष्य विषयों के भोगों की इच्छाओं की समाप्ति न होने के कारण हमेशा परेशान बना रहता है। कहा भी है कि–

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

(वैराग्य शतक)

अर्थात् विषयों को भोगने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के भोगों की कभी भी समाप्ति नहीं हो पाती है अपितु एक दिन वह भी उस व्यक्ति को भोग ही भोग लेते हैं और व्यक्ति स्वयं ही भोगा जाता है न उसकी भोगों की इच्छा ही जीर्ण-क्षीर्ण हो पाती है बल्कि वह स्वयं ही एक दिन जीर्ण-क्षीर्ण हो पाती है बल्कि वह स्वयं ही एक दिन जीर्ण-क्षीर्ण हो जाता है।

नित्य-शुद्ध बुद्ध होता हुआ भी आत्मा इसी कामना के चंगुल में फंस कर निरगुण से सगुण और सगुण से जीव के स्वरूप को धारण करता है जीव का स्वरूप धारण कर नाना शरीरों को धारण करता है। यही शरीर को छः प्रकार के विकारों से युक्त बना देता है। ये विकार शरीर के जन्मते ही उसके पीछे लग जाते है जिससे शरीर हमेशा विकृत ही बना रहता है। कहा भी है–

जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः।

फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना॥

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः।

अविक्रिय स्वदृग् हेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्य नावृतः॥

अर्थात् जन्म आदि (जन्म-विनाश-वृद्धि-क्षय-परिणाम-अस्तित्व की प्रतीति होना) छः प्रकार के विकार शरीर के ही देखे गये हैं न कि आत्मा के। आत्मा तो नित्य है, शुद्ध-बुद्ध-अविनाशी है, क्षेत्रज्ञ, अर्थात् शरीर रूपी क्षेत्र का ज्ञाता है, आश्रय है अर्थात् समस्त चराचर विश्व का आधार है। आत्मा स्वयं प्रकाश है, कारण है, व्यापक है, असंग और निरावरण है। शरीर इसके सर्वथा विपरीत होने के नाते ही छः प्रकार के विकारों का शिकार बन जाता है।

इस प्रकार सकामकर्मों के विषय में अब इतना वक्तव्य और है कि उनका फल भोगने के लिये मनुष्य को एक जन्म के बाद दूसरा, और दूसरे के बाद तीसरा इत्यादि रूप से यह अनादि कालीन प्रवाह के रूप में हमेशा चलता ही तो रहता है। कर्मों का व्यापार अनादि अनन्त है इसलिये इससे छुटकारा प्राप्त होना असंभव सा जान पड़ता है। कारण कि यज्ञ-यागादिरूप सत्कर्मों के द्वारा स्वर्गादिरूप ऊपर वाले लोकों की प्राप्ति हो जाने के बाद भी तो जीव को इसी कर्मभूमि स्वरूप मृत्युलोक में लौटकर आना पड़ेगा। क्योंकि–

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालम्।

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति॥

इसलिये इस कर्म के जंजाल से छुटकारा प्राप्त होने पर ही मनुष्य अथवा चेतनतत्त्व यह जीव जन्म-मरण के झंझट से दूर हो सकता है। संसार एवं सांसारिक-प्रपंचों तथा विषय वासनाओं से विरक्त एवं शान्त मन वाला हो सकता है।

और वह कर्मों का जंजाल एकमात्र उस आत्मतत्त्व के दर्शन अर्थात् आत्मा के साक्षात्कार से ही दूर हो सकता है। इसको दूर करने का और कोई भी उपाय नहीं है। हम देखते हैं कि जिस प्रकार रांगे को अथवा सीपी को साक्षात् देख लेने से उनमें भासमान (प्रतीति) होने वाली चाँदी की निवृत्ति हो जाती है अथवा रस्सी का अच्छी प्रकार यथार्थज्ञान हो जाने से उसमें भासमान (प्रतीति) होने वाले सर्प की जैसे निवृत्ति हो जाती है। आप स्वयं कह रहे हैं कि–

गरीब अनभै फरसा प्रेम का, क्या ज्ञानी क्या ठोठ।

अनभै के गोले छुटे, भीत किले ढहे कोट॥

सद्गुरु जी कहते हैं कि प्रेमरूपी कुल्हाड़ा मूर्ख और चतुर सबके कर्मों को काटकर साफ कर देता है तथा ब्रह्मविद्यारूप अनुभव वाणी के वज्र के समान गोलों द्वारा कर्म भ्रमरूप किले और दिवारों को गिराकर साफ़ मैदान कर देते हैं। कर्म जाल से पीछा इसी प्रकार से छूट सकता है और कोई भी उपाय नहीं है।

इसी प्रकार समस्तकर्मात्मक जगत् के आश्रय स्वरूप उस चेतनतत्त्व आत्मा के साक्षात्कार हो जाने से उसमें अध्यस्त होकर भासमान होने वाला यह समस्तकर्मरूप जगत् हमेशा के लिये निवृत्त एवं समाप्त हो जाता है। कहा भी है–

"कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु विमुच्यते"

अर्थात् कर्म करने से प्राणी बन्धन के पंजे में फँस जाता है और विद्या से अर्थात् आत्मविद्या = आत्मज्ञान से उस प्राणी का छुटकारा हो जाता है। इसके अतिरिक्त और भी–

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्य५ पन्था विद्यतेऽयनाय।

अर्थात् उसी निराकार-निर्विकार चेतन आत्मतत्त्व को जानकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है इसके लिये और कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है और भी कहा है—

बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा संपद्यते पुनः॥

(महाभारत)

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि के अन्दर भूना हुआ बीज जमीन के अन्दर उग नहीं सकता है-क्योंकि अग्नि ने उसके अन्दर अङ्कुरजनन की शक्ति नष्ट कर दी है उसी प्रकार ज्ञान के द्वारा कर्मरूपी क्लेशों को दग्ध कर देने के पश्चात् फिर वे कर्म अथवा कर्मरूपी क्लेश आत्मा को नहीं सताते हैं।

अब अन्त में हमें भी वही कहना पड़ता है कि जो हमने परम्परा से आचार्य प्रवर महाराज से सुना है। कि वह अपनी शिष्योपशिष्य परम्परा के लिये यह आदेश तथा उपदेश देते थे कि निष्कामकर्मों के करने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। आत्मज्ञान में भी परम्परा से यही निष्काम कर्मयोग ही उपयोगी हैं।

श्री आचार्य देव ने अपनी अमृतमयी वाणी में इस प्रकार कहा है कि निष्काम कर्मों के अतिरिक्त जितनी भी क्रियायें एवं कर्म हैं वे सब जीव को सुख देने वाले नहीं हैं। चाहे सकाम कर्म कितने ही कर लें तप यज्ञदान इत्यादि (जो कि पहले कहे गये हैं) सकाम कर्मों से यदि यह जीव इन्द्र पद को प्राप्त कर ले तो भी उसे शान्ति नहीं मिल सकती। तीर्थ आदिकों में भ्रमण करने से एवं वेद वेदाङ्ग के पाठ करने मात्र से भी वह सुखरूप आत्मा एवं परमात्मा प्राप्त नहीं हो सकता जब तक इस जीव के हृदय में निष्कामता नहीं आती। जब यह निष्काम होकर सत्सङ्ग एवं परमात्मा की शरण में जाता है तब इसको इस आत्मसुख की प्राप्ति होती है। जब तक महात्माओं की शरण में तथा परमात्मा के चिन्तन में यह जीव नहीं लगेगा तब तक नाना प्रकार की जीव योनियों में भटकता ही

रहेगा। इस विषय में श्री सद्गुरुदेव जी ने अपने मुखारविन्द से यह पद कहे—

तपो नाश कालं सरन संत आवे,
मगन वे इच्छा सु ममरूप पावे॥१९॥
मम सन्त मुझे जांनि मेरा सरूपं,
अधर बास देऊँ कलप कोटि रूपं॥२०॥
मम सन्त सेवा करें चरण चांपी,
आदि अनादं नहीं काल झाँपी॥२१॥
मम सन्त सेवा करत हैं जु राजी,
बिछरैं न तासै अनंत जांहिं बाजी॥२२॥
जपे मूल मंत्रं नहीं नाश ताका,
पढ़े गोई गुंजं सुसम वेद साखा॥२३॥
अगर पंथ पुष्पं बिछी फूल सेजं,
मंत्रं गुइं गात लख भानु तेजं॥२४॥
बैकुण्ठ बटक बीज जानंत सोई,
निःइच्छा निरबासी निःकामी है सोई॥२५॥
रागो न दोषो न दुंदी न धारा,
है तो सृष्टि में सृष्टि से नियारा॥२६॥
छिमा पद छिके हैं अतीतं अतीमं,
नहीं जूनीं जन्मं ग्रभो न नीमं॥२७॥
नहीं गर्भ त्रासं सुबासं शरीरं,
कलप कोटि जुग जात जूंनीं न पीरं॥२८॥
मेरी शरण शंक व्यापे न कोई,
अभै पद अमानं द्यौं बास तोही॥२९॥

मेरी शरण सन्त आवें अबूझं,
मंत्र गायत्री जपे मौनी गूझं॥३०॥
ग्यानों वनंज बेद उलटै अपूठा,
मूढ़ो मुगध मद संसार रूठा॥३१॥
आदर अनादर करो क्यूँ न कोई,
ममसंत शरणे जगत जानि छोई॥३२॥
मगन छत्र छाँहं राजा न काजा,
चलते नगन पैर कुहिया न वाजा॥३३॥
एता इलम त्यागि आ सरनि मेरी,
इन्द्री दमन नाश कटे फँध बेरी॥३४॥
अनँत कोटि जगि जलाबिम्ब न्हावें।
अनँत कोटि होमं वेदी रचावें॥१॥
अनँत कोटि दानं बिना इच्छा आसा।
अनँत कोटि वेदं पढ़ो श्रीरँग श्वासा॥२॥
अनँत कोटि आसन सिंघासन सिरारं।
सुरपति इन्द्रं मंदरं विहारं॥३॥
अनँत कोटि गीता गतीनाद गेहं।
अनँत कोटि विद्या सुविद्या सनेहं॥४॥
अनँत कोटि जप तप जुगा जुग जगावे।
इन्द्री न मन थीर न मूल पावे॥५॥
कोटिक जन्म देह फूकें फुकावें।
इन्द्री न दमनं न मन थीर पावें॥६॥
कोटिक जन्म धूप धूनी धियानं।
पावैं न मोकुँ तजो देह प्रानं॥७॥

कोटिक जन्म देह झरना उपासी।
पावैं न मोकुँ वसो क्यूँ न काशी॥८॥
कोटिक जन्म देह बदरी विशालं,
बैठो विमानं सुरगो पतालं॥९॥
कोटिक जन्म देह पिण्डो प्रधानं।
पावैं न मोकुँ जो आसन ईशानं॥१०॥
कोटिक जन्म अङ्ग विरकत विदेही।
पावै न मोकुँ जो ग्रही का सनेही॥११॥
कोटिक जन्म जँग सूरे करांही।
पावैं न मोकुँ दुनी राह जांहीं॥१२॥
कोटिक जन्म दत्त दानी प्रानी।
पावै न मोकुँ चहूँ खांनि सानी॥१३॥
कोटिक जन्म मुरद मट्टीजु लेवैं।
आपन डूबंत औरान खेवें॥१४॥
कोटिक जन्म जल सिज्या शरीरं।
पावै न मोकुँ जलाबिम्ब कीरं॥१५॥
कोटिकनी कनक गजफील दानं।
पृथ्वी प्रदक्षिणा न होवे अमांनं॥१६॥
इन्द्र कुबेर वरुण क्यूँ न होवैं।
पावैं न मोकुँ नहीं वाट जोवै॥१७॥
कोटिक जन्म देह कनक धार बूठे।
पावै न मोकुँ नही जूनि छूटे॥१८॥

श्री जगद्गुरु आचार्य देव गरीबदास जी महाराज का ऐसा (कर्म सम्बन्ध में जो दिया गया है) उपदेश सुनकर पंडित शिवदत्त जी अत्यन्त शान्ति एवं आत्म-सुख का अनुभव करने लगे और उनकी वेदान्त में

अत्यन्त श्रद्धा एवं निष्ठा उत्पन्न हो गई। तथा नित्य प्रति बहुत दिनों तक सद्गुरु जी का अमृतमय उपदेश सुनते रहे जो कि पहले कथन किया गया है।

॥ अबिहड़ का ध्यान॥

एक बार सभा में श्री आचार्य जी ने सब जिज्ञासु भक्तों को भिन्न-भिन्न प्रकार से ध्यान की विधि बताते हुए अबिहड़ के ध्यान के विषय में कहा कि बहुत से महापुरुष अबिहड़ का ध्यान करते हैं। वे अबिहड़ का ध्यान करके परम सिद्धि प्राप्त करते हैं। अबिहड़ के ध्यान की महिमा सुनकर श्री आचार्य जी के शिष्य स्वामी भानीदास जी ने श्री सद्गुरु जी से प्रार्थना की, कि हे सद्गुरु देव जी जो आपने अबिहड़ के ध्यान के विषय में कहा है सो कृपा करके आप हमको बतावें कि अबिहड़ क्या वस्तु है? इसका ध्यान कैसे किया जाता है? तथा इसकी कितनी महिमा है? इससे क्या लाभ होता है।

अपने शिष्य की विनीत प्रार्थना सुनकर श्री आचार्य ने अबिहड़ के ध्यान की विधि इस प्रकार बताई–

गरीब चरण पाताल सिर सिखर है, मेरुदण्ड धर ध्यान।
अबिहड़ के लक्षण कहूँ, शब्द हमारा मान॥

सूर्य की प्रातः दस बजे की धूप में खड़े होकर अपनी गर्दन (ग्रीवा) पर दृष्टि जमाओ, पन्द्रह मिनट के बाद आकाश की ओर देखो, तब आप को एक आप की ही छाया जैसी मूर्ति दीखेगी। उसके लक्षण इस प्रकार वर्णन किये हैं।

गरीब दहनी भुजा न दरशहीं, मित्र मरै कै बीर।
थर हर थरकै, राज भंग है कै दुःख पड़े शरीर॥
गरीब वामी भुजा न दरसहीं, नारि मरे निसतूक।
रक्त वरण जो देखिए, तो खष्ट मास तन सूक॥
गरीब श्याम वरण जो देखिये, तो एक मास में हानि।
अबिहड़ के लक्षण कहूँ, अपना तन नहीं जानि॥

गरीब जे अबिहड़ कै सिर नहीं, तो मरसी तत्काल।
पाँच सात दिन तीन में, पकड़ लेत है काल॥
गरीब उजल वर्ण सफेद है, तो जीवन की आस।
दम दम अबिहड़ देखिये, तो पलटै काया स्वास॥

जो मूर्ति (अपनी छाया का प्रतीक) आकाश में देखेंगे यदि उसकी दहनी भुजा न दीख पड़े तो समझो कि यातो हमारा भाई मरेगा या किसी प्रिय मित्र की मृत्यु होगी। यदि वह मूर्ति काँपती हुई प्रतीत हो तो समझो या तो राज्य नष्ट होगा या हमारे शरीर पर कोई कष्ट आयेगा। यदि बाईं भुजा न दीखे तो निश्चित है कि स्त्री या पुत्र की मृत्यु होगी। यदि उस मूर्ति का रक्त वरण दिखाई दिया तो दः मास में हमारा शरीर छूट जायेगा। एवं मृत्यु जैसी दशा हो जायेगी। बड़ी कठिनता से ही बचना होगा।

यदि वह मूर्ति श्यामवरण की हो तो अपने मन में निश्चय कर लेना चाहिए कि अब मेरा शरीर एक मास के पश्चात् नहीं रहेगा। ध्यान करते समय यदि उस मूर्ति का सिर न दिखाई दिया तो निश्चित कर लो कि आप का काल अति समीप आ गया। अधिक से अधिक सात पाँच या तीन दिन तक ही आप जीवित रह सकते हैं इससे अतिरिक्त नहीं, यदि वह मूर्ति उज्जवल (शुद्ध) सफेद वरण में दिखाई दे तो आपके जीवन की आशा है। यदि हर समय अबिहड़ का ध्यान करते हुए प्रत्येक श्वास के साथ परमात्मा का नाम जपा जाये तो कायापलट (बुढ़ापे से युवा-स्थूल से सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से स्थूल) इत्यादि होने की शक्ति अभ्यासी को प्राप्त हो सकती है। इतना ही नहीं स्वर्ग पाताल से लेकर सात लोक तक गमन करने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जैसे मन का वेग अति तीव्र है एक क्षण में देहली से बम्बई, कलकत्ता घूम आता है ऐसे ही उस अबिहड़ उपासक में भी कुछ ही क्षणों के अन्दर तीनों लोकों में घूमने की शक्ति हो जाती है। शरीर ऐसा हल्का और शुद्ध हो जाता है जैसे केले के वृक्ष से उत्पन्न होने वाला मुशककाफूर अर्थात् कपूर उड़ता हुआ दृष्टि गोचर नहीं होता तैसे ही शरीर भी सूक्ष्म हो जाता है अबिहड़ की कृपा से अबिहड़ के प्रताप से यह शरीर अमर गति प्राप्त कर लेता है। जहाँ चाहे प्रगट हो जाये चाहे

लुप्त हो जाये। चौदह भुवनों में भ्रमण करे, इसमें कोई रुकावट नहीं होती।

साखी- गरीब दुःख भंजन सुख देत है, निर्भय नाम अजोख।
अबिहड़ कुँ कुरबान है, लेजाता परलोक॥
गरीब अबिहड़ राम रहीम है, अबिहड़ आप खुदाय।
अबिहड़ अलह अलेख है, अबिहड़ अंग लगाय॥
गरीब अबिहड़ मौले मूल है, अबिहड़ साहिब आप।
अबिहड़ कुँ प्रणाम कर, जपिये अजपा जाप॥
गरीब निर्वाणी निज नाम जप, अबिहड़ अलह नूर।
शीश हमारे पर बसै, आठों वक्त हजूर॥
गरीब मार्ग में सद्गुरु मिल्या, अबिहड़ ध्यान अमान।
पारस पुंजी पाइया, सद्गुरु कै परवान॥
गरीब अबिहड़ में अबिहड़ बसै, मूर्ति सुंन समान।
दृष्टि मुष्टि से रहित है, त्रिकुटी के स्थान॥
गरीब अबिहड़ में अबिहड़ बसै, मूर्ति है महमन्त।
त्रिकुटी आसन अर्श में, कोई जानत बिरला संत।
गरीब ध्यान धरे प्रकाश है, कर अबिहड़ से हेत।
भौरी उलट ललाट चढ़, उजल मूर्त सेत॥
गरीब अबिहड़ बसै शरीर में, ज्यूँ फूलन में बास
काया कुंज कपूर मन, लीन करो दम स्वास॥
गरीब अन्दर अबिहड़ आदि है, बाहर देख अडोल।
अकार भार नहीं तास कै, ना कछु तोल न मोल।
गरीब अबिहड़ की कर आरती, अबिहड़ का धर ध्यान।
अबिहड़ साहिब आप है, अबिहड़ पद प्रवान॥
गरीब अबिहड़ कै अंजन नहीं, दीखत है दर हाल।
बाहर भीतर रम रह्या, गैबी ख्याल विशाल॥

गरीब अबिहड़ अनहद में रहै, ज्यूँ तरवर में छांहिं।
चँद सूर प्रकाशते, बाहर देखी ठांहिं॥
गरीब चन्द सूर छिप जात हैं, अबिहड़ तन में थीर।
घट मठ महल न तास के, न तन देह शरीर॥
गरीब अबिहड़ अजर अमर सदा, मर-मर जाये सुदेह।
सुन शिखर में छिप रह्या, ज्यूँ बादल में मेह॥
गरीब घिरत दूध में रम रह्या, यूँ अबिहड़ तन बीच।
घट घट पूर्ण ब्रह्म है, क्या उत्तम क्या नीच॥

अबिहड़ का प्रत्यक्ष हो जाने के पश्चात् वह सब दुःखों को नाश करके सुख की प्राप्ति कर देता है। उसका नाम निर्भय है और माप तोल से रहित है। उस तेजोमय मूर्ति पर बलिहार हैं जो परे से परे लोक है उसमें ले जाता है।

यह अबिहड़ को ही राम कहिये या रहीम कहिये या खुदा कहो इसमें कोई भेद नहीं है। उसको हर व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता इसलिए उसे अलह भी कहा जा सकता है। अलख लखा नहीं जा सकता। यह लक्षण शुद्ध ब्रह्म के हैं उसी को अबिहड़ भी कहा जाता है। उसकी प्राप्ति करनी चाहिए। अबिहड़ ही सबका मूल एवं कारण है इसी से सबकी उत्पत्ति होती है। उस तेजोमय मूर्ति को प्रणाम कर अजपा जाप जपो। अजपा उसे कहते हैं जो जपा न जाये जिसका स्वासों के साथ स्वाभाविक बिना ही प्रयत्न के जाप होता रहे हंस और प्रणव आदि नाम से। कल्याण स्वरूप शुद्ध अबिहड़ का नाम जपो। यह मूर्ति उस परमात्मा का ही तेज है। वह परमात्मा सबके सिर पर हर समय विराजमान है एवं सबका नियन्ता है। सद्गुरु जी कहते हैं कि हमें रास्तें में सद्गुरु मिले उन्होंने अबिहड़ का ध्यान बताया जो अवहड़ माप से रहित है। वह पारस रूप पुंजी (खजाना) हमें सद्गुरुओं के उपदेश से प्राप्त हुआ और सद्गुरु जी ने अगम की बात हमको बताई। अगम जिसमें साधारण व्यक्तियों की प्राप्त करने में गति न हो। वह सुन्दर मूर्ति जिसकी गुप्त ध्वनि सबके अन्दर हो रही है वह बिना शरीर का देवता है।

हमारी छायारूप अबिहड़ के बीच में ही वह आत्मारूप अबिहड़ आकाश की तरह व्यापक होते हुए भी मूर्तिमान् है। परन्तु वह मूर्ति हर किसी की दृष्टि में तथा पकड़ने में नहीं आती। उसका स्थान त्रिकुटी ही है वह मूर्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म विशाल से विशाल है। जिन साधकों ने त्रिकुटी (दोनों नेत्र और नाक मस्तक के मध्य भाग को त्रिकुटी कहते हैं) में अपनी सुरति को स्थित किया है वही उस आत्म रूप अबिहड़ मूर्ति को जानते हैं एवं किसी बिरले ही सन्तों को वह पद प्राप्त होता है। बारम्बार ध्यान करने से वह मूर्ति प्रकट होती है। इसलिए उससे प्रेम करो अपने श्वास व सुरति को बाहर से हटाकर अन्तर त्रिकुटी में चढ़ाओ वहीं उज्ज्वल मूर्ति विराजमान है।

अबिहड़ शरीर में ऐसे व्याप रहा है जैसे फूलों के अन्दर गन्ध। वह सुबास नेत्रों से नहीं देखी जा सकती। नासिका द्वारा ही उसका अनुभव किया जा सकता है। जिस प्रकार केले के वृक्ष में स्वाति नक्षत्र की बूँद पड़ने से जब उसमें मुशक् काफूर उत्पन्न हो जाता है तब उस काफूर के प्रभाव से केले के सब पत्ते टहनियाँ सब ओर से संकुचित होकर ऊपर को इकट्ठे हो जाते हैं। बस इसी प्रकार अपने मन एवं इन्द्रियों को संकुचित करके परमात्मा अबिहड़ के ध्यान में प्राणों के सहित लीन कर दो।

वह अबिहड़ अनादि काल से सबके भीतर व बाहर व्यापक है। न उसका कोई आकार है और नाहीं उसमें भार है और उसका तोल व मोल कुछ नहीं किया जा सकता। परमात्मा के स्वरूप में अबिहड़ की ही आरती करनी चाहिए और उसी का ही ध्यान धरना चाहिए। अबिहड़ ही साक्षात् शुद्ध ब्रह्म है यही अक्षय पद प्रमाणों द्वारा कहा जाता है।

अबिहड़ की व्यापकता के विषय में सद्‌गुरु जी कई दृष्टान्तों द्वारा इस प्रकार कथन करते हैं। चन्द्रमा व सूर्य के प्रकाश में वह ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे वृक्ष की छाया जब चन्द्रमा व सूर्य अस्त हो जायें तब अबिहड़ भी छाया की भाँति शरीर में ही स्थिर रहता है, उसके निवास के लिये कोई मन्दिर वह महल नहीं है, न उसका स्थूल शरीर है न सूक्ष्म है और न कारण है। इन तीनों शरीरों से रहित है और सदा ही एक रस रहता

है। बाल युवा और वृद्ध यह अवस्थाएँ उसमें नहीं हैं। यह स्थूल शरीर तो जन्म व मरणशील है। वह शून्य (आकाश) की नांईं व्यापक है जैसे बादलों में पानी छिपा रहता है ऐसे ही इस शरीर में अबिहड़ (आत्मा) छिपा हुआ है।

पहले जो अबिहड़ के लक्षण वर्णन किये, और उसके अंगों का भी वर्णन किया और बाद में उसको व्यापक व शुद्ध ब्रह्म बताया गया। इससे साधारण जिज्ञासुओं को संशय हो सकता है। उस संशय की निवृत्ति इन शब्दों द्वारा की जाती है कि सद्‌गुरु जी का भाव यह है कि स्थूल से स्थूल बुद्धि वाला पुरुष भी उनके उपदेश से लाभ प्राप्त कर सके। इस उद्देश्य को लेकर सद्‌गुरु जी ने यह सुगम उपाय बताया है। स्थूल बुद्धि के लिये स्थूल ही पदार्थ चाहिए और जो जिज्ञासु साधन में प्रवृत्त होता है उसको पहले-पहल यदि कुछ दृष्टि गोचर न हो तो वह घबराकर साधन से हट जाता है। जब जिज्ञासु को सद्‌गुरु जी के बताये हुए अबिहड़ के लक्षण दृष्टि गोचर होंगे तब उसके मन में आगे बढ़ने की इच्छा होगी। इससे आगे महाराज जी ने सिद्धियों को प्राप्त होने का वर्णन किया है। इस लोभ से जिज्ञासु और आगे बढ़ेगा जब उसे सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं तो फिर उससे भी महान् कल्याण स्वरूप आत्मा की प्राप्ति इसी साधन द्वारा बताई एवं अबिहड़ की उपासना ही परमात्मा रूप से करनी बतलाई है। जिससे कि जिज्ञासु सिद्धियों में ही न रुका रहे। अपने लक्ष्य में पहुँच सके वही ढंग महाराज जी ने अपनाया है। आपने अनेक मार्ग जिज्ञासुओं के कल्याण के लिए कथन किये हैं। किसी भी साधन द्वारा जिज्ञासु को उस आत्मतत्व की प्राप्ति हो जाये। यह अबिहड़ की कुछ साखियाँ यहाँ लिख दी गई हैं जिस पाठक को अधिक जानने की इच्छा हो वह महाराज जी के श्री ग्रन्थ साहिब में अबिहड़ के अंग में देख लें। इसी बात को शिवसंहिता में शंकर जी ने पार्वती को विस्तारपूर्वक कहा है। यहाँ तक वर्णन किया गया है कि किसी शुभ कार्य के आरम्भ करने में पहिले अबिहड़ के दर्शन कर लिये जायें तो वह कार्य सफल होगा। इसी प्रकार सद्‌गुरु जी ने भी लिखा है—

गरीब अबिहड़ तो बिहड़ै नहीं, बिहड़ जात है खोड़।
अबिहड़ का दीदार कर, रहे बहुर नहीं लोड़॥

कि यह शरीर तो नष्ट हो जाता है परन्तु अबिहड़ (आत्मा) का कभी नाश नहीं होता। अबिहड़ का दर्शन हो जाने से इच्छाओं की समाप्ति हो जाती है। फिर किसी प्रकार की कोई आवश्यकता नहीं रहती। आवश्यकता तो उस पदार्थ की हो जो इस अबिहड़ से कोई पदार्थ उत्तम हो। इसके आगे तो सभी पदार्थ फीके पड़ जाते हैं जैसे कि किसी व्यक्ति को अमृत की प्राप्ति हो जाये तो फिर क्या वह तुच्छ पदार्थों की इच्छा करेगा? अर्थात् नहीं करेगा। इसी प्रकार अबिहड़ के दर्शन हो जाने के पश्चात् कोई कर्त्तव्य नहीं रह जाता।

यहाँ तक अबिहड़ के ध्यान का विषय कहा गया और ध्यान करने वालों की स्थिति भी कही गई और कुछ महात्माजन उस समय वाणी का पाठ सुरीले और उच्च स्वर में किया करते थे। कुछ परमात्मा के नाम को हर समय रटते रहते थे। भगवान् से हर समय प्रेम किया करते थे। अपना जो निज स्वरूप आत्मा है हर समय उसी में मग्न रहते थे। इस प्रकार से अपने जीवन को सद्गुरु जी की शरण रहते हुए सुख से व्यतीत करने लगे।

अबिहड़ उपासना को शिव संहिता में प्रतीकोपासना के नाम से कहा है।

प्रतीकोपासना कार्या दृष्टादृष्टफलप्रदा।

पुनातिदर्शनादत्र नात्र कार्या विचारणा॥१॥

प्रतीक उपासना से दृष्टादृष्ट फल लाभ होता है और उसके दर्शन से मनुष्य पवित्र होता है। इसमें संशय नहीं है॥१॥

गाढ़ातपे स्वप्रतिबिम्बितेश्वरं निरीक्ष्य विस्फारित लोचनद्वयम्।

यदा नभःपश्यति स्वप्रतीकं नभोऽङ्गणे तत्क्षणमेव पश्यति॥२॥

गाढ़ धूप में अपनी छाया पर दोनों नेत्रों को जमाकर अपनी छाया शून्य रूप में देख पड़े तो ऊपर आकाश में अपना प्रतिबिम्ब अवश्य दिखेगा॥२॥

प्रत्यहं पश्यते यो वै स्वप्रतीकं नभोऽङ्गणे।

आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य न मृत्युः स्यात् कदाचन॥३॥

जो मनुष्य नित्यप्रति आकाश में स्वप्रतिबिम्ब को देखेगा वह आयु वृद्धि को प्राप्त करेगा। उसकी मृत्यु कभी न होगी अर्थात् वह चिरञ्जीव हो जायेगा॥३॥

यदा पश्यति सम्पूर्ण स्वप्रतीकं नभोऽङ्गणे।

तदा जयं सभायांच युद्धे निर्जित्य सञ्चरेत्॥४॥

जब सम्पूर्ण अपना प्रतिबिम्ब आकाश में देखता है। तब सभा में उसकी जय होगी। युद्ध में शत्रु को जीत लेगा॥४॥

यः करोति सदाभ्यासं चात्मानं विन्दते परम्।

पूर्णानन्दैकपुरुषं स्वप्रतीकप्रसादतः॥५॥

जो पुरुष सदा स्वप्रतीक उपासना का अभ्यास करेगा उसको स्वआत्मा की प्राप्ति होगी। और इसी स्वप्रतीक के प्रसाद से पूर्णानन्द स्वरूप स्वआत्मा का दर्शन होगा। अर्थात् अपने आत्मस्वरूप को देखकर परमज्योति के दर्शन करेगा॥५॥

यात्राकाले विवाहे च शुभे कर्मणि सङ्कटे।

पापक्षये पुण्यवृद्धौ प्रतीकोपासनं चरेत्॥६॥

यात्राकाल में विवाहकाल में और पुण्यवृद्धि में अपने प्रतिबिम्ब का दर्शन करे तो सदा कल्याण होगा॥६॥

निरन्तरकृताभ्यासादन्तरे पश्यति ध्रुवम्।

तदा मुक्तिमवाप्नोति योगी नियतमानसः॥७॥

सर्वदा प्रतीकोपासना के अभ्यास से निश्चय ही अपने हृदयाकाश में अपने प्रतिबिम्ब का भान होता है और निश्चय आत्मा वाला योगी मुक्ति प्राप्त करता है॥७॥

तत्तेजो दृश्यते येन क्षणमांत्र निराकुलम्।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥८॥

आत्मा का यह परम तेज जो पुरुष स्थिर चित्त हो के क्षण मात्र भी देखेगा वह सब पाप से मुक्त होके परमगति को प्राप्त होगा॥८॥

निरन्तर कृताभ्यासाद्योगी विगतकल्मषः।

सर्वदेहादि विस्मृत्य तदभिन्नः स्वयंगतः॥९॥

निरन्तर जो योगी शुद्ध चित्त होके यह प्रतीकोपासना का अभ्यास करेगा, वह सब देहादि कर्मों से रहित होकर आत्मा से अभिन्न हो जायेगा अर्थात् आत्मस्वरूप हो जायेगा॥९॥

यः करोति सदाभ्यासं गुप्ताचारेण मानवः।

स वै ब्रह्मविलीनः स्यात् पापकर्मरतोयदि॥१०॥

जो मनुष्य गुप्ताचार से इसका सर्वदा अभ्यास करता है सो यदि पाप कर्म रत भी हो तथा उसका मोक्ष निश्चित होगा। इसमें सन्देह नहीं॥१०॥

गोपनीयः प्रयत्नेन सद्यः प्रत्ययकारकः।

निर्वाणदायको लोके योगोऽयं ममवल्लभः॥

नादः संजायते तस्य क्रमेणाभ्यासतश्च्य यः॥११॥

जो इसका अभ्यास करेगा उसको क्रम से नाद उत्पन्न होगा, हे देवि! यह प्रतीकोपासना निर्वाणयोग का दाता है। इस हेतु से हम को अतिप्रिय है यह शीघ्र फल दाता है इसको प्रयत्न से गोप्य रखना उचित है॥११॥

श्री आचार्य जी का यह सिद्धान्त कि अबिहड़ के ध्यान से परम सिद्धि प्राप्त होती है। शिवसंहिता के प्रमाण से पुष्ट हो गया है। इस प्रकार यह प्रमाणित योगाङ्ग अर्थात् योग का विषय योगियों का गुप्त रहस्य है। श्री योगीराज जगद्गुरु जी के इस गुप्त रहस्य को जो कि साधारण लोगों के सामने प्रकट करने का नहीं है तो भी जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को जानकर यहाँ इस ग्रन्थ में प्रकाशित कर रहे हैं। क्योंकि सद्गुरु जी का जीवन परिचय भी एक गुप्त रहस्य है। जिसको हम इस ग्रन्थ में प्रकाशित कर रहे हैं। तो भी यह ध्यान का विषय समान रूप से यहाँ दिया है। पूरा ज्ञान तो सद्गुरु एवं सन्तों द्वारा ही हो सकता है।

॥ ढाई ग्राम क्यों नहीं मानते॥

एक बार श्री १००८ श्रीमज्जगद्गुरु श्री गरीबाचार्य जी महाराज जी से कुछ सेवकों ने प्रार्थना पूर्वक पूछा कि गुरुदेव जी आपका अवतार कलियुग

के जीवों के उद्धार करने के निमित्त ही हुआ है। आपने अनन्त जीवों का उद्धार किया भी है। बहुत दूर-दूर तक देश-देशान्तरों से आपके अमृतमय सदुपदेश को श्रवण कर लाभ उठाने के लिये लोग आते हैं। वे सभी श्रद्धा पूर्वक आपका उपदेश सुनते हैं तथा लाभ उठाते हैं। परन्तु ये ढाई ग्राम (दुलहेड़ा, खेड़का तथा आधा ग्राम छुड़ानी आपसे विमुख क्यों हैं। इनके ऐसे क्या पाप हैं जिनके कारण ये समीप होते हुए भी नहीं आते हैं। अतः आप हमारे पर अति कृपा करके इनके यहाँ न आने के कारण को बताएँ?

इस प्रकार उनकी विनीत प्रार्थना सुनकर श्री महाराज जी बोले कि—ये लोग हमारे पूर्व जन्म के द्वेषी हैं। उसी द्वेष के संस्कार इनके हृदय में अब तक हैं। अतः ये सब लोग यहाँ उपदेश श्रवण करने नहीं आते हैं।

ऐसा श्री सद्गुरु जी का उत्तर सुनकर सभी भक्तों ने आश्चर्य पूर्वक पूछा कि महाराज जी ये पूर्व जन्म में किस प्रदेश में थे जहाँ इन्होंने आपसे द्वेष किया आप वहाँ किस रूप में थे?

श्री महाराज जी बोले—जब हम श्री कबीर जी के रूप में काशी जी में थे तब ये ढाई ग्राम के लोग काशी के काजी और पण्डे थे। उसी द्वेष के कारण ये लोग यहाँ आए हैं। ये सब वहाँ भी हमसे बहुत विरोध किया करते थे। सो उसी विरोध को पूरा करने के लिये ये लोग यहाँ भी आ पहुँचे हैं। वह पुराना विरोध ही इनको यहाँ उपदेश स्थान में आने नहीं देता। इस वार्ता से यह सिद्ध हो गया कि श्री आचार्य देव जी पूर्वकाल में कबीर नाम से काशी में अवतरित हुए थे जिसको हम ग्रन्थ के आदि में सिद्ध कर चुके हैं। श्री महाराज जी स्वयं भी अपनी अमृतमय वाणी में इस प्रकार सिद्ध करते हैं—

अमर करूँ सत लोक पठाऊँ। तातैं वन्दी छोड़ कहाऊँ॥१॥

हमही सत पुरुष दरवानी, मेटूं उत्पत्ति आवन जानी।

शंख जुगन का लेखा ल्याऊँ, अवगति हुकुम अदलि पैठाऊँ॥२॥

जो कोई कह्या हमारा मानैं, सार शब्द कुँ निश्चय आनैं।

हमहीं शब्द शब्द की खानी, हम अविगति अदली द्रवानी॥३॥

हमरै अनहद बाजे बाजैं, हमरे किये सबै कुछ साजैं।
हमहीं दिल दरिया हैं भाई, हमहीं बून्द सिन्धु घर छाई॥४॥
हमहीं लहर तरङ्ग उठावैं, हमहीं प्रगट हम छिपि जावें।
हमहीं गुप्त गहर गम्भीरा, हमहीं अविगति हमैं कबीरा॥५॥

इस प्रकार श्री महाराज जी के इन शब्दों से उनका पूर्व काल में कबीर जी के रूप में अवतार धारण करना सिद्ध हो जाता है। उन्होंने तो ऊपर की वाणी में सर्व रूप से स्वात्मा को प्रकट किया है। तथा अपने सामर्थ्य को "कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तु" कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता के रूप में प्रकट किया है। जैसे श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को अपना सामर्थ्य (विराट स्वरूप) दिखाया था। उसी प्रकार श्री महाराज जी ने अपने सामर्थ्य को भक्तों के सामने संक्षेप से वर्णन किया।

॥ सुजान डाकू को उपदेश॥

एक समय सद्गुरु महाराज आचार्य गरीबदास जी कहीं से आ रहे थे अपनी घोड़ी पर सवार होकर तथा उनके साथ कुछ सेवक भी थे। रास्ते में भटगाँव का डाकू सुजान सिंह अपने दल बल सहित सामने से आ रहा था उसने देखा कि ये कोई घोड़ी वाला बड़ा आदमी दीखता है क्योंकि उस समय किसी गणमान्य व्यक्ति के पास ही घोड़ी होती थी। इसलिए सद्गुरु जी को कोई बड़ा साहूकार समझ कर उसने दूर से ललकारा कि वहीं पर रुक जाओ जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे उतार कर एक तरफ हट जाओ परन्तु सद्गुरु जी तो निरभै थे, उनके मन में किसी भी प्रकार का भय उत्पन्न नहीं हुआ तथा वे चलते रहे। सिक्खों के नौंवे गुरु तेग बहादुर जी ने नौवें मोहल्ले में लिखा है कि–

भय काहू को देत नहीं, न भय मानत आन।
कह नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान॥

आचार्य जी स्वयं भी अपने मुखारबिंद से कहते हैं कि–

दास गरीब अभय पद परसे, मिलै राम अविनाशी।

इसके अनुसार सद्गुरु जी निर्भयतापूर्वक चलते रहे। सुजान डाकू ने

दोबारा फिर चेतावनी दी कि ठहरो, सद्गुरु जी फिर भी नहीं रूके। तीसरी बार चेतावनी दी सद्गुरु जी के न रुकने पर उसने तीन गोलियाँ चलाई परन्तु सद्गुरु जी ने उन तीनों गोलियों को अपने हाथ में पकड़ लिया यह देखकर सुजान डाकू आश्चर्य चकित हो कर अपने साथियों से कहने लगा कि मेरा निशाना कभी चूकता नहीं यह क्या कारण है कि मेरी गोली ने कोई भी असर नहीं किया। यह ज्यूँ के त्यूँ घोड़ी पर बैठे चलते जा रहे हैं और वह ऐसा कहते हुए सद्गुरु जी के समीप पहुँच गया। उसको परेशान देखकर सद्गुरु जी ने कहा हे सुजान तुम इतने चिंतित क्यों हो। निशानची तो तुम पूरे हो इसमें कोई सन्देह नहीं क्योंकि तुम्हारी बन्दूक से निकली हुई गोलियाँ सही निशाने पर आईं और व्यर्थ नहीं गईं, यह रहीं आपकी तीनों गोलियाँ यह कह सद्गुरु जी ने तीनों गोलियाँ उसके हाथ में दे दी। यह चमत्कारमय घटना देख कर और सद्गुरु जी के दर्शन कर सुजान सिंह डाकू का मन बदल गया अर्थात् शुद्ध हो गया। वह सद्गुरु जी से पूछने लगा कि आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं तथा कहाँ जाना है? मेरी यह गोलियाँ आपने अपने हाथ में कैसे पकड़ लीं। मैं तो आज तक कभी भी अपने निशाने से नहीं चूका। यह आज पहला अवसर है कि मैं धोखा खा गया। और मेरे शरीर में इतना बल है कि मैं बिना गोली के भी कई-कई आदमियों को मार सकता हूँ परन्तु इतना बल होते हुए भी मैं कुछ भी न कर पाया। मेरे पास इतने बली तथा शूरवीर साथी हैं यह भी न जाने कैसे स्थिर हो गये। इनसे भी कुछ न हो पाया। यह तो देखते ही देखते बड़े-बड़े दलों को लूट लेते हैं, ऐसा कह कर सुजान सिंह दस्यु (डाकू) आपके चरणों में रोता हुआ गिर गया। और अनेक प्रकार से क्षमा याचना करने लगा कि महाराज आप कोई सिद्ध योगी संत पुरुष हैं या फिर आप स्वयं परमात्मा ही एक मानव शरीर में आये हैं इसलिए मैं आपके श्री चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे दुष्कर्म छुटाकर मुझे अपने शरण में लेकर कल्याण का भागी बनाएँ। उसकी ऐसी दीन प्रार्थना सुन कर सद्गुरु जी हँस पड़े और कहने लगे हे हंस हम तेरे ही कल्याण निमित्त इस मार्ग से आये हैं। इस प्रकार से सुजान को सांत्वना देते हुए सद्गुरु जी ने निम्नलिखित दो शब्द 'राग वियोग' के सुनाये–

सुनियो संत सुजान गरब नहीं करना रे॥ टेक॥
चार दिनों की चेहर वनी है आखिर को तूं मरना रे।
तूं जो कहे मेरी ऐसे ही निभैगी हरदम लेखा भरना रे।
खा ले पी ले बिलस ले हन्सा, जोड़ गोड़ नहीं धरना रे।
दास गरीब सकल में साहिब, नही किसी से अरना रे।
सुनियों सन्त सुजान, दिया हम हेलारे ॥ टेक॥
और जन्म बहुतेरे होंगे, मानुष जन्म दुहेला रे।
तूं जो कहे मैं लश्कर जोडूं, चलना तुझे अकेला रे।
अरब खरब लग माया जोड़ी, संग न चलसी धेला रे।
यह तो मेरी सत की नवरिया, सतगुरु पार पहेला रे।
दास गरीब कहें भाई साधो, शब्द गुरु चित्त चेला रे।

इन शब्दों के द्वारा सद्गुरु जी ने सुजान को समझाया कि व्यक्ति को व्यर्थ का गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि इस संसार में चार दिन का खेल हैं आखिरकार तो यहाँ से हर व्यक्ति को जाना है चाहे वह कितना बली हो कितना बुद्धिमान हो। आप यह सोचते हो कि मेरी इसी प्रकार निभ जायेगी या मैं इसी प्रकार बना रहूँगा, नहीं ऐसा नहीं होता। एक-एक स्वास का हिसाब-किताब धर्मराज के यहाँ देना पड़ता है। यहाँ तो व्यक्ति को हर समय अपनी मृत्यु को याद रखते हुए शुभ कर्म करने चाहिएँ जिससे व्यक्ति का जीवन सुधर जाये तथा वह कल्याण का भागी बने। अपनी सत् की कमाई द्वारा एकत्र की गई सम्पत्ति को स्वयं खाये और दूसरों को खिलाए तथा उनका भला करे। ऐसा नहीं कि दूसरों के गले काट-काट कर सम्पत्ति जुटा कर ज़मीन में रख दे इससे भला होने वाला नहीं है क्योंकि परमात्मा सब जीवों में विराजमान हैं इसलिए किसी का बुरा मत करो तथा व्यर्थ किसी से न अड़ो। यह सुन कर सुजान डाकू ने कहा कि महाराज इतना बली मानव शरीर मुझे मिला है और मेरे साथ शूरवीरों का लश्कर है तथा मेरे पास धन सम्पत्ति भी बहुत है। ऐसी स्थिति में आप मुझे बताएँ कि मैं क्या करूँ? जिससे मेरा कल्याण हो तो सद्गुरु जी ने दूसरा शब्द सुजान को सुनाया। हे संत सुजान हम तुझें चेतावनी देते

हैं कि मानव जन्म बार-बार नहीं मिलता। जब जीव के पूर्व जन्मों के पुण्य कर्म एकत्र होते हैं तब इस जीव को मानव शरीर मिलता है और जन्म तो कर्मानुसार मिलते ही रहते हैं परन्तु मानुष जन्म दुर्लभ है यथा–

मानुष जन्म दुर्लभ है, तूं मत जाने देह।
जो समझे तो समझ ले, खलक पलक में खेह॥

तूं तो समझता है कि मैं इसी प्रकार से इस संसार में बना रहूँगा, और ये मेरे साथी भी मेरे साथ बने रहेंगे परन्तु ऐसा नहीं है, वहाँ यमराज के दरबार में तो अकेला ही जाना पड़ेगा कोई साथी साथ नहीं देगा। वहाँ पर इस जीव को अपने शुभाशुभ कर्मों का फल, सुख व दुःख अकेले ही भोगना पड़ेगा। और जो तू यह सोच रहा है कि मेरे पास बहुत धन-दौलत है इसके द्वारा मैं कुछ भी करूँ कोई मुझे टोकने वाला नहीं है मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ। परन्तु यदि आपने इस पाप कर्म से कमाई हुई सम्पत्ति का सद्प्रयोग नहीं किया तो यह सम्पत्ति भी आपको नर्क-कुंड में डालेगी और यहीं पड़ी रह जायेगी तथा साथ में एक धेला भी नहीं जायेगा। यदि तू मेरी उपरोक्त कही हुई बातों का ध्यान से पालन करेगा तो मेरे उपदेश रूपी सत् की नौका पर तुझे बिठा कर सद्गुरु महाराज तुझे संसार-सागर से पार उतार देंगे। सद्गुरु जी कहते हैं कि भाई मेरे उपदेश का पालन करो और इसकी साधना करो और अपने मन को चेला बनाकर मेरे शब्द रूपी उपदेश को गुरु समझो तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा।

इतना उपदेश सुनकर सुजान सिंह ने अपने दल बल सहित सद्गुरु जी से क्षमा याचना मांगी और अपनी शरण में लेने के लिए प्रार्थना की। सत्गुरु जी तो दयालु हैं कृपालु हैं वह जीव के मन के भावों को तत्क्षण परख लेते हैं यथा–

गरीब दिव्य दृष्टि देवा दयाल, सतगुरु संत सुजान।
त्रिलोकी के जीव कुँ, परख लेत परवान॥

सद्गुरु जी ने उसके मन के भावानुसार परखा और उसे गुरु मंत्र रूपी उपदेश दे कर कल्याण मार्ग में प्रवृत्त कर दिया और वह शांति पूर्वक घर-बार छोड़ कर सद्गुरु जी की शरण में रहने लगा।

॥ श्री महाराज जी का अन्तर्ध्यान होना॥

आचार्य श्री जगद्गुरु जी ने अपने जीवन काल में अपने अमृतमय उपदेश द्वारा अनन्ततों ही जीवों का कल्याण किया जिस प्रकार से कोई भी जीव समझे उसी प्रकार उसको समझाने का प्रयत्न किया। किसी को अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा किसी को अपने उपदेश द्वारा अनेकों जीवों को पाप कर्मों से हटाकर कल्याण मार्ग पर लगाया। जिस निमित्त को लेकर आपने अवतार धारण किया था इस कार्य को पूरा करके आपने वि०सं० १८३५ के फाल्गुन सुदी द्वादशी को यहाँ (छुड़ानी धाम) से अपने इस मायिक शरीर को लोप करके जाने का विचार किया यह विचार करके सब शिष्यों तथा सेवकों को पहले ही सूचित कर दिया था। यह समाचार सुनकर सब शिष्य तथा सेवक अपने-अपने स्थान पर आकर एकत्रित हो गए। और इन्होंने परस्पर विचार किया कि महाराज जी से प्रार्थना करनी चाहिए कि अभी कुछ समय तक हमें और दर्शन दें। यह निश्चय करके सद्गुरु जी से प्रार्थना करने के लिए मुख्य-मुख्य शिष्यों को आगे करके सद्गुरु जी से करबद्ध प्रार्थना की कि गुरुदेव? हम सबकी यह प्रार्थना स्वीकार करें कि हम आपके दर्शन अभी और चाहते हैं। बारम्बार यही प्रार्थना करते रहे। यह सुनकर आचार्य जी ने कहा कि हमने तुम लोगों को अपने उपदेश द्वारा सर्वगुण सम्पन्न बना दिया है और हमारे उस उपदेश को भूलना नहीं वही तुम्हारा कल्याण करेगा। हमारे शब्द को गुरु बनाकर अपने चित्त को चेला बनाओ। तुमलोग इस शरीर को ही गुरु न मानो। सद्गुरु तो वह वस्तु है जो न अग्नि में जलती है न शस्त्र से कटती है और न वायु से शोषण होती है। वही है तुम्हारा शुद्ध ब्रह्म स्वरूप और शरीर तो किसी का भी स्थिर नहीं रहता है। यथा–

साखी- गरीब कृष्ण कन्हैया राम कुं, जीव कहैं करतार।
पिंड परया भगवान का, इनकुं देख विचार॥१॥
गरीब देह पड़ी तो क्या हुआ, झूठी सबै पटीट।
पंछी उडया अकाश कुं, चलता कर गया बीठ॥२॥

गरीब देही कुं सतगुरु कहें, यह सब दुंदर ग्यान।
चार दाग आया नहीं, जिसको सतगुरु जान॥३॥

इस प्रकार आपने अपने शिष्यों को समझाया परन्तु शिष्यों ने फिर उसी प्रकार प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी कि सद्गुरुदेव जी कुछ समय तक अवश्य ही हमें आप दर्शन देवें।

शिष्यों का प्रेममय हठ देखकर महाराज जी ने कहा कि तुम कितने दिन और दर्शन चाहते हो। यह सुनकर उन लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता में प्रफुल्लित होकर यह भी ज्ञान न रहा कि हम क्या माँग रहे हैं। इस प्रकार कहा कि सद्गुरुदेव जी? भाद्र पद (भादों मास) सुदी द्वितीया तक आप दर्शन देवें आपने कहा कि तथास्तु। ६ मास बाद सब सन्त एवं गृहस्थ भक्तजन दूर-दूर से आकर एकत्रित हो गए। वि०सं० १८३५ भाद्र सुदी द्वितिया सोमवार के दिन आप अपना मायिक शरीर त्यागने के लिए अपने आसन पर विराजमान हो गये। उस समय सम्पूर्ण सन्त समाज एवं गृहस्थ समाज में शोक छाया हुआ था। यह देखकर आपने अपने मुखारविन्द से अनेक शिक्षायें दीं कि यह दिन तो सब पर अवश्य ही आना है और आपने सन्त कबीर जी का यह पद कहा है कि–

हम सैलानी सद्गुरु भेजे, सैल करन को आये जी ॥टेक॥
ना हम जन्में ना हम मरना, शब्दै शब्द समाये जी।
हमरे मरयां कोई न रोयो, जो रोये पछताए जी।
हँसों कारण देह धरी हम, सो परलोक पठाए जी।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, अजर अमर घर पाए जी जैसे श्री कृष्ण जी भी कहते हैं–

न जायेते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥अर्थात् हे अर्जुन? यह आत्मा न जन्मता है, न मरता है, और नफिर भूतकाल में होकर फिर कभी होने वाला है, क्योंकि यह आत्मा अज है, नित्य है, शाश्वत और पुराण है, शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह आत्मा स्वयं नष्ट नहीं होता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यान्यानि संयाति नवानि देही॥

हे अर्जुन? यह शरीर तो ऐसा है कि जिस प्रकार मनुष्य इन जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों का परित्याग करके नवीन वस्त्रों को धारण कर लेता है उसी प्रकार यह आत्मा भी अपने को जिस शरीर के द्वारा कर्मों के फल को भोगने में असमर्थ समझता है उस जीर्ण-शीर्ण शरीर का परित्याग कर नवीन शरीर को धारण कर लेता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

इस आत्मा को न शस्त्रों के द्वारा छेदन किया जा सकता है, और न अग्नि के द्वारा जलाया जा सकता है, न जल के द्वारा सड़ाया एवं गलाया ही जा सकता है, और न वायु के द्वारा इसको सुखाया ही जा सकता है क्यों कि यह अज है नित्य है एवं शाश्वत है और शरीर नाशवान है। जैसे कि सद्गुरु जी कह रहे हैं—

जो जनमया सो आया मरन को, जो चिन्या सो ढ़हना रे।

आया है सो जायेगा रे, मत कोई करो गुमान।

पानी कैसा बुदबुदा यौह तेरा, अनुमान पियारे॥

जो आया है वह अवश्य जायेगा। जो बना है वह बिगड़ेगा जो पैदा हुआ है वह मरेगा। यह सब प्रकृति के नियम हैं उनका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जब हम प्रगट हुए हैं तो लुप्त भी होना अनिवार्य है। इसलिए तुम सब लोग हर समय परमात्मा के चरणों में अपने मन को रखो और अभिमान क्रोध आदि को दूर करते हुए अन्त समय को हर समय याद रखो। यह न समझो कि हमारी इसी प्रकार निभ जायेगी उसी समय आपने राग-वियोग के दो शब्द उच्चारण किये जिनसे महान शिक्षा मिलती है।

राग वियोग॥१॥

सुनियों सन्त सुजान, गर्व नहीं करना रे।टेक॥

चार दिनों की चेहर बनी है, आखिर को तूं मरना रे।

तूं जो कहे मेरी ऐसे ही निभैगी, हरदम लेखा भरना रे।

खा ले पी ले विलसले हंसा, जोड़-जोड़ नहीं धरना रे।

दास गरीब सकल में साहिब, नहीं किसी से अरना रे।

राग वियोग॥२॥

सुनियों सन्त सुजान दिया हम हेला रे।टेक॥

और जन्म बहुतेरे होंगे, मानुष्य जन्म दुहेला रे।

तूं जो कहें मैं लश्कर जोडूं, चलना तुझे अकेला रे।

अरब खरब लग माया जोड़ी, संग न चलसी धेला रे।

यह तो मेरी सत की नवरिया, सतगुरु पार पहेला रे।

दास गरीब कहे भाई साधो, शब्द गुरु चित्त चेला रे।

इस प्रकार आपने सन्तों एवं सेवकों को अन्त समय अनेक उपदेश एवं धैर्य देकर अनेक शक्तियों का प्रदर्शन कराते हुए श्री महाराज जी समाधि लगाकर योगियों की तरह इस शरीर से अलग हो गये। सन्तों और सेवकों ने शरीर को शून्य देखा लोक रीति के अनुसार अन्त्येष्ठि क्रिया धूम-धाम से की गई। दाह संस्कार के पश्चात् जब आप के शरीर की अस्थियाँ चुनने लगे तो उस राख के अन्दर एक भी अस्थी का टुकड़ा नहीं मिला केवल राख ही राख थी। इससे सिद्ध हो गया कि आप का शरीर पाँच भौतिक नहीं था। केवल लोक मर्यादा को स्थापित करने के लिए आपने अपनी योग माया के द्वारा सब लोगों के सामने यह शरीर छोड़ा। इस वार्ता का उल्लेख ग्रन्थ के आरम्भ में ही किया जा चुका है।

दोहा— बाजीगर के आंब ज्यूं, सतगुरु धार्यो गात।

मात गर्भ से न भये, न पुनि ताका पात॥

(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

इस सिद्धान्त के अनुसार ही आप का प्रगट होना और लुप्त होना एक खेलमात्र है। वास्तव में आप सर्वत्र ही विराजमान रहते हैं। यदि आपका शरीर भी अन्य योगी या पाँचभौतिक शरीर धारियों की तरह होता तो उसमें अस्थियाँ होतीं। परन्तु यह तो पहले ही राम-राय के प्रकरण से सिद्ध हो चुका है कि आप का शरीर बन्धन में नहीं आया था इसलिए पाँच भौतिक नहीं था। फिर आप जीवों का कल्याण करने के लिए समय-समय पर शरीर धारण करते रहते हैं। जिसका वर्णन आगे विस्तार से होगा कि यहाँ से पश्चात् आप कहाँ-कहाँ प्रगट हुए।

॥ श्री गरीबाचार्य जी की (बिन्दी) सन्तति॥

श्री गरीबाचार्य महाराज से दो धारायें नादी और बिन्दी प्रचलित हुई नादी (उपदेश) का वर्णन पीछे हो चुका है। अब बिन्दी (गृहस्थ परम्परा) का वर्णन इस प्रकार है। आचार्य श्री जी के पाँच सुपुत्र और दो सुपुत्रियाँ थीं। पांचों सुपुत्रों के नाम श्री जैतराम जी, श्री तुरतीराम जी, यह दोनों एक साथ उत्पन्न हुए, (जुणवां) इनमें भी श्री जैतराम जी को पहले होने के कारण ज्येष्ठ माना जाता है। श्री अंगदराय जी, श्री आसेराम जी, श्री ज्ञान सिंह। सुपुत्रियाँ एक का नाम दिलकौर, और दूसरी का ज्ञानकौर था, महाराज की दोनों सुपुत्रियों ने ब्रह्मचर्य का पालन जीवन पर्यन्त किया।

आचार्य श्री सद्गुरु गरीब दास महाराज से दो धाराएँ नादि और बिन्दी प्रचलित हुईं।

१. नादि (शिष्य परम्परा) का वर्णन पीछे हो चुका है।
२. बिन्दी (वंश परम्परा) का वर्णन इस प्रकार है–
   सद्गुरु गरीब दास जी महाराज के घर में पाँच पुत्र व दो पुत्रियाँ। पाँचों पुत्रों के नाम :

१. श्री जैत राम जी
२. श्री तुरती राम जी (यह दोनों एक साथ्ष उत्पन्न हुए(जुड़वां)
३. अंगद राय
४. श्री आशे राम
५. श्री ज्ञान सिंह

सुपुत्रियाँ– १. दिल कौर
२. ज्ञान कौर

इन दोनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए साधु जीवन व्यतीत किया। गृहस्थ में प्रवृत्त नहीं हुईं। लड़कों में श्री ज्ञान सिंह बिना शादी के छोटी आयु में ही गुजर गये। और जैत राम जी पहले शादी शुदा हो कर गृहस्थ में रहे बाद में वह संत बने और गरीब दासियों में उन्होंने नई परम्परा स्थापित की कि वह नागा रहे तथा धूनी तापते रहे। महाराज जी के पश्चात उनकी गद्दी पर विक्रमी समवंत १८३५ से १८७४ तक तुरती राम जी विराजमान रहे। उनके पश्चात वि.स. १८७४ सें १८८७ तक श्री मंहत दानी राम जी रहे। श्री दानी राम जी के बाद विक्रमी स. १८८६ से १९३० तक श्री सलौंत राम (शीलवंत राम) रहे। तथा इनके बाद श्री शिवदयाल जी वि.स. १९३० से १९६४ तक रहे।

यहाँ तक पिता से पुत्र को गद्दी मिलती रही सन् १८८२ ई.स. को श्री महंत शिवदयाल के साथ कुछ गरीबादासी भेष के प्रमुख सन्तों महन्तों ने कुछ नियम निश्चित किए। गद्दी के उत्तराधिकारि शादीशुदा नहीं हो सकते और उसी दिन से और भी कुछ नियम रखे जो श्री महंत पर लागू किए गये। यह नियम और गद्दी की उत्तरोत्तर परम्परा के लिए लिखित पंजीकृत तमलीकनामा (सम्पत्ति समर्पण) और ई.सन् १८९३ को दौबारा फिर नियम पंजीकृत किये गए जो वसीयत नामे के रूप में है। ई. सन् १८८२ से यह गद्दी गरीब दासी भेष के अधिकार में दी गई और १८९३ वाली वसीयत में कुल सम्पत्ति छतरी साहब और गरीबदासी भेष के अधिकार में दी गई। यह दोनों तम लीक नामा तथा वसीयत जो उर्दू भाषा में लिखी हुई मेरे पास (स्वामी भगत राम जी के पास) सुरक्षित हैं उसका हिन्दी अनुवाद करके सद्गुरु व चनामृत नामक पुस्तक में प्रकाशित है। विशेष देखना हो तो उस पुस्तक में देख सकते हैं।

सन् १८८२ तक गृहस्थ में अपने गृहस्थ धर्म का परित्याग कर दिया और वह विरक्त जीवन यापन करने लगे। उन्होंने ई. सन् १८९३ में गरीब दासी भेष की इच्छानुसार एक लड़का श्री रिसालदास सुपुत्र श्री संतोष राम को अपना शिष्य बना लिया और भेष की सलाह से अपना उत्तराधिकारी

नियुक्त कर दिया और उसके लिए यह तीन नियम बना दिए कि श्री रिसाल दास (जिसका नाम आगे चलकर श्री महंत राम कृष्ण दास रखा गया)। शादीशुदा नही रहेगा व विरक्त त्यागी रहेगा। २. वह सच्चरित्रवान ३. कोई भी छतरी संबन्धी बड़ा कार्य बिना सम्पूर्ण भेष के सम्मिलित किए श्री महंत स्वयं अपनी इच्छा से नहीं कर सकेगा। उसमें लिखा है (वसीयत सन् ई. १८९३) कि यदि श्री महंत इन तीनों नियमों में से किसी एक का भी उल्लंघन करता है तो उस परिस्थिति में गरीबदासी भेष को अधिकार है कि वह उसे श्री महंत गद्दी से उतार दे और उसकी जगह जिसको योग्य समझे उसे श्री महंत बना दे। आगे चलकर श्री रिसाल दास को शिवदयाल जी के बाद वि.स. १८६४ को गद्दी का श्री महंत बनाने के लिए भेष ने उसका नाम राम कृष्ण दास रखा और गद्दी नशीन कर दिया। श्री रामकृष्ण दास ४३ वर्ष की आयु तक अविवाहित श्री महंत रहे। इस अवधि मे श्री महंत के संबंध गरीब दासी भेष के साथ बिगड़ गये अर्थात् मतभेद हो गया भेष के प्रमुख महात्माओं ने श्री महंत से संबन्ध विच्छेद कर लिया। यहाँ से गद्दी की परम्परा व्यवस्था फिर खराब हो गई।

एक समय सद्गुरु श्री गरीबदास जी ने अपने उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय करने का निश्चय करके जगत्माता श्रीमती मोहिनी जी से पूछा कि हमारा उत्तराधिकारी कौन होना चाहिये। तब श्रीमती मोहिनी जी ने कहा कि श्री तुरतीराम जी को गद्दी नशीन बनाया जाये। यह सुन कर श्री महाराज जी ने कहा कि अधिकार जैतराम जी का है क्योंकि साधू है। यदि हमने तुरतीराम जी को अपना स्थानापन्न कर दिया तो कहीं जैतराम जी के मन में कोई विक्षेप न हो, माता जी ने कहा कि जैतराम को मैं समझा दूँगी वह कुछ नहीं कहेगा। तत्पश्चात् माता जी ने जैतराम जी से कहा कि बेटा! मैं तेरे को एक बात कहती हूँ यदि तूँ मान ले, यह सुनकर जैतराम जी ने उत्तर दिया कि माताजी ऐसा संसार में कौन-सा कार्य है जिसके लिये आपकी आज्ञा न मानूँ। जो पुत्र अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता वह पुत्र नहीं है केवल माता के यौवनरूपी बन को नाश करने के लिये कुल्हाड़ा है। ऐसे पुत्रों को तो न होना ही अच्छा है। माता-पिता और गुरुकी आज्ञा का पालन तो बिना ही विचारे करने

योग्य है। जैसे भगवान् राम ने भी तो कैकई से कहा था--

'सुनु जननी सोई सुत बड़भागी, जो पितुमातु वचन अनुरागी।
तनय मातु-पितु तोषनिहारा, दुर्लभ जननी सकल संसारा॥

इसलिये आप निःसंकोच होकर आज्ञा दें। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह माने या न माने, आपकी आज्ञा मानने के लिये आपका पुत्र प्रस्तुत है। तब माता जी ने कहा कि मैं चाहती हूँ की श्री महन्ती एवं गद्दी तुरतीराम जी को दी जाये, क्योंकि तू तो साधू है तुझे तो बाहर प्रदेश में ही भ्रमण करना है। इसलिये गद्दी तुरतीराम के लिये छोड़ दे। यह सुनकर जैतराम जी बड़े प्रसन्न हुए और माता जी से कहा कि यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है क्योंकि हमारा छोटा भाई तुरतीराम गद्दी पर बैठेगा। इससे बढ़कर हमें और क्या प्रसन्नता होगी। तत्पश्चात् श्री महाराज जी ने सम्पूर्ण साधू शिष्यों व सेवकों को बुलाकर सबके परामर्श से श्री तुरतीराम जी को ही श्री महन्ती का तिलक कर दिया।

आपका स्मारक चिह्न आपके प्रिय सेवकों की प्रेरणा से श्री तुरतीराम जी ने श्री छुड़ानी धाम में बनाया। और जिसका गुम्बज बहुत ऊँचा एवं दर्शनीय है। जिसकी परिक्रमा में किसी अच्छे चित्रकार द्वारा चित्रकारी करवाई है। तुरतीराम जी बहुत उच्चकोटि के शक्तिशाली व्यक्ति थे। इनके पश्चात् श्री महन्त दानीरामजी आचार्य गद्दी पर विराजमान हुए। दानीरामजी के पश्चात् श्री शीलवन्त राम हुए। इनके पश्चात् श्री महन्त शिवदयाल जी गद्दी पर विराजमान हुए। श्री शिव दयालजी ने अपना चेला उत्तराधिकारी (श्रीमहन्त) श्री रामकृष्णदासजी को बनाया। और श्री शिवदयाल जी ने श्री आचार्य देवजी की छत्री साहिब में शुद्ध घी की ज्योति जलाने का कार्य प्रारम्भ किया। जो अखण्ड हवन की तरह ज्योतिर्मय हवन है। क्योंकि शास्त्रों में ज्योति को ही परमात्म स्वरूप माना है। वह परमात्मा अखण्ड है। उस छत्री की ज्योति को कभी खण्डित नहीं होने देते हैं। श्री रामकृष्णदास जी ने आचार्य गद्दी की श्री महन्ती श्री गंगासागर जी को दी इसके पश्चात् गंगा सागर ने तथाकथित वर्तमान श्री महन्त दया सागर को बनाया जो कि वर्तमान काल में श्री आचार्य गद्दी पर विराजमान हैं।

आपके स्मारक (छतरी साहब) का निर्माण आपके परम् प्रिय सेवक बंजारों ने श्री महंत तुरती राम जी की देख रेख में छुड़ानी धाम में करवाया। जिसका गुम्बज बहुत ऊँचा है एवं दर्शनीय है। उसकी परिक्रमा में किसी अच्छे चित्रकार द्वारा चित्रकारी की गई है। आचार्य गद्दी की पाँचवी पीढ़ी के श्री महंत शिवदयाल जी को किसी कत्ल केस में सजा हो गई थी वह हिसार जेल में बंद थे। आचार्य गरीबदासी सम्प्रदाय के एक संत जिनका नाम सन्त दास जी था यह सुनकर कि श्री महंत जेल में बंद है उनके पास हिसार जेल में गये और जा कर मिले। श्री महंत जी से कहा कि आप सद्गुरु जी के नाम की अखंड ज्योति छतरी साहब में प्रज्जवलित करने का संकल्प करो जिससे आप यहाँ से मुक्त हो जायेंगे। यह सुन कर श्री महंत जी ने कहा महाराज मैं तो सारी आयु के लिए अखंड ज्योति प्रज्जवलित कर दूंगा यदि मैं यहां से छूट जाऊँ। महात्मा जी ने कहा कि आप अपील करो। श्री महंत ने लाहौर हाई कोर्ट में अपील की और सजा मुक्त हो गये। छुड़ानी धाम में आ कर उन्होंने अखंड ज्योति जला कर यह अखंड कार्य आरम्भ किया जो आज तक अखंड चल रहा है। छतरी साहब के विषय में शेष जानकारी इसी ग्रंथ में आगे दी जायेगी।

॥ सद्गुरु जी की योग शक्ति॥

वास्तव में सद्गुरु गरीब दास जी महाराज अखंड ब्रह्मचर्य पालन के समर्थक थे। उन्होंने अपने अनुभ्व की वाणी के द्वारा सिद्ध किया है कि मानव शरीर धारी संत को स्त्री संभोग से रहित रहना चाहिए। वह काम वासना युक्त स्त्री व पुरुष की खुले शब्दों में आलोचना करते हैं। और वीर्य की रक्षा को महत्त्व देते हैं, ब्रह्मचर्य पालन को बहुत बड़ा धर्म मानते हैं। स्वपन में वीर्य-पतन को पाप कथन करते हैं। यथा–

"सुपने बिंद गया रे नागा, फिट तेरा करम-धरम बैरागा"

इस प्रकार यदि साधु संत का स्वपन में भी वीर्य-पात हो जाये, उसके धर्म,कर्म को महाराज धिक्कार देते हैं और स्त्री-संसर्ग के विषय में भी वह निष्पक्ष हो कर कहते हैं

'गरीब क्या आपनी क्या और की, सब ही एकै नार

पारस पूंजी जात है, खिसता बिंद संभार"

गरीब आवत मुख नहीं देखिये, जाती की नही पीठ।

क्या आपनी क्या और की, सब ही नार अंगीठ॥

सद्गुरु जी महाराज जी अपने सिद्धान्त को निर्पक्ष और निरभीक हो कर खुले शब्दों में कहतेहैं कि–

गरीब बोलूंगा निरपक्ष होय, जो चाहे सो कीन्ह।

क्या आपनी क्या और की सबही नारि मलीन॥

क्या आपनी क्या और की, सबकी एकै जोय

गरीब बोलूंगा निरपक्ष होये, जो चाहे सो होये।

घर-घर दीपक जलत है, सब की एकै लोये॥

इस प्रकार से सद्गुरु जी ने ब्रह्मचर्य के पालन के लिए कामी नर के अंग में एक सौ पैंतालीस साखियाँ उदृत की हैं। जिसमें कामी पुरुषों और कामी स्त्रियों की कटु शब्दों में निंदा की है और इससे विपरीत सच्चरित्र वान् पुरुषों एवं सच्चस्त्रिवान् पुरुषों की प्रशंसा की है। यहाँ पर संकेत मात्र कुछ अंश दिए गये हैं विशेष सद्गुरु जी के ग्रंथ में कामी नर के अंग में देखें। और महाराज स्वयं अपने मुखारविन्द से अपने को ब्रह्मचार्य बताते हैं। यथा- दास गरीब कहें ब्रह्मचारी। और भी अनेकानेक ग्रन्थों में इसकी पुष्टि होती है कि बिना स्त्री संभोग के भी सृष्टि (या बच्चे) पैदा होते हैं। जैसे कि दृष्टि से, संकल्प से (ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचना के समय सबसे पहले सनक, सनन्दन, सन्त कुमार और सनातन आदि तथा नारद जी और भी बहुत से पुत्रों को मन के संकल्प से उत्पन्न किया। और श्रीमद् भागवत् पुराण में सृष्टि रचना प्रकरण में बिना स्त्री संभोग के बहुत सारे मुनियों-ऋषियों को अपने संकल्प से उत्पन्न किया। और ब्रज सूचकों उपनिषद् में भी विशिष्ट आदि ऋषियों की उत्पत्ति के प्रकरण को खूब विस्तार से लिखा गया है कि किसकी उत्पत्ति कैसे हुई है विशेष देखना चाहें तो वहां देख लें। सारांश यह है कि सद्गुरु महाराज ब्रह्मचर्य के

समर्थक थे इसलिए कुछ संत महात्माओं का सुझाव था कि इस विषय पर कुछ लिखा जाये क्योंकि सद्गुरु महाराज ने स्त्री-संभोग का निषेद्य किया है इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सद्गुरु जी ने विवाहित होने पर भी स्त्री-संसर्ग नहीं किया। एक प्रश्न उठता है कि उनकी संतान कैसे पैदा हुई? इसका समाधान यह है कि हमारे भारतीय इतिहास में अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं कि बिना पुरुष संसर्ग के स्त्रियों के बच्चे हुए हैं जैसे दृष्टि से, संकल्प से, मंत्र आदि से बच्चे होते देखे गये हैं। और औषधि सेवन से भी बच्चे होते रहे हैं।

इसी प्रकार हमारे आचार्य सिद्ध योगी सद्गुरु गरीब दास जी महाराज भी अपनी दृष्टि से अपनी धर्म पत्नी को संतुष्ट करने के लिए अपनी दृष्टि से बच्चे पैदा किए। इससे लेश मात्र भी संदेह की जगह नहीं है।

सद्गुरु जी अपनी बाणी के अंदर परिवार की परिभाषा लिखते हैं कि मेरा परिवार कौन है और कैसा है? आप विकृताई के अंग में कथन करते हैं यथा–

गरीब हंस दशा जहां मनुष्य हैं, ज्ञान विवेक विचार।
सद्गुरु भाष्या समझ ले, यौह हमरा परिवार॥
गरीब क्षमा शील जिस नगर में, सत् सुकृत संतोष।
चल हंसा तिस भूमि बस, जीवत मुक्ता मोख॥

सद्गुरु जी ने परिवार की परिभाषा एक ही साखी में कर दी कि हमारा परिवार कौन सा है तथा मेरे परिवार को कहाँ और कैसे रहना चाहिए। इस प्रकार से महाराज जी ने अपने सिद्धांत का रहस्य बता कर अपने को निर्लेप और अखंड ब्रह्मचर्य धारण करने वाला सिद्ध किया। यथा–

मन मगन भया सो ब्रह्मचारी (टेक)
यौह मन अकल अजीत जितिया, दमन करि पाँचों नारी[१] ॥१॥

---

१. पांचों ज्ञान इन्द्रियाँ।

दुरमति का तो देवल ढ़ाया, पकर लई मनसा दारी[२]॥
चित्त के अंदर चौपड़ खैले, जहाँ फिरती है सौला[३] सारी
जाकी नरद[४] पक्की घर आवै, गर्म बास में ना जारी॥४॥
जूनी संकट मोच होत हैं, उतर गये भौ जल पारी॥५॥
दोहूं दीन षट दर्शन त्यागे-ऐसी ही धारन धारी॥६॥
झिलमिल नैना अनहद बैना-लाग रही उनमन तारी॥७॥
योह जग निंदया बिंद्या कर है, कहीं अस्तुति कहीं दे गारी॥८॥
गरीब दास दीदार दरस कर, फगवा खेलन की बारी ॥९॥

॥ महाराज जी की पुरुषोत्तमता का वर्णन॥

ऐसा देखने में आता है कि प्रत्येक साधु-महात्मा एवं सिद्ध महापुरुषों के जीवन में कुछ अद्‌भुत ही विलक्षण लोकोत्तर चमत्कार होता है। अब यह बात दूसरी है कि उनके अनुयायी शिष्य लोगों द्वारा अपने गुरु लोगों की प्रतिष्ठा एवं यश को बढ़ाने की दृष्टि से कुछ और भी नमक-मिरच उसमें मिलाकर एक समूहालम्बन के रूप में नयी रचना अथवा कल्पना भी वहाँ खड़ी कर दी जाती है।

(१) परन्तु जगद्‌गुरु के रूप में अवतरित होने वाले श्री आचार्य देव श्री गरीबदास जी महाराज तो स्वयं ही अवतारी एवं सिद्ध महापुरुष तथा मुक्त योगी थे। इनके विषय में जो कुछ भी कहा जाय वह वास्तविक ही कल्पना मानी जायगी न कि काल्पनिक घटना उसे कहा जायेगा।

भगवान रामचन्द्र जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते थे महाराजजी भी उसी प्रकार पुरुषोत्तम पुरुष थे। कारण कि इनके अन्दर भी उसी प्रकार उत्तम पुरुषों के समस्त लक्षण मौजूद थे और इन्हीं उत्तम लक्षणों के आधार पर सर्वज्ञता-निर्लिप्तता-निर्विकारिता-अवतारिता आदि का अनुमान हुआ करता है। नीति में बतलाया है कि–

---

२. स्त्री को अपमान जनक शब्द कहना।
३. चौपड की गोटियां।
४. चौण्ड के खेल में कच्ची-पक्की नरद होती है।

"नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात्"

अर्थात बिना पूछे किसी से कुछ कहना नहीं चाहिए, बल्कि जब दूसरा कोई पूछे तो तभी कहना चाहिये। हाँ यदि कोई व्यक्ति किसी अज्ञानरूपी अन्धकार में पड़कर किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहा है, अर्थात् उसे उस कार्य को पूरा करने के लिये कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा है तो उत्तम पुरुष का कर्त्तव्य वहाँ हो जाता है कि उसे बिना पूछे ही रास्ता बतला देना चाहिये। रास्ता ही नहीं बतला देना चाहिये बल्कि उस कार्य को संपन्न करने में जहाँ तक भी वह बढ़ सके वहाँ तक उसे बढ़ा देना चाहिये ॥१॥

(२) लौकिक बातों को लेकर विशेष वाद-विवाद नहीं करना चाहिये, कारण कि उनका परिणाम आखीर में खराब भी हो सकता है। हाँ शास्त्रीयवाद-विवाद ठीक है क्योंकि शास्त्रीयवाद-विवाद से तो अन्त में उस शास्त्रीय विषय का निष्कर्ष ही निकलता है।

"वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः।"

अर्थात् बराबर वाद करते रहने पर उस वस्तु का वास्तविक स्वरूप सामने आकर खड़ा हो जाता है॥२॥

(३) एवं मनमें किसी भी प्रकार का किसी भी व्यक्ति से कपट नहीं रखना चाहिये, कारण कि मन को यह कपट कलुषित (मलिन) कर देता है और कलुषित मन उस व्यक्ति को नीचे गिरा देता है॥३॥

(४) किसी भी कार्य को संपन्न करने के लिये अपनी मर्यादा का भी ध्यान रखना आवश्यक होना चाहिये।

(५) चोर से कभी भी उसका नाम अथवा उसका पता नहीं पूछना चाहिये क्योंकि उससे वह रुष्ट होकर कुछ अनिष्ठ या अनुचित कर सकता है।

इन सब उत्तम पुरुषों के लक्षण से श्री महाराज जी सुसम्पन्न युक्तयोगी थे तथा इन्हीं का वे स्वयं उपदेश भी किया करते थे। इन्हीं उत्तम लक्षणों के आधार पर महाराज जी पुरुषोत्तम कहलाते थे।

और उत्तम पुरुषों की रचना एवं उनकी कल्पना तथा और भी जो उनके कार्य हैं वे सब लोकोत्तर अद्भुत एवं विलक्षण ही देखने में आते हैं

और वे सब उनकी रचनाएँ तथा कल्पनाएँ संसार को सब कुछ देने के लिये होती हैं, जिनसे संसार एवं सांसारिक लोगों का महान् कल्याण तथा उपकार हुआ करता है। यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो हम यह शत-प्रतिशत कह सकते हैं कि जितने भी ये शास्त्र हैं-इतिहास हैं-पुराण हैं-वेद-वेदांग हैं ये सिद्ध एवं महात्मा लोगों की वाणियाँ ही तो हैं, ये ही ग्रन्थ हैं, ये ही कोष हैं, ये ही विश्वकोष हैं, ये ही इस लोक और परलोक के पावनभूत अच्छे अच्छे ग्रंथ रत्न हैं जैसे-- श्री आचार्य जी का ही ग्रन्थ साहिब, गुरु नानक जी का ग्रन्थ साहिब, श्री कबीर जी का बीजक और भी इस प्रकार आधुनिक तथा प्राचीन ऋषि प्रणीत बहुत संस्कृत तथा हिन्दी में मिलते हैं।

"श्री गरीबाचार्य जी का राजस्थान तथा सहारनपुर में प्रादुर्भाव

श्री जगद्गुरु गरीबाचार्य जी के परम भक्त भूँमड भक्त सहारनपुर से आपके दर्शन के लिये एक मास में एक बार श्री छुड़ानी धाम में आया करते थे। आपके चरणो में इनका अति अनुराग (प्रेम) था। इसलिए यह (भूँमड़) भक्त आपके दर्शन किये बिना नहीं रह सकता था। भक्त का प्रेम देख करके आपने कहा कि भक्त जी आप यहाँ आने का इतना कष्ट क्यों उठाते हो, वहीं पर बैठकर ध्यान में हमारे दर्शन कर लिया करो। क्योंकि तुमको मार्ग में ही अधिक समय व्यतीत करना पड़ता है, यह सुनकर भक्त जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि इन नेत्रों से आपके पवित्र दर्शन किये बिना मेरे हृदय में शान्ति नहीं होती है। मेरा मन तो यही चाहता है कि मैं हर समय आपके चरणकमलों में रह कर अपने जीवन को सफल बनाऊँ। परन्तु कुछ परिवारिक कार्यों के कारण एवं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर जाना पड़ता है यदि आप आज्ञा दें तो मैं सम्पूर्ण झंझटों का त्याग करके हर समय आपकी सेवा में ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करूँ पर आपके दर्शन किये बिना मैं नहीं रह सकता। भक्त के इतना दृढ-प्रेम के वशीभूत होकर महाराज श्री ने इस प्रकार कहा कि अब तुम यहाँ आने का प्रयत्न न करना हम स्वयं ही तुम्हारे पास (सहारनपुर) ही आ जायेंगे। इस

प्रकार से भक्त को विश्वास दिलाया। इससे कुछ ही समय पश्चात् अपने अपने कथनानुसार लोकाचार की रीति को अपनाकर मायिक शरीर का परित्याग करके राजस्थान के किसी जंगल में प्रगट हुए। उसी समय जयपुर तथा जोधपुर के दोनों नरेश (राजा) शिकार खेलने के लिये जंगल में गये। वहाँ पर आपको साधु रूपमें देखकर दण्डवत प्रणाम किया तत्पश्चात् दोनों राजाओं ने आपके तेजस्वी रूप के दर्शन करके अनुमान लगाया कि यह तो कोई उच्चकोटि के महान योगी एवं साक्षात् शुद्ध सच्चिदानन्द पारब्रह्म परमेश्वर का अवतार हैं। यह निश्चय कर दोनों राजा महाराज जी के समीप बैठ गये तब आपसे दोनों राजाओं ने अनेक प्रकार से प्रार्थना की कि भगवन् हम राजा लोगों के कल्याण का मार्ग बताइये। यह सुन महाराज जी ने अनेक प्रकार के सदुपदेश देकर कहा कि यदि राजा अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन-पोषण नहीं करता और अन्याय से प्रजा का शोषण करता है तो वह अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है क्योंकि राजसुख पूर्वजन्म के तप से ही प्राप्त होता है। जैसे–आपने अपनी अमृतमयी बानी में वर्णन किया है।

तप से राज राज से तेजं, पाट पटम्बर भोगे सेजं।

तप से राज राज मध मानं, जन्म तीसरे सूकर स्वानं॥

श्री महाराज जी ने राजाओं से कहा कि अगर आप दोनों धर्म का परित्याग करोगे तथा ईश्वर-चिन्तन से विमुख रहोगे तो नाना प्रकार के नरकों में दुःख भोग कर कूकर सूकर आदि नीच योनियों को प्राप्त हो जाओगे। यह समस्त महापुरुषों का कथन है एवं शास्त्रों का सिद्धान्त है। यह सुनकर दोनों राजाओं ने शिष्य बनने के लिये प्रार्थना की कि हमें ईश्वराधना करने की विधि सहित अपना शिष्य बनाओ तथा गुरु-दीक्षा देकर हमारा कल्याण कीजिये। तब आपने परीक्षा लेने के लिए यह वचन कहा कि हमारे को तीन वस्तुएँ गुरु-दक्षिणा रूप में दे दो तब हम शिष्य बनायेंगे–

प्रथम –अपने-अपने राज्य का आधा भाग हमें संकल्प कर दो।

द्वितीय–अपनी एक-एक कन्या का विवाह हमारे साथ करो।

तृतीय–हमारी भूख की पूर्णरूप से निवृत्ति कर दो।

यह सुनकर दोनों राजाओं ने कहा कि भगवन् आधा राज्य एवं एक कन्या क्या हम अपना सम्पूर्ण राज्य तथा सब कन्याएँ एवं तन-मन-धन आपकी सेवा में दे सकते हैं परन्तु आपको भोजन द्वारा तृप्त नहीं कर सकते। क्योंकि आप परमेश्वर के उदर में अनेक ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं। हम तुच्छ जीव आपके विशाल उदर को उस भोजन द्वारा कैसे भर सकते हैं। यह सुन जगद्गुरु अत्यन्त प्रसन्न होकर दोनों राजाओं को ईश्वर-चिन्तन की विधि बताकर अन्तर्ध्यान हो गये।

इस प्रकार महाराज जी का अन्तरध्यान होना देखकर दोनों नरेशों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि यह महापुरुष तो साक्षात् ईश्वर का अवतार ही थे। हम अपनी अज्ञानता के कारण भलीभाँति न पहचान सके। तदुप्रान्त उन दोनो के हृदय में श्री आचार्य जी के प्रति अत्यन्त अनुराग प्रगट हो गया एवं दोनों नरेश महाराज जी के बताये उपदेशानुसार नित्यप्रति विधिपूर्वक भजन एवं आपकी पवित्र वाणी का मनन करते हुए अपने जीवन को सफल करने लगे, उदाहरण- ऐसा सुना जाता है कि जोधपुर दयाराम बिल्डिंग के पास रघुनाथ मन्दिर में श्री गरीबाचार्य जी की पवित्र वाणी (ग्रन्थ साहिब) का पाठ अब भी होता है। इससे सिद्ध है कि श्री महाराज के प्रति इन लोगों की श्रद्धा अब भी चली आ रही है।

तदन्तर (उसके बाद) आचार्य श्री महाराज गरीबदास जी सहारनपुर प्रगट होकर अपने भगत भूँमड़ के पास पहुंच गये। आप के पवित्र-दर्शन पाकर भक्त अत्यंत सुखी एवं प्रसन्नता को प्राप्त हुआ। जैसे जन्मांध पुरुष को नेत्र तथा धन-हीन व्यक्ति को अगाध धन-राशि प्राप्त हो जाने से प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती है। आपके निवास के लिये उस भक्त ने नगर (शहर) के काफी दूर पूर्व दिशा में अपने खेत में सुन्दर प्रबन्ध किया हुआ था। वहाँ पर ही आपको ठहराया गया क्योंकि वह एकान्त स्थान था। यह ज़मीन या पेड़ आदिक कोई अच्छी वस्तु उत्पन्न करने योग्य नहीं थी। आपने भक्त से पूछा कि तुम यहाँ कैसे निर्वाह करते हो क्योंकि इस भूमि में विशेष कास ही कास (घास-विशेष) दिखाई दे

रहा है। तब भक्त ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि गुरुदेव अभी तक तो इस पृथ्वी में कुछ उत्पन्न होता नहीं था किन्तु अब आपके पवित्र चरणकमल इस अपवित्र भूमि में पड़ने से सब कुछ होने लगेगा।

जैसे भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी के दण्डक बन में चरण पड़ने से वह हरा-भरा हो गया था। श्री तुलसीदास जी ने कहा है–

जबते राम कीन्हं तहँ वासा। सुखी भये मुनि बीता त्रासा॥
गिरि बन नदी ताल छबिछाए। दिनदिन प्रति अति होहिं सुहाए॥

भक्त का अत्यन्त दृढ़ विश्वास देखकर उसकी भावना को पूरी करने के लिए श्री महाराज जी ने कहा कि तुम अपने इस सम्पूर्ण खेत में बगीचा लगाना प्रारम्भ कर दो। आपकी आज्ञानुसार ही बगीचा लगाया गया। वह बगीचा कुछ ही दिनों में हरा भरा हो अत्यन्त स्वादिष्ट फल देने लगा। इस प्रकार और लोगों ने आपकी विचित्र महिमा को देखकर आपसे प्रार्थना की कि महाराज जी हमारे ऊपर भी आप कृपा करें तो हमारी भूमि भी कृषि योग्य हो जावे। उन सब लोगों की प्रार्थना सुनकर आपने कहा कि अब यह पृथ्वी सब दोषों से रहित हो गई है। अतः इसमें जो कुछ बोया जावेगा सो सब पैदा होगा। अब तुम इसमें बाग लगाओ। श्री महाराज जी के मुखारविन्द से यह शुभ वचन सुनकर बहुत लोगों ने अपनी-अपनी भूमियों में बगीचे लगाये। तथा कुछ ही दिनों में वहाँ की सब भूमि बगीचों से हरी भरी हो गई तथा सब स्थानों में बगीचों में आम्र के वृक्षों पर बैठी हुई कोकिलों के शब्दों से तथा भ्रमरों की गुञ्जार से सब स्थान शब्दायमान हो गये। तब आप वहाँ पर बहुत समय तक रहे। आप सब लोगों को सदुपदेश देते थे। आप का उपदेश श्रवण करने के लिये हिन्दू मुसलमान सभी आते थे। तथा आप के मुखारविन्द से उपदेश अमृत का पान कर बहुत से लोग कृतार्थ हुए। आप के सदुपदेश को सुनने वाले लोगों के वंश गत बहुत से लोग अब तक आप को जगद्‌गुरु सद्‌गुरु के रूप में मानते हैं। और आपकी वाणी का पाठ कराते हैं और बड़े आदर एवं श्रद्धा से श्रवण करते हैं। यहाँ तक कि जहाँ पर श्री जगद्‌गुरु श्री गरीबाचार्य जी के शिष्य अधिक रहते थे। उस मुहल्ले का नाम भी गरीबा मुहल्ला पड़ गया और

महाराज के नाम से एक सराय भी प्रसिद्ध है। जिसका नाम गरीबा सराय है। आपके समय में ही बाबा दयालदास जी (वैष्णव) नाम के एक सिद्ध महात्मा यहाँ रहा करते थे। वे सदा ही स्वात्म दर्शन करके तृप्त रहते थे। एवं भजन में ही अधिक से अधिक समय लगाते थे। इनका प्रतिदिन का नियम था कि प्रातःकाल ही गंगा जी में स्नान करने के लिये हरिद्वार अपनी सिद्धि द्वारा उड़कर जाया करते थे। स्नान करके फिर सहारनपुर ही आकर दिन भर भजन में लीन रहा करते थे। जब आप को श्री जगद्‌गुरु जी का पता लगा कि जगद्‌गुरु गरीबाचार्य जी महाराज यहाँ आए हुए हैं। तो आप गंगा स्नान के बाद श्री जगद्‌गुरु जी के पास में वार्ता करने जाया करते थे। एक दिन श्री सद्‌गुरु देव जी ने बाबा दयालदास जी से पूछा कि आप प्रातःकाल में प्रतिदिन कहाँ जाते हैं। तब बाबा सिद्ध जी ने कहा कि महाराज जी मैं गंगा स्नान करने हरिद्वार जाया करता हूँ। तब श्री सद्‌गुरुदेव जी बोले कि आप प्रतिदिन इतनी दूर क्यों जाते हैं गंगा जी तो सर्वत्र ही हैं। तब बाबा सिद्ध जी बोले महाराज यहाँ पर गंगा जी कैसे आ सकती हैं। तब श्री गुरुजी महाराज बोले कि सिद्ध जी आप जब स्नान करके वापिस आयेंगे तो अपनी हाथ की छड़ी से एक लकीर निकालते आना गंगा जी आप के पीछे-पीछे यहाँ ही आ जावेंगी। तथा आप प्रतिदिन हरिद्वार न जाकर यहाँ ही स्नान कर लिया करना। श्री बाबा सिद्ध जी श्री सतगुरुजी जी के वचनों को सुनकर अगले दिन स्नान करके वापिस चलते समय अपनी हाथ की छड़ी से एक लकीर निकालते गये। जब सहारनपुर पहुँचे तो देखा कि जहाँ-जहाँ से लकीर खैंची थी वहाँ पर गंगा जी की धारा बह रही है। जो कि अब भी सिद्ध जी की समाधि के पास से बहती है। जो कि एक नदी के रूप में है। उस पर पक्के घाट बने हुए हैं। तथा लोक स्नान भी करते हैं।

आप पैंतीस (३५) वर्ष तक सहारनपुर में अपनी अनन्त शक्ति द्वारा सहारनपुर वासियों को प्रभावित करते रहे और जातिवाद का भेदभाव आपके हृदय में नहीं था। आप हिन्दू, मुसलमान आदि सब जाति वालों को एक दृष्टि से देखते हुए एक जैसा ही उपदेश देते थे। यह तो आपकी पवित्र वाणी का पाठ करने से स्पष्ट हो जाता है कि आप समद्रष्टा एवं

सब को एक दृष्टि से देखते थे। यथा–

गरीब राम रहीमा एक है, अलह अलेख सबनूर।
सब घट गैवी गन्ध है, गऊ भखो भावें सूर॥

इस प्रकार आप अपनी अमृतमय बानी का उपदेश देकर सभी जातियों को जीवहिंसा से वर्जित करते थे। क्योंकि आप अहिंसा को मुख्य धर्म मानते थे। आपके शिष्य मुसलमान सहारनपुर में बहुत थे। इस प्रकार की अनेक लीलाएँ करते हुए अपने शरीर का यहाँ से परित्याग किया तत्पश्चात् उसी बगीचे में आपकी समाधि तथा छत्री बनाई गई। वह आपकी वाटिका जो भक्त ने आपके नाम पर ही कर दी थी। आपके बाद (उस भूँमड़ भक्त) आपके शिष्य के अधीन ही रही।

कुछ दिनों के उपरान्त भूमड़ भक्त के दोनों बैल मर गए तब भक्त ने विचार किया कि बिना बैलों के बगीचे को पानी कैसे देगें क्योंकि बिना पानी के सब पेड़ सूख जायेंगे। यह विचार करके बगीचे को बेचने का मन में संकल्प किया। जब भूमड़ भक्त ने ऐसी इच्छा की तब उसी रात में गोसांई श्री गरीबदास जी ने स्वप्न अवस्था में भूमड़ भक्त से कहा कि तुम वाटिका को बेचने का संकल्प क्यों करते हो कम से कम जब तक तेरा यह शरीर रहे तब तक इसकी रक्षा करना तेरा परम कर्तव्य है। भक्त ने उत्तर दिया कि गुरुदेव आप सर्वज्ञ हैं और मेरी स्थिति आपको ज्ञात है कि मैं नये बैल मोल नहीं ले सकता क्योंकि आप के पहले दोनों बैल मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं। यह सुन सत्गुरु जी ने उत्तर दिया कि आज से पाँचवें दिन अमुक सराय में तुमको एक जोड़ी बैल प्राप्त होंगे। जब तुम बैल लेने के लिए सराय में जाओगे वह बैलों का स्वामी यदि तुमसे कोई चिन्ह माँगे तो तुम कहना कि हम इनकी आरती उतार कर लेवेंगे।

तदनन्तर भूमड़ भक्त ने प्रातःकाल अपने साथी एवं सत्संगियों को अपना स्वप्न सुनाया। सबने निश्चयपूर्वक कहा कि सद्गुरु जी ने आपसे स्वप्न में जो कुछ भी कहा है वह सत्य होकर ही रहेगा। भूमड़ भक्त अन्य प्रेमियों के सहित निश्चित स्थान पर गया वहाँ पहुँच कर देखा कि एक मुसलमान लुंगी पहने एक जोड़ी नागौरी बैल लिये खड़ा है। भूँमड़

भक्त ने उसके समीप जाकर कहा कि यह बैलों की जोड़ी आप मुझे दे दो तब वह मुसलमान बोला यह जोड़ी तुम कैसे लेना चाहते हो। पहले मुझे कोई चिन्ह बताओ तब भक्त ने उत्तर दिया कि मैं इनकी आरती उतार कर लूँगा, और आरती उतारना भी आरम्भ कर दी। तब मुसलमान ने भक्त को बैलों की जोड़ी दे दी और सब लोगों के देखते-देखते वह मुसलमान वहीं अदृश्य (लुप्त) हो गया। उसके लुप्त हो जाने के पश्चात् सब लोगों ने परस्पर विचार किया कि हमने बड़ी भूल की है कि हम लोगों ने किसी बात का भी निर्णय नहीं किया कि वह कौन था और कहाँ से आया था कहाँ चला गया। तथा किसने यह बैल भेजे थे कहाँ से लाया था यह सब बातें उसके अन्तर्ध्यान हो जाने के पश्चात् स्मरण हुई। सब भक्तों के मन में अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ कि वह तो साक्षात सद्गुरु जी ही थे हम अपनी अज्ञानता के कारण उन को पहचान न सके। भूमड़ बैलों तथा प्रेमी भक्तों के सहित अपने बगीचे में आ गया।

॥ शेख बली का वृत्तान्त॥

शेख बली नामक कलाल, सहारनपुर निवासी था। वह मक्के का हज करने के लिए आप से आज्ञा लेकर गया था। उसके जाने के बाद ही आपने अपने शरीर का परित्याग कर दिया। जब शेखवली मक्के का हज करके वापिस बम्बई में जल जहाज से उतरा वहाँ उसने श्री महाराज को भ्रमण करते हुए देखकर उनके समीप गया और सलाम एवं बन्दगी की और पूछा कि महाराज पीर साहब आप सहारनपुर से यहाँ कैसे चले आये। आपने कहा कि हम फकीरों (साधुओं) का काम ही देश-देशान्तर में घूमना है। तत्पश्चात् शेख बली जब सहारनपुर आ गया वहाँ पर परस्पर महाराज जी के विषय में चर्चा हो रही थी इतने में शेख बली खाँ इन भक्तों की गोष्ठी में आया। एक भक्त ने शेख जी से कहा कि महाराज जी तो तुम्हारे मक्के चले जाने के पश्चात शरीर का परित्याग कर गये। यह आज से तीन वर्ष पहले की बात है। जब शेख ने यह सुना तब वह हँस कर कहने लगा कि आप महाराज जी के विषय में ऐसी बात क्यों कह रहे हो। क्योंकि मैंने उनको मक्के से लौटते समय बम्बई में देखा है तथा उनसे

वार्तालाप भी हुई। गोसांई जी के उसी अवस्था और उसी नाम से मुझे उनके दर्शन हुए। यह वार्ता सत्य है। यह सुनकर लोगों को बड़ा हर्ष हुआ कि सद्गुरु जी तो अजर अमर हैं उनका कोई आदि अन्त नहीं है।

जब आप सहारनपुर से अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात् आपकी समाधी (स्मारक) बनाकर वह भूमड़ भक्त वहाँ की सेवा करता रहा। इसी प्रकार कुछ समय तक तो इस बगीचे और समाधि की रक्षा आपके भक्तों द्वारा होती रही। कुछ समय बीत जाने पर माली से वह बगीचा किसी सेठ ने धोखे से कागज पर लिखवा कर अंगूठा लगवा लिया क्योंकि वह अनपढ़ था। फिर उस सेठ ने माली की मृत्यु के पश्चात् आगे एक सुनार को बेच दिया। वह सारा बगीचा प्रबन्धकों के प्रबन्ध न कर सकने के कारण नष्ट भ्रष्ट हो गया। पुनः दिवानी दावा से महाराज जी की समाधि तथा कुछ जमीन छुड़ाई गई। इसी छत्तरी से संबन्धित एक स्थान है जिसको कबीरचौरा कहते हैं। वह पुरानी अनाज मण्डी (सहारनपुर) में ही है उसमें आपका निवारि-पलंग (शय्या) सुचारु रूप से अभी भी बिछा हुआ है। जिसकी नित्यप्रति भक्त जन दोनों समय (प्रातः सायं) पूजा आदि करते हैं। और आपके ग्रन्थ साहिब का प्रकाश-नित्यप्रति पाठ होता है। आपके चरण-कमलों की चरण पादुका (पऊवे) और बाँसुरी होरी खेलने की पिचकारी वैरागन आदि सामान सुव्यवस्थित रूप से रखा है। और बसन्तपंचमी के दिन प्रतिवर्ष बहुत भारी उत्सव मनाया जाता है इसी स्थान से इस दिन धूमधाम के साथ जलूस निकालकर महाराज जी की छत्तरी में ले जाया जाता है। सहारनपुर के आस-पास के लोग इस उत्सव में बहुत संख्या में आते हैं और अनाज भी देते हैं तथा उन लोगों की तब से लेकर अब तक वैसी ही श्रद्धा बनी आ रही है। इस स्थान का नाम कबीरचौरा इसलिये पड़ा कि यहाँ सद्गुरु कबीर साहेब के सम्प्रदाय के साधु विशेष करके रहते रहे। और अब भी सहारनपुर शहर के अन्दर कबीर पन्थी महात्माओं के कई कबीर चौरा (आश्रम) प्रसिद्ध हैं। आप के बगीचे के अन्दर एक आपके हाथ की बनवाई कुँईं है जिसका जल अतिनिर्मल एवं मधुर स्वादिष्ट है। इस समय उसमें से कोई पानी भी नहीं निकालता फिर भी जल ज्यों का त्यों शुद्ध एवं स्वादिष्ट है। सुना गया है

कि एक कुष्ठी व्यक्ति का कुष्ठ इस कुएँ में स्नान करने से दूर हो गया था। मैंने सहारनपुर में स्वयं जाकर पुराने-पुराने भक्तों से एवं महापुरुषों से पूछताछ की कि श्री आचार्यदेव गरीबदास जी ने यहाँ पर जो किसी बानी की रचना की हो तो मुझे बताइये। एक दो भक्तों ने बताया की महाराज जी की बाणी यहाँ जरूर थी परन्तु कुछ समय से पता नहीं चलता क्या हुई।

अनुमान है कि सहारनपुर में भी सद्गुरु जी ने कोई बाणी रची होगी परन्तु सम्भाल न होने के कारण वह वाणी नष्ट भ्रष्ट हो गई क्योंकि हमने देखा वहाँ पर बहुत सी हस्तलिखित पुस्तकें दीमक की खाई हुई पड़ी थीं इसमें कुछ तो ऐसे कि जो एकदम मिट्टी बन चुके थे। जिनका एक अक्षर भी पढ़ा नहीं जाता था। इस प्रकार से सद्गुरु जी अपनी लीला हमेशा ही इस मृत्यु मण्डल में करते रहते हैं।

कई व्यक्तियों को शंका हो जाती है कि मुसलमान भी महाराज के शिष्य हो सकते हैं क्या? इस शंका का उत्तर तो आचार्य जी की वाणी से ही मिल जाता है क्योंकि आप जाति-पांति का महत्व नहीं मानते। धर्म को ही मुख्य मानते हैं जिसका निर्णय आगे वाले प्रकरण से भी स्पष्ट हो जायेगा।

जातिवाद

आज के युग में प्रत्यक्ष देखा जा रहा है कि सभी लोग हीन होने पर भी अपने आप में उच्चता की भावना रखते हैं परन्तु साधक व्यक्ति ऐसे विवाद काल में क्या करैं क्योंकि ब्राह्मण वर्ग अपने को सन्यास में व विद्या में एक मात्र अधिकारी मानता है। स्मृतियों का प्रमाण भी देता है, "चत्वाराश्रमः ब्राह्मणस्य त्रयोराजन्यस्यः द्वौ वैश्यसा" ब्राह्मण जाती वाला सन्यास, वानप्रस्थ, गृहस्थ, ब्रह्मचर्य यह चार आश्रम धारण कर सकता है। क्षत्रिय तीन वानप्रस्थ, गृहस्थ, ब्रह्मचर्य को धारण कर सकता है। वैश्य गृहस्थ, ब्रह्मचर्य दो को ही धारण कर सकता है। शूद्र केवल गृहस्थाश्रम को ही धारण कर सकता है।

मुख जानामयं धर्मो वैष्णवं लिंग धरणम्।
बहु जातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते॥

ब्राह्मणों के लिए ही सन्यास है। क्षत्रिय वैश्य के लिए यह धर्म नहीं है इत्यादि प्रमाण देकर अन्य जाति वाले साधकों को विचलित व खिन्न किया जाता है। ऐसी परिस्थिति को देखकर ऋषियों ने एवं स्वयं परमात्मा ने अनेक रूपों में कलियुगी जीवों को समझाने के लिए आना आरम्भ किया। जैसे कि श्री कबीर साहेब जी व गुरुनानक देव जी तथा रैदास जी, श्री दादू जी, श्री जगद्‌गुरु गरीबदास जी महाराज ने इत्यादि रूपों को धारण किया।

यह प्रसंग श्री मद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय १५ श्लोक ११ से १५ तक कथन किया है। कुमार, नारद, रिभु, अङ्गिरा, देवल आदि सिद्ध ज्ञान प्रचार के निमित्त हर समय घूमते हैं विचार करो सन्यास व ब्रह्म विद्या दो ही कल्याण के साधन हैं। इन दोनों को ही एक देशी विचारहीनों द्वारा सिद्ध किया गया। परमात्मा तो इसाई मुसलमान हिन्दू सभी का होगा किसी एक के नाम तो परमात्मा वैय नहीं किया गया। यद्यपि "चातुरवर्ण्यम् मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः गीता अध्याय ४ श्लोक १३ इस वचन से प्रभु चार वर्णों का अपने आपको कर्त्ता कह रहे हैं। ईश्वर कृत वस्तु में दोष देना उचित नहीं है। तथापि भगवान गुण कर्म विभागसः" कह रहे हैं सत्वादि गुण सम दमादि गुण कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था कह रहे हैं भगवान कोई बाप से बेटा आदि परम्परा को ब्राह्मणादि नहीं कह रहे हैं। यदि परम्परा को ही ब्राह्मण आदि कहते हैं तो वज्रसूची को पनिषद ब्रह्मत्व का खण्डन नहीं करते तथा महाभारत अनुशासन पर्व में भृगु ऋषी ने भारद्वाज के प्रति कहा है कि–

शूद्रे चैतद् भवेल्लक्ष्यं द्विजेन्तच्यन विद्यते।
नवै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणे न च ब्राह्मणः॥

अर्थ–जो लक्षण मैंने ब्राह्मण के बताये हैं ये लक्षण यदि जिसे लोग शूद्र कहते हैं उसमें हों तो उसे शूद्र न जानो किन्तु ब्राह्मण ही जानो ब्राह्मण में वे लक्षण न हों तो उसे शूद्र समझो ब्राह्मण नहीं। इन प्रमाणों से जाना जाता है कि वंश को ब्राह्मण नहीं कहते हैं ब्राह्मणाभिमानी गण ब्राह्मण महिमा प्रतिपादक शास्त्र वचनों का उदाहरण दिया करते हैं

लक्षण वचनों को लोगों से छिपाते हैं। कारण की लक्षण बिना ही जगत में पूज्यता चाहते हैं। वर्ण व्यवस्था ऋषी वृन्दों ने व्यवहार को सिद्ध करने एवं उसे अच्छी प्रकार से चलाने के लिए की थी अभिमान एवं पाप के लिए नहीं।

ऋषियों का अभिप्राय ईश्वर की प्राप्ति के लिए है कोई वर्ण-व्यवस्था में तात्पर्य नहीं है इस अभिप्राय को लेकर ही जगद्‌गुरु गरीबदास जी महाराज ने कहा है कि–

कैसे हिन्दू तुरक कहाया, सबही एकै द्वारे आया।
कैसे ब्राह्मण कैसे शूदा, एकै हाड़ चाम तन गूदा॥
एकै विंद एक भग द्वारा, एकै सब घट बोलन हारा।
कौम छत्तीस एक ही जाती, ब्रह्म बीज सबकी उतपाती॥
एकै कुल एकै परिवारा ब्रह्म, बीज का सकल पसारा।
ऊँच नीच इस विधि है लोई, कर्म-कुकर्म कहावैं दोई॥
गरीबदास जिन नाम पिछाना, ऊँच-नीच पदई परवाना।

देखो महापुरुष साधारण हिन्दी भाषा में कितने सरल व सुन्दर शब्दों में सम्पूर्ण वेदों के सार का कथन कर रहे हैं यह कोई वर्ण खण्डन नहीं है। किन्तु उच्च विचार की प्राप्ति के लिये कथन है। यदि ईश्वर को पाना है तो अपने को ऊँच व नीच न मानो किन्तु मैं ब्रह्म हूँ अविद्या के सम्बन्ध से मेरे में जीवपना मालूम होता है इसीलिये मैं सत्कर्म करके स्वरूप प्राप्त करूँ यह पूर्वोक्त वचन का तात्पर्य है। 'ब्रह्मजीव सब की उत्पाति' इस वचन से सर्व को ब्रह्मरूप बताया है। जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसका रूप होता है। जैसे घट मिट्टी से पैदा हुआ मिट्टी रूप है और 'कर्म कुकर्म कहावे दोई' इस वचन से प्रभु के प्राप्ति के लिये कर्म बताया व संसार के लिये कुकर्म बताया है। कर्म कुकर्म से यह भी सूचित किया कि ब्राह्मत्व की प्राप्ति में कर्म ही कारण है। और शूद्रत्व में कुकर्म कारण है। कोई कह सकता है कि सूर्य वंश में जो पैदा हुए वे सर्व क्षत्रिय हुए और चन्द्र वंश भी इसी तरह है इससे ज्ञात होता है वर्णव्यवस्था कर्माधीन नहीं

किन्तु परम्परा है और भी चिन्ह है कि ब्राह्मणों के लिये बृहस्पतिसर्व यज्ञ, क्षत्रियों के लिये अश्वमेघ यज्ञ, वैश्यों के लिये वैश्यस्तोम यज्ञ शास्त्र में कथित है। इन वार्त्ताओं से जाना जाता है कि वर्णव्यवस्था कर्माधीन नहीं किन्तु परम्परा है। ऐसे शंकावादी से कहना चाहिये कि–सूर्यवंश कहां से चला, चन्द्रवंश कहां से चला? कश्यप व अत्रि के सूर्य व चन्द्रमा पुत्र हैं (कश्यप के पुत्र सूर्यदेव है और अत्रि के पुत्र चन्द्रमा हैं)। तो दोनों से ब्राह्मण हुए। उनके पुत्र भी श्राद्धदेव बुध पुरुरवादि ब्राह्मण होने चाहिये। कोई भी क्षत्रिय सिद्ध न होगा सभी ब्राह्मण होंगे। कारण कि कश्यप ब्राह्मण तो उनके पुत्र पौत्र भी ब्राह्मण और यज्ञादि को भी क्षत्रियपने की योग्यता हो तो अश्वमेघ करे और ब्राह्मणपने की योग्यता हो तो बृहस्पतिसर्व यज्ञ करे इसी वार्त्ता को श्रीसद्गुरु गरीबदास जी ने भी कहा है–'ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछाने' 'जाट सोई जो पांचों झटके' 'गूजर सो जो गुझकी जाने' इन वचनों से सद्गुरुदेव जी कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था कह रहे हैं श्री मद्भागवत् स्कन्ध ९ अ. २ श्लोक ३-१४ में इक्ष्वाकु के पुत्र पृषध्र को गुरु वशिष्ठ ने गोरक्षा में नियुक्त किया। रात्रि में सिंह ने गौवों में प्रवेश किया। गौ इधर-उधर भागने लगी पृषध्र के द्वारा एक गौ मारी गई शेर का कान तलवार द्वारा कट गया वह भाग गया। गौ का मारा जाना अनजानपने में हुआ। फिर भी गुरु ने उसे शूद्रपने का श्राप दिया। वह भी श्राप को श्रद्धापूर्वक लेकर सन्यासी हो गया। इस प्रसंग से शूद्र ने भी सन्यास धारण किया। भागवत में ही स्कन्ध ४ अ. १३ श्लोक ६ में ध्रुव पुत्र उत्कल का सन्यास रूप बताया है। 'एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः' श्रीमद्भा. स्क. ५ अ. ४ गद्य १३ में ऋषभदेव से जयन्ति से उत्पन्न ८१ पुत्र पिता की आज्ञा मानने वाले गृहस्थ धर्म पालन करने वाले वेदज्ञाता यज्ञकर्त्ता कर्म द्वारा शुद्ध हुये ब्राह्मण हो गये। महाभारत में व्यास वीर्य से पाण्डु व धृतराष्ट्र नामक दो क्षत्रियों की व विदुर नामक शूद्र की उत्पत्ति बताई गई है। इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि वर्ण व आश्रम व्यवस्था जीवों के योग्यता पर है। पूर्वोक्त भागवत प्रमाण को सुनकर कितने ही ब्राह्मणत्वाभिमानी व्यक्ति भागवत को व्यास रचित नहीं मानते हैं। द्रव्यार्जन (इककठा) के लिये

सप्ताह करने के लिये तो भागवत व्यास रचित है। वर्ण व्यवस्था के लिये आधुनिक है। भागवत न माने तो भी महाभारत से ही वर्ण व्यवस्था योग्यतानुसार सिद्ध होती है। ब्रह्मसूत्र में भगवान श्रीभाष्यकार शंकराचार्यजी ने स्मृति प्रमाण देते हुये कहा है कि 'शूद्र के कान में यदि ब्रह्मविद्या पड़ जाय तो उसे पवित्र करने के लिये उसके कान में राँगा डाल देना चाहिये' यह कथन जन्मतः शूद्र के लिये नहीं है किन्तु कर्मतः शूद्र के लिये है चाहे वह भले ही क्यों ने ब्राह्मण जाति का हो अनधिकारी के प्रति कदापि ब्रह्मोपदेश न देवे। यदि यह जगद्गुरु का कथन इस अभिप्राय वाला न माना जाय किन्तु जन्मतः शूद्र के लिये ही माना जाय तो जगद्गुरु को अभिष्ठ उपनिषद्स्थ वज्रसूचिका को उपनिषद ही अप्रमाण हो जायेगा और विदुरादि शूद्रों को मैत्रेय आदि ऋषियों ने जो ज्ञानोपदेश किया है। वह सारा प्रकरण ही मिथ्या होगा। और फिर भी पक्षपाती लोग कहते हुये श्री गुरुदेव गरीबदास जी की वाणी को मिथ्या कहें तो उनका उत्तर यह है कि–"श्रुत्यों विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्, धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था' महाभारत इस प्रमाण से जाना जाता है कि श्रुति स्मृति ऋषि सभी परमात्मा को 'यह है' 'इस प्रकार का है' ऐसा नहीं कह सकते हैं। केवल यह जीव महापुरुषों की संगति से क्रिया व्यवहार को देखकर प्रभु को पा सकता है। श्री शंकराचार्य श्री गरीबदास जी दोनों महापुरुष स्व-स्व बुद्धि के अनुसार प्रभु का गुण गाते हैं जो जिसे अच्छा लगे वह उसे ग्रहण करे। 'नभःपतन्त्यात्मसमं पत्रिणस्तथा समंविष्णुगतिं विपश्चितः' भागवत। १-१८-२३ आकाश में पक्षी-तुल्य विष्णु-लीला में विद्वान्‌गण विचरते (निश्चय करते) हैं। और वंश परम्परा से ही यदि जाति माने तो भी कोई हानि नहीं है क्योंकि सत्य, दया, तप शौच तितिक्षा विवेक, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, आर्जव, संतोष समदर्शियों की सेवा, इन्द्रिय क्रियाओं से उपरामता लोगों के विपरीत फल का विचार, मौन, आत्मविचार, अन्नादि का बाँटना, भूतप्राणियों में इष्टदेव बुद्धि, प्रभु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, यज्ञ नमस्कार दास्य सख्य आत्मसमर्पण ये तीस धर्म सर्व मनुष्यमात्र के लिये कथन (भागवत ७.११.८-११ में) किए हैं। हमको प्रभु की प्राप्ति से प्रयोजन

है कोई आर्यसमाजियों की तरह अपने को ब्राह्मण सिद्ध करके किसी की सगाई विवाह नहीं करते फिरना है या कोई सरकारी कौमी एकता नहीं करनी है। यह वार्ता श्री सद्‌गुरु देव जी भी कहते हैं–

'बालमीक नीचे कुल साधु, जिन शंख-पंचायन पूरे नादू।
बालनीक को कहते नीच, नाम प्रताप हो गये ऊँच।
तपिया को तो दर्शन नाही, लोदी नाल पतीजै'

श्री दादू जी, श्री नानक जी, श्री कबीर जी, श्री सद्‌गुरु गरीबदास जी आदि सन्तों का अभिप्राय न तो किसी के खण्डन में है न किसी के मण्डन में वे महापुरुषवृन्द तो केवल ज्ञान-भक्ति का उपदेश देते हैं कहीं ब्राह्मण-जाति का खण्डन है तो गुणों का खण्डन नहीं केवल अभिमानादि दोषों का खण्डन है तीर्थों का खण्डन मूर्तियों का खण्डन नहीं किन्तु अश्रद्धा व पाखण्ड का खण्डन है अतः जो प्रभु को पाना चाहें शूद्र हों या ब्राह्मण, स्त्री हों या पुरुष सभी को बाह्य और व्यर्थ जाति अभिमान को छोड़कर प्रभु को भजना चाहिये। इतिहास पुराण ग्रन्थों में स्त्री व शूद्र के प्रति भी सुलभा विदुरादि उदाहरणों से सन्यास पूर्वक भी ईश्वर चिन्तन बताया है यही मत कबीरादि सन्तों का है। स्व पशु-बनाने वालों का मत ठुकराकर इस निश्चय को अपनाना चाहिये। और इस कलि में तो जाति है ही नहीं तो उसका मण्डन व खण्डन क्या करोगे यह कालकृत कार्य किसी जीव के हाथ नहीं इस लिये जो अपने को ब्राह्मण मानते हैं वे तो जाति खण्डन सुनकर दुखी न हों और नीच जातिवाले अपने को मानते हैं वे खण्डन न करें। क्योंकि कालकृत खण्डन स्वतः हो रहा है प्रत्यक्ष देख लो। यहाँ जो यह पूर्वोक्त प्रकरण लिखा है सो खण्डन नहीं किन्तु देहाभिमानी-गण जिज्ञासुओं को बहकावें नहीं इस अभिप्राय से है। लोग स्वयं तो भजन ज्ञान प्राप्त करते नहीं उल्टा करने वालों को बहकाते हैं। "बादहिं शूद्र द्विजन्ह सन हम तुमते कछु घाट, जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाटि।" ऐसे ऐसे वचन बोल थोड़े विचार वाले जिज्ञासुओं को हटा दिया जाता है स्व-साधन से। अपने अवगुण नहीं कहते "विप्र निरक्षर लोलुप कामी, निराचार सठ वृषली स्वामी" इत्यादि वचनों से

जाना जाता है कि सभी जातियों का केवल नाम-मात्र है आज के युग में कोई विप्र नहीं कोई क्षत्रीय नहीं कोई शूद्र नहीं। अतः सभी जैसे भी रुचि हो सगुण वा निर्गुण रूप ईश्वर को भजो। जैसे सगुणोपासना में अभिमान दंभादि वर्जनीय हैं तैसे निर्गुण में भी दुश्चरित्रादि वर्जनीय हैं। शास्त्र रीति से प्रभु का कोई भी रूप भजें। किसी के मना करने से न माने। 'राम कहा तो क्या हुआ उर में नहीं यकीन' यह सत्‌गुरुदेव जी का वचन है यही नियम तो हमरे प्रति है। इससे यही सिद्ध हुआ कि वर्तमान समय में कालकृत एकता हो रही है वर्णाश्रम की ओर न ध्यान देकर गुरुदेव का चिन्तन करें। यही सन्त मत है।

उपरोक्त जातिवाद पर श्री स्वामी पं. ओम्प्रकाश जी ने अपना मत व्यक्त किया है।

॥ श्री गरीबाचार्यजी का नाहन पौंटा के समीप प्रगट होना॥

यह प्रकरण इस प्रकार है कि एक महात्मा ने बताया कि श्री गरीबदास महाराज जी का पौंटा से तीन मील पर हरिपुर ग्राम के समीप ही जंगल में मन्दिर है। यह सुनकर कई महात्माओं ने मेरे से कहा कि आप स्वयं वहाँ जाकर खोज करें। तब मैं एक भक्त को साथ लेकर जगाधरी से मोटर द्वारा पौंटे में पहुँचा। पौंटे से हरिपुर पैदल गया। हरिपुर में हमने पूछा कि यहाँ पर कोई गरीबदास जी का मन्दिर है? एक व्यक्ति ने कहा कि यहाँ गरीबदास जी का नहीं गरीबनाथ जी का मन्दिर है। इस बात का निर्णय हमने कई वृद्ध व्यक्तियों से भी किया तब एक दो आदमियों ने बताया कि पहले यहाँ पर जो मन्दिर था वह जीर्ण होकर गिर गया था मन्दिर को पहले गरीबदास जी का ही मन्दिर कहते थे। और उन्होंने यह भी कहा कि हमारे बड़े बुज़ुर्ग बताया करते थे कि यह महापुरुष बहुत प्राचीन काल से यहाँ रहते थे। और इन्हीं के ही आशीर्वाद से नाहन रियासत स्थापित हुई थी। बाद में यहाँ पर नाथ संप्रदाय गरीबनाथ के साधु रहने लगे जिसके कारण महाराज का नाम गरीब नाथ पड़ गया। इस समय इस इलाके में दूर-दूर तक इनकी गरीब नाथ नाम से ही प्रसिद्धि है। जब हमने उनसे यह पूछा कि यह जो प्राचीन मन्दिर था वह कब से था और वे महापुरुष यहाँ कब आये। इस

विषय में उन्होंने बताया कि इस बात को हम नहीं बता सकते क्योंकि हमारे बड़ों की परम्परा से यही ज्ञात हुआ है कि यह महापुरुष बहुत प्राचनी काल से यहाँ रहते आए हैं। इस विषय में हम कुछ नहीं बता सकते। यह सुनकर हमारे मन में संशय हो गया कि हो सकता है कि यह गरीबनाथ का मन्दिर ही हो क्योंकि गरीबदास जी का मन्दिर सिद्ध होने में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिला और हम मन्दिर को देखने के लिए आगे बढ़े क्योंकि मन्दिर यहाँ से एक मील आगे था। रास्तें मे एक महात्मा सामने से आते देखा हमने जाना कि यही महात्मा उस मन्दिर में रहते होंगे। जब उनके समीप जाकर परस्पर नमस्कार करके हमने पूछा कि आप कहाँ रहते हैं। उन्होंने अस्पष्ट शब्दों द्वारा कहा कि अपने राम तो यहीं कहीं रहते हैं। हमने फिर पूछा कि कहीं तो आप रहते होंगे इस समय आप कहाँ से आ रहे हैं। तब उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो चित्रकूट में रहते हैं यहाँ वैसे ही घूमने फिरने आ जाते हैं। तब हमने पूछा कि इस समय आप कहाँ ठहरे हैं क्या गरीबनाथ जी के मन्दिर में ठहरे हैं? उन्होंने कहा कि हम किसी के मन्दिरों में नहीं रहते हम तो ऐसे ही कहीं पड़े रहते हैं। न तो इनके पास कोई वस्त्र था और न एक तूंबी के अतिरिक्त कोई पात्र ही था और फटे पुराने भगवें वस्त्र पहने हुए थे। इनकी अवस्था ऐसी प्रतीत होती थी जैसे कोई मस्त फकीर होते हैं। यह वार्ता २०.१२.६२ ई. की है उस दिन अत्यन्त ठंडी पड़ रही थी। तत्पश्चात् हमने उनसे पूछा कि गरीबनाथ का मन्दिर कहाँ है? उन्होंने उत्तर दिया कि मन्दिर गरीबनाथ का या गरीबदास का? हमने कहा किसी का भी कहिए मन्दिर है कहाँ? तब उन्होंने जिस जंगल में यह मन्दिर था उसकी ओर संकेत करके उपेक्षा वृत्ति से कहा कि इधर ही कहीं होगा और साथ यह भी कहा कि मन्दिर तो तुम्हारे ही पास है एवं यह शरीर ही मन्दिर है और मन्दिरों के पीछे क्यों पड़े हो। हमने उत्तर दिया कि भगवन वार्ता तो आपकी सत्य है परन्तु इस समय आप से ईंट चूने के बने हुए मन्दिर के विषय में पूछते हैं। वह कहने लगे कि इस शरीर में क्या ईंट चूना नहीं लगा है। हमने फिर उत्तर दिया कि हम आपकी वार्ता अवश्य समझते हैं परन्तु हम बाह्य मन्दिर के विषय में पूछते हैं।

तब उन्होंने कहा कि यहीं कहीं होगा पास में। जब हम उनसे दस कदम आगे बढ़े तो उन्होंने पीछे से कहा कि यह मन्दिर गरीबनाथ का नहीं बल्कि गरीबदास जी का है। पहले रास्ते में साइन बोर्ड भी गरीबदास जी के नाम के टंगे होते थे और पहले कागजों में भी गरीबदास जी का ही नाम था। इस प्रकार के उनके शब्द रहस्य से भरे हुए थे। उस समय हम उनसे और कुछ नहीं पूछ सके क्योंकि हमारी मनोवृत्ति दूसरी ओर थी कि हमको लौट कर वापिस सहारनपुर पहुँचना था क्योंकि सर्दी अधिक थी। और हमने यह भी समझा कि यह कोई मस्त फकीर है अपनी मौज में है इससे अधिक कुछ कहना भी ठीक नहीं है। जब हमने वहाँ से थोड़ा और आगे बढ़कर पीछे को देखा तो वह महापुरुष वहाँ नहीं दिखाई पड़े अदृश्य हो गये। उस जगह कोई रूकावट भी नहीं थी जिससे कि कोई औट हो जाती। यह घटना देखकर हमारे ह्रदय में निश्चय हुआ कि यह महापुरुष सिद्ध थे या साक्षात् सत्गुरु जी ही हमें बताने के लिए स्वयं ही प्रगट हुए हों।

इससे हमारे मन में निश्चय हो गया कि यह मन्दिर श्री गरीबाचार्य जी का ही है। तत्पश्चात् जिस तरफ को उन्होंने इशारा किया था उधर ही हम चल पड़े आगे जाकर पूछा कि मन्दिर कहाँ है? तो उन लोगों ने कहा कि थोड़ी दूर ही है। आगे जंगल में प्रवेश करते ही टीन के दो छप्पर देखे वहाँ एक नाथ जी कई वर्षों से रहते हैं। हमने उनको जाकर आदेश कहा। नाथ जी ने बड़े प्रेम से हमको बैठाया हमने इधर-उधर देखा कि मन्दिर तो वहाँ कोई नहीं था परन्तु छोटी-छोटी दो समाधियाँ थीं तब हमने नाथ जी से पूछा कि नाथ जी यहाँ जो मन्दिर बताते हैं वह कहाँ है। नाथ जी ने उत्तर दिया कि आध मील पहाड़ी की चढ़ाई चढ़ कर मन्दिर है। तब हम उस मन्दिर के दर्शन करने के लिये गये। काफी चढ़ाई के बाद घने जंगल में मन्दिर मिला। उसकी दीवारें पक्की हैं और ऊपर टीन का गुमज बनाया हुआ है। यह मन्दिर बहुत छोटे से आकार का है और इसके अन्दर एक नाथ जी की मूर्ति स्थापित है जिसको यह लोग गरीबनाथ जी कहते हैं। वह बहुत छोटी सी है। यह संगमरमर की बनी हुई है। एक हनुमान जी की मूर्तिं एक शंकर पार्वती की है जो साधारण पत्थर की है और मन्दिर के

साथ ही एक टीन का छप्पर है वहाँ धूने की राख पड़ी हुई थी। यहाँ से लौटकर हम फिर नाथ जी के पास नीचे आये आकर उनसे पूछा कि यह मन्दिर कब से बना है। और यह मूर्ति कब से स्थापित की गई है। तब उन्होंने बताया कि पहला मन्दिर अति पुराना होने के कारण गिर गया था उसके गिरने के पश्चात हमारे गुरु जी यहाँ आये और मन्दिर को बनाया और इसमें मूर्ति स्थापित की पहले इसमें मूर्ति नहीं थी। उन्होंने बताया कि गरीबनाथ जी ने बहुत ही सिद्धियाँ दिखाई हैं।

उन महापुरुषों के कहने से यह सिद्ध हो गया कि इस स्थान में भी सद्गुरु जी रहे हैं। यहाँ पर लोगों ने बताया कि उनके दर्शन अब किसी-किसी को हो जाते हैं और इस मन्दिर से सब प्रकार की मनोकामना पूर्ण होती हैं। यहाँ पर प्रत्येक रविवार को लोग अपनी मानता चढ़ाने आते हैं। यह वार्ता मैं जैसी देखी और सुनी वैसी ही आप लोगों के सामने रख दी है इसमें संशय करने की तो आवश्यकता ही नहीं रहती। जब हम श्री कबीर साहब के विषय में कबीर मनसूर को देखते हैं तो पता चलता है कि श्री सद्गुरु कबीर जी कहाँ-कहाँ प्रकट हुये हैं। श्री आचार्य गरीबदास जी महाराज श्री के विषय में श्री जगद्गुरु सदुपदेश नाम की पुस्तक में स्वामी स्वरूपानन्द जी ने दो परिचय लिखे हैं जिनसे यह सिद्ध हो गया है कि श्री सद्गुरुदेव जी छुड़ानी में प्रकट होने से पहले भी इसी नाम से दिल्ली में प्रकट हुए हैं--

क्योंकि यह तो ग्रन्थ के आदि में श्री कबीर जी ने अपने शिष्यों को कहा है कि हम हीं गरीबदास नाम से प्रकट होंगे।

॥ वाणी का महत्व ॥

"ज्ञान सागर अति उजागर के जाप द्वारा सिद्धि की प्राप्ति"

एक महापुरुष जिनका नाम भगवती दास था। वह प्रतिवर्ष श्री छुड़ानी धाम में फालगुन सुदी द्वादशी के मेले पर आया करते थे। बहुत दिनों तक यहाँ आकर रहा करते थे। और बाहर वृक्षों के नीचे ही निवास किया करते थे। जो महाराज जी की वाणी में ब्रह्मवेदी नामक प्रकरण है जिसका पाठ

प्रातःकाल करने का हमारे यहाँ (सम्प्रदाय में) नियम है। इसके शुरू की पहली पंक्ति का पहला चरण है--"ज्ञान सागर अति उजागर"। इतने मात्र का जाप स्वामी भगवतीदास जी किया करते थे। इसी के द्वारा उनको अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हुईं थीं। वह जो शब्द किसी भी व्यक्ति को कह देते वह पूरा हो जाता था। स्वामी जी हर समय चलते-फिरते इसी मन्त्र का उच्चारण किया करते थे। यदि कोई भक्तजन इनसे जाकर बातचीन करना प्रारम्भ करता तो आप थोड़ा-सा उत्तर देकर फिर इसी मन्त्र-ज्ञान सागर अति-उजागर "ज्ञान सागर अति उजागर"। को जोर से रटने लगते। यह घटना बहुत दिनों की नहीं है करीब ३० वर्ष पूर्व की है। जबकि बहुत से भक्तों ने स्वामी भगवती दास जी के दर्शन भी किये है।

इस प्रकरण से हमें यह शिक्षा मिलती है कि श्री जगद्गुरु जी की वाणी का एक-एक अक्षर मन्त्र है। इन मन्त्रों से हमें परमार्थिक और व्यावहारिक दोनों ही लाभ प्राप्त हो सकते हैं यदि हम श्रद्धा विश्वास के सहित इन महामन्त्रों का जाप करें तो अवश्य आवा-गमन के चक्कर से छुट सकते हैं। जो व्यावहारिक दुःख भी हमें होते हैं उन महान दुःखों की यदि निवृत्ति चाहें तो भी सद्गुरु जी के बताये हुए मार्ग पर चलते हुओं के यह दुःख तो स्वतः दूर हो सकते हैं। परन्तु यह हमारी भूल है कि हम इस अमृतरूपी वाणी को जानते हुए भी नितान्त दुःख उठाते हैं। यदि हम वाणी के महत्व को समझें और समझकर अपने उपयोग में लावें तो कोई भी अड़चन हमारे सामने नहीं रहेगी। इसलिये हमें अपने इष्टदेव श्री गरीबदास जी महाराज की अमृतमयी वाणी का पाठ पूजन नित्यप्रति नियम से करना चाहिये।

प्रातःकाल मंगलाचरण, ब्रह्मवेदी, सूरज गायत्री, गीता-गायत्री, सातों बार की रमैणी, यह प्रातःकाल का नियम है। इनमें से यदि मंगला-चरण को सिद्ध कर लिया जाय तो संपूर्ण मनोकामना पूर्ण हो जायँ और सातों बार की रमैणी का पाठ करने से ग्रह पीड़ा नही होती और असुरनिकन्द रमैणी का पाठ दोपहर (दिन में १२ बजे) से बाद किया जाता है इसके महत्व के विषय में कहाँ तक कहूँ मेरी लेखनी इतना लिख ही नहीं सकती इससे तो संपूर्ण कार्यों की सिद्धि होती है यदि सम्पुट पाठ किया

जाय तो तुरन्त फल होता है। इसमें संशय नहीं है इसमें कार्य के अनुसार ही सम्पुट लगाया जाता है। इस की विधि को सन्त ही जानते हैं। सन्त भी वही बता सकते हैं जिन्होंने गुरु-परम्परा से प्राप्त की हो। सब नहीं बता सकते, मनमानी चाहे कोई कैसे ही करे या बताये इसलिये फल नहीं होता तथा उलटा भी हो जाता है। सायंकाल को संध्या आरती। यह सब हमारे संप्रदाय के नियम हैं इस समय तो बहुत से महानुभाव वाणी का पाठ करना ही पसंद नहीं करते। श्री आचार्य देव की वाणी का एक-एक अक्षर मंत्ररूप है। पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों ही लाभ हो सकते हैं। इसके महत्व को हम भूल गये हैं। इसीलिये दुःख उठा रहे हैं। जैसे किसी के पास पार्स-मणि हो उसके महत्व को वह भूलकर एक-एक पैसे के लिये भटकता फिरे यह उसकी महान भूल है। इसी प्रकार सब सुखों की खान यह अमृतमयी वाणी हमारे पास होते हुये हम दुःख भोगते हैं। इससे अधिक और क्या भूल होगी।

॥ श्री स्वामी जैतराम जी॥

श्री स्वामी जैतराम जी श्री जगद्गुरु श्री गरीबदास जी महाराज के ज्येष्ठ सुपुत्र थे। बाद में आपने श्री महाराज जी से ही दीक्षा ले ली थी। एक बार श्री महाराज जी के पास में करौंथा ग्राम के कुछ प्रमुख लोग श्री छुड़ानीधाम में आए, और श्री महाराज जी से प्रार्थना की कि हे महाराज जी यह छुड़ानी ग्राम तो आपके नाना का है। यहाँ के लोगों को तो आपने उपदेश से कृतार्थ कर दिया। अब आप करौंथा में चलिये और वहाँ के लोगों को उपदेश देकर कृतार्थ करें। वस्तुतः आपका ग्राम तो करौंथा ही है। इसलिये आपको वहाँ जरूर चलना चाहिए। तब करौंथा वासियों की प्रार्थना सुनकर श्री महाराज जी ने कहा कि जैतराम जी हमारा ही स्वरूप है। आप लोग इसको ले जाओ और हमारा स्वरूप जानकर इनकी सेवा करना। आप लोगों को श्री जैतराम से परम आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी। तब श्री महाराज जी ने जैतराम जी को करौंथा जाने की आज्ञा दी और जैतराम जी उनके साथ करौंथा चले गये। वहाँ कुछ समय तक रहे। उसके पश्चात् आपने जब सन्यास लेने का विचार किया तो अपनी स्त्री और

बच्चों को श्री छुड़ानीधाम में छोड़कर श्री महाराज जी से ही दीक्षा ग्रहण करके देश-देशान्तरों में भ्रमण करते हुए लोगों को सदुपदेश देने लगे। आपने बारह हजार वाणी कथन की है। वह वाणी इस समय प्रकाशित भी हो चुकी है। आपने उस अपनी वाणी के अन्दर महाराज श्री गरीबदास जी की वाणी के कठिन स्थलों को खोला है। श्री सतगुरु की वाणी रूपी ताले को खोलने के लिये ताली (कुञ्जी) का काम देती है। आप अधिक पंजाब प्रान्त में ही भ्रमण करते रहे। एक बार आप जिला जालन्धर (दोआबा) नकोदर से लग्भग सात मील दूर पर महतपुर ग्राम में कथा कर रहे थे। बहुत श्रोता बैठे हुए थे। उस समय आपने अकस्मात् खड़े होकर आकाश की तरफ देखकर हाथ जोड़कर सतसाहिब किया और कहा कि चलो हम भी आते हैं। यह शब्द सुनकर लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जब लोगों की इस बात को जानने की इच्छा उत्कट हो रही थी तो उसी समय स्वामी नारायणदास जी (जो कि आपके पौत्र शिष्य थे) ने आपसे हाथ जोड़कर पूछा कि हे गुरुदेव जी आपने यह क्या लीला की है जिसे सुनकर सब लोगों के दिलों में शङ्का उत्पन्न हो गई है। इस शङ्का को दूर करने के लिये आप बताएँ कि आपने हाथ जोड़कर किसको सतसाहिब की है। तथा चलो हम भी आ रहे हैं, यह शब्द किसको कहे हैं। तब आपने कहा कि इस बात से आपको क्या लेना है। यह तो सन्तों की गूढ़रमज हुआ करती हैं। परन्तु नारायणदास जी ने हाथ जोड़कर कई बार प्रार्थना की। तब श्री जैतराम जी बोले कि हमारे सहोदर भाई तुरतीराम जी ने आज अपने शरीर का परित्याग कर दिया है और सद्गुरु जी के धाम को जा रहे हैं। सो उनका जीवात्मा हमें सत्साहेब करने आया था। तब हमने उनको सतसाहिब का उत्तर देते हुए कहा है कि चलो हम भी आज ही आ रहे हैं। क्योंकि हम दोनों एक ही दिन इस संसार में आए सो एक ही दिन परमधाम को चले जायेंगे। (श्री जैतराम जी और श्री तुरतीराम जी जौड़ले भाई थे)। सो हम अपने इस शरीर का परित्याग आज ही करेंगे। इतनी बात सुनकर आपके सभी प्रेमी भक्त अधीर हो गये। और एकत्रित होकर आपके आगे प्रार्थना करने लगे कि महाराज कृपा करो। यदि आप अकस्मात अपने शरीर का परित्याग कर देंगे तो हमारा जीना कठिन हो जायेगा। हम किस

आधार पर जीवेंगे। इस प्रकार कई तरह से विलाप करके प्रार्थना करने लगे आप अभी शरीर न छोड़ें और इनको अति दीन दुःखी देखकर आपने कहा कि—बताओ आप लोग क्या चाहते हैं। तब सब भक्तों ने प्रार्थना की कि हम आपके तीन साल तक और दर्शन करना चाहते हैं। यह सुन आपने वचन दे दिया कि हम तीन साल के बाद शरीर छोड़ेंगे। आपके तीन साल के बाद शरीर छोड़ेंगे ऐसा सुनते ही सभा में बैठे कुतर्क बुद्धी वाले मनुष्यों ने कहा कि यह तो अपने को परमात्मा ही समझता है। मानो काल भगवान को वश में कर रखा है। अभी तो कह रहा था कि मैं अपना शरीर अभी छोड़ने वाला हूँ। अब कह रहा है कि तीन साल के बाद शरीर छोडूँगा। इस क्षण भंगुर शरीर का क्या पता कब छूट जायेगा। यह सुनकर स्वामी जी ने कहा कि तुमको इस बात का विश्वास जैसे हो सकता हो वैसे कहो यह सुनकर लोगों ने कहा कि हम तब मान सकते हैं कि जब तीन साल के बाद आपने शरीर छोड़ना हो तो यहीं पर ही छोड़ें। आपने तभी उनको वचन दे दिया कि अच्छा हम यहीं आकर शरीर छोड़ेंगे। जब आपको १ साल बीत चुका उस समय आप फिलौर के किले में (जो जिला जलन्धर में है) ठहरे हुए थे। दुपहर के बाद जब आप कथा कर रहे थे उस समय एक जटाधारी साधु आया। उसने आकर किले के द्वारपाल से कहा कि हम स्वामी जी से मिलना चाहते हैं। तब द्वारपाल ने श्री स्वामी से आज्ञा लेकर उस महात्मा को स्वामी जी के पास पहुँचा दिया। तब उस महात्मा ने उनसे संकेत से कहा कि आप एकान्त में हमारी एक बात सुन लें। आपने उठकर एक तरफ जाकर बातचीत की। वार्ता के बाद में वह महात्मा तो चले गये और श्री स्वामी जी आकर अपने आसन पर बैठ गये। तब उस किले के सरदार (जोकि आपका शिष्य था) ने आपसे प्रार्थना की हे गुरुदेवजी वह महात्मा कौन थे। किसलिये आपके पास आए थे। आपने उनसे एकान्त में क्या बातचीत की है। आपने सरदार को टालने की बहुत कोशिश की, किन्तु सरदार प्रेमपूर्वक पूछते ही रहे। कि बताओ वह महात्मा कौन थे। तब आपने कहा कि यह महात्मा पहाड़ की कन्दरा में रहते हैं। हम और यह महात्मा इकट्ठे रहकर तप किया करते थे। जब श्री

गरीबाचार्य ने अवतार धारण किया तब उनकी लीला देखने के लिये तथा उनके सम्पर्क में रहकर उनके सत्संग से लाभ उठाने के लिये हमने अपने शरीर को वहां इन महात्माओं की देखरेख में छोड़ दिया और कह आए थे कि हम इतने समय में आ जायेंगे। तुम मेरे शरीर की सम्भाल रखना। वह समय पूरा हो चुका है। यह कहने के लिये वह महात्मा आए थे। हमने उनसे कह दिया है कि महतपूर के लोगों को तीन साल के लिये वचन दे चुका हूँ। इसलिये आप दो साल और मेरे शरीर की देखरेख करें। फिर दो साल के बाद ठीक समय पर मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा। यह बात सुनकर लोगों को तथा उस सरदार को अति आश्चर्य हुआ। तब स्वामी जी ने कहा कि यदि तुमको विश्वास न हो तो तुम जाकर देख आओ। तब उस सरदार ने प्रार्थना की भगवन वह कौन सी जगह है। तब आपने उनको वह जगह, जहाँ कि आपका शरीर पड़ा था बता दी। तो वह स्वामी जी का सेवक फिल्लौर के किले वाला सरदार अपने एक दो साथियों के साथ वहाँ पर गया। तब देखा कि वही महात्मा वहाँ गुफा के आगे बैठे थे। उन्होंने इनको (सरदार को) आते ही कहा कि क्या तुम स्वामी जैतराम जी के पहले शरीर के दर्शन करने आए हो। उन्होंने कहा हाँ स्वामी जी। तब उनको गुफा के अन्दर पड़े हुए उस शरीर के दर्शन करवा दिये। तब ये लोग वापिस आए और आँखों देखी बात सब को बताई। इसी प्रकार स्वामी जी ने लोगों को अनेक परिचय देकर एवं अपनी अमृतमय वाणी के उपदेश से कितने ही प्राणियों का कल्याण करते हुए ठीक निश्चित समय पर महतपुर में शरीर छोड़ने के लिये पहुँचे। जब आप वहाँ पहुँचे तो आस-पास के सभी सेवक लोग इकट्ठे हो गये। तब आपने उन सब के सामने अपने शरीर का त्याग कर दिया और हिमालय में पड़े अपने शरीर को जा उठाया। आपके चले जाने के बाद आपके शिष्यों और सेवकों ने महतपुर में ही आपकी समाधि बनाई। एक आपकी छतरी करौंथा ग्राम जिला रोहतक में भी बनाई गई। दोनों जगह आपकी शाखा के महात्माओं के मकान भी हैं। एक आपकी शाखा का मकान नूर महल में भी है। स्वामीजी के इस परिचय के विषय में मैं पूरी खोज नहीं कर सका। क्योंकि समय का अभाव था।

॥ हरियाने प्रान्त की महिमा ॥

यह हरियाना प्रान्त दिल्ली से पश्चिम और बांगर जमुना, घग्घर, के बीच में है। यहाँ पर दूध और दही तो बेअन्त होता था (और प्रान्तों की अपेक्षा इस समय भी दूध घी का उत्पादन बहुत अधिक है) यहाँ के स्त्री-पुरुष खूब बलवान एवम् धार्मिक विचारों के थे। और अन्न की उत्पत्ति भी इस देश में खूब होती थी। भगवान् की भक्ति सन्त समागम और गङ्गा और यमुना स्नान आदि में इनकी प्रवृत्ति अति अधिक थी, जीव हिंसा यहाँ बिल्कुल नहीं होती थी। अभक्ष पदार्थों के तो ये लोग समीप भी नहीं जाते थे। अभक्ष (मांस आदि) पदार्थ का सेवन करने वाले को ये लोग अति बुरा मानते थे और मदिरा का कोई नाम तक भी नहीं जानता था। परमात्मा की भक्ति करने वाले को इस देश में बहुत अच्छा माना जाता था और जैसे अन्य प्रान्तों में लड़कियों का उत्पन्न होना लोग बुरा मानते थें, यहाँ तक कि लड़कियों को जन्मते ही मार भी देते थे। परन्तु इस प्रान्त में लड़की को देवी के रूप में माना जाता था। तीर्थ व्रतों में इनकी अति श्रद्धा थी। बुरा कर्म, चोरी यारी, आदि को कोई नाम भी नहीं लेता था। इनके हाथ में एक लकड़ी का डंडा ही शस्त्र था। धर्म में इतनी आस्था थी, कि बिना स्नान किये कोई भोजन भी नहीं खाता था। यह सम्पूर्ण हरियाने की महिमा स्वामी जैतराम जी (जो महाराज जी के सबसे बड़े सुपुत्र थे) ने अपनी वाणी में सनातन धर्म की रीति को अच्छी तरह से पुष्ट किया है। उदाहरण रूप में कुछ पंक्तियाँ यहाँ लिखी जाती है।

दोहा- बिन स्नान न भोजन पावें, सहज मते सुखदाई।
गंगा जमुना भाव पिछाने, लोहागर पुष्कर को जाई॥
गया प्रयाग पिंड भरावें, पितरों कारण जाई।
कथा कीर्त्तन गावन-ध्यावन, गीता पाठ कराहीं॥
श्रवण सुने भागवत् सब लीला, राम-राम मुख गाहीं।
ऐसी चाल देश की कहिये, हरियाना मन मान्या।
अति जाजुल कर्म नहीं कोई, करें सो बौह पछताना।

तातैं कर्म कोई जन करिहैं, और कहे क्यों कीन्हाँ।
जाकौं सब मिलकर समझावें, फिर संकल्प भर दीन्हाँ॥
अपने-अपने हीले माँही, कर्म लिख्या सो पावें।
खेती बनज करें मन मान्या, कहीं न भटका खावें॥
दूध, दही मन मान्या होई, कोई जन बिरला खाली।
अति सुन्दर नीकी नर काया, सब के मुख पर लाली॥
कुटलनी त्रिया कोई नाहीं, मर्याद रूप व्यौहारा।
जैतराम ऐसा हरियाना, सब देसां सैं न्यारा॥

इस प्रकार की इस प्रान्त की स्थिति उस समय थी। अब भी यह प्रान्त शूर-वीरता में बहुत प्रान्तों से आगे है। दूध दही भी यहाँ खूब होता है। इस देश में गऊओं की सेवा बहुत होती है। अच्छी नस्ल की गऊ एवम् बैल यहाँ होते हैं। किसी के घर में चाहे कोई कितना ही गरीब हो परन्तु बैल या गऊ कमजोर नहीं पायेंगे। अपने परिवार में चाहे वह कमी कर लें, परन्तु गऊ बैल के खाने-पीने में कमी नहीं होने देते। गऊओं एवम् बैलों की सेवा में यह प्रान्त सबसे आगे है। यहाँ की गऊ एवम् बैल अच्छी-अच्छी नस्ल के सम्पूर्ण भारतवर्ष में जाते हैं। दो साल हुए जब भारतवर्ष के सम्पूर्ण प्रान्तों से हरियाने प्रान्त की गऊओं का ही अधिक दूध देने में नम्बर रहा था। भारत सरकार ने सभी प्रान्तों में परीक्षण करवाया था कि कहाँ की गायें दूध घी में अधिक हैं। तब सबमें प्रथम नम्बर इसी प्रान्त की गायों का रहा था। अब तो कलियुग के कारण सभी देशों में व्यक्तियों के खान-पान स्वभाव प्रायः बदल चुके हैं परन्तु उस समय यह देश सबसे अग्रणीय था। इसीलिये महाराज जैतराम जी ने यहाँ की महिमा वर्णन की है और यह देश उपमा के योग्य ही है कि जहाँ पर जगद्गुरु के रूप में शुद्ध सच्चिदानन्द घन परमात्मा ही स्वयं प्रगट हुए हैं। सद्गुरु जी तो स्वयं कहते हैं कि–

गरीब धन जननी धन भूमिधन, धन नगरी धन देश।
धन करनी धन कुल धन, जहाँ साधु प्रवेश॥

॥ महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी दयालुदास जी ॥

जिस प्रकार इस सम्प्रदाय में बिन्दु सृष्टि की परम्परा में गृहस्थाश्रमी सिद्ध महात्मा जनक विदेह के समान कुछ हुये हैं, उसी प्रकार नाद सृष्टि की परम्परा में भी अनेक प्रतापी महात्मा हुए हैं। जिनमें महामण्डलेश्वर महानुभाव श्री दयालु स्वामी जी का नाम सुप्रसिद्ध है। श्री मण्डलेश्वर जी का चित्र-चरित्र हमने इस भाग में प्रगट किया है। आप का आदर्श जीवन महन्तों एवं मण्डलेश्वरों के लिये अनुकरणीय कहा जाता है। कल्याण पत्र के सन्त अंक में आप श्री का परिचय इस प्रकार दिया है।

इन्होंने पंजाब के कपियाल नामक ग्राम में जन्म ग्रहण किया था। इनके पिता बड़े साधु-सेवी थे। जिसके कारण इन्हें बाल्यकाल में ही साधु संगति प्राप्त हुई। फलस्वरूप बारह वर्ष की अवस्था में गृह का त्याग कर दिया और पटियाला जिला के बसेरा गाँव में जाकर परमहंस बाबा ठाकुर दास जी से दीक्षा और सन्यास ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात पन्द्रह वर्ष तक गुप्त रहकर बड़ी तीव्र साधना की। सद्‌गुरु की कृपा से इष्टदेव का अनुग्रह हुआ। जब गुरुदेव ठाकुर दास जी की समाधि हो गई तब इन्होंने एक बहुत बड़ा भण्डारा किया। जिसमें करीब दस हजार लोगों ने भोजन किया। अब इनकी सिद्धि मशहूर हो चली थी इसलिये उस स्थान को छोड़कर तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़े। किन्तु इनका स्वभाव इतना सरल और प्रेमी था कि रास्ते में अनेकों पंथों के लोग इनके साथ हो जाते और पारस्परिक वैमस्य त्यागकर इनकी सेवा करने लगते थे। यह सभी को प्रेम दृष्टि से देखते, इनके मन में अपनी प्रधानता का घमण्ड कभी आया ही नहीं। ये स्वतन्त्र आसन या गद्‌दी पर नहीं बैठते थे। ये कुशासन या बालुकासन ही पसन्द करते थे। राजा से लेकर साधारण पुरुष तब इनकी प्रशंसा किया करते थे। इनके हजारों साधुओं की सेवा की बात उस दिन सन् १९३० प्रयाग कुम्भ मेले के विवरण के स्तम्भ में कलकत्ता के "संजीवनी" आदि मासिक पत्रों में भी प्रकाशित हुई थी। इनकी तीर्थ यात्रा के अवसर पर मार्ग में अनेकों व्यक्ति आकर दर्शन करते और उनसे सदुपदेश लाभ करते। जब लोग पूछते कि आपको कोई असुविधा तो नहीं है तब ये बड़े

प्रेम से समझाते कि ठण्डक के कारण नींद न आने से भजन में बड़ी सुविधा रहती है। सुतरां कोई कष्ट नहीं है इनके जीवन में कई अलौकिक घटनायें भी घटी हैं।

एक दिन इनके पास एक पाण्डित्याभिमानी ब्राह्मण ने आकर पूछा आप कौन स्वामी हैं। इन्होंने कहा मैं केवल स्वामी ही नहीं हूँ। दास स्वामी भी हूँ। उन्होंने कहा सन्यासी तो कभी दास नहीं होते केवल स्वामी ही होते हैं। (इस पर महाराज ने कहा कि भैया! अपने-अपने शिष्यों के सामने सभी स्वामी होते हैं और गुरुओं के सामने सभी दास होते हैं अतः सन्यासी मात्र ही स्वामी और दास दोनों होते हैं। इस पर ब्राह्मण ने पूछा, आप किस मठ के सन्यासी हैं। इन्होंने कहा मैं गगन मठ का सन्यासी हूँ। उसने कहा गगन मठ का नाम तो मैंने कभी भी नहीं सुना है। स्वामी जी ने पूछा तुमने कितने मठों का नाम सुना है। विप्रदेव ने कई मठों के नाम गिनाये। स्वामी जी ने कहा ये मठ सनातन काल से हैं या किसी ने इन्हें बनवाया है? ब्राह्मण ने कहा शंकराचार्य द्वारा इन मठों का निर्माण हुआ है। स्वामी जी ने कहा कि शंकराचार्य और इनके गुरु श्री गोविन्दपाद स्वामी किस मठ के सन्यासी थे। ब्राह्मण निरुत्तर हो गया स्वामी जी से कहा माता-पिता और सब परिवारों का त्याग करके तथा मान प्रतिष्ठा और कीर्ति का त्याग करके जिसने सन्यास ग्रहण किया है। क्या उसे और परिचय देने की आवश्यकता है? जहाँ साम्प्रदायिक परिचय है वहाँ शरीराभिमान भी अवश्य है। शंकराचार्य और उनकी गुरु परम्परा किसी मठ से सम्बद्ध नहीं है। अतः मैं कहता हूँ कि मैं गगन मठ का सन्यासी हूँ। स्वामी जी के इस विचार पूर्ण वार्तालाप से उन विप्रदेव का भ्रम दूर हो गया और वे श्री स्वामी जी के शरणागत हो गये।

श्री स्वामी जी महाराज दैवी सम्पत्ति पर बड़ा जोर देते थे। इनका कहना था कि सदा चार ही साधु जनों का जीवन है। इनके पास विजय कृष्ण गोस्वामी आदि बड़े-बड़े महात्मागण आते और इनके दर्शन से आनन्द लाभ करते।

कुछ लोग प्रश्न किया करते थे कि बड़े-बड़े मेलों में जो लाखों रूपये साधुओं के खिलाने पिलाने में खर्च किये जाते हैं इनसे देश का क्या

कल्याण होता है? मैं अर्थशास्त्र तो नहीं जानता परन्तु कल्याण शब्द का एक साधारण अर्थ समझता हूँ जिससे मानव आत्मा का कल्याण होता है अर्थात हृदय की गाँठ खुल जाती है उसे ही मैं कल्याण कहता हूँ। यह कल्याण धन के सद्व्यवहार से भी हो सकता है और उसे धूलि की तरह पानी में डाल देने से भी हो सकता है।

एक बार की बात है एक धनी सज्जन बहुत-सा रुपया लेकर बाबा दयालदास के पास आये उन्होंने कहा स्वामी जी इन रुपयों को अपने आश्रम के साधुओं की सेवा में लगा दो। स्वामी जी ने कहा मैं क्या करूँगा भैया यहाँ आज और रुपयों की आवश्यकता नहीं है। आज के खर्च के लिये रुपये आ गये हैं अब तुम्हारा रुपया लेकर क्या किया जायेगा तुम आज ही किसी दूसरे के पास जाकर इनरुपयों का सद्पयोग कर डालो। जिससे कि और साधुओं की सेवा हो जायेगी। यह थी आपकी सत्यता, ऐसा नहीं था कि लिया १००० लगाया १०० सौ।

उपरोक्त बातों का स्मरण करके हम सबके प्राण प्रफुल्लित हो उठते हैं और हम कल्याण की ओर अग्रसर हो जाते हैं। यदि स्वामी जी इन रुपयों को लेकर अपने निजी किसी कार्य में खर्च करते तो हमें आज इतनी प्रसन्नता होती ही नहीं। इस तरह की एक नहीं अनेक घटनायें स्वामी जी के जीवन में घटी हैं। स्थान का संकोच उन्हें न देने के लिये बाध्य कर रहा है। स्वामी जी की यह पवित्र स्मृति हमारे हृदय में चिर काल तब बनी रहे यही उनके चरणों में प्रार्थना है।

श्री महामण्डलेश्वर श्री स्वामी दयालुदास जी ने छुड़ानीधाम में छत्री साहिब का जीर्णोद्धार करवाया। तथा इसी छत्री के कुछ ही दूर पर एक विशाल कोठी बनवाई ई. सन् १८८७ में खरीदकर और १८८८ में एक दो मंजिली भव्य भवन कोठी का निर्माण किया। और उसमें सद्गुरु गरीबदास जी की गद्दी व गरीबदास जी आचार्य पीठ की स्थापना की और उसमें दोनों मेलों (फाल्गुन शुदी दसवीं एकादशी द्वादशी का संचालन किया और भादौं बदी अमावस्या से शुदी दुतिया तक सद्गुरु जी का निर्वाण दिवस मनाना आरम्भ किया)। जिसमें इस समय वर्तमान में महात्मा लोग विश्राम

किया करते हैं। इस प्रकार श्री महामण्डलेश्वर श्री दयालुदास जी ने इस संप्रदाय की बहुत ही उन्नति की है।

इसके अतिरिक्त आपकी मण्डली में सभी संप्रदायों के साधु-महात्मा लोक विद्याध्ययन करते थे, जिनकी संख्या ५०० तक रहती थी, परन्तु आपका व्यवहार सभी के साथ समान ही रहता था और इन मण्डलियों की प्रथा का प्रचलन वास्तविक में श्री दयालुदास जी से ही हुआ था, इसके पहिले मण्डलियाँ नहीं चलती थीं। इससे आपकी चारों तरफ सभी संप्रदायों में बहुत ही अधिक प्रशंसा है। आपने तीर्थ स्थानों में अपने मठ आदि भी स्थापित किये थे, जैसे काशी में हीं इस समय आपका विशाल मठ अन्न क्षेत्र तथा विद्यालय मौजूद हैं, जो कि बाँस फाटक में मंगल मठ के नाम से प्रसिद्ध है, तथा विद्यालय स्वयं दयालु संस्कृत महा विद्यालय के नाम से ही प्रसिद्ध है। आपका दूसरा नाम अन्नदाता भी लोग पुकारते थे, क्योंकि अन्नक्षेत्रों की प्रथा आपसे ही चालू हुई है। आपके पूर्व अन्नक्षेत्र आदि की कोई व्यवस्था साधु-महात्माओं के लिये न थी—विरक्त महात्माओं के लिये तो बहुत ही बड़ी असुविधा थी और आश्रमों वाले तो एकमात्र आश्रमों में जितने महात्मा लोग रहते थे उतनों का ही भोजन आदि का प्रबन्ध किया करते थे इससे अधिक नहीं। यह व्यवस्था आपने चालू की थी कि जितने भी साधु-महात्मा आवें उन सबको भोजन दिया जाय। यह श्रेय एकमात्र इन्हीं को है जो कि अभी तक चला हुआ आ रहा है। आप प्रतिवर्ष श्री छुड़ानीधाम में जाते थे तथा वहाँ कोठी में रहा करते थे। और कोठी में भण्डारें भी किया करते थे। आपकी साधुओं में बहुत श्रद्धा थी। आप और सभी साधु तथा गृहस्थियों को वहाँ पर जाने की प्रेरणा देते थे। आपके साथ रहने वाले सभी सन्त महात्मा पूरी सुविधा मिलने के कारण सदा खुश रहते थे। जहाँ जाते थे वहीं आपके यश का प्रचार करते थे। आप हमेशा ही श्री ग्रन्थ साहिब को स्वयं अपने सिर पर उठाकर चलते थे। सभी जगह जाकर श्री ग्रन्थ साहिब की वाणी की कथा किया करते थे। इसी का प्रचार करने का आपका ध्येय था। आज के समय में कुछ महानुभाव ऐसे भी हैं जो सद्गुरुजी की वाणी का पाठ करना अच्छा नहीं समझते। यहाँ तक कि—बाहिर जाकर अपने को गरीबदासीय

तक कहना भी अच्छा नहीं समझते हैं। तथा अपने को गरीबदासीय कहने में भी हानि समझते हैं।

एक बार श्री महामण्डलेश्वर दयालुदास जी मण्डली के सहित कच्छ प्रदेश—अञ्जार नगर में गये हुए थे तो वहाँ पर आपका बहुत प्रचार हुआ श्री पंडित पीताम्बर जी बहुत बड़े प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने विचारसागर पर पीताम्बरी टिप्पणी की है और विचार चन्द्रोदय नामक वेदान्त की प्रक्रिया का बहुत सुन्दर ग्रन्थ हिन्दी भाषा में बनाया तथा पञ्चदशी पर टीका की है। पंडित पीताम्बर जी भी श्री मण्डलेश्वर जी के पास आया करते थे। एक दिन उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना की कि स्वामी जी आप मेरे ऊपर भी कुछ कृपा करें क्योंकि मैं बहुत दुःखी हूँ। तब स्वामी जी ने पूछा कि पंडित जी आपको क्या दुःख है, आप तो हमारे आत्मा हैं, यदि आपका कष्ट हमारे द्वारा दूर करने योग्य हुआ तो अवश्य उपाय करेंगे। पंडित जी ने कहा कि स्वामी जी मुझे सूक्ष्म ज्वर (सूक्ष्म बुखार) हर समय ही बना रहता है। यह सुनकर श्री महामण्डलेश्वरजी ने कहा कि आप हमारे आचार्यदेव जी श्री गरीबदास जी महाराज की कुछ स्तुति श्लोकबद्ध करें। इससे आपका यह दुःख अवश्य दूर होगा। यह सुनकर पंडित पीताम्बर जी ने दो अष्टक संस्कृत भाषा में महाराज जी की स्तुति-बोधक बनाये जिसके बनाने से उनका वह चिरकाल का रोग सदा के लिये दूर हो गया। वे अष्टक अधोलिखित हैं। और भी जो कोई श्रद्धा विश्वास से इसका पाठ करे वह भी समस्त दुःखों से छुटकारा पाकर परमपद का अधिकारी होता है। इन्हीं अष्टकों के सवैये श्री दयालु जी ने हिन्दी भाषा में बनाये। जो रत्न सागर व सद्गुरु वचनामृत नित्य नियम गुटखा में प्रकाशित हैं।

गांभीर्यो गगनाकारो रक्षको बन्धमोचकः।
सुखदो विष्णुरूपोऽभूद् गरीबदाससंज्ञकः॥१॥

हे गरीबदास जी महाराज! आप आकाश की तरह गंभीर स्वभाव वाले, तथा अपने भक्तों को अज्ञानरूपी बन्धन से अथवा अज्ञान से उत्पन्न हुये संसाररूपी बन्धन से छुड़ाकर रक्षा करने वाले हैं, एवं उन्हें सुख देने वाले हैं इसलिये आप विष्णुरूप अर्थात् विष्णु के साक्षात् अवतार हैं॥१॥

निर्लेपो भोगभीरुश्च गुरुश्चिद्गमको नृणाम्।
गोभिर्नो गम्यते गम्यो गरीबदाससंज्ञकः॥२॥

हे आचार्यदेव, श्री गरीबदास जी महाराज! आप सांसारिक वासनाओं एवं वासनाजन्य विषयों से सर्वथा दूर रहने वाले हैं और सांसारिक भोगों से आप नितान्त भय खाने वाले हैं, तथा आप ज्ञानप्रद होने के नाते लोगों के परम आदरणीय गुरु हैं, और इन्द्रियों से एकदम दूर रहते हुये भी भक्तजनों के मनोमन्दिर में विराजमान रहने वाले हैं॥२॥

ऋणहा रक्षको रिक्तो रतिरोषादिदोषतः।
रणे जयप्रदोऽरातौ गरीबदाससंज्ञकः॥३॥

हे जगद्गुरु श्री गरीबदास जी महाराज! आप तो साक्षात् ही देवता, ऋषि और हमारे पितृ लोगों के ऋणों से हम भक्तजनों को मुक्त करने वाले हैं। काम-क्रोधादि दोषों से शून्य होकर भी धर्मयुद्ध में शत्रुओं के ऊपर हमें विजय दिलाने वाले हैं॥३॥

सुखदो विष्णुरव्यक्तो दानशीलो दयापरः।
दक्षो हि दमकोऽक्षाणाम् गरीबदाससंज्ञकः॥४॥

सुखदायक अव्यक्त विष्णुस्वरूप दानशील, दया युक्त बुद्धिस्थान इन्द्रियों को दमन करने वाले श्री गरीबाचार्य जी महाराज हैं॥४॥

बद्धबंधहरोऽबद्धो बद्धपद्मासने स्थितः।
बलादम्बोदरान्मुक्तो गरीबदाससंज्ञकः॥५॥

हे जगद्गुरु गरीबदास जी महाराज! आप सांसारिक विषयों से सम्बन्धित होते हुये भी उस बन्धन को नष्ट करने वाले हैं, हमेशा पद्मासन में स्थित हैं और बलपूर्वक अपनी माँ के उदर से निकले हुये हैं॥५॥

सत्ताप्रदश्च सर्वेषां स्वरूपावस्थितः सुखः।
शान्तिसक्तो हि समदृग् गरीबदाससंज्ञकः॥६॥

हे जगद्गुरु गरीबदास जी महाराज! आप सबके लिये सत्ता देने वाले हैं, अपने स्वरूप में स्थित हैं और सुखी है एवं शान्ति में लगे हुये और सबके साथ समान दृष्टि रखने वाले हैं॥६॥

अकिञ्चनत्वाल्लोकेऽस्मिन् गरीब इति गीयते।

साध्यभक्तियुतत्वाच्च दास इत्यभिधीयते॥७॥

हे गरीबदास जी महाराज! आप इस संसार में अकिंचन होने के कारण ही "गरीब" कहे जाते हैं और सिद्ध करने के योग्य जो भक्ति है उस भक्ति से युक्त होने के कारण पुनः आप दास कहे जाते हैं।

साधु-सुघ-शिरोरत्नं यत्नवान् सदुपासने।

तस्मै गरीबदासाय गुरवेऽस्तु नमो नमः॥८॥

जो कि साधुओं के समूह में शिरोमणि हैं और सत उपासना में प्रयत्नशील हैं ऐसे जो जगद्गुरु गरीबदास जी महाराज हैं उनको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

इति श्री गरीबाष्टकम्

यदस्तित्वाद्विश्वं नरखरविषाणोपममिदं

यदा भाषावेशाज्जडमजडमाभाति निखिलम्।

यदा नन्दालेशात्सकलजनताऽस्ते सुखभृता,

गरीबं तं पूर्णं परमगुरुमीशं सुविनतः॥१॥

जगद्गुरु गरीबदास जी महाराज के अस्तित्व के कारण से ही समस्त संसार है, वह मनुष्य गधे की सींग की तरह नाम मात्र का रह जाता है जिसके आभास से संपूर्ण जड़ वस्तुयें चेतनशील हो जाती हैं जिसके आनन्द के शेष मात्र से सारे मनुष्य सुख का अनुभव करते हैं ऐसे जो इस स्वरूप परमगुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

यदज्ञानाध्यासादजड़जड़जातं समभवत्,

यदालोकाल्लीनं तम इदमनाद्यं भवति हि।

ततो ये मोक्षेच्छायुतनरवा यान्ति सुगुरुं,

गरीबं तं पूर्णं परमगुरुमीशं सुविजतः॥२॥

जिसके अज्ञान के अभ्यास से अजड़ (चेतन भी जड़ हो जाता है जिसके आलोक से सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है और उसका पुनरागमन नहीं होता है। अतः मोक्ष की कामना करने वाले मनुष्य जिस गुरु के पास

जाते हैं ऐसे जो ईश स्वरूप पूर्ण परमगुरु जो गरीब दास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

विवेकादापाद्यं सुगुरुशरणं प्राप्य विधिवत्।

महावाक्यं श्रुत्वा गुरुवरमुखाद्वेदसुवचः।

सदर्थं निश्चित्यायमहमिति जानन्ति सुनराः

गरीबं तं पूर्णं परमगुरुमीशं सुविनतः॥३॥

जो मनुष्य विवेकादि के द्वारा सुलभ सद्गुरु के शरण को प्राप्त करके और विधिपूर्वक शास्त्राध्यन कर अथवा विधिपूर्वक "तत्वमसि" इस वाक्य को सुनते हुये गुरुओं के मुख से अच्छा वचन ग्रहण करता है। उसके बाद उस अर्थ का ठीक निश्चय करके वे सब मनुष्य (मैं ही आत्मा हूँ) ऐसा अनुभव करते हैं ऐसे जो परमादरणीय ईश स्वरूप गरीबदास जी गुरु हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

यमाद्यष्टाङ्गाद् यो चलमतिनिरोधेन सुगमं

सुयोगं संपाद्याऽपरिमितसुखं पायान्ति सुजनाः।

पराभूमिर्तभ्याऽधिजगति यमाश्रित्य नियतं

गरीबं तं पूर्णं परमगुरुमीशं सुविनतः॥४॥

यम, नियमादि अष्टागों से आच्छादित एवं चञ्चल चित्त को रोकने से प्राप्य जो सुयोग है उसको प्राप्तकर सज्जन लोग अतुलनीय सुख को प्राप्त होते हैं। जिनका आश्रय लेकर सारे मनुष्य संसार भर में श्रेष्ठ भूमि को प्राप्त कर लेते हैं ऐसे जो नियत, पूर्ण परमगुरु गरीबदास जी हैं उनको मैं नम्र होता हुआ प्रणाम करता हूँ।

भवाऽनायेऽच्छेद्ये हढतरनिबद्धा गुरुमिता

गुरोर्यस्वा देशे विमलवरविश्वाससहिताः।

वियापोपार्स्ति ते पदमभययमायाच्छिविचतम्।

गरीबं तं पूर्णं परमगुरुमीशं सुविनतः॥५॥

अच्छेद्य सांसारिक जाल से बँधे हुए जो मनुष्य स्वतः निराश होकर गुरु गरीबदास जी के शरण में जाते हैं और शुद्ध बुद्धि से जिन गुरु

गरीबदास जी के उपदेश पर पूर्ण विश्वास रखकर उपासना करते हैं वे उस परम ब्रह्म स्वरूप गुरु के लोक को जाते हैं जहाँ कि थोड़ा भी भय नहीं है और जिसका कभी नाश नहीं होता है। ऐसे जो पारब्रह्म रूप जो गरीब गुरुजी महाराज हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

चिदानन्दं सत्यं निरवयवमाकाररहितम्
गुणातीतं गीतं श्रुतिमुनिवचोभिः सुविमतम्।
सकूटस्थं स्वच्छं समरसमनादिं गुरुवरं
गरीबं तं पूर्णं परमगुमीशं सुविनतः॥६॥

जो चित, आनन्द सत्य स्वरूप है जो निरवयव है और जो आकार विहीन है जो सत्य रज और तम तीन गुणों से रहित हैं जिनकी प्रशंसा श्रुति और मुनियों के वचनों से हुआ करती है जो कि कूटस्थ हैं और स्वछन्द हैं, एवं जो समदर्शी हैं और लौकिक सुख दुःखों में सम भाव से विचरते हैं। ऐसे जो परम गुरु गरीब दास जी हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

तपश्चर्यापारं गतममितमाद्यन्तरहितं
प्रपञ्चैर्निमुक्तं हृदयवचनानामविषयम्।
मुनीन्द्रैः संमान्यं विमलमतिमेयं सुमनसां
गरीबं तं पूर्णं परमगुरुमीशं सुविनतः॥७॥

जिसने अपनी तपश्चर्या से परं सिद्धि को प्राप्त किया है। जिसके तपोबल का अन्दाज नहीं हो सकता जो जन्म मरण के बन्धनों से मुक्त है और जो संसार के प्रपंच से अलग हैं जिसने मन और वचन से अगम्य पद को प्राप्त किया है जो मुनियों के मान्य हैं और सुबुद्धि वाले विद्वानों के ज्ञेय हैं ऐसे जो परम गुरु गरीब दास जी हैं उनको मैं प्रणाम करता हू।

सुयोगीन्द्रैर्ध्येयः प्रणतजनज्ञेयः शुभगिरा
परं भक्त्या ज्ञेयो रसिकजनपेयामृतकथः।
सुभक्तानां भावैर्य इह जनितो जन्मरहितो
गरीबं तं पूर्णं परमगुरुमीशं सुविनतः॥८॥

जो कि योगियों के द्वारा ध्येय हैं विनीत भक्त जनों के मंगलमय वाणी से स्तुति करने के योग्य हैं एवं जो उत्तम भक्ति से ज्ञेय हैं और जिनकी अमृत कथा रसिक जनों के द्वारा पेये है। जिन्होंने जन्म रहित होने पर भी सुभक्तों के लिए पृथ्वी तल में जन्म लिया है ऐसे जो परम गुरु गरीब दास जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

गरीबाचार्यस्य शुभमतिवरम् चाष्टकमिदम् पठन्ति प्रज्ञाये प्रतिदिनम् पीताम्बरकृतम् स्वमम् अहं सद्योवै नस्पति चिदानन्दपदवीं प्रवेशम्यत्तेषाम् भक्ती च तदाप्तिः सुखतराम्।

अर्थ—शुभ मतिवर गरीबाचार्य जी के सम्बन्ध में पीताम्बर कृत इस अष्टक को जो बुद्धिमान लोग प्रतिदिन पढ़ेंगे वे अहंकारादि से छुटकारा पाकर परमानन्द पद एवं सुख पूर्वक मुक्ति प्राप्त करेंगे।

॥ महामण्डलेश्वर श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी॥

आपका जन्म बुढ़णाग्राम (जिला लाहौर में अटारी रेलवे स्टेशन से आगे) क्षत्रिय वंश में हुआ था बाल्य काल में ही आप संसार से ऊब कर गृहस्थ जीवन का परित्याग करके घर से निकल गये थे आपने सम्पूर्ण जीवन वैराग्यमय व्यतीत किया आप उच्च कोटि के विद्वान् थे और आप कवि भी थे। आपने कविता में बहुत सुन्दर ढंग से कई ग्रन्थ रचे हैं जैसे कि सद्गुरु अवतार लीला और त्रिपतीतज्ञ प्रकाश आदि कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं और आपके साथ बहुत से साधु रहा करते थे। जो कि आपसे विद्याध्यन करते और वैराग्य की शिक्षा ग्रहण करते थे क्योंकि आप साक्षात् वैराग्य की मूर्ति थे। ऐसा सुना जाता है कि आपने अपने सम्पूर्ण जीवन में धातु तक को नहीं छुआ स्त्रियों को अपने पास नहीं आने दिया। आप जंगल में ही निवास किया करते थे और नित्यप्रति प्रातः तीन बजे सब साधुओं को उठा देते कि स्नान करके भजन एवं महाराज जी की वाणी का पाठ करो जो प्रातः काल नहीं उठता था उसको आप अपनी मण्डली में नहीं रखते थे। आपने दूर-दूर तक भ्रमण कर महाराज जी की वाणी का प्रचार किया और आपके पास जो साधू रहते थे आप सब को समान रूप से रखते थे। आपके पास अच्छे से अच्छे वस्त्र या कम्बल आते थे आप इनको फाड़कर

छोटे-छोटे टुकड़े करके साधुओं को देते थे की इनकी गुदड़ी बनालो इन वस्त्रों को आप इसलिये फाड़ते थे कि साधुओं के पास सुन्दर वस्त्र होने से कोई उसे खोसने का प्रयत्न करेगा और यह भी विचारते थे कि सुन्दर वस्त्र होने से मन में रजोगुण उत्पन्न होता है आप स्वयं भी लीरों (वस्त्रों के टुकड़ों) की गुदड़ी ही रक्खा करते थे। इस प्रकार से आपने अपना सम्पूर्ण जीवन वैराग्यमय व्यतीत किया। आपकी रचना से आपकी विद्वता का ज्ञान तो स्वतः ही हो जाता है। जैसे कि कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं।

सवैया- जा सुखसागर पूरण ते अवलेश सुनो इक देवन पाई।
आवन जावन चिन्त मिटी जिस हेर भई जगमें गुरु ताई॥
जो इक बोध स्वरूप सदा जिस हेर हरी अपनी लघुताई।
सो हमरो निजरूप सदा अब पाद परौं किसके ढिग जाई॥१॥
बीत गये दिन-रैन सभी अब चैन करैं मरनो ढिग आयो।
ना शुभ सन्तन संग कियो अरु ना मुखते हरिनाम आलायो।
ना करते कछु दान कियो कर देह सनेह सदा दुःख पायो।
साच कहै वर नन्द सुनो अब होत कहा मन में पछतायो॥२॥
जो नर घरमें सत्संग करें हरिनाम ररे अरु दान करे है।
नासिर पापन पोटधरे शुभ मारग में सब औध हरे है॥
ता नर को घर बास भलो जग जास भलो जस काम परे है।
साच कहे बरनन्द सुनो वह जीवन को फल आन धरे है॥३॥
जा नर की रुचि ना जगमें सुत मात-पिता कुल लागत खारी।
बैठत ऊठत यों चितवै ममदेव दया कर दे सुखभारी॥
सो नर वास तजै घर को कित काज करो नित बैठ करारी।
साच कहै बरनन्द सुनो नर देह न होवत बारम्बारी॥४॥
जो धन धाम सुबाम तजे सुत मात पिता कुल रीति हरी है।
आन मिले शुभ सन्तन को मिल सन्तन की तन रीति धरी है।
पूरब पुन्नन के बस ते विधि ना विधि सौं यह रीत करी है॥

साच कहै बरनन्द सुनो बिन भाग मिले कित लूट परी है॥५॥
(स्वामी ब्रह्मानन्द जी)

इस प्रकार से आपने अनेक रचनायें की हैं जिनमें से ये ५ सवैये दिये गये हैं। शेष भविष्य में प्रकाशित किये जायेंगे। आपने सद्गुरु अवतार लीला नामक ग्रन्थ वि. सं. १९३३ मोगा (फिरोजपुर) में लिखा है। ऐसा भी सुना जाता है कि श्री छतरी साहिब के आगे का दिवान खाना भी बनवाया था।

॥ स्वामी भूरिवाले ब्रह्मसागर जी का परिचय॥

आपका जन्म वि. सं. १९१९ में भाद्रपद कृष्ण पक्ष की कृष्ण जन्मअष्टमी के दिन जिला होशियारपुर (वर्तमान में जिला रोपड तहसील आनन्द पुर साहब) (तहसील ऊना) ग्राम रामपुर पोष्तवाल में क्षत्रियवंशावतंस श्री बीरुराम के घर श्रीमती माता भोली देवी के गर्भ से हुआ। वि. सं. १९३९ में आपने श्री ब्रह्मदास गोदड़ी वालों के शिष्य श्री स्वामी दयानन्द जी से सन्यास लिया। इसके बाद आपने घोर जंगलों में रहकर महान तप और भजन किया और स्वामी सर्वानन्द प्रज्ञाचक्षु से कुछ विद्याध्ययन भी किया। और अपने तपकाल में आप मकानों का आश्रय न लेकर झाड़ियों में ही जहाँ-तहाँ पड़े रहा करते थे। केवल एक ऊन की भूरि (लोई) आप रखा करते थे। इससे अधिक वस्त्र आप नहीं रखते थे। सन्यास शब्द को सार्थक करने के लिए एक मिट्टी का प्याला एवं एक मिट्टी का लोटा (गंगा सागर) अपने पास रखा करते थे। इस प्रकार आपके तप का प्रभाव सभी जगह फैल गया। आपने अपने तपोबल से अनेक परिचय भी दिखाये। जैसे- जब आपको पहली बार बहारा सिंह, अर्जुन सिंहादि भक्तजन जलूर में ले गये और कुटिया बनाने के लिए आपसे प्रार्थना की कि महाराज जी आप स्थान पसन्द करें हम आपकी कुटिया बना देना चाहते हैं। तो आपने गाँव से उत्तर दिशा में जहाँ कि जंगल था, कुटिया के लिए उस स्थान को पसन्द किया। उसी जगह में भक्त लोगों ने कुटिया बना दी और आप वहाँ रहने लगे। कुटिया के बनने से पहले वहाँ पर जंगल होने से मयूरादि (मोरादि) निर्बल जानवरों को गीदड़ादि हिंसक जीव खा जाते थे। एक बार

आपने एक मयूर (मोर) को किसी जानवर से पीड़ित होकर बोलते सुना। आपने मयूर से कहा कि—क्यों क्या भाई आपको कोई दुःख देता है। उनके वचन सुनकर मयूर चुप हो गया। एवं गीदड़ादि जानवरों से डरने का अभिनय करके एक तरफ चला गया। तब गीदड़ों से भय की बात मयूर की जानकर भूरिवाले महाराज ने कहा कि अरे गीदड़ों! आज से इस तपोवन में किसी भी निर्बल जीव को सताना नहीं। कोई भी हिंसक जीव यहाँ किसी की हिंसा न करे। तब से सभी मयूर आदि जानवर सुखपूर्वक वहाँ पर रहने लगे। कोई जानवर तपोवन की सीमा में आकर किसी को दुःख तक नहीं देता था, मारना तो दूर रहा। गीदड़ और मोरों के बच्चे साथ-साथ खेलने लगे। यही कारण था कि उस जंगल में गीदड़ों से मयूरों ने डरना छोड़ दिया। गीदड़ों ने भी उन्हें सताना छोड़ दिया। इस प्रकार का आचरण श्री भूरिवाले महाराज ने ठीक प्राचीन काल में वाल्मीकि ऋषि आदि की तरह ही किया। क्योंकि प्राचीन ऋषियों के आश्रमों में भी कोई जीव किसी को सता नहीं सकता था। उनके आश्रमों में हरिण, गौ तथा शेर आदि जानवर एक साथ फिरते थे। इसी प्रकार इस वणी में सभी जानवर भय को छोड़कर परस्पर मित्रों की तरह प्रेम से रहने लगे। इस प्रकार के चमत्कार आपने अपने जीवन में अनेक बार दिखाये। जिनकी गाथाओं से एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनेगा। इसलिए यहाँ विस्तार के भय से नहीं लिख रहा हूँ।

आपके जीवन चरित्र से कोई अनभिज्ञ नहीं है। आपने वह महान उपकार साधु समाज और जनता पर किया है, जिससे हम उऋण नहीं हो सकते। आपने श्री छुड़ानी धाम की वह सेवा की है जिसको हमारी सम्पूर्ण सम्प्रदाय मानती है। ऐसी सेवा आज तक स्वामी दयालु दास से अतिरिक्त और किसी ने नहीं करवाई। जिस प्रकार आपने इस स्थान की शोभा को बढ़ाया है, उसका अधिक वर्णन करने की तो हमारे में सामर्थ्य नहीं है। जिस समय आप श्री छुड़ानी धाम में प्रथम बार गये उस समय केवल छतरी के भीतर श्री आचार्य जी की छोटी सी समाधि थी। और सम्पूर्ण छत्री साहिब के भीतर और बाहर की स्थिति अति जीर्ण, एवं गड्ढे पड़े हुए थे। ऐसी दशा देखकर आपने अपने सेवकों को इसकी दशा

सुधारने के लिए आदेश दिया। आपके आदेशानुसार आपके प्रिय सेवकों ने पैसा एकत्रित करके विक्रमी सम्वत् १९९० में इस स्थान के चारों ओर चार दिवारी चार गुफायें और ऊपर चार चौबारे बनाये। सबसे पहले वि. सं. १९८४ में आपके आदेश के अनुसार स्वामी पण्डित विशुद्धानन्द जी ने जगतगुरु जी की संगमरमर की मूर्त्ति स्थापित की और छत्री साहिब के अन्दर संगमरमर का फर्श लगवाया। तत्पश्चात् छत्री साहिब के गुम्बज पर संगमरमर आपके सेवकों ने लगवाया। और दिवानखाने में संगमरमर का फर्श, और तीनों दरवाजे जो कि उत्तर, पूर्व, पश्चिम में ड्योढ़ी के स्वरूप में बने हुऐ हैं। ये भी आपके सेवकों ने ही बनवाये। दीवान खाने में संगमरमर और दीवारों पर चीनी की टुकड़ियाँ और झण्डा साहिब भी उसी समय खड़ा किया गया। जो एक सौ तीस फुट के करीब ऊँचा है। सागवान की जोड़ियें भी इसी समय चढ़ाई गई थीं। यह सम्पूर्ण कार्य पंजाब के निवासी आपके सेवकों ने चार मास तक स्वयं श्री छुड़ानी धाम में रहकर और अपने पास से पैसा खर्च करके आपकी उपस्थिति में रहकर अपने हाथों से सैकड़ों ही भक्तों ने सेवा की थी। आपका मुख्य ध्येय था, सद्गुरु जी के दरबार की सेवा। आप हर छः मास के बाद श्री छुड़ानी धाम में आते थे और आपके साथ सैकड़ों नहीं हजारों की संख्या में नर-नारी श्री छुड़ानी धाम में आया करते थे आपके पास अच्छे से अच्छे पदार्थ आते थे। आप उन्हें अपने उपभोग में न लेकर श्री छुड़ानी धाम गुरुद्वारा में ही भिजवा दिया करते थे। आपकी शरण में कोई किसी प्रकार का दुःखी प्राणी आ जाता तो आप उसके दुःख को उसी क्षण दूर कर देते थे। परन्तु यह कह देते थे कि तेरे दुःख को तो हम ने दूर कर दिया परन्तु पूर्णरूप से तभी सुख होगा जब तुम श्री छुड़ानी धाम के दर्शन व सेवा करोगे। यह सब सद्गुरु जी की ही कृपा है। आपको साक्षात् यहाँ श्री छुड़ानी धाम में विराजमान देखते हैं। जिस चौबारे में आप निवास किया करते थे उसी प्रकार उसमें अब भी आपका आसन लगाकर आपका चित्र स्थापित कर रखा है। जिसकी विधि के सहित हमेशा पूजा की जाती है। आप अपने शरीर के लिये किसी भी अच्छे पदार्थ का प्रयोग नहीं करते थे। आपने सन्यास शब्द को सार्थक करने के लिये मृण मय (मिट्टी) पात्र अपने हाथ में रखा है।

सम्पूर्ण आयु में धातु का स्पर्श नहीं किया। साधारण वस्त्र का प्रयोग आप किया करते थे। अनेक कुटियाएँ आपने महात्माओं के लिये बहुत से ग्रामों में बनवाईं। एक-एक ग्राम में बीस-बीस, पचास-पचास साधुओं के रहने योग्य आश्रम बनाये। मुख्य-मुख्य स्थान—लुधियाना जिला के याली, कायलपुर, भट्टियाँ, तलवंडी, ईसेवाल, मोरक्रीमा, मंडयानी, रकवा, ब्रह्मी, पखोवाल, छपार, चौन्दा, बरनाला, जलूर जहाँ कि आप की समाधि एवम् महान विशाल छत्री बनी हुई है। एक आपकी लुधियाने में भी विशाल छत्री बनी हुई है। और एक आपकी छतरी आपके जन्म स्थान रामपुरा में भी बनाई गई है। जन्माष्टमी लुधियाना और रामपुरा पोसवाल में मनाई जाती है। जलूर व लुधियाने में आपकी छतरी में शुद्ध घी की दिन-रात अखण्ड ज्योति प्रज्वलित रहती है। (जिन ग्रामों के नाम ऊपर लिखे गये हैं) यहाँ विरक्त एवम् अभ्यागत महात्माओं के लिय उन ग्रामों में आपने एकान्त आश्रम बनवाये हैं। जिनमें आये महात्माओं की सुचारु रूप से सेवा होती है। यह आपके मुख्य-मुख्य आश्रमों के नाम बताये गये हैं। वैसे छोटी-मोटी तो बहुत ग्रामों में कुटियाँ हैं।

इस प्रकार अनेक चमत्कारमय परिचय अपने भक्तजनों को दिखाते हुए परोपकारात्मक अपने जीवन के अन्तिम दिनों में इस पाञ्चभौतिक एवं नाशवान शरीर का वि. सं. २००४ मार्गशीर्ष शुक्ला दसमी को जलूर में परित्याग किया। जो कि धूरी से भटिण्डा लाईन पर सेखा स्टेशन से एक मील पर है। यहीं पर आप के प्यारे शिष्यों तथा सेवकों ने छुड़ानी धाम में श्री जगद्गुरु गरीबदास जी की छत्री के समान ही जलूर में आपकी समाधि बनाई और यहाँ आपकी बनाई हुई श्री गंगा जी एक छोटे से तालाब के रूप में हैं। इसको चारों ओर से पक्का किया गया है और जल से भरी हुई शोभा दे रही है। और इसमें बहुत से भक्तजन स्नान करके पुण्य प्राप्त करते हैं। यह स्थान काफी विशाल बन चुका है और भी बनता जा रहा है। इसको अच्छे ढंग से चलाने के लिए एक संस्था (ट्रस्ट) बनाया गया है। आपने अपनी आयु में कितने ही स्थान बनाये हैं। परन्तु कोई स्थान अपने नाम नहीं करवाया। सब पर ट्रस्ट बना दिये हैं। जिससे कि उनका कोई भी स्वामी न बन सके।

महापुरुषों के जीवन में एवं उनके कथन में कुछ अद्भुत ही चमत्कार होते हैं। उनकी अटपटी बातों में ही कुछ आश्चर्यमय रहस्य होता है जैसे की परमपूज्य मेरे सद्गुरु देव भूरीवालों की शक्तियाँ इस प्रकार से देखने में आई हैं। एक समय की वार्ता है कि आप श्री छुड़ानी धाम में गरीबाचार्य जी के दरबार की सेवा करवा रहे थे। सम्पूर्ण आषाढ़ का मास एवं आधा श्रावण भी व्यतीत हो चुका था, परन्तु वर्षा नहीं हुई थी। तब एक दिन मौजीराम भक्त (जो की माता रानी के पिता शिवलाल जी के खानदान में हैं) ने महाराज भूरी वालों से प्रार्थना की कि गुरुदेव वर्षा न होने के कारण फसल नहीं बोई गई इससे अकाल पड़ने की सम्भावना है। हमारे तो बाल-बच्चे एवं पशु सभी भूखे मर जायेंगे, इसलिए आप कृपा करके वर्षा करवा दें। तब आपने कहा कि यह जो दो बाल्टियाँ लस्सी (छाछ) की भरी हैं इनको तू पी जा और इसके पीने से जितना अधिक तू लघुशंका (पेशाब) करेगा उतनी ही अधिक वर्षा होगी। यह सुनकर मौजीराम जिसको की आप के वचनों में विश्वास था वह सारी ही छाछ पी गया और उसी समय महाराज जी हाथ पर हाथ मारकर बहुत जोर से हँसने लगे और कहा कि अब कुछ ही क्षणों में जब तुझे पेशाब आने लगेगा तभी वर्षा भी होने लगेगी और तेरे को भी वर्षा में ही भीजना पड़ेगा। तत्काल ऐसा ही हुआ। ज्यों ही उसको लघुशंका जोर से लगी उसी क्षण न जाने कहाँ से बादल गर्जना करते हुए आकर वर्षा करने लगे, और जितने समय तक वह बार-बार लघुशंका करता रहा उतने समय तब वर्षा भी खूब जोर से हुई, सब खेतों में पानी ही पानी दीखने लगा। यह वर्षा केवल श्री छुड़ानी धाम की सीमा तक ही हुई, अन्यत्र नहीं। यह वार्ता सारे गाँव में फैल गई और भी आस-पास के ग्रामों में। पता चल गया कि छुड़ानी में भूरी वाले महापुरुषों की कृपा से वर्षा हो गई है। यह सुनकर सफेदपोस नन्हियाँ कवलाने ग्राम का और जैलदार रामसरन खुँगाही ग्राम का, यह दोनों मिलकर आपके चरणों में श्री छुड़ानी धाम में उपस्थित हुए और दण्डवत प्रणाम करके प्रार्थना की कि महाराज जी, आप ने छुड़ानी में वर्षा करवा दी है हमारे ऊपर भी कृपा की जाय जिससे कि हमारे यहाँ भी वर्षा हो जाय। यह सुनकर आपने उत्तर दिया कि भाई वर्षा कराना हमारे हाथ में

तो नहीं है। यह तो केवल सद्गुरु जी की ही मौज हुई है जिससे कि यहाँ वर्षा हो गई, हम क्या कर सकते हैं। तब इन दोनों ने फिर प्रार्थना की कि गुरुदेव महापुरुष तो समदर्शी और दयालु कृपालु होते हैं, दुखी जीवों पर दया करते हैं। इस समय वर्षा न होने के कारण समस्त जनता अति दुःख पा रही है हम भी तो सब आप के ही बच्चे हैं इसलिये आप को अवश्य दया करनी चाहिए। इस प्रकार से जब वह अति अधीर एवं दीन होकर प्रार्थना करने लगे तब आपने कहा कि अच्छा महाराज गरीबदास जी की छतरी साहेब की एक सौ एक परिक्रमा करो और मंगलाचरण का पाठ भी साथ-साथ करते रहो ऐसा करने से सद्गुरु जी अवश्य प्रसन्न होकर वर्षा करा देगें। ऐसे ही हुआ कि अभी उनकी परिक्रमा पूरी भी नहीं हुई थी जब कि वर्षा होनी प्रारम्भ हो गई। इस प्रकार की आपकी अनेकों ही घटनायें एवं शक्तियाँ सुनने व देखने में आई हैं और आती हैं। आपने मौजीराम के मृतक लड़के को भी जीवित किया था जो कि इस समय यह घटना लगभग वि. स. १९९० की है। गाँव में मौजूद है जिसका नाम सुरत सिंह है। इस प्रकार की आप की घटनायें अनन्त हैं जो कि हम अपनी आँखों से देख व कानों से सुन चुके हैं। आपकी आज्ञा के अनुसार आपके परम शिष्य श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी पण्डित चाँननराम डेहलों वालों ने भी गुरुद्वारे की सेवा अपने तन मन धन से की। मकराने से पत्थर संगमरमर लाकर छुड़ानी धाम में लगवाने का कार्य इनके निरीक्षण में ही होता था। इनकी बहुत ही सुन्दर समाधि डेहलों (लुधियाना) में बनी है। ये अपने सेवकों को एक दृष्टि से साधुसेवा का उपदेश दिया करते थे। ब्रह्मचारी जी ने श्वेत वस्त्रों में रहते हुए उस आत्मसुख को प्राप्त किया जो जंगलों में जाकर भी कठिनता से प्राप्त होता है और इनकी बहुत चमत्कारी घटनायें हैं स्थानाभाव के कारण नहीं लिख रहा हूँ।

वर्तमान काल में भी आप (भूरीवालों) के शिष्य व सेवक खूब सेवा करते हैं जैसे ज्ञान जी स्वेताम्बरी, जिन्होंने इस छुड़ानी धाम की शोभा को खूब बढ़ाया है। ये केवल गुणों की ही खान है हर समय सेवा में ही लगे रहते हैं। कभी छुड़ानी धाम में, कभी जलूर में, कभी लुधियाने में दिन-रात सेवा में ही बिताते हैं और भी बहुत से महापुरुष तथा सेवक यहाँ (श्री

छुड़ानी धाम) सेवा कर चुके हैं और कर रहे हैं। जब साम्प्रदायिक परिचय छपेगाा तब सब सन्तों के नाम दिये जायेंगे और श्री भूरी वाले महाराज के जीवन के साथ अपने सब गुरु भाइयों के नाम और यश भी लिखूँगा। यहाँ तो केवल गुरु सम्बन्धी वार्ता ही लिखनी ठीक है।

समय पाकर इनको भी लिखूँगा क्या करूँ इस समय पुस्तक बहुत बढ़ चुकी है जिससे स्थान नहीं रहा और समय का भी अभाव है। इसलिये नहीं लिख रहा हूँ सद्गुरु जी के प्रेमियों से नम्रनिवेदन है कि वे कृपा करके जो-जो घटना किसी के साथ घटी है एवं चमत्कार देखे हैं वह सब सम्वत् आदि के सहित लिखकर मेरे पास भेजें सद्गुरु के शिष्यों एवं सेवकों का प्रार्थी अवधूत स्वामी भक्त राम की सबको "सतसाहेब"।

॥ मेरी गुरु प्रणाली (गुरु परम्परा)॥

कवित्त-प्रथम सुआदि गुरु गरीबदास ब्रह्मरूप ताके,
प्रेमदास पुनः गोविन्द बखानिये।
ताहिके सुरत्नदास पुनः कहिए मेहरदास,
पुनः साहेबदास के सु ब्रह्मदास गानिये।
पुनः दयानन्द के सु भूरी वाले ब्रह्म सागर,
नाम सु उजागर जाको ध्यान मन ठानिये।
ताहि के अवधूत भक्त राम नाम जानो अब,
लोकहित कारी अरु चक्रवर्ती जानिये॥

॥ श्री सद्गुरु जी की महिमा का भजन॥

तेरे चरणों से बलिहार, सौ-सौ बार सद्गुरु जी।टेक॥
सन्त कबीर गरीब ध्याऊँ, शीश मैं चरणों बीच झुकाऊँ।
श्रद्धा साथ करूँ प्रणाम, बारम्बार सद्गुरु जी॥१॥ तेरे.
धन ओह देश धाम कुल ग्राम, सद्गुरु उतरे हैं जिस ठाम।
मैं तो बलबल सब तों जाऊँ, श्रद्धाधार सद्गुरु जी॥२॥ तेरे.

बैसाख की पूर्णमासी आई, ब्रह्म मुहूर्त साथ में लाई।
सतरहा सौ चौहतरे सम्वत, लिया अवतार सद्गुरु जी॥३॥ तेरे.
माता रानी पिता बलराम, प्रगट सद्गुरु जिनके धाम।
नाम गरीब धराया अपना, अपरम्पार सद्गुरु जी॥४॥ तेरे.
गरीब कबीर भेद नहि कोई, एकहि रूप नाम शुभ दोई।
आप कबीर गरीब कहाया, धर अवतार सद्गुरु जी॥५॥ तेरे.
जागे हरियाने के भाग, धर अवतार आये महाराज॥
सूते हंसा आन जगाये, कर के प्यार सद्गुरु जी॥६॥ तेरे.
सद्गुरु हंस उधारन आये, आसन आन छुड़ानी लाये।
किये सेवक बहुत निहाल दे दीदार सद्गुरु जी॥७॥ तेरे.
सद्गुरु पर प्रट्टन के वासी, आये तोड़न यम की फाँसी।
जो कोई शरण आन के पड़या, किया पार सदगुरु जी॥८॥ तेरे.
श्री गुरु ग्रन्थ साहिब महाराज, रच्या जीव उधारन काज।
जो कोई पाठ प्रेम से करता, दीया तार सद्गुरु जी॥९॥ तेरे.
शब्द स्वरूपी सद्गुरु मेरा, जिसका घट घट बीच बसेरा।
जो कोई खोजे सोई पावे, मन को मार सद्गुरु जी॥१०॥ तेरे.
धाम छुड़ानी अजब अनूप मानो सत्य लोक का रूप।
जो कोई दरस आनि के करता, होता पार सद्गुरु जी॥११॥ तेरे.
जिसने मानता मानी तेरी, कट गई उसके दुःखों की बेड़ी।
पूरे होय मनोरथ सारे, किये जो धार सद्गुरु जी॥१२॥ तेरे.
श्रद्धा साथ छुड़ानी आवे, मूहों मँगियाँ मुरादा पावे।
इसमें संशय भूल न करना, बात है सार सद्गुरु जी॥१३॥ तेरे.
सेवा सद्गुरु की जो करता, वह तो भवसागर से तरता।
सीधा नूर नगर में जावे, जहाँ दरबार सद्गुरु जी॥१४॥ तेरे.

जो कोई सद्गुरु सद्गुरु रटता, उसका जन्म-मरण दुःख कटता।
फिर चौरासी बीच न आवे, हो जाय पार सद्गुरु जी॥१५॥ तेरे.
पतित पावन हैं सद्गुरु मेरे, तारे पापी बहुत घनेरे।
इस सेवक को पार उतारो, कृपाधार सद्गुरु जी॥१६॥ तेरे.
सद्गुरु मेरे मेहरबान दीजो दान परम कल्याण।
कट गये जम के बन्धन सारे, हो जाय पार सद्गुरु जी॥१७॥ तेरे.
बन्दी छोड़ नाम है तेरा, बन्ध छुड़ाओ सद्गुरु मेरा।
बहुर न होवे गर्भ बसेरा करो उद्धार सद्गुरु जी॥१८॥ तेरे.
चेतन चाकर तेरे घरदा, बिनती हाथ बांध कर करदा।
दीजो दरसन कृपा करिके एक तो बार सद्गुरु जी॥१९॥ तेरे.

(श्री स्वामी चेतनदास जी कैरों)

॥ श्री सद्गुरु उपदेश विचार॥

जिस काल में संसार में पाप बढ़ जाते हैं। संसार के सभी प्राणी आत्म-प्राप्ति के मार्ग का परित्याग करके विषयों में लीन हो जाते हैं उस काल में ईश्वर स्वयं अनेक रूपों में अवतार लेकर प्राणियों का कल्याण करने के लिए उन्हें सन्मार्ग का उपदेश देते हैं। जैसे गीता में लिखा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानां सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशााय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात् जब भी धर्म का ह्रास हो जाता है, सभी लोग धर्म कर्म को छोड़ देते हैं वैदिक मार्ग से पतित हो जाते हैं किसी को आत्मज्ञान नहीं रहता, सभी अनात्म पदार्थों में ही आसक्त रहने लगते हैं तथा पाप अपनी अविद्या शक्ति से सभी को पाप कर्म करने से प्रेरित करता है तो सभी पाप करने में ही लग जाते हैं एवं जब पाप की अन्तिम शिखर तक उन्नति हो जाती है तो उस समय मैं (ईश्वर) अवतार धारण करता हूँ, क्योंकि मैं

अवतार धारण करके साधुजनों की रक्षा करता हूँ, तथा पापी पुरुषों का विनाश करता हूँ–इसी प्रकार अधर्म का नाश करके सब जगह धर्म की स्थापना करता हूँ। श्री जगत् पिता प्रभु भगवान् स्वयं अवतार लेकर बड़े-बड़े राक्षसों को मारते हैं। तो सब पृथिवी राक्षसों से खाली हो जाती है उस समय में बहुत से सिद्ध मुनि ऋषि अवतार धारण करके तथा अपने जीवन की बाल्यकाल की प्यारी-प्यारी लीलाओं द्वारा सब मनुष्यों को अपनी तरफ खींचते हैं, तथा सबको आत्म तत्व का परम उपदेश देकर सन्मार्गगामी बनाते हैं। यदि सिद्ध मुनि ऋषि अवतार धारण करके जगत् में न आवें तो सभी लोग नास्तिक हो जावें तथा अध्यात्म मार्ग का परित्याग करके सभी प्राणी पापमार्ग में चले जावेंगे अतः सब प्राणियों का कल्याण हो सभी प्राणी अध्यात्म मार्ग को जावें, एवं स्वात्मज्ञान की प्राप्ति करके सदा के लिए नाना प्रकार के शारीरिक, वाचिक, मानसिक दुःखों से छुटकारा पावें। इसीलिए सिद्ध ऋषिमुनि संसार में पाँच भौतिक शरीरधारी जीवों के जैसे आकारादि से दृष्टिगोचर होने वाला अलौकिक शरीर धारण करके, साधारण जीवों के सामने आते हैं एवं उन जैसी वाणी बोलकर उन जैसी क्रिया करके उन्हें आत्म उपदेश देते हैं।

"जन्म कर्च च में दिव्यम्" इत्यादि गीता के वाक्यों से भी अबतारों के शरीर जन्म कर्म अलौकिक होते हैं इस बात की पुष्टी होती है। उसी तरह से जगद्गुरु श्री गरीबदासाचार्य जी ने अपनी बाणी में यह सिद्ध किया है कि हम प्रतियुग में अवतार धारण करके समस्त जगत के प्राणियों को संसार के उपभोगों से निवृत करने तथा स्व आत्मा के दर्शन के लिए यत्न करने का उपदेश देते हैं। जिस परम आध्यात्मिक उपदेश को श्रवण करके बहुत से प्राणी संसार के बन्धनों को तोड़कर इच्छा रहित होकर, पाप-पुण्य से निर्लेप होकर ज्ञानस्वरूप परमपवित्र नित्य अजर-अमर अपने आत्मा के दर्शन करके जीवनमुक्ति का आनन्द लेते हैं। गुरुमहाराज जी ने अपनी वाणी में कहा है–

"जुगन-जुगन हम कहते आये, भवसागर से जीव छुड़ाये"

अर्थात् हम सभी युगों में अवतार धारण करके इस संसार में आते हैं तथा सभी जिज्ञासुओं को स्व-आत्मा का सदुपदेश देकर संसार-रूपी

सागर से पार कर देते हैं अर्थात् वह प्राणी जिसे आत्मदर्शन हो गया है वह सदा के लिए संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है फिर उसे संसार का बन्धन नहीं रहता, वह इस पाँच भौतिक शरीर में भी रहता हुआ सदा जीवनमुक्ति का आनन्द लेता रहता है तथा शरीर के छूटने पर आत्मा में लीन हो जाता हैं क्योंकि कबीर जी ने कहा है कि–

नूर के गायन नूर कुँ गावै, नूर सुनन्ते बहुर नही आवैं।
नूर कबीरा नूर ही भावै, नूर के कहे परम पद पावै॥
आपै ताल झांझ झनकारा, आप नचै अप देखनहारा।
कहै कबीर ऐसी आरति गांऊँ, आपामध्ये आप समाऊँ।

सब जगह चैतन्य स्वरूप आत्मा ही आत्मा है इसलिए आत्मा को (सब जगह यह आत्मा ही व्यापक है) इस रूप में जो सद्गुरु के उपदेश के अनुसार जान लेता है वह परम पद प्राप्त करता है तथा आत्मदर्शी ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में क्रिया कर्म कर्त्ता यह सब आत्मा ही आत्मा है बाकी कुछ नहीं रह जाता है। इसलिए जो पुरुष इस पद को प्राप्त कर लेते हैं वे शरीर में रहते हुए जीवनमुक्ति का आनन्द लेते हैं। शरीर छूटने पर "आपा मध्ये आप समाऊँ" के अनुसार स्वात्मा में ही लीन हो जाते हैं।

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्॥

अर्थात् जो स्वात्मदर्शी ज्ञानी जन अपनी आत्मदृष्टि से सब प्राणियों में स्वात्मा को देखता है वह महा-तपोधन वीतराग आत्मदर्शी ज्ञानी जन सर्वत्र सम-भावना प्राप्त करता है तथा अन्तकाल में अपनी आत्मा में ही लीन हो जाता है। किन्तु यह जीव जन्म-जन्मान्तर के कर्मों की वासना से "मेरा क्या कर्तव्य है" इस स्व-लक्ष्य को भूलकर संसार के विषयों में लिप्त हो जाता है 'मैं मेरी' के चक्कर में फँस जाता है, मोह ममता की बेड़ी इसे जकड़ डालती है तथा जीव को कर्तव्य-अकर्तव्य का कोई ज्ञान नहीं रहता तथा नाना प्रकार से काम क्रोध लोभ मोह में फँस जाता है और इस के सभी दिन संसार के पदार्थों की चिन्ता में ही जाते हैं। मोहाच्छादित बुद्धिवाले इस जीव को आशा-तृष्णा विषयों की तरफ लुभायेमान करती

रहती है, तथा यह जीव जितने प्रकार के शुभ-अशुभ कर्म करता है। तथा कर्म करके फिर दूसरे जन्म की प्राप्ति करता है तो फिर पिछले जन्मों के संस्कारों के कारण संसार के भोगों की कामना फिर से जागृत होती है तथा यह उस आशा तृष्णा से प्रेरित होकर फिर से कर्म करता है तथा जन्म प्राप्त करता है इस प्रकार इस जीव का यह जन्म मरण का चक्र समाप्त नहीं होता। श्री जगद्गुरु जी महाराज ने कहा है–

आशा तृष्णा बनी दुल्हनि, मनसा नारी सोई।
बंगले कै दरवाजे बैठी, देख सहेली दोई॥
दूती दोइ दलों बिच खेलै मोहे सुर नर सारे।
गण गन्धर्व और ज्ञानी-ध्यानी बंगले मांहि पछारे।
काम-क्रोध और लोभमोह की मदिरा प्यायी भारी।
गरीब दास सद्गुरु सौदागर भवसागर सैं तारी॥

अर्थात् सभी देवी-देवताओं तथा गण-गन्धर्व आदि सब के जन्म का कारण यह आशा तृष्णा ही है। इसी के वश में आकर ही देवी देवता भी संसार के चक्कर मे घूमते हैं। किसी को कहीं भी चैन नहीं है। यह शरीर रूपी बंगला आशा-तृष्णा के कारण से ही मिलता है। सो शरीर करके पदार्थों का उपभोग होता है तथा उपभोग से आशा तृष्णा उत्पन्न होती है तथा उनसे फिर जन्म होता है। इस प्रकार से आशा तृष्णा के चक्र से छूटना बड़ा कठिन है। किन्तु श्री जगद्गुरु जी कहते हैं कि जब सद्गुरु की कृपा होती है तब यह प्राणी फिर भवसागर के गढ़े में नहीं गिरता। इसलिये यह सब आशा तृष्णा काम-क्रोधादि विषय इस जीवात्मा के बन्धन के कारण शत्रु हैं इस लिये जिस प्रकार शत्रु अपने प्रतिपक्षी को पाकर मारता है नाना प्रकार के कष्ट देता है उसी तरह से यह आशा-तृष्णा आदि भी इसको दृढ़ बाँधकर जन्म-जन्मान्तर के चक्कर में डाल देते हैं तथा यह जीव इन शत्रुओं से पतन रूपी कूप में डाला जाने पर कोटि-कोटि जन्ममरण के चक्र में पड़ा हुआ यातनाओं को सहन करता है इसी को जगद्गुरु जी ने इन विचारों को जीव का शत्रु है, ऐसा कहा है।

काम क्रोध लोभ मोह शत्रु हैं तुम्हारे।
हरष शोक राग दोष पकर क्यों न मारे॥
तीन चीन्ह पाँच मार पकड़ो मठधारी।
पुत्र तो पचीस संग सैना है अपारी॥
पाँच नार घट मझांर मन की पटरानी।
द्वादश दल कोट कटक सैना है विरानी॥
साहूकार पकर लीन्ह लूटैं गढ़ चोरा।
आत्म तो अनाथ जीव सुनो राम बाप मोरा॥

काम क्रोध आदि शत्रुओं की बहुत बड़ी सेना है, ये शत्रु सेना सहित जहाँ पर हमला कर देते हैं, वहाँ पर खूब लूट करते हैं। अर्थात् जीव को अधिक से अधिक संसार के पदार्थों के भोगों की वासनाओं में फँसा देते हैं, जिससे यह जीव अनन्त काल तक अपनी आत्मा को न चीन्ह कर (जान) इसी मोह ममता के चक्र में पड़ा रहे। इस अवस्था में जब कि जीव को कोई ज्ञान नहीं होता वह, मरण जन्म विषय के उपभोग, से अधिक और कुछ जानता ही नहीं, क्योंकि उसकी ज्ञान दृष्टि अज्ञान से ढक गई है अब वह सांसारिक दुःख-सुख भोगों के उपभोग करने से अधिक और कुछ नहीं जानता, तो इस दुःखमय अज्ञानमय तमोमय जीवों के महाशत्रु जन्म-मरण के कारणभूत अज्ञान की तलवार को झनाझन असहाय जीव पर चलती देखकर, अवतार धारण कर उस जीव के सामने आकर, उसे संसार सागर से निकालने के विचार से "आत्म तो अनाथ जीव" अर्थात् विषयों से लिप्त हो करके यह जीव अब कुछ नहीं कर सकता तब पार ब्रह्म के ज्ञान कराने में समरथ जगद्गुरु जी महावाक्य का उपदेश करते हैं–"सुनो राम बाप मोरा" हे जीव सबका रक्षक राम ही है। इसलिए तुम उस परम दयालु जीवों को भवसागर से पार उतारने में समर्थ श्री जगद्गुरु के महावाक्यों से यह जानों कि परमपिता परमेश्वर जगत पिता सर्वत्र व्यापक श्री सद्गुरु देव राम ही सबके भव बन्धन काट कर उसे मुक्त करने वाले हैं। इसलिए हे जीव–

'राम सुमर राम सुमर राम सुमर हीरा।
मुस्कल तो आसान होये मेटै दुःख पीरा॥
चेत अन्ध कटै फन्ध जम के जंजीरा।
भाजैं जम दूत भूत तलबी तागीरा॥

अर्थात् हे जीव जब तू राम स्मरण करेगा, तो तेरे सब बन्धन दूर हो जावेंगे। तेरा अन्ध=अज्ञान दूर हो जावेगा जम के बन्धन टूट जावेंगे। फिर तेरे समीप जम के दूत नहीं आ सकते, तू संसार में विजय प्राप्त करेगा।

"राम सुमर राम सुमर राम सुमर लैरे।
जम और जहान जीत तीन लोक जैरे।"

अर्थात् फिर तीन लोक में तुझे कोई भी बन्धन नहीं डाल सकता। क्योंकि यह मार्ग अति झीना है। इस मार्ग में न तो विषय ही जाते हैं न विषयी पुरुष ही। इसलिए तू उस परम सूक्ष्म तथा राम धाम सतगुरु धाम को पहुँचने वाले मार्ग में चल–

राम सुमर राम सुमर राम सुमर बीना।
नहीं कुछ घाट बाट, मार्ग अति झीना।टेक॥
ध्रुव कूं जो धरे ध्यान छूट गये मलीना।
गाया प्रहलाद राम अकल पद अकीना॥

अर्थात् राम सुमरण का मार्ग अति सूक्ष्म है। उस मार्ग पर चलने वाले पथिक को काम क्रोध आदि कुछ नहीं कर सकते। वह तो परमपवित्र राम स्मरण से प्रकाशमान निर्मल शुद्ध-बुद्ध आत्मा का साक्षात्कार करके सदा के लिए इन बन्धनों से छूट जाता है। जैसे ध्रुव नाम जप कर पापरहित हो गया। नाम जप कर ही प्रह्लाद भी परम पद को प्राप्त हो गया। तथा उसी तरह और भी बहुत से भगत नाम जप कर निर्बन्ध हो गये। हे जीव! तू भी नाम जप। तथा हे प्राणि तू इन काम क्रोधादि को शत्रु एवं सब पदार्थों के भोगों को विष जान। जैसे कोई प्राणी विष खाकर मर जाता है उसी प्रकार विषय सेवन करने वाला प्राणी मर जाता है। विशेषता यही रह जाती है

कि विष खाकर मनुष्य एकबार ही मरता है किन्तु विषयसेवी तो अनेक बार मरता है तथा अनेक बार जन्मता है। किसी ने कहा भी है–

विष विषय के भेद को जानत है मुनि सन्त।
विष खाकर एकबार मरे विषयी अन्त-बे-अन्त॥

श्री आचार्य जी स्वयं कहते हैं।

काम सहर क्रोध कहर लोभ लहर ऊठैं।
मोह के तो परे फन्ध कैसे कर छूटैं॥
अगड़ी हठवांन बाँका जोधा मन राजा।
कोटि तो निशान धुरैं, बाजैं अनन्त बाजा॥
सैना दल अपार सजैं शंख लहर लहरी।
खसिया मन राज करै, मरद है न मिहरी॥
स्वर्ग और पताल मिरत, तिहूँ लोक लूटैं।
सतगुरु के शरणे आये सोई जन छूटैं॥
काया गढ़ नहीं तेरा, देह साच मानी।
भाड़े की दुकान यार, सो तो है बिरानी॥
दूने तीने नाहिं किन्हें, हाट बीच टोटा।
पकरैंगे जमजहूद तौरैंगे लंगोटा॥
होयेगा बे वतन हँस, देह जार दीनी।
गरीबदास कहाँ बास पन्थ खोज मीनी।

अतः विष रूपी विषयों का त्याग करके सदा ही सद्गुरु की शरण रहे। क्योंकि यह मन राजा काम क्रोधादि अपनी सेना के बल से तीनों लोकों को लूट चुका है जैसे श्री परशुराम जी ने सम्पूर्ण पृथिवी को क्षत्रिय हीन कर दिया था उसी प्रकार इस मन ने भी तीनों लोकों को जीत लिया है। श्री परशुराम जी क्षत्रियों को जीतकर क्षमा मांगने पर छोड़ देते थे। किन्तु यह मन जिसकी कैद में काम-क्रोध, लोभ-मोह आशा-तृष्णा अहंकार आलस्य निद्रा वैर राग द्वेष आदि सब पहरेदार हैं। विषय वासनाओं की

संस्काररूपी दीवार है तथा विषयों में आसक्ति रूपी रज्जु से जीवों को सदा के लिए बाँध देता है। फिर जीव कभी छूट नहीं सकते, किन्तु जो जीव जिस समय सद्‌गुरु की चरण शरण जाकर प्रार्थना करता है कि हे बन्धन मोचन, मुक्ति दाता, माया से अतीत निर्बन्ध परमहंस जिज्ञासुओं के पथ-'प्रदर्शक अध्यात्मक मार्ग के उपदेशक श्री जगद्‌गुरु जी मैं आपकी शरण में आया हूँ तथा मुझे बताओ कि–

कैसे कर छूटै चौरासी, यूनी संकट बहुत तिरासी।
मोह के तो परे फन्द कैसे कर छूटैं॥

अर्थात् हे सद्‌गुरु जी मुझे जन्म मरण से कोई और बड़ा दुःख नहीं है, सो यह जन्म-मरण का दुःख मुझे बार-बार भोगना पड़ रहा है मैं स्वयं इस दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता, क्योंकि आशा तृष्णा ने कामादि देने वाले पदार्थों के उपभोग से मेरे गले में बहुत मजबूत फन्दा डाल दिया है जिसे मैं तोड़ नहीं सकता। हे सद्‌गुरु देव जी आप तो एक दृष्टि के प्रेक्षण मात्र से ही इस फन्ध को तोड़ने में समर्थ हैं। इसलिए मैं आपकी शरण आया हूँ। मेरे बन्धन से छूटने का मार्ग मुझे बताओ। तब शरणागत जिज्ञासु की अति नम्र उक्ति को सुनकर उसके बन्धन से छूटने का उपाय बताते हैं–

भगत बीज जो होवै हँसा, कोटयौं जीव उधारे बँसा।
उधरैं हँस पार हो जाहिं, भौसागर में बौहर न आंहिं॥
गरीब शब्द हमारा मान हैं, जाकै हिरदै हेत।
अमर लोक पहुँचाय हूँ, रूप धरत हूँ सेत॥

श्री जगद्‌गुरु जी कहते हैं कि जो जीव निराकार निरालम्भ निर्मल निर्बन्ध पारब्रह्म परमेश्वर की भक्ति करते हैं वे स्व-आत्मा का कल्याण करते हुए और भी अनेकों जीवों का कल्याण करते हैं। जब भक्ति करने से जीव निर्बन्ध हो जाता है तो फिर संसार के चक्र में नहीं आता है। तथा भक्ति भी संसार के उपभोग्य पदार्थों की वासना का परित्याग करने पर ही हो सकती है अतः हे जीव, संयम व्रत को धारण कर–

प्रथम अनजल संयम राखै, जोग लक्षण सब सतगुरु भाखै।

जीव सर्वप्रथम स्थूल त्याग करे अर्थात् उपभोग्य पदार्थों का ही परित्याग कर संयम व्रत का पालन करे पश्चात् मोक्ष के सूक्ष्म मार्ग का ज्ञान भी ऐसे जिज्ञासु को हो जाता है तथा ज्ञान द्वारा विषयों का परित्याग करके योग की परम सिद्धि को प्राप्त करता है। जिससे जीव का आवागमन सदा के लिए मिट जाता है, कहा भी है–

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिपु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम्॥

अर्थात् रथ को ठीक मार्ग पर ले जाने वाला सारथी जैसे घोड़ों को अंकुश के बल से मार्ग के बीच में संयत रखता है, उसी प्रकार अध्यात्मक पथ पर ठीक चलते हुए लक्षित परमधाम की प्राप्ति पर्यन्त पहुँचने के लिए विद्वान पुरुष विषयों में आकर्षित करने वाली सभी इन्द्रियों को वश में करने का यत्न करे। इन सभी इन्द्रियों का राजा मन है जैसे मधुमक्खी के राजा मक्खी को पकड़ने पर मक्खियाँ वहीं बैठी रहती हैं, उसी तरह इन्द्रियों के राजा मन को वश में करने से सभी इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं। कहा है–

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणोनोभयात्मकम्।
यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ॥

अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन है, यह मन सूक्ष्म है। विषयों का ज्ञान करता है। समाधि में आत्मा का प्रत्यक्ष भी मन ही करता है। अतः मन अन्तःकरण का अवयव भी है एवं इन्द्रिय भी। इस मन को जीत लेने पर सभी इन्द्रियाँ भी जीती जाती हैं क्योंकि "दशमलक्षणायुक्तस्य मनो विद्यात् प्रवर्तकम्" दश संख्या वाले इन्द्रिय समूह का मन ही प्रवर्तक है इसलिए मन को वश में करना चाहिए। आचार्यदेव जी कहते हैं कि–पाँच कर्म पाँच ज्ञान गहेली, ये मन की हैं आदि सहेली। तथा–

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तानेव ततः सिद्धिं नियच्छति॥

जब इन्द्रियाँ विषयों में लग जाती हैं तथा विषयों के उपभोग में ही संयम के निकलने के कारण जीव का दृष्ट-अदृष्ट सब बिगड़ जाता है तथा उन्हीं इन्द्रियों को जीतने से यह जीव सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है। इसलिए संयम अति आवश्यक है। तथा इस भावना को कि मैं उस पदार्थ के भोग से अपनी इच्छा को पूरा करूँगा, सर्वथा त्याग ही देना चाहिए क्योंकि–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

मनुष्य की अभिलाषा काम्य पदार्थों के उपभोगों से शांत न होकर प्रज्वलित अग्नि में घी डालने से अग्नि की तरह बढ़ती है। इसलिए संयम ही मनुष्य को इस संसार के दुःखों से बचा सकता है। जो पुरुष विषयों का त्याग करता है, वह लोक-परलोक सर्वत्र सुखी रहता है। एवं सर्व प्राणियों का पूजनीय भी वही होता है। क्योंकि वह विषय से विमोहित प्राणियों में श्रेष्ठ है। इसमें प्रमाण भी है–

चश्चैतान्प्रप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत्।

प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते॥

अर्थ-जो मनुष्य प्राप्त विषयों का उपभोग करता है तथा जो प्राप्त सभी पदार्थों का परित्याग कर देता है। उनमें त्याग सवोत्तम कर्म है। अतः सर्वोतम त्याग कर्म को करने वाला ही सर्वोतम या श्रेष्ठ है। सब जगह लोक परलोक में वही सुख भी प्राप्त करता है और वह ही त्याग करता हुआ त्याग की पराकाष्ठा अवस्था तक पहुँच करपरमपद मोक्ष की प्राप्ति करता है। योग दर्शन के कर्त्ता भगवान् पतत्जलि महाराज भी कहते हैं "वीतरागविषयं वा चित्तम्" जिस योगी का चित्त सभी प्रकार की कामनाओं से विमुक्त हो गया है तथा सभी पदार्थों के राग से भी रहित हो गया है वही परम पद को प्राप्त करता है। अतः मन को रागरहित करने के लिए सभी इन्द्रियों का संयम अति आवश्यक है। यदि एक इन्द्रिय भी अपने विषय में संलग्न है, तो वह मनुष्य की बुद्धि को हर लेती है। इसी विषय में मनु भगवान् कहते हैं–

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम्॥

अर्थ-यदि एक इन्द्रिय भी अपने विषय में रमण करती है तो उस से ही मनुष्य का ज्ञान ऐसे नष्ट हो जाता है जैसे चमड़े के बने पात्र का जल एक छिद्र से निकल जाता है। गीता में भी कहा है कि–

इन्द्रियाणां ही चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

अर्थात विषयों में रमण करने वाली जिस एक इन्द्रिय के भी मन वश है तो वह एक इन्द्रिय ही मनुष्य की बुद्धि को हर लेती है इसलिए–

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।

सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिणवन्योगतस्तनुम्॥

अर्थ-बाहर के इन्द्रिय समूह को वश में करे और मन को रोक करके मनुष्य अपने शरीर को पीड़ा न देता हुआ मोक्षादि अर्थों का अच्छी तरह से साधन करे। संयम से मनुष्य को एक शक्ति मिलती है जिसके बल से वह संयतात्मा कठिन से कठिन विपत्ति को सहन कर सकता है। अपने मानसिक बल से निर्लेप निर्बन्ध रहता है। तथा अन्त में परमधाम मोक्ष पद को प्राप्त करता है परन्तु जो लोग संयम नहीं करते विषयासक्त रहते हैं तथा विषयों के उपभोग की प्राप्ति के लिए कर्म करते हैं तथा स्वकर्मवशात् सुख-दुःख मरण जन्म आदि बहुत दुःखों को सहन करते हैं क्योंकि श्री जगद्गुरु श्री गरीब दास जी महाराज जी स्वयं कहते हैं कि जो प्राणी विषयासक्त होकर नाना प्रकार के पाप का आचरण करते हैं उन्हें उनका फल तो अवश्य ही भोगना होगा।

सत का राज धर्मराय करहीं। अपना किया सबैं डंड भरहीं॥

क्योंकि सबके कर्म का निवेरा धर्मराज ही करते हैं जो कर्म जिसने जैसा किया उसका फल भी उसको वैसा ही मिल जाता है यहाँ पर प्रमाण भी है–

'शुभाशुभ फलं कर्म मनो वाग्देह सम्भवम्।

कर्मजा गतयो नृणामुतमाधमध्यामा'॥

अर्थात् मनुष्य, शरीर, इन्द्रिय तथा मन द्वारा तीन प्रकार के कर्म करता है और उस शुभ-अशुभ कर्म के फल को वह प्राणी भोगता क्योंकि उत्तम, मध्यम अधम यह तीन प्रकार की गति यह जीव कर्म करके ही प्राप्त करता है जैसे–"उद्भित खानी भुगतैं प्रानी"

शरीरजैः कर्म दोषैः याति स्थावरतां नरः।

वाचिकैः पक्षिमृगतां माव सैरन्त्यजातिताम्।

अर्थ-शरीर द्वारा किये गये अशुभ कर्मों के वश से यह जीव स्थावर पर्वत वृक्ष आदि योनियों को भोगता है। तथा वाक् से किये गये अशुभ कर्मों को पक्षी तथा मृग आदि योनियों में जाकर दुःख भोगता है और मन से किये गये अशुभ कर्म के फल को नीच एवं समाज से बहिष्कृत मानव जातियों में जन्म लेकर नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है। इसलिए पाप कर्मों से सदा डरते रहना चाहिए। जो विषय में आसक्त ही रहते हैं तथा अध्यात्मक मार्ग को नहीं जानते वे अवश्य ही धर्मराज की कैद में अनन्त काल तक रहते हैं और दुःखों को भोगते हैं। तथा कभी भी मुक्ति को नहीं पाते जैसे कहा है कि–

यदि तु प्रायशोऽश्धर्मं सेवते धर्ममल्पशः।

तैर्भूतैः स परित्यकक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः॥

अर्थ- जो प्राणी अधिक पाप करता है तथा धर्म बहुत कम करता है क्योंकि विषयों के उपयोग के लिए कई प्रकार से पाप कर्मो का आश्रय लेकर उपभोग्य प़दार्थों का संघटन कर पाता है, सो वह प्राणी जो अधिक अधर्म करता है, वह यमराज की नरक रूपी कैद में जाकर दुःसागर में निमग्न हो जाता है। गीता में भगवान् कृष्णचन्द्र जी ने नरक के देने वाले दोषों का परित्याग करने को कहा है जैसे–

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

अर्थ-काम, क्रोध और लोभ यह तीन नरक के द्वार हैं जो प्राणी इनमें से किसी एक के भी वशीभूत हैं वह अवश्यम्भावी नरक गामी जीव है। इसलिये नरक से डरने वाले प्राणी इन तीन नरक के द्वाररूपी विषयों का

सर्वथा परित्याग करें। इनका परित्याग करके सदा के लिये उस जीव का मार्ग प्रशस्त निष्कण्टक हो जाता है। उसे अपने मोक्षधाम की प्राप्ति में कोई बाधा नहीं आती और वह प्राणी अपने परमधाम को निर्बाधरूप से जा सकता है।

एता दृष्टवाऽस्य जीवस्य गतीः स्वैनैव चेतसा।

धर्मतोऽर्मतश्चैव धर्मे दध्यात् सदा मनः ॥

अर्थ-प्राणी पाप से तथा धर्म से प्राप्त होने वाली उत्तम मध्यम तथा नीच गतियों का स्वयं विचार करे। पाप मूलक अधम एवं नीच गति में जानेवाले जीव दुःख ही दुःख भोगते हैं। सुख तो उन्हें लेश मात्र भी नहीं मिलता है। इस धर्ममूलक उत्तम-गति स्वर्ग मोक्ष आदि, पद की प्राप्ति के लिये यत्न करें। जैसे धर्म स्थूल तथा सूक्ष्म विचार से दो प्रकार का होता है उसी प्रकार उसके फल भी स्थूल स्वर्ग आदि, सूक्ष्म मोक्ष आदि प्राप्त करता है। पुण्यकर्म तथा यज्ञ आदि से स्थूल धर्म उत्पन्न होता है। जिसका लौकिक एवं पारलौकिक स्वर्ग के सुखों की प्राप्ति फल है और तप संयम त्याग वैराग भजन आदि मानसिक सूक्ष्म कर्मों से सूक्ष्म धर्म उत्पन्न होता है तथा इसी सूक्ष्म पुण्य के फलस्वरूप जीव को मोक्ष आदि परम पद की प्राप्ति होती है। तप भजन स्थूल और सूक्ष्म भेद से दो प्रकार के होते हैं। शरीर और इन्द्रियों से किया जाने वाला तप जैसे भूख प्यास गर्मी सर्दी आदि द्वन्द्व सहन तप तथा मालादि से अवतारों के नाम का जप एवं अवतारों के नाम का संकीर्तन ये स्थूल तप तथा स्थूल भजन का स्वरूप है। स्थूल तप एवं भजन से जीव मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता। हाँ! स्थूल तप तथा भजन के बाद सूक्ष्म तप एवं भजन करना पड़ता है। पश्चात् सूक्ष्म मार्ग का ज्ञान उसे हो जाता है तथा वह सूक्ष्म मार्ग का परिपथिक बनकर परमपद की प्राप्ति कर सकता है। अतः सर्वोत्तम भजन सूक्ष्म पथ का विषय है। श्री जगद्गुरु जी सूक्ष्म भजन करने के लिये ही बार-बार ढिंढोरा देते हैं। वे कहते हैं कि–

"आत्मराम बिनानी हमरै आत्मराम बिनानी।।टेक॥

जो जानै सोई पहचानै गावैं अनहद बानी॥

अन्धे गूंगे बहरे लोई, पूजैं पत्थर पानी।

बिना बन्दगी पार न उतरैं कोट जगकर दानी॥

हे जीव, पत्थर आदि स्थूल पूजा को छोड़, यह तो तुझे सूक्ष्म में प्रविष्ट करने के लिये ही थी। अब तो तुझे सूक्ष्य मार्ग में चलकर आत्मपद मोक्ष धाम को प्राप्त करना है।

नाम निरञ्जन नीका सन्तों नाम निरञ्जन नीका ।टेक॥

भजन बन्दगी पार उतारै, सुमरथ जीवन जीका।

कर्मकाण्ड व्यवहार करत हैं नाम अभय पद टीका॥

तीर्थ-ब्रत थोथरे लागे, जप तप संयम फीका।

आद अनाद भगति है नौधा, सुनो हमारी सीखा।

गरीबदास सतगुरु के शरणै, गगन मण्डल में दीखा।

नाम निरंजन नीका॥

अर्थात् वह परब्रह्म निराकार निर्लेप निर्बन्ध विज्ञानात्मा परमेश्वर का नाम जिसे तू जपना चाहता है वह अत्यन्त सूक्ष्म है। उसके जप में तो—

"चले न जिह्वा फरके न होठा, अजपा जाप जपावै।

कृपा भई सतगुरु देव की, तो परम पद पावै॥

अर्थात् तीर्थव्रत कर्मकाण्ड तो मन की शुद्धि का ही साधन हैं। इससे मोक्ष पद नहीं मिल सकता। यदि तुझे मोक्ष पद को प्राप्त करने की इच्छा हो तो अजपा जाप कर, फिर तुझे मोक्ष प्राप्ति करने में कोई अधिक समय नहीं लगेगा। न अधिक कष्ट ही होगा। अनायास ही मोक्षपद की प्राप्ति हो जावेगी। अपने आत्मसाक्षात्कार के लिए अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति के लिए तुझे बन तीर्थादि में जाने की आवश्यकता नहीं है। वह साहिब पारब्रह्म परमात्मा तो तेरे इस शरीर के अन्दर ही है। तू बाहिर मत भटक। तेरा साहिब तेरे अन्दर है।

दिल अन्दर दीदार दर्शन बाहिर अन्त न जाईये।

काया माया कहा वपरी, तन मन सीस चढ़ाइये॥

झिलमिल नूर जहूर जोति, कोटि पदम उजियार है।

उलटो नैन बेसुंन विस्तर, जहाँ तहाँ दीदार है॥

अगर दीप में ध्यान समोई, झिलमिल-झिलमिल होई।

तातै खोजौ काया काशी, दास गरीब मिलै अविनाशी॥

घट में दर्श जहूरा साधो भाई, घट में दर्श जहूरा।

कायर कीर उलट कर भागे पहुँचेंगे कोई सूरा॥

त्रिकुटी महल में ध्यान समोये, झिलमिल २ नूरा।

अगर दीप में आसान मारौ, मिट गई जम की घूरा।

शंख पद्म जहाँ प्रकट देखे मुरसद मिलिया पूरा।

दासगरीब अटल जागीरा काटै कौन कसूरा॥

अर्थात् हे जीव बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। सच्चे भाव से पूर्ण वैराग्य से भोगों की तृष्णा का त्याग करके, सद्गुरु की शरण में रहकर निर्बन्ध निराकार, सर्वव्यापक सर्व-शक्तिमान, विज्ञानात्मा पारब्रह्म परमेश्वर को सर्वत्र व्यापक जानकर तीर्थ आदि कर्मों को व्यावहारिक, अंतःकरण की शुद्धि का हेतु जानकर, परम वैराग्य द्वारा, संसार तथा संसार के पदार्थों में मिथ्या प्रतीति करके, मानसिक जप, जिसे अजपा जाप कहते हैं, के द्वारा ही परमधाम मोक्षपद की प्राप्ति होगी, ऐसा निश्चय करने से, अपने दिल के अन्दर ही साहिब जगद्गुरु जगदीश्वर पारब्रह्म परमेश्वर की प्राप्त होगी। ऐसा दृढ़ निश्चय करके अपनी कायारूप काशी की खोज करो इसमें ही तुझे साहिब मिलेंगे। अतः हे जीव अजपा जाप जप। क्योंकि—

गरीब काल डरै कर्त्तार सै, मन माया का नाश।

गरीब सोहं सुरति लगायले, गुण इन्द्रिय से वंच।

नाम लिया तब जानीयें, मिटै सकल प्रपंच॥

हे जीव वह मैं ही हूँ, इस प्रकार का दृढ़-निश्चय कर ले। तथा इन्द्रियों के विषयों का परित्याग कर दे। फिर तुझे आत्माराम की प्राप्ति होगी और

तेरे पास में फिर कभी भी काल नहीं आयेगा। श्री सद्गुरू देवजी कहते हैं–

ॐ सोहं अजपा जापं, जासैं मिटै हैं तीनों तापं॥
ओऽम् सोहं मन्त्र जपिए, जोग जुगत याह धुनि तपिये॥
ओऽम् सोहं मन्त्र सारं सुरति निरत सैंकरे उच्चारम्॥
राम नाम जपकर थिर होई, ओंऽम् सोहं मन्त्र दोई ॥

सोहं जाप जपने से इस जीव के तीन ताप नष्ट हो जाते हैं और यह मरण जन्म के चक्र से छूट जाता है। क्योंकि जन्मादि का कारण इच्छा है। सो तो महाराज की वाणी के अनुसार भजन करने से नष्ट हो जाती है।

अगर डोर है मारग बाका, इच्छा बीज जरै सब टाँका।
बिन ही बोले कह समझावै। इच्छा मेटै शब्द मिलावै॥

अर्थात् भजन करने से जन्मादि का हेतुभूत इच्छा का नाश हो जाता है। इच्छारहित मन ही अपने मूल कारण शब्द में मिल सकता है और जब यह जीव शब्दभेदी हो जाता है तो–

क्षुधा तृष्णा तांहि न व्यापै, निद्रा नीन्द काल नहिं झापै।
हृदय अजपा जाप जगावै, जैसे शेष सहंस फन गावै॥
किलियं ॐ हरियं सोहं, गुझ गायत्री सैं दिल घोवं।
तूंहीं तूंहीं रंरकार रट रसना, ऐसे त्रिकुटी महल में धंसना॥
पलक मूंदकर पलना हलावै।

इस प्रकार यह निश्चित है कि शब्दभेदी जीव को क्षुधा तृष्णा आदि द्वन्द्व तथा काल उसको नहीं दुःख देते हैं। उतरैं हंसा पार हमेशा।

संध्या आरति करो विचारी, काल दूत जम रहैं झखमारी।

शब्द का भेदी जीव निर्बन्ध निर्लेप अजर शुद्धबुद्धि रूप हो जाता है, काल का उसे भय नहीं रहता और उसे सर्व जगह ही पारब्रह्म चैतन्य ही दृष्टि में आता है वह कह सकता है कि "सत्यं ब्रह्म जगत् मिथ्या" सोहं

'अहंब्रह्म' सब संसार मिथ्या है केवल एक ब्रह्म ही सत्य है जिसे मैं ईश्वर कहता हूँ, जिसे मैं ब्रह्म कहता हूँ, वह तो स्वयं मैं हूँ।

कबीर तूं तूं करता तूं भया, मुझमें रही न हूँ।
बारी फेरी मिट गई जित देखूं तित तूं॥

मनु महाराज कहते हैं–

सर्वमात्मनि संपश्येत् सच्चसच्च समाहितः।
सर्वं ह्यात्मनि सम्पश्यन्नधर्मे कुरुते मनः॥

अर्थ-सत् रूप ब्रह्म एवं असत् रूप जगत् को जानता हुआ अपने में स्थित ब्रह्म का एकाग्र मन से ध्यान करे। इस प्रकार ब्रह्म के ध्यान करने वाले पुरुष का मन अधर्म में नहीं लगता और वह अपने परमस्वरूप चैतन्य रूप में लीन हो जाता है। यही जीव का गन्तव्य स्थान है यही जीव का आत्मसाक्षात्कार है। इसी को आत्मज्ञान कहते हैं। जीव परम[illegible] करके इसी पद को प्राप्त करता है अतः सभी को इस मार्ग को जानना चाहिए तथा इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। यह सबका गन्तव्य स्थान मोक्ष पद परम धाम है। ।इति॥

(स्व. भक्तराम अवधूत)

॥ तात्त्विकोपदेश ॥

हम इस समय भक्ति एवं ज्ञानपूर्ण, वैराग्य एवं सौजन्यपूर्ण सत्यवादित्व तथा योगादिगुणपूर्ण साकार और निर्विकार, अभिनन्दन एवं वन्दनयोग्य, आदिशुद्ध-परमविशुद्ध, स्वतःसिद्ध, सिद्धराज, परमयोगीश्वर, परमविशुद्ध, "गरीबदासीय" सम्प्रदाय को जन्म-प्रदान करनेवाले वीतराग, जनानुरागी, जगद्गुरु श्री १०८ श्री गरीबाचार्य जी के अवतरण के कारण का निरूपण करते हैं।

आप सत्वादि सर्वश्रेष्ठ गुणों के सागर एवं सात्विक संसार के गुरु थे। आप बुद्धि-शुद्धि की खान तथा संशय और विपरीत ज्ञान के नाश के कारण थे। अर्थात् सभी जिज्ञासुओं के संशय तथा विपरीत ज्ञान के नाश

करने के लिये ही अवतार धारण करके जगत में आये थे इतना ही नहीं श्री सद्गुरु जी महाराज सुदृढ़-धारणावाले ब्रह्मनिष्ठ आत्मनिष्ठा में दृढ़निश्चय वाले तथा जगत के जन्म-पालन एवं संहार करनेवाले अर्थात् जगतकी उत्पत्ति, जगत् की स्थिति और जगत् का प्रलय जिसके द्वारा होता है उस परमपिता परमेश्वर के ही आंशिक एवं सभी अवतारों में सर्वोत्तम अवतार थे। आप ऋषि-महर्षियों के पुण्य-पुञ्ज के समान तथा ऋषियों के द्वारा एकत्रित किये गये तप से पवित्र इस भारत भूमि के शान्त एवं उदार व्यक्ति थे। तथा सभी भारत भू-वासी जनों के लिये सन्मार्ग प्रदर्शक थे। आप आरम्भ-काल से ही दीनबन्धु एवं भक्त वत्सल थे।

पवित्र उस कथन को श्री सद्गुरु जी महाराज हमेशा ही ध्यान में रखा करते थे, जिससे कि--पीलिया रोग ग्रस्त मनुष्य को सब पदार्थ पीले ही दीखते हैं किन्तु वास्तव में सभी पीले नहीं होते हैं, वैसे ही दृष्टि दोषात्मक रोगवाले मनुष्य को सभी चीजें आँखों के अग्रभाग में सूक्ष्म दीखती हैं किन्तु सभी इतनी सूक्ष्म नहीं होतीं। अंगुली आदि के दबाव से जैसे आकाश में एक ही चन्द्रमा के दो चन्द्रमा दीखने लगते हैं। वैसे ही अविद्या रूपी पंङ्क में निमग्न सभी प्राणियों को अज्ञानरूपी रोग लगा है जिससे उन्हें सभी मिथ्या-पदार्थों की सत्यप्रतीति होती है। जगद्गुरु श्री महाराज जी को इस असार संसार के सभी पदार्थ मिथ्या भासते थे। अतएव वे किसी भी सांसारिक पदार्थ में लिप्त नहीं हुए, एवं सभी जिज्ञासुओं को भी इस मिथ्या जगत् के सभी पदार्थों की वासना का परित्याग करने तथा नित्य-शुद्ध-बुद्ध स्वात्मा में परिपक्व निष्ठा करने का उपदेश देते थे। जगद्गुरु जी ज्ञानदृष्टि से अज्ञान के कारण सत्य एवं प्रिय भासने वाले अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों तथा उनके भोगों को असत्य तथा माया का प्रपञ्च समझते थे।

गरीब दृष्टि पड़े सो फना है, धर अम्बर कैलास।
किरतम बाजी झूठ है, सुरति समोवो स्वास॥

अतएव वे सभी लोक-परलोक के भोगों को अवस्तु अर्थात् आत्मा के बिना संसार में कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु नहीं ऐसा समझते थे।

अर्थात् आत्मा प्राप्य वस्तु है। उसकी प्राप्ति के लिये ही यत्न करना चाहिये। इसका प्रधान कारण यही था कि श्री सद्गुरु जी महाराज स्व आत्मा के साक्षात्कार रूपी सम्पत्ति सम्पन्न एवं निरभिमान व्यक्ति थे। आपका अन्तःकरण सर्वदा सद्भावनाओं से भरा रहता था। तथा सभी प्रकार से शुभ वासनाओं से रञ्जित था। अर्थात् आप सभी सद्गुणों से भरपूर अर्थात सद्गुणों की खान थे। अतएव श्री जगद्गुरु जी के नाम स्मरण मात्र से ही सभी जिज्ञासु भक्तजन अपने सन्मार्ग में आनेवाली सभी विघ्नबाधाओं पर निशङ्क-निष्कलंक विजय प्राप्त किया करते थे एवं विजय प्राप्त करते हैं। आपने अपनी पवित्र तथा पुण्य मातृ-भूमि-भारत-भूमि पर अवतार धारण करके बालोचित अपने उस अनिवर्चनीय स्वभाव के प्रदर्शन से एवं बाल्यकाल के अनुसार अव्यक्त तथा तोतली वाणी से अपने माता पिता के हर्ष प्रकर्ष का संवर्धन उसी प्रकार से किया करते थे। जिस प्रकार वासुदेव व नन्द-यशोदा के घर में पाञ्चभौतिक एवं नश्वर शरीर को धारण कर दीनदयाल भगवान् कृष्णचन्द्र जी ने इस भारत के पाप एवं राक्षसरूपी भार का नाश करते हुये अपने बालोचित स्वभाव के अनुसार अव्यक्त तथा तुतलाती वाणी से नन्द-यशोदा के आनन्द का सवंर्धन किया था। जैसे कहा भी है--

"ईषदीषदनीधीतविद्यया तातमातृमृदमाविवर्धयन्" इत्यादि।

अर्थात् अव्यक्त और तुतली वाणी से अपने माता-पिता के हर्ष को बढ़ाते हुए एवं राक्षसों को मारकर पृथिवी का भार उतारते हुए अपने बाल जीवन की क्रिड़ायें आरम्भ की। तथैव श्री जगद्गुरु जी ने भी अपनी बाल लीलाओं से अपने माता-पिता एवं सभी का हर्ष बढ़ाया। आपने परम विशुद्ध-निर्मलज्ञान के आधार पर ज्ञानशक्ति एवं शुद्ध भक्ति से एवं वैराग्य और सभी वासनाओं के त्याग से एवं अपने सन्मार्ग प्रदर्शक आध्यात्मिक सदुपदेश से असार-संसार के दुःख हेतुक पदार्थों की वासनाओं में फँसकर सोते हुए सभी प्राणियों को जगाया।

श्री सद्गुरु जी ने इस प्रकार अपने मुखारविन्द से निकली हुई अमृतमयी वाणी द्वारा इस प्रकार समझाया कि वही मनुष्य धन्य हैं जो इस परमपिता

परमेश्वर एवं सद्गुरुदेव के रंग में रंगे हुये हैं अर्थात् इसमें तल्लीन हैं। यथा—

अवगति[१] रंग रंगे हैं धरन[२] ते, अवगति रंग रंगे हैं।।टेक।।
जो सूते सो जनम बिगूते[३], जागे सोई जगे[४] हैं।।१।।
सूरे[५] तेई[६] नगरी पंहुचे कायर उलट भगे[७] हैं।
नौंमे द्वारै दरस दरीबा[८], दसमें ध्यान लगे हैं।।२।।
सुँन[९] शहर में हुई सगाई हमरे हँस मगें हैं।
निर्गुण नाम निरालंभ[१०] चीन्हों हमरे साध सगे[११] हैं।।३।।
बिन मुख बानी सतगुरु गावें नाहीं दसत[१२] पगे[१३] हैं।
दास गरीब अगम पुर डेरे सत्य के दाग दगे हैं।।४।।

इस प्रकार से आपने मोह निद्रा में सोये हुये जीवों को ज्ञानोपदेश देकर जगाया।

आपके वचनों की मधुरिमा ने तथा जनों का जागृत करने की शुद्ध भावना ने भारत के अनेक प्राणियों को अपनी ओर खींच लिया था। यह सब क्यों न होता, कारण कि आप विशुद्ध चित्त स्वयं सगुणब्रह्म-भूतजगन्नियन्ता परमपिता परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप थे। तथा आपके

---

१. जिसमें साधारण मनुष्यों की पहुँचने की सामर्थ्य न हो तथा परमात्मा।
२. वही पुरुष धन्य हैं।
३. बिगाड़ना, खोना।
४. विश्यात तथा जो अज्ञान निद्रा त्यागकर ज्ञान को प्राप्त हुये हैं वही जागृत है और सब सोये हुये हीं।
५. सूर वीर।
६. वही।
७. भागना।
८. डेवढ़ी।
९. निराकार ब्रह्म।
१०. निराश्रय।
११. सम्बन्धी, समीपी।
१२. हाथ।
१३. पैर, चरण।

विशुद्ध चित्त के सर्वदा निज स्वरूप में लगा रहने से संसार में रहते हुए एवं संसारोचित कार्य सम्पादन करते हुए भी आप जल में कमल के समान सदा निर्लेप रहते हुए जीवों को होने वाले सभी दुःखों की सामग्री का अत्यन्त नाश कर दिया। अतएव आपके मुखारविन्द से मानव मात्र के ग्राह्य एवं आपके द्वारा स्वीकृत तथा प्राणीमात्र की हितकामना से ओत-प्रोत मानव के हित के लिये आपका सिद्धान्त जिन शब्दों में उच्चारित हुआ। उसी सिद्धान्त को जगतपितामह ब्रह्मा ने भी वैदिक वाणी में इसी प्रकार कहा है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्।।

अर्थात् सभी प्राणी सुखी हों, और सभी प्राणियों की विपत्तियाँ नष्ट हो जावें तथा सभी कल्याण प्राप्त करें, किसी भी प्राणी को दुःख न हो। इस प्रकार जो स्वयं ही दूसरों के लिए इस प्रकार की सुख की भावना रखने वाले व्यक्ति हैं भला वे स्वयं सुखी अथवा सुखस्वरूप क्यों न हों।

भगवान शङ्कराचार्य जी ने इस सांसारिक सुख को सुख का आभास बतलाते हुए अन्त में ''सर्व दुःखमयं जगत्'', सब संसार दुःख रूप है, इस सैद्धान्तिक दृष्टिकोण का व्यवस्थापन किया था। योग-दर्शन के निर्माता महर्षि पतञ्जलि ने भी संसार एवं संसार के सभी पदार्थों को मिथ्या एवं दुःखरूप बतलाते हुए ''सर्वं दुःखं विवेकिनः, अर्थात् ज्ञानी के लिये सब संसार दुःख रूप ही है, आर्य वाणी में सर्व जगत को दुःखरूप ही बताया है। उसी प्रकार अवाटय तथा जैगीषव्य, इन दो ऋषियों ने भी परस्पर संवाद में जैगीषव्य से अवाटय ने पूछा था कि दस महाकल्पों के अन्दर आपने संसार को सुखरूप-सुखकारणरूप, ''दुःखरूप-दुःखकारणरूप, इन दोनों रूपों में से किस रूप में अनुभव किया अर्थात्—यह चराचर जगत् क्या सुख एवं सुख का कारणरूप है। अथवा दुःख एवं दुःख का कारणरूप है। भगवान जैगीषव्य ने उत्तर में कहा—

'दशसु महाकल्पेषु विपरिवर्तमानेन मया यदप्यनुभूतं सर्वं दुःखमेव'

अर्थात् दशमहाकल्पों में एक शरीर में रहते हुए मैंने संसार दुःख-रूप है, सभी दुखों का कारण है यही अनुभव किया। अर्थात् संसार में सब दुःख ही दुःख है सुख कहीं भी नहीं है। इस प्रकार भगवान जैगीषव्य ने भी संसार एवं संसार के सभी पदार्थों को दुःखरूप ही बताया है।

परन्तु महाराज जी का कहना था कि संसार के प्राणी जिस दुःख के प्रवाह से भयङ्कर नदी की तरंगों में फँसकर डूबने की शंका से डर कर दौड़ते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, अर्थात्–जिस अन्धकार के अन्दर रहकर मनुष्य वास्तविक स्थिति को न समझता हुआ एकदम उसकी विभीषिका (भय) से व्याकुल हो उठता है। इसी प्रकार अविवेक रूपी रोग से पीड़ित हुए संसार के लोग भी संसार में दुःख के हेतु का विचार न करके तथा दुःख कारण के नाश के लिये उपाय को न सोचकर एकमात्र दूर भागते रहते हैं। किन्तु श्री आचार्य जी महाराज का अपना ऐसा विचार था कि दुःख से दौड़ धूप करना अथवा उसे देखकर अपने अन्दर विभीषिका (भय) उत्पन्न करना बहुत बड़ी अज्ञानता है।'

महाराज जी जगद्गुरु जी का इस दुःख मीमांसा के विषय में ऐसा विचार था कि मानव को जीवन में इतना आवश्यक है कि वह अपनी भावी उन्नति के लिये सदैव उत्साह एवं उत्कण्ठापूर्ण रहकर संतत यत्न करे। अपनी जीवन यात्रा में आने वाले दुःखों की सहनशीलता एवं उन्हें उनका उपभोग कर नाश करने के निमित्त सहर्ष एवं अत्यन्त स्वागत पूर्वक उन्हें स्वीकार करना चाहिए। अर्थात् भोगना चाहिए। दुःख के आधार पर उत्पन्न होने वाले मानसिक विषाद सम्बन्धी विचारों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। अर्थात् विचारना चाहिए कि वर्तमान जीवन में प्राप्त सभी दुःख सुख हमारे जन्म-जन्मान्तरीण पूर्वकृत कर्मविशेष का ही फल है। अतः इस दुःख का भी हमें आनन्दपूर्वक उपभोग करना चाहिए। इस प्रकार सहर्ष प्रफुल्लित मन से आए हुए अथवा आगन्तुक दुःखों का अनुभव करना चाहिए। दुःख अर्थात् दूषितफल दूषित कर्मों का ही फल है। ऐसा विचार कर दूषित कर्मों से अपने को सदैव बचाने की चेष्टा करनी चाहिए। तथा संसार को एवं संसार के सभी पदार्थों को ऐसा समझना चाहिए कि अपनी बुद्धि मन तथा ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय इत्यादि

इनका उपभोग करेंगे तो यह जीव सदा दुःख भोगता रहेगा।

आप लोगों को मालूम होगा कि समुद्र मन्थन के समय में समुद्र-मन्थन होने के अनन्तर समुद्र से अमृत, लक्ष्मी तथा विष इन तीन प्रकार की वस्तुओं का जब प्रादुर्भाव हुआ उस समय दुःख की निवृत्ति के कारण, आनन्द के प्रदाता एवं मन को सन्तोष तथा शान्ति प्रदान करने वाले अमृत तथा जगत जननी जगदम्बा महामाया के विलास के कारणभूत अमृत के साथ उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी देवताओं के भाग में वितरित हुई। जिनमें अमृत देवराज श्री इन्द्र को मिला तथा जगदम्बा माया श्री लक्ष्मी जी गिरिधर सुदर्शन चक्रधारी आनन्दकन्द श्री कृष्ण रूपधारी भगवान विष्णु को मिली। और दुःखनिधि के समुदाय भूत तथा साक्षात् दुःखरूप महाकाल के सदृश्य तीनों लोकों को भस्मसात करने में समर्थ हलाल विष का जब कोई भी ग्राहक न बना उस समय उस विष पदार्थ को जिसे देख कर सब देवगण एवं देवाधिराज इन्द्रादि को त्रसित भयत्रस्त देखा तो नित्य निरंजन भोले भगवान श्री शंकर जी ने सहर्ष उस दुःखनिधि के समान विष पदार्थ का पान कर लिया। तथापि स्वात्मभाव आनन्द में नित्य मग्न रहने लगे। तथा शरणागत भक्त जनों का नित्यप्रति कल्याण करने लगे। कहा भी है–

"शिवस्य श्रीनीलकण्ठस्य विषपानं यदुच्यते।
व्यानमस्य तेनापि सिद्धान्तस्य विधीयते॥"

अर्थ–नीलकण्ठ भगवान शिव के विषय में जो पुराणादि विषपान की कथा आती है कि भगवान शंकर ने जिस समय से विषपान किया है उसी समय से वे नीलकण्ठ हो गये। सद्गुरु जी ने कहा है कि–

नीलकण्ठ सोहै गरुडासन, शंभू योगी अचल सिंहासन॥

यह इसी दुःख मीमांसा सम्बन्धी सिद्धान्त का ही व्याख्यान है। इससे भगवान् नीलकण्ठ ने इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया कि जैसे आप लोग सुख को हँसते हुए एवं सहर्ष स्वीकार करते हैं उसी प्रकार [illegible] को भी सहर्ष एवं सादर भोगने में स्वकीय मन की उत्कण्ठा प्रकट करनी चाहिये।

इतना ही नहीं इस चराचर विश्व की रचना करने वाले श्री प्रजापति भी कहा है कि किसी अभीष्ट सिरदर्द के लिये किये जाने वाले कार्य के पूर्व में कष्ट उठाना ही पड़ता है। इसी से उस कार्य का साफल्य एवं सिद्धि बतलाई है। बड़े-बड़े विद्यार्थियों ने, बड़े-बड़े विद्वानों ने, बड़े-बड़े बलवानों ने, योगिजनों ने, तपस्वियों ने, ऋषि एवं महर्षियों ने, जीवनमुक्त तथा तत्वज्ञानियों ने प्रत्येक कार्य के प्राक् कष्ट उठाया और उस कष्ट को कष्ट का रूप नहीं दिया गया। भगवान प्रजापति ने इन चौदह लोकों की रचना करते हुए कितना कष्ट उठाया तथा उसी कार्य को सुचारुरूप से सम्पन्न करने के लिये ही उन्होंने बड़ी भारी अटूट तपस्या भी की। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है। परन्तु उन्होंने–

सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत। बहु स्यां प्रजायेय।

सोऽकामयत स तपोऽतप्यत॥

अर्थ–आदि पुरुष प्रजापति के मन में कामना हुई कि मैं "एकोऽहं बहु स्याम्" मैं एक ही बहुत रूपों में हो जाऊँ। वह आदि पुरुष जगद के आदि निर्माण में बहुत कष्ट होने से अत्यन्त थक गये एवं उन्होंने बहुत तप भी किया।

हमारे महाराज श्री जगद्‌गुरु जी ने भी इसी बात को भक्त एवं शिष्य जनों के समक्ष अभिव्यक्ति किया कि इसी प्रकार का मनुष्य मात्र को दुःख एवं दुःख के कारण के उपस्थित होने पर उससे लेश मात्र भी विभीषिका (भय) नहीं करनी चाहिए। अपितु भगवान नीलकण्ठ के उदाहरण को समक्ष रख के विषपान के समान दुःख आने पर उससे आनन्दित तथा हर्षित होना चाहिए। तथा सहर्ष उस पूर्वकृत स्वकर्म फल का उपभोग कर उसे क्षीण कर देना चाहिए। क्योंकि कर्म का क्षय दो प्रकार ज्ञान तथा उपभोग से ही होता है। स्थूल कर्मों का क्षय कर्म फल उपभोग से तथा सूक्ष्म वासना रूप कर्म का क्षय ज्ञान से होगा। अतः सुख-दुःखादि स्थूल कर्म का फल है। उन्हें सहर्ष फल उपभोग कर क्षीण करे। एवं वासना रूप सूक्ष्म कर्म का आध्यात्मिक साधन जनित ज्ञान से क्षीण करे। इस प्रकार सर्व कर्म के क्षीण होने पर मनुष्य निःसंदेह ही स्वगन्तव्य स्थान परमधाम

का मार्ग तय करने में समर्थ हो जाता है। महाराज जी का यह अपने भक्तों के लिये तात्विक उपदेश है।

(स्वा. भक्तराम अवधूत)

॥ गुरु ॥

समस्त ग्रन्थ में श्री सद्‌गुरु जी की महिमा का वर्णन किया गया है जैसे की श्री आचार्य जी अपने मुखारविंद से ही कह रहे हैं–

गरीब सद्‌गुरु पूरण ब्रह्म हैं, सतगुरु आप अलेख।

सतगुरु रमता राम हैं, यामें मीन न मेष॥

गरीब सतगुरु आदि अनादि हैं, सतगुरु मध्य हैं मूल।

सतगुरु कुँ सिजदा करूँ, एक पलक नहिं भूल॥

गरीब साहिब से सतगुरु भये, सतगुरु से भये साध।

ये तीनों अंग एक हैं, गति कुछ अगम अगाध॥

सतगुरु सन्त और औतारा तीन कला एकै दरबारा।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि साक्षात शुद्ध ब्रह्म ही सतगुरु हैं। शास्त्र प्रमाणों द्वारा भी यह बात सिद्ध होती है कि गुरू ही भगवान् हैं।

कोई भी वस्तु सिद्ध करने के लिये तीन प्रकार हैं–(१) युक्ति, (२) अनुभव, (३) प्रमाण। तो गुरु स्वयं भगवान् स्वरूप रहते हैं इसमें युक्ति भी है, अनुभव भी है और प्रमाणों के द्वारा भी यह बात सिद्ध हो जाती है–इतना ही नहीं भगवान् स्वयं ही गुरु बन कर आते है–गुरु ही भगवान् बनते यह भी कहने में हर्ज नहीं है। युक्ति–भगवान् श्रीकृष्ण ने जब अर्जुन को इतना मोह देखा की यह तो युद्ध के अलावा सन्यास ग्रहण करने को तैयार हो गया है और उलटी-सुलटी नीति की बातें मेरे पास कह रहा है मानो बड़ा पंडित है–फिर भगवान् को गुस्सा आया और उसको फटकारा।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।

अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥२॥

हे अर्जुन! तुझे इस विषय में अज्ञान किस कारण से प्राप्त हो गया क्योंकि तेरे अज्ञानी विचारों का न तो श्रेष्ठ पुरुषों ने आचरण किया है—और न स्वर्ग को देने वाले ये विचार हैं और न तेरी कीर्ति बढ़ायेंगे।

इसके बाद फिर अर्जुन ने अपनी पंडिताई शुरू की लेकिन भगवान् चुप रहे तब अर्जुन को महसूस हो गया कि मैं गलत रास्ते पर चल रहा हूँ फिर वह स्वयं कहता है—

कार्पण्यदोषो पहत स्वभावः।

पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः॥

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥७॥ अ. २

कायरतारूप दोष करके उपहत हुए स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ ऐसा मैं अर्जुन आपको भगवान् कहता हूँ कि जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याण मार्ग का साधन हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ इसलिये आपके शरण हुए मुझे आप शिक्षा दीजिये॥७॥ इस सब कथन का अभिप्राय यह है कि अर्जुन स्वयं शिष्य बन गया और भगवान् गुरु बन गये इसमें तनिक भी संदेह नहीं और भगवान् ने आगे जो १८ अध्याय तक उपदेश दिया है वह भी गुरु हो कर ही दिया, लेकिन गुरु स्वयं भगवान् स्वरूप होते हैं इसलिये भगवान् कृष्ण ने अपने को इसी उपदेश परंपरा में भगवान् भी माना है। जैसे—

मत्तः परतन्नास्ति किञ्चिदस्ति निश्चय।

मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव॥

हे अर्जुन मेरे अलावा कोई भी वस्तु नहीं है जैसी पञ्जाब देश की माईयाँ सूत की माला बनाती हैं एक ही सूत मणि भी है और धागा भी है इस तरह यह सारा संसार मेरे से अलावा नहीं। इस श्लोक से सिद्ध है कि भगवान् गुरु है और गुरु ही भगवान् है।

और भी भगवान् राम ने लक्ष्मण को उपदेश किया है वह भी गुरु ही होके न की भाई या भगवान् होकर वैसे ही छान्दोग्योपनिषद् में स्वयं

प्रजापति ने इन्द्र को और विरोचन को उपदेश दिया है वे भी गुरु ही होकर न की भगवान् होकर अब आगे और देखिये—(२) अनुभव—सन्त तुकाराम जी का अनुभव है कि भगवान् स्वयं ही गुरु बन जाते हैं वे स्वयं कहते हैं—

"माभया विठोबाचा कैसा प्रेमभाव।

आपणची देव होय गुरु॥१॥

अर्थ—मेरे इस विट्ठल परमात्मा का बड़ा चमत्कार है—और मेरे प्रति बड़ा ही उसका प्रेम भाव है, क्योंकि भगवान् विट्ठल स्वयं ही मेरे गुरु बन जाते हैं॥

(३) **प्रमाण-गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।**

गुरुःसाक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अर्थ—गुरु स्वयं ब्रह्मा है, विष्णु हैं, शंकर हैं, इतना ही नहीं गुरु साक्षात् पारब्रह्म हैं ऐसे गुरुदेवों को नमस्कार है।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेद विभागिने।

व्योमवद्व्याप्त देहाय दक्षिणा मूर्त्तयेनमः॥

अर्थात् गुरु और भगवान् में कोई भी भेद नहीं है—कुछ आकार प्रकार से कदाचित् हो तो भी वे आकार प्रकार तो मिथ्या ही है—जैसे काच की बोतल में रखी हुई चीनी में और टीन के डब्बे में रखी हुई चीनी में रुचि की दृष्टि से भेद वास्तव में भेद नहीं है। वैसी ही बात यहाँ है दोनों भी व्यापक, निर्लेप, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, नित्य, सच्चिदानन्द आनन्दघन, त्रिविध दुःख रहित, संसार रहित तथा अज्ञान रहित हैं। इसलिये यह बिलकुल ठीक है कि गुरु प्रमात्मा स्वरूप ही हैं और उसका कारण दोनों ही उपदेश की साम्यता और एक ही प्रकार की विचार धारणा तथा ऊपर लिखे गये विशेषणों से मुक्त होने से।

सन्त तुकाराम यही बात कहते हैं—"देव ते सन्त देव ते सन्त। निमित्त त्या प्रतिमा॥" अर्थ—सन्तों में और भगवान में कोई भी अन्तर नहीं है, केवल शरीररूप उपाधि से भिन्नता मालूम होती है और जो सन्त है वे ही गुरु स्थान को प्राप्त हो सकते हैं। अन्य नहीं तो स्पष्ट ही गुरु या सन्त

भगवान् स्वरूप ही हैं इसमें एक अंश में भी विपरीत नहीं हो सकता है।।इति शुभम्।।

इस सब प्रकरण से एवं सम्पूर्ण ग्रन्थ से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि श्री सद्‌गुरुदेव जी एक अद्वितीय सच्चिदानन्द घन पारब्रह्म परमेश्वर अखण्ड एक रस ही हैं न इनका शस्त्र द्वारा छेदन किया जा सकता है न अग्नि जला सकता है न पवन शोषण कर सकता है तथा वह अखण्ड हैं। यथा–

गरीब ना सतगुरु जननी जन्या।
जाके माय न बाप।
पांच तत्व सैं रहित है न वहाँ तीनों ताप।

इस प्रकार से सद्‌गुरु जी सर्वत्र व्याप्त है। सर्वोपरि हैं।

इस प्रकार से मैं सद्‌गुरु जी के गुणानुवाद गाकर इस ग्रन्थ को श्री सतगुरु जी आपके समर्पण कर रहा हूँ। सद्‌गुरु जी आप इसे दया कर स्वीकार करें और यह आपके प्रेमी जनों को सुख एवं कल्याण कारक हो। मेरे में कोई गुण नहीं है जो कि मैं आपकी स्तुति करूँ।

विद्या बल कछु है नहीं, नाहीं बुद्धि विकाश।
केवल प्रेम हुलास उर, जीवन चरित्र प्रकाश।।
बार-बार बिनती करूँ, चरण कमल धर शीश।
भक्त राम दूसर नहीं, सद्‌गुरु बिना कोई ईश।।
इष्ट देव माने बिना, कार्य सिद्ध न होय।
भक्त राम ने कर लिया, ध्यान इष्ट को गोय।।
गरीब दास मम इष्ट हैं, पार ब्रह्म शुद्ध रूप।
भक्त राम ध्याये बिना, जाय पड़ो अन्ध कूप।।

।।सम्पूर्ण।।